श्री हरिवंश-पुराण

(प्रथम खण्ड)

सरल भाषानुवाद सहित

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षटदर्शन,
२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों के
प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान,

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर), बरेली (उ० प्र०)

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली
(उत्तर प्रदेश)

●

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

●

●

प्रथम संस्करण
१९६८

●

मुद्रक :
जगदीश प्रसाद मरतिया
बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा

●

मूल्य—सात रुपया

भूमिका

पौराणिक साहित्य में 'श्री हरिवंशपुराण' कई दृष्टियों से एक विशेष स्थान रखता है। सामान्यत इसे 'महाभारत' का 'खिल' (एपेंडिक्स) कहा गया है। अर्थात् 'महाभारत' में अपूर्ण रह गई कुछ घटनाओं की पूर्ति के लिये यह एक 'उपसहार-भाग' की तरह लिखा गया है। स्वय इस ग्रन्थ के आरम्भ में राजा जन्मेजय इसी भावना से इसके सुनने की इच्छा प्रदर्शित करते हैं। 'महाभारत' की कथा सुन लेने के बाद उन्होंने वैशम्पायन जी से कहा था—

"आपके द्वारा कही गई अर्थगाभीर्यपूर्ण, श्रुति-सम्मत तथा विस्तारयुक्त महाभारत की कथा मैंने श्रवण की है। उसमें आपने प्रद्युम्न आदि अनेक वृष्णि एव अन्धकवशी महारथियों के नामों का उल्लेख किया है और उनका कुछ वृत्तान्त भी सुनाया है। उन पुरातन पुरुषों को इतने चरित्र-श्रवण से मेरी तृप्ति नहीं हो सकी। आपके कहने से यह भी विदित हुआ कि पाण्डव तथा वृष्णिवशियों का कुल एक ही था। अतएव हे महामुने! आप भली प्रकार विचारपूर्वक प्रजापति से वृष्णिवशियों तक का पूर्वापर वृतान्त मुझे सुनाइये कि किन किन का कहाँ जन्म हुआ और उन्होंने कौन से महान कार्य किये ?"

इस कथन से प्रकट होता है कि 'हरिवंश' की रचना आरम्भ में भगवान श्रीकृष्ण के पारिवारिक तथा सहकारी व्यक्तियों के चरित्रों का वर्णन करने के उद्देश्य से ही की गई थी। महाभारत निस्सन्देह एक बहुत विशाल और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, पर कुरुक्षेत्र में होने वाले कौरव-पाण्डव सग्राम की मुख्यता होने के कारण उसमें भगवान कृष्ण के 'यादव-वश' का (जिसकी सख्या उस समय ५६ करोड बतलाई गई थी!) और जो वास्तव में किसी समय बड़ा शक्तिशाली बन गया था, वर्णन बहुत कम किया गया है। 'महाभारत' के अन्त में दिये गये 'मौसल-पर्व' में यदुवश के पारस्परिक सहार का वर्णन अवश्य किया गया है पर उन महारथियों ने कहाँ-कहाँ कैसी वीरता दिखाई इसकी

कोई चर्चा उसमे नही पाई जाती । इसी कमी को पूरा करने के लिये 'श्री ह
वश' की रचना की गई है । इसके रचयिता 'महाभारत' के पश्चात् हुए थे ।
महाभारतकार मे पूर्ण श्रद्धा रखते थे, यह भी उनकी लेखनी से ही सिद्ध ह
है । ग्रथ को आरम्भ करते हुए वे कहते हैं—'-

"भगवान व्यासजी के मुखारविन्द से निकले हुए अद्‌भुत, पवित्र, '
नाशक एव सुखदायक 'महाभारत' को जो मनुष्य सुनता हा उसे पुष्करादि त
मे स्नान करने की क्या आवश्यकता है ? पराशर नन्दन एव सत्यवती के
को आनन्द देने वाले उन भगवान व्यासदेव की जय हो जिनके पुण्य-मुखार
से नि सृत कथामृत का पान यह सम्पूर्ण विश्व करता है । जो मनुष्य स्वर्णम
सीगो वाली सौ गायें किसी बहुश्रुत एव वेदज्ञाता ब्राह्मण को दान देता है अ
जो परम पवित्र महाभारत की कथा श्रवण करता है, तो उन दोनो का
समान ही होता है ।"

सभव है हरिवश का आरभिक रूप केवल 'महाभारत' के उपसहा
'खिल' की तरह रहा हो, पर अन्य पुराणो की तरह कथावाचक विद्वानो
उसका भी विस्तार होता गया और वर्तमान समय मे पुराणो के
लक्षण—सर्ग, प्रतिसर्ग, वश, मन्वन्तर तथा वशानुचरित उसमे अच्छे
पाये जाते है । आदिसृष्टि का उद्‌भव, स्वायम्भुव मनु तथा दक्ष से जगत नि
की प्रक्रिया का आरम्भ, पृथु द्वारा पृथ्वी पर मानव-सभ्यता की स्थापना,
स्वत मनु और उनका वश, सूर्य तथा चन्द्रवश का वर्णन आदि विषयो का
पुराण मे उत्तम रूप से प्रतिपादन किया गया है । इतना ही नहीं इसका अध्य
करने पर पाठको को विदित होगा कि 'पुराण' होने पर भी इसमे वास्त
तथ्यो के समावेश करने की अन्य पुराणो की अपेक्षा अधिक चेष्टा की गई
इसीलिये हरिवशकर्ता ने एक स्थान पर इसे इतिहास समन्वित घोषित किया है

उक्ताय हरिवशस्ते पर्वाणि निखिलानि च ।
यथा पुरोक्तानि तथा व्यास शिष्येणधीमता ।।
तत्व थ्यमानाममितमितिहास—समन्वितम् ।
प्रीणत्यस्मानमृतवत्सर्वं पापविनाशनम् ।।
(३-२-१,२)

"शौनक ने कहा कि पूर्वकाल में व्यास शिष्य बुद्धिमान वैशम्पायन जी जिस प्रकार हरिवंश का वृतान्त सुनाया था उसी प्रकार आपने भी कहा है। पापनाशक, इतिहास समन्वित अमृत तुल्य हरिवंश-वर्णन सुन कर हम अधिक आनन्दित हुए हैं।"

यद्यपि पुराणों का मुख्य उद्देश्य धार्मिक तत्वों को उपदेशात्मक कथाओं रूप में वर्णन करके पाठकों को मनोरंजन के साथ नैतिक और चारित्रिक शिक्षायें देना है, इसलिये उनमें ऐतिहासिक तथ्यों को वास्तविक रूप में ढूँढना तथा उनकी प्रत्येक बात को यथार्थ घटना मान लेना अनावश्यक है। फिर प्राचीन राज्यवंशों और राजाओं की नामावली का पता लगाने में देशी और विदेशी इतिहास लेखकों ने 'हरिवंश' को अन्य कितने ही पुराणों की अपेक्षा अधिक मान्यता दी है। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति, कला, रहन-सहन, वेशभूषा आदि के लिये भी 'हरिवंश' के वर्णन अपेक्षाकृत अधिक सारयुक्त माने गए हैं। इसका स्वाध्याय करते हुए पाठक को स्वतः ही ऐसा अनुभव होने लगता है कि विविध विषयों का वर्णन करने में इसके रचयिता ने स्वाभाविकता का विशेष ध्यान रखा है और लेखन-कला का अच्छा परिचय दिया है।

हरिवंश का कृष्ण-चरित्र—

यद्यपि भारतीय-साहित्य के सभी प्राचीन कथा-ग्रन्थों में भगवान कृष्ण का चरित्र वर्णन किया गया है, पर 'हरिवंश', 'भागवत', 'ब्रह्मवैवर्त' आदि का मुख्य विषय कृष्ण-चरित्र का वर्णन और महत्त्व प्रदर्शित करना ही है। पर जहाँ 'भागवत' में कृष्ण के बाल-चरित्र को प्रधानता दी है और गोकुल तथा वृन्दावन की घटनाओं के वर्णन को ही अधिकाधिक स्थान दिया है, वहाँ 'हरिवंश' में कृष्ण के प्रौढावस्था के चरित्रों का विशेष रूप में वर्णन किया गया और उनके द्वारकापुरी के जीवन पर विस्तृत रूप में प्रकाश डालने की चेष्टा की है। पर इन दोनों ही ग्रन्थों में कृष्ण की महाभारत सम्बन्धी घटनाओं का जिक्र भी नहीं किया गया। इसी से अनेक विद्वान् महाभारत के कृष्ण और भागवत' तथा 'हरिवंश' के कृष्ण को पृथक् व्यक्ति मानने की कल्पना करते रहते हैं। वास्तव में भारतीय-साहित्य में भगवान कृष्ण का चरित्र इतना

अधिक व्यापक और विविधतापूर्ण है कि उपनिषदो से लेकर पुराणो तक मे क विभिन्न भावो को लेकर विकसित हुआ है। इसके विस्तृत रूप पर वि करते हुए एक शोध ग्रन्थ मे कहा गया है—

"कृष्ण चरित्र एक प्राचीन वृतान्त है। अनेक ग्रन्थ कृष्ण के चरित्र क किसी न किसी प्रकार परिचय की सूचना देते हैं। 'महाभारत' कृष्ण-चरित्र परिचित ही नही, वरन् उसे एक महत्त्वपूर्ण विषय सामग्री के रूप मे प्रस् करता है। इस विशाल ग्रन्थ के अन्तर्गत कृष्ण के व्यक्तित्व के विविध देखे जा सकते है। 'महाभारत' के आरम्भ मे ही कृष्ण को 'युधिष्ठिर रू धर्म वृक्ष का मूल' कहकर कौरव और पाण्डवो के वृतान्त मे उनके स्वत व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया गया है। उसके 'वनपर्व' मे मार्कण्डेय ऋषि प्रल काल मे जगत को आत्मसात् करके वट-वृक्ष के पत्र मे शयन करने वाले वि को 'कृष्ण रूप' बतलाते हैं। 'शातिपर्व' का नारायणीय-वृतान्त' कृष्ण के परब्र स्वरूप पर सबसे अधिक प्रकाश डालता है। इसमे नर-नारायण, कृष्ण अ हरि को सनातन नारायण के चार अवतार कहा गया है। शाति पर्व के 'भी स्तवराज' के अन्तर्गत कृष्ण के विष्णु स्वरूप की स्तुति की गई है। सभापर्व राजसूय यज्ञ के अवसर पर कृष्ण की अग्र पूजा मे शिशुपाल आदि राजाओ विरोध करने पर भी भीष्म कृष्ण के विष्णुस्वरूप पर जोर देते हैं।"

"महाभारत के कुछ स्थलो पर कृष्ण के देवस्वरूप को छोडकर उन मानव रूप को ही प्रस्तुत किया गया है। पाण्डवो के सलाहकार के रूप मे कृ के ईश्वरत्व पर विश्वास न करने वाले ब्राह्मण उनकी सीमित शक्ति की अ सकेत करते हैं। अश्वमेध पर्व के अनुगीता-भाग मे उत्तक ऋषि का कृष्ण शाप देने को उद्यत होना भी उनके मानव चरित्र की ओर सकेत करना है सभापर्व, वनपर्व तथा शातिपर्व मे कृष्ण के गोपाल रूप का वर्णन भी पा जाता है।"

"पतजलि का 'महाभाष्य' कृष्ण के व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश डाल है। इसमे वासुदेव को कस का निहन्ता कहा गया है। कस की घटना प्रस्तु करने के कारण 'वासुदेव' कृष्ण का ही नाम ज्ञात होता है। पाणिनि व 'अष्टाध्यायी' मे भी वासुदेव का उल्लेख है। पाणिनि के समय विद्वान

लगभग ढाई हजार वर्ष प्राचीन माना है। इस प्रमाण से कृष्ण-पूजा पाणिनि से बहुत अधिक पुरानी सिद्ध होती है। वासुदेव का आशय कृष्ण से ही है, यह 'गीता' के दसवें अध्याय के इस श्लोक से भी सिद्ध होता है—

"वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजय"

" 'छान्दोग्योपनिषद्' में देवकी-पुत्र कृष्ण को गुरु घोर-आंगिरस से ब्रह्म-विद्या सीखते हुए वर्णित किया गया है। छान्दोग्य की प्राचीनता सर्वमान्य है। अधिकांश विद्वान उसे बौद्ध-काल के पहले का प्रमाणित करते हैं।"

हरिवंश में कृष्ण विष्णु के अवतार हैं—

अधिकांश पुराणों में कृष्ण को विष्णु का अंशावतार अथवा पूर्णावतार बतलाया गया है। 'हरिवंश' में भी पृथ्वी के कष्टों को मिटाने के लिये विष्णु के कृष्ण-रूप में अवतरित होने का वर्णन किया है—

"हे राजन्! जलीय मेघों के सदृश्य श्याम वर्ण भगवान श्री विष्णु बोले—ऐसा ही हो तथा समस्त देवगणों सहित वे मेरु शिखर की ओर चल दिये। जब समस्त सदस्य सभा में शान्तिपूर्वक बैठ गये तो पृथ्वी शोरपूर्ण और करुणाजनक शब्दों में विष्णु जी से कहने लगी—हे भगवन्! यह समस्त संसार, समस्त प्राणी और मैं स्वयम् भी आप में ही समाविष्ट हैं। आप अपने तेज और शक्ति से जिनको धारण करते हैं आपकी महत्ता से मैं भी उनका भार सहन करती हूँ। अगर आप उनको धारण न करें तो मैं भी उनका बोझ नहीं ढो सकती। आप ही हर एक युग में मेरा भार हल्का करते आये हैं। हे देवादिदेव! मैं आपकी शरण में आई हूँ अब आप मेरी रक्षा करके मुझे निर्भय कीजिये। जब-जब दुष्ट दैत्यों तथा राक्षसों ने मुझे पीड़ा पहुँचाई है तब-तब मैं आपकी शरण आई हूँ। हे प्रभो! संसार के हित के लिये केवल आप ही युद्धक्षेत्र में वीर तथा निडर क्षत्रिय राजाओं का विनाश कर सकते हैं। मैं इन राजाओं का अत्यन्त बोझ वहन करने के कारण कष्ट से पीड़ित होकर आपकी शरण में आई हूँ। आपके अतिरिक्त कोई और मेरा सहायक नहीं है।"

पृथ्वी द्वारा प्रार्थना की जाने के पश्चात् ब्रह्माजी ने भी निवेदन किया—हे भगवन्! ऐसा कोई कार्य कीजिये जिससे कि पृथ्वी का कष्ट दूर हो। इन

तीनो लोको की रचना आपने ही है तथा आप ही इनके स्वामी हैं। अब ह
समस्त देवगण इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, चन्द्र, सूर्य, वायु, आदित्यगण, आ
वसु, रुद्रगण, अश्विनीकुमार, साध्यगण, बृहस्पति, शुक्र, स्वामि-कार्तिकेय, य
गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पर्वत, सागर, गंगादि नदियाँ आदि को क्या करना चाहि
यह विस्तार से बतला दीजिये। अगर आप राजाओं म परस्पर युद्ध करा
पृथ्वी का भार हलका करना चाहते हैं तो हम लोगो को बतलाइये कि ह
क्या-क्या करना है ?"

इस योजना के अनुसार जब देवताओ के अशो ने अनेक वीरो के रू
मे पृथ्वी पर जन्म ग्रहण कर लिया पर भगवान् विष्णु अपने लोक मे ही बै
रहे तो नारद जी उनको फिर से याद दिलाने को पहुचे और कुछ नाराज होक
कहने लगे—' हे विष्णु ! समस्त देवगणो ने उन अनेको राजाओ का सहा
करने के लिये नाना प्रकार के अवतार धारण किये है। पर यह सब व्यर्थ है
जब तक नर-नारायण दोनो ही पृथ्वी पर अवतीर्ण न हो तब तक कुछ नह
हो सकता। आप ही इन राजाओ का परस्पर सघर्ष कराके सहार कर सकें
हैं। आप सभी तत्त्वो के देखने व जानने वाले हैं, फिर भी आपकी यह योजन
उत्तम नही है। जब सभी देवगणो ने पृथ्वी का कष्ट दूर करने के लिये अवता
धारण कर लिया तो फिर अभी तक आपने अवतार क्यो नही लिया ? समस्त
देवगण जो अवतार धारण कर चुके हैं तभी अपने अभीष्ट को पूर्ण कर सकें
जब आप उनको सहायता तथा प्रोत्साहन देंगे। आपके अवतीर्ण होने से पार्थ
वश का सहार होकर पृथ्वी का भार हलका हो सकेगा। भारत का यह अभीष्
कार्य आप ही सिद्ध कर सकते हैं, अत भारतभूमि पर शीघ्र अवतार लीजिये।'

महामानव कृष्ण—

इन वर्णनो से प्रकट होता है कि श्रीकृष्ण की मान्यता और भगवान् के
रूप मे उनकी पूजा उपासना पिछले दो-तीन हजार वर्षो से भारतवर्ष के अनेक
भागो म प्रचलित थी और पुराणकारो ने अपनी अपनी भावना के अनुसार
अशावतार अथवा पूर्णावतार के रूप मे उनका चरित्र चित्रिण किया है। 'हरि
वश' म भी उनका वर्णन विष्णु के एक महत्त्वपूर्ण अवतार के रूप मे किया

गया है। पुराणों के अनुसार श्रीकृष्ण के चरित्र की अधिकांश घटनाएँ चमत्कारी और दैवी ही कही जा सकती हैं। तो भी 'हरिवंश पुराण' में जगह जगह उनका वर्णन और वार्तालाप ऐसे ढंग से किया गया है जिससे वे एक महामानव और जननायक अथवा राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में प्रकट होते हैं। छोटी अवस्था में ही जब वे गोकुल में रह कर गोपालन करते थे, तभी से उनमें जनहित की गहरी भावना पाई जाती थी और वे उसके लिये समयानुकूल प्रयत्न करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते थे। जब उन्होंने देखा कि मथुरा नगर के समीप होने से गोकुल की भूमि और वन-सम्पत्ति का क्षय तीव्रता से हो रहा है तो उन्होंने उस स्थान को बदलने की योजना बनाई और उसे प्रकट करते हुए बलराम जी से कहा—

"हे आर्य ! अब इस वन में गोप-बालकों के साथ खेलना उचित नहीं, क्योंकि हम इसका उपयोग भली प्रकार कर चुके हैं। अब यहाँ घास और काष्ठ प्राप्त करने लायक वृक्ष भी कम रह गये हैं क्योंकि गोपों ने वृक्षों को काट डाला है। पहले यह वन वृक्षों से इतना परिपूर्ण था कि और कुछ भी दिखाई नहीं देता था, परन्तु अब उन वृक्षों के कट जाने पर सरलता से दूर तक देखा जा सकता है। गोशाला और उसकी प्राचीर पर स्थित वृक्ष व्रज की अग्नि में दग्ध होकर प्रभाहीन हो गये हैं। जो घास अथवा काष्ठ पहले गोकुल के समीप था अब वह बहुत दूर हो गया है तथा यत्नपूर्वक उसकी खोज करनी पड़ती है। इस वन में घास, जल और विश्रामस्थल मिलना अब कठिन हो गया है। यहाँ के सभी वृक्ष बेकार हो चुके हैं, इसलिये वनवासी पक्षियों ने इन्हें त्याग दिया है। यहाँ के निवासियों ने वृक्षों को काट डाला है, इसलिये अब इस वन में वायु के सुगंध नहीं उपलब्ध नहीं होते। पक्षियों के चले जाने से अब यह वन शाकादि से हीन भोजन के समान निरानन्द हो गया है।

"वन में उत्पन्न वनस्पतियों और काष्ठ का विक्रय होने से यहाँ इन वस्तुओं का अभाव होता गया है। पर्वतों की शोभा ग्राम हैं, ग्रामों की शोभा वन तथा वनों की शोभा गौएँ हैं, यही हमारी परम गति है। इसलिये इस स्थान को छोड़ कर हमें वहीं चलना चाहिये जहाँ घास और काष्ठ भरपूर मिल सकें,

क्योंकि गौएँ नवीन तृण चरना चाहती है। हम व्रजवासियो के लिये वैसे भी निश्चित घर, क्षेत्र अथवा द्वार आदि का बन्धन नही है। हम तो हस-सारस आदि पक्षियो के समान जहाँ कही भी जाकर रहने लगे, वही स्थान व्रज बन जाता है। यहाँ की घास मे गोबर और मल-मूत्रादि के मिश्रित हो जाने से एक प्रकार का क्षार उत्पन्न हो गया है, इसलिये गौएँ उसे रुचिपूर्वक नही चरती और उससे उनका दूध भी उतना हितकारी नही होता। इसलिये हमे नवीन तृणयुक्त समतल वन्य-प्रदेश मे अपनी गौओ सहित चल देना चाहिये।"

इस प्रकार भगवान् कृष्ण के हृदय मे बाल्यावस्था से ही लोकहित की सामूहिक भावना पाई जाती थी। वे यह भी समझते थे कि गोपालन करने वाले मानव समुदाय को किसी एक स्थान मे बँध कर रहने की आवश्यकता नही वरन् जब जहाँ चारा और जलवायु उत्तम मिले वही जाकर निवास करना चाहिये। पर अधिकांश मनुष्य स्वभाव से रूढिवादी और परम्पराप्रिय होते हैं इसलिये अनेक असुविधाओ और हानियो को सहन करके भी नवीन परिवर्तन को अपनाने के लिये तैयार नही होते। इसलिये श्रीकृष्ण ने उनको युक्ति का अवलम्बन करके आतंकित किया और गोकुल से हटा कर वृन्दावन के नये और साधन सम्पन्न प्रदेश मे ले गये।

जन-सेवा की भावना—

वृन्दावन पहुँच कर उन्होने लोगो की सुरक्षा और सुख सुविधा की वृद्धि के लिये विशेष प्रयत्न किया और वहाँ जितनी विघ्न बाधायें तथा संकट सामने था उनका निराकरण किया। उनके द्वारा कालिय नाग, धेनुकासुर, अरिष्टासुर, केशी आदि का विनाश किया जाना इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये था। उन्होने अनुभव कर लिया था कि जब तक जन जीवन को सुरक्षित और निष्कंटक न बनाया जायगा तब तक उसका अच्छी तरह विकास और वृद्धि होना संभव नही। इसलिये उन्होने गोप युवको मे तरह तरह के क्रीडा आयोजनो द्वारा सामूहिकता की भावना उत्पन्न की और सम्मिलित प्रयत्नो द्वारा बडी से बडी बाधा का निराकरण करके वृन्दावन को सब प्रकार से एक आदर्श उपनिवेश बना कर दिखा दिया।

श्रीकृष्ण द्वारा इन्द्रोत्सव के स्थान पर गोवर्धन-पूजा का प्रचलन भी इसी मनोवृत्ति का द्योतक था। इन्द्रोत्सव विशेष रूप से कृषिकार्य पर आधार रखने वाले जनगणों की परम्परा थी, जो इन्द्र-योग आदि के द्वारा यथोचित वर्षा होने की कामना रखते थे जिससे अन्न की उपज ठीक हो सके। पर वृन्दावन का गोप-समुदाय मुख्य रूप से पशुपालक समुदाय था जिसका मुख्य उद्देश्य उत्तम गोचर-भूमि और किंचित शुष्क वातावरण प्राप्त करना होता है। ऐसी परिस्थितियाँ पर्वतों की तलहटी में अधिक होती हैं और वह भूमि कृषि की अपेक्षा पशु सम्वर्द्धन के लिये ही विशेष उपयुक्त मानी जाती है। इसलिये श्रीकृष्ण ने अपने नये उपनिवेश की सीमा गोवर्धन पर्वत के समीप तक बढ़ाई और लोगों को यह प्रेरणा दी कि उस क्षेत्र को ही अधिकाधिक विकसित करने की ओर ध्यान दें। उन्होंने इस सिद्धान्त को गोप जाति के मुखियाओं को समझाते हुए कहा—

"हमारी जीविका तो गोधन से चलती है और हमारे देवता भी पर्वत, वन और गौएँ ही हैं। कृषकों की जीविका खेतों से और वैश्यों की जीविका व्यापार से है, वैसे ही हमारी जीविका का साधन गोधन है। विद्या-साधन का आराध्य विद्या ही होती है और वह सरस्वती का ही पूजन करता है। इसके विपरीत जो लोग किसी एक देवता द्वारा जीविका प्राप्त करते हुए अन्य देवता का पूजन करते हैं, उन्हें इह लोक और परलोक दोनों में ही सुख नहीं मिलता। कृषि की सीमा खेत है, खेत की सीमा वन हैं और वन की सीमा पर्वत हैं। वे पर्वत ही विविध रूप धारण कर वनों की रक्षा करते हैं। वे वनों में विघ्न उपस्थित करने वाले दुराचारियों को नष्ट कर देते हैं। ब्राह्मण लोग मन्त्र-यज्ञ और कृषक हलके अग्रभाग से कृषि-यज्ञ करते हैं, उसी प्रकार हम गोपों को गिरि यज्ञ करना चाहिये, क्योंकि हमारा हित उसीसे सम्बन्धित है। अब वर्षा समाप्त होकर शरद ऋतु आगई है, खेतों में अन्न परिपक्व हो गये हैं, पर्वत पर वृक्षों की शाखायें घर के समान विस्तृत होकर झुक गई हैं, इसलिये हम भी गौओं को सजा कर इस पर्वत-देवता का पूजन करना उचित ही है।"

इस प्रकार श्रीकृष्ण ने पशु-पालक समुदाय की अर्थ-व्यवस्था पर यथार्थ प्रकाश डाल कर उनका सच्चा मार्ग-दर्शन किया और उनको इन्द्र-यज्ञ के स्थान

पर गोवर्द्धन-उत्सव की प्रेरणा दी जो उनके लिये अधिक हितकर थी। गोवर्द्धन-उत्सव का आशय केवल पर्वत की पूजा ही नहीं था, पर गौ वंश की उन्नति तथा विकास सम्बन्धी सभी विषयों पर विचार करके लाभकारी योजना बनाना तथा उनको कार्यान्वित करने की विधियों को सोचना भी था। जिस प्रकार आज-कल उद्योग धन्धों तथा राष्ट्रीय संपत्ति की वृद्धि के लिये विभिन्न योजना-आयोग बनाये जाते हैं और समय-समय पर उनकी बैठकें होकर विभिन्न कार्य-क्रमों पर विचार किया जाता है उसी प्रकार उस युग में सामूहिक उत्सव और मेले ही सार्वजनिक हित की योजनाओं को निश्चित करने और आगे बढाने में सहायक होते थे। भगवान कृष्ण ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जो उपाय निकाला वह पूर्णतः कल्याणकारी सिद्ध हुआ और किसी रूप में अभी तक प्रच-लित रह कर गो वंश की महिमा को प्रकट कर रहा है।

राजनीतिक दोषों का निराकरण—

जिस प्रकार भगवान कृष्ण ने लोकहितकारी, युक्तिसंगत दृष्टिकोण अपना कर सामाजिक और आर्थिक सुधारों का प्रयत्न किया, उसी प्रकार राज-नीतिक क्षेत्र में भी उन्होंने सर्वोत्कृष्ट सूझ-बूझ और समयानुकूल गतिविधि का परिचय दिया। उनके समय में कंस का दूषित और निरंकुश साम्राज्यवाद चल रहा था। वह एक नीच स्वभाव का महत्वाकांक्षी व्यक्ति था, जिसने राज्य की लालसा से अपने पिता को सिंहासन से उतार कर उस पर जबर्दस्ती अधिकार कर लिया था। अपनी स्वार्थपूर्ण नीति का विरोधी होने के कारण अपने बहनोई वसुदेव जी को बन्दीगृह में बंद कर दिया था। वह अपनी सामान्य प्रजा पर करों का भार भी बढा रहा था, जिससे एक बड़ी सेना खड़ी करके राज्य का अधिकाधिक विस्तार कर सके। वह वन्य प्रदेश में रहने वाली गोप जैसी अल्प-साधन सम्पन्न जाति पर भी दूध-घी देने का टैक्स लगा रहा था। इन सब कारणों से उसकी समस्त प्रजा तथा अधिकांश राज्य कर्मचारी भी उससे असंतुष्ट थे। पर उसकी क्रूरता और दमन नीति के कारण किसी का साहस प्रकट रूप से उसका विरोध करने का नहीं होता था।

श्रीकृष्ण को कंस का यह अनीतिपूर्ण शासन और अनियंत्रित सैनिकवाद

देश और समाज के लिये घातक जान पड़ा और वे वृन्दावन के वन्य-प्रदेश में ही उसके विरोध में जन-सगठन करने लगे। जब अपने गुप्तचरों द्वारा कंस को इस रहस्य का भेद ज्ञात हुआ तो उसने कृष्ण-बलराम को गुप्त रूप से मरवा डालने के अनेक प्रयत्न किये, पर श्रीकृष्ण की जागरूकता और शक्ति सम्पन्नता के कारण उसकी कोई दुरभिसंधि सफल न हो सकी। तब उसने पहलवानों के दंगल के बहाने श्रीकृष्ण को अपनी राजधानी में बुलवा कर उनकी हत्या कराने का षडयन्त्र रचा। इस पर श्रीकृष्ण ने भी खुल कर उसका मुकाबला करना तथा उसके पापपूर्ण शासन का अन्त कर डालने का निश्चय किया। उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता और नीतिज्ञता से कंस के बड़े-बड़े अधिकारियों तथा घरेलू नौकरों तक को अपनी तरफ मिला लिया और कंस की बड़ी-बड़ी तैयारियों तथा घातक योजनाओं को चकनाचूर करके अचानक ही उसे यमलोक पठा दिया। उनका यह कार्य किस प्रकार लोकहित की दृष्टि से किया गया था, इसका परिचय 'हरिवंश' के उस अध्याय से मिलता है जिसमें कंस-वध के पश्चात् कंस के पिता उग्रसेन और श्रीकृष्ण का कथोपकथन दिया गया है। जब उग्रसेन कृष्ण की महान शक्ति और सगठन-योग्यता द्वारा कुछ ही घण्टों के भीतर कंस को पराभूत और नष्ट हुआ देखते हैं तो तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार वे उनसे राज्य-अधिकार और शासन-सत्ता ग्रहण करने को कहते हैं। वे श्रीकृष्ण को एक विजयी राजा के रूप में मानते हैं और उनके सम्मुख दीनता और वश्यता का भाव प्रकट करते हैं। इस पर श्रीकृष्ण ने उनको स्पष्ट रूप से अपना उद्देश्य और मन्तव्य समझाते हुए कहा—

नहि राज्ये न मे कार्यं नाप्यहं नृप कांक्षितः।
न चाहि राज्य लुब्धे न मया कंसो निपातितः ॥
किं तु लोकहितार्थाय कीर्त्यर्थं च सुतस्तव।
व्यङ्गभूत कुलस्यास्य सानुजो विनिपातितः ॥

"मुझे राज्याधिकार से कोई सम्बन्ध नहीं है, न मुझे राजा बनने की आकांक्षा है और न मैंने राज्य के लोभ से कंस को मारा है। वरन् जब मैंने यह देखा कि वह अनुचित और अपने वंश को कलंकित करने वाले कार्य कर

रहा है तब 'लोककल्याण' की दृष्टि से ही मैंने उसका और उसके छोटे भाई के जीवन का अन्त किया है।"

उन्होंने उग्रसेन जी को विश्वास दिलाया कि मुझे कंस से कोई शत्रुता नहीं थी, पर वह राज्य-मद में अन्धा होकर प्रजा तथा अपने सम्बन्धियों के साथ जो दुर्व्यवहार कर रहा था और प्रजा को साम्राज्यवाद के पंजे में जकड़ रहा था इसी कारण मैंने उसके विरुद्ध विद्रोह का झण्डा ऊँचा किया। अब वह उद्देश्य पूरा हो गया, इसलिये मैं तो उसी वन्य-प्रदेश में जाकर गौएँ चराना ही सबसे अधिक पसन्द करता हूँ। इस रिक्त राज्य सिंहासन पर आप ही विराजमान हों, आप ही इसके न्यायोचित अधिकारी हैं, मैं तो एक देश-सेवक तथा समाज-सेवक के नाते आपकी जितनी भी सेवा और सहायता हो सकेगी उतनी किया करूँगा।

सामाजिक अवस्था का दिग्दर्शन—

प्रत्येक पुराण में कलियुग-वर्णन का एक प्रसंग पाया जाता है, जिसके विषय में विद्वानों का मत है कि वह उस काल की सामाजिक दशा का द्योतक है, जिसमें उस पुराण की रचना अथवा विस्तार किया गया था। हरिवंश के 'भविष्य-पर्व' में भी आरम्भ में ही यह प्रसंग उठाया गया है और कहा है—

"कलियुग में राजा अपनी इन्द्रियों के दास बनकर प्रजा-रक्षण से पराङ्मुख हो जायेंगे। वास्तविक क्षत्रियों का राजसिंहासन पर अधिकार नहीं रहेगा और ब्राह्मण शूद्रों की जीविका अपनायेंगे। पंक्ति भेद का नाम न रहेगा और सब लोग एक साथ बैठ कर भोजन करेंगे (जैसा होटलों में देखा जाता है)। नौकर अपने मालिकों से प्रतिस्पर्धा करने लगेंगे और उनका सर्वस्व अपहरण कर लेने में भी संकोच नहीं करेंगे। उस समय धन की ही पूजा होगी। सज्जन उपेक्षणीय समझे जायेंगे और पतितों की कहीं निन्दा नहीं की जायगी। और—

अट्ट शूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः।
प्रमदा केश शूलाश्च भविष्यति युगक्षये॥

'सभी लोग अन्न को बेचने लगेंगे, ब्राह्मण धर्म को बेचने वाले हो जायेंगे और स्त्रियाँ अपने रूप-सौन्दर्य का विक्रय करने लगेंगी—उस युग के अन्त

मे सर्वत्र यही दशा दिखाई पड़ेगी।" पामर जनो से लेकर साधारण लोग तक ब्रह्मवाद के बहाने धर्मभ्रष्ट हो जायेंगे। कलियुग मे ब्राह्मण तपस्या और धर्मो के फल को बचेंगे और समस्त ऋतुएँ समय विरुद्ध प्रवर्तित होगी। शूद्रगण मद्य-मांस त्याग कर श्वेतदन्त, सूक्ष्मदर्शी मुण्डितमुण्ड या काषाय वेष धारी होकर बौद्ध अथवा जैन-मत को मान कर वेद विरुद्ध आचरण करेंगे। पृथ्वी पर हिंसक जीवो की अधिकता हो जायगी और गौओ का ह्रास होने लगेगा। सभी वस्तुओ का स्वाद घट जायगा। उस समय म्लेच्छगण मध्यदेश मे और मध्यदेश निवासी म्लेच्छदेशो मे जाकर रहने लगेंगे। संसार के सभी लोग चौर्य वृत्ति अवलम्बन करके परस्पर एक दूसरे का धन अपहरण करते हुये अल्प आयास से ही धनी बन जायेंगे और तरह-तरह के व्यसनो मे फँस कर दुर्दशाग्रस्त होन लगेंगे—

सर्वे वाणिज्यकाश्चैव भविष्यन्ति कलौयुगे।

कलियुग मे सभी लोग वाणिज्य-वृत्ति का अवलम्बन करके उदरपालन करने वाले होंगे। समस्त पृथ्वी वृथा रूप-गर्विता एव दुश्चरित्रा नारियों से भर जायगी और उनकी सख्या पुरुषो से अधिक हो जायगी। ब्राह्मण लोग बिना विचारे सभी वर्णों का दान लेते फिरेंगे। ससार के सभी लोग राज-दण्ड, चोर-दण्ड और अग्नि-दण्ड से नितान्त दुःखी होकर नष्ट होने लगेंगे। खेतो मे बोया हुआ बीज भी नष्ट हो जायगा। तरुण पुरुष वृद्ध जैसे दीखेंगे। ब्राह्मणो मे केवल क्रोधमात्र की निपुणता शेष रह जायगी। क्षत्रियगण वैश्यो के समान धन-धान्य का क्रय-विक्रय करके जीविकायापन करेंगे। अनावश्यक होने पर भी लोग झूँठी प्रतिज्ञा करेंगे और शपथ लेंगे। नीच प्रकृति वाले ही नही, उच्च कहलाने वाले भी ऋण लेकर हड़प कर जायेंगे। गोधन की कमी होने पर लोग दूध के लिये बकरियाँ पालेंगे। शास्त्रज्ञान विहीन लोग इच्छानुसार शास्त्रीय नियमो का प्रतिपादन करेंगे और अनुभवी वृद्धो से उपदेश प्राप्त किये बिना ही सब कोई अपने को सर्वज्ञ और विज्ञ समझने लगेंगे। इतना ही नही—

न कश्चिद् कविर्नाम युगान्ते समुपस्थिते।

उस कलियुग मे कोई मनुष्य 'अकवि' न रह जायगा, अर्थात् सभी

साहित्य के ज्ञाता होने का दावा करेंगे। पुत्र पिता से और स्त्रियाँ अपनी माताओं से सेवा कार्य लेंगी, गुरु के प्रति शिष्य का गर्जन-तर्जन भीषण हो उठेगा।"

आजकल इन बातों में से अधिकांश प्रत्यक्ष होती दिखलाई पड़ रही हैं और इससे लोग बात बात में वर्तमान युग की निन्दा करते हैं। पर हरिवंश के इस प्रसंग से अनुमान किया जा सकता है कि इस प्रकार की दुष्प्रवृत्तियाँ आज से दो डेढ़ हजार वर्ष पहले भी पाई जाती थीं, चाहे उस समय उनका विस्तार अधिक न हुआ होगा। उस समय सर्वसाधारण में इन दूषित मनोवृत्तियों के लक्षण देखकर ही पुराणकार ने भविष्य का अनुमान करके यह चित्र खींचा है।

'विष्णु पुराण' में भी कलियुग का वर्णन करते हुये लोगों की बढ़ती हुई स्वार्थमयी मनोवृत्ति को देख कर जग के परिवर्तनों का जो वर्णन किया गया है वह इससे मिलता-जुलता ही है। उसमें पराशर जी ने कहा है—

"कलियुग में मनुष्यों की प्रवृत्ति वर्णाश्रम धर्म और वेदत्रयी युक्त नहीं होती। उस समय धर्म-विवाह, गुरु शिष्य सम्बन्ध, दाम्पत्य जीवन का क्रम और अन्य धर्मानुष्ठानों का लोप हो जाता है। जिसके मुख से जो निकल जाय वही शास्त्र मान लिया जाता है। भूतगण देवता बन जाते हैं और सभी के लिये सब आश्रम खुले होते हैं। स्त्रियाँ धनहीन पति का त्याग करेंगी और धन को ही पति बनायेंगी। अधिक धन देने वाला ही स्वामी होगा, कुलीनता तथा सज्जनता का कोई महत्व नहीं होगा। सभी व्यक्ति अन्यायपूर्वक धन ग्रहण करवाने की इच्छा करेंगे। शूद्र ब्राह्मणों की समानता करेंगे और दूध देने के आधार पर ही गौओं का सम्मान किया जायगा। भूख से व्याकुल हुई प्रजा अनावृष्टि के भय से आकाश की ओर ताकती रहेगी। ब्रह्मचारी व्रतादि न करने वाले, गृहस्थ सत्पात्र को दान न देने वाले, वानप्रस्थ नगर का भोजन पसन्द करने वाले और सन्यासी अपने परिवार वालों के प्रेम में फँसे रहने वाले होंगे। कलियुग में राजागण कर लेने के बहाने प्रजा को लूटने वाले होंगे। अधम लोग सन्यासी के वेष में भिक्षावृत्ति करेंगे और सम्मानित हो पाखंड की वृद्धि करेंगे।

मैत्रेय जी ! जैसे-जैसे धर्म की हानि होती हुई दिखाई दे, वैसे-वैसे ही कलि-
[illegible] का बढ़ना हुआ समझना।"

वास्तव में कलियुग अथवा पाप-युग का मुख्य लक्षण यही है। जब भी धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती दिखलाई दे तभी कलियुग समझ [illegible]या जाय। अन्य सब बुराइयाँ उसी के अन्तर्गत आ जाती हैं। ऐसी परिस्थि[illegible]याँ प्रत्यक युग में बीच-बीच में पैदा होती रहती हैं। कंस और कालयवन [illegible]सों का शासन किसी युग में क्यों न हो उसे कलियुग ही समझना चाहिये। [illegible]र इतना अवश्य है कि इसकी अधिक वृद्धि तभी होगी जब धन की अधिक [illegible]द्धि होगी तथा मनुष्य नैतिकता तथा धार्मिकता की अपेक्षा उसे अधिक महत्व [illegible]गे। जब कभी साम्राज्यवाद और पूँजीवाद की प्रवृत्तियाँ बढ़ेंगी सर्वसाधारण [illegible] अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न होंगे और दुर्गुणों की वृद्धि होने लगेगी।

साम्प्रदायिक समन्वय की प्रवृत्ति—

अनेक विदेशी विद्वानों का कथन है कि अधिकांश पुराण साम्प्रदायिक-भावना से रचे गये हैं और उनके कारण विभिन्न सम्प्रदाय वालों के बीच दुर्भावना उत्पन्न होती है। इस कथन को कुछ अंशों में ठीक मानते हुये भी सब पुराणों को सम्प्रदायवादी अथवा विभिन्न सम्प्रदायों में वैमनस्य उत्पन्न करने वाला मानना उचित नहीं जान पड़ता। दो-चार पुराणों में अन्य देवों की निन्दात्मक बातें मिल सकती हैं, पर अधिकांश पुराणकारों ने शैव-वैष्णव-शाक्त इन तीनों मतों में सामञ्जस्य स्थापित करने का ही प्रयत्न किया है। इसका एक स्पष्ट उदाहरण शिवपुराण और रामचरितमानस की तुलना करने से मिल सकता है। शिवपुराण में शिव को सर्वोपरि मान कर विष्णु और ब्रह्मा को उनके कृपापात्र के रूप में दिखलाया है। इसके विपरीत रामायण में (जो कि कई पुराणों के आधार पर लिखी गई है) राम ही सर्वेश्वर हैं और शिव उनके सबसे बड़े भक्त हैं। इस तरह एक दूसरे के सर्वथा विपरीत दृष्टिकोण रखते हुए भी दोनों रचनाओं में समन्वयात्मक दृष्टिकोण ही अपनाया गया है।

'हरिवंश' यद्यपि एक वैष्णव-पुराण है और उसका मुख्य उद्देश्य कृष्ण

चरित्र का उत्कर्ष और उसका विस्तार करना है, तो भी उसमें शिव को ब
ऊँचा स्थान दिया गया। 'भागवत' 'ब्रह्मवैवर्त', और 'विष्णुपुराण' आदि
जहाँ श्रीकृष्ण को सर्वोपरि तथा सर्वेश्वर बतलाया गया है वहाँ 'हरिवंश
शिव को ही ऊँचा स्थान दिया गया है। यद्यपि शिव भी श्रीकृष्ण का सम्म
करते है, पर सृष्टि मे ऊँचा स्थान उन्हीं का है। इस दृष्टि से 'पारिजात
लिये श्रीकृष्ण और इन्द्र के संघर्ष के अवसर पर श्रीकृष्ण द्वारा शिव की स
विशेष महत्त्व की है। वे शिवजी की आराधना करते हुए कहते हैं—

"हे देव ! आपने रुदन करते हुए द्रावण किया इसी कारण 'रुद्र' कहे ग
हो। आप नित्य अपने ही प्रकाश प्रकाशित होते रहते हैं, आप भक्तवत्सल
अतएव मुझे यशस्वी बनाइये। आप गृहस्थ म रहने वाले ससारी और ससार
विरक्त सन्यासी रूपी पशुओ (जीवो) के स्वामी हैं, अतएव लोग आप
'पशुपति' कहते हैं। आप सर्वकर्मा हैं, आपसे बढकर श्रेष्ठ देवता और कोई
नही है। आप जगत्पति तथा देव-शत्रुओ के नाशक हैं। आप ईश्वरो के
ईश्वर हैं, आप आद्य, प्रीतिप्रद और प्राणप्रद हैं। आप साधुओ का कल्य
करते हैं इसी से लोग आपको 'शर्व' कहते हैं। आप ही 'ईशान' हैं, आप
तेज सूर्य से भी अधिक है। आप अपने भक्तो को सदा शान्ति तथा पाप कर्म
को दण्ड देते हैं, इसी से धर्मात्मा व्यक्ति आपको 'शंकर' कहते हैं। हे सोम
आप ससार मे स्त्री-चिह्न, पुरुष-चिह्न, स्थावर और जगम सब के सर्वस्व
जो विप्रगण आपके वास्तविक तत्त्व से परिचित हैं, वे लोकधात्री पार्वती
तथा आपको गुणात्मक कहते हैं। वेदो मे इन उमा देवी को मायास्वरूपा क
गया है। इस मायास्वरूपा भगवती से ही महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है। अ
यज्ञ में दीक्षित योगियो के यज्ञस्वरूप हैं। भूत, भविष्य तथा वर्तमान मे कि
भी समय आपके तुल्य कुछ भी नही है। हे देवादिदेव मैं (विष्णु), ब्रह
कपिल, शेष भगवान आदि सब आपके द्वारा ही उत्पन्न किये गये हैं। ज
के सभी पदार्थ, वस्तुएँ आपके द्वारा ही उत्पन्न होती है। इससे आप सब
स्तुत्य हैं।"

शिवजी भी श्रीकृष्ण के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं—

"हे गुणसत्तम ! आपकी कामना अवश्य पूर्ण होगी। आप अवध्य, अजेय तथा मुझ से भी अधिक बलवान होंगे। जब आपने मैनाक पर्वत पर तपस्या की थी तभी मैंने आपको वरदान दे दिया था। मेरा वरदान कभी व्यर्थ न होगा। आज से मैं बिल्वोदकेश्वर के नाम से विख्यात हूँगा और आप जहाँ मुझे स्थापित कर देंगे वहीं रहता हुआ सब लोगों की कामना पूर्ण करता रहूँगा।"

ये सब वर्णन साम्प्रदायिक द्वेष से कितने पृथक और समन्वय की भावना की वृद्धि करने वाले हैं, यह पाठक सहज में अनुभव कर सकते हैं। हरिवंश में सर्वत्र ऐसी ही समन्वयात्मक नीति से काम लिया गया है और किसी भी देवता को नीचे गिराने की चेष्टा नहीं की गई है।

विश्व और मानव की वास्तविकता—

भगवान की लीला-कथाओं के उपरान्त जहाँ 'हरिवंश' में विश्व और मानव के वास्तविक स्वरूप पर विचार किया है, वहाँ दर्शन तथा योग सम्बन्धी उत्कृष्ट तत्वों का निरूपण एक निराले ही ढंग से किया गया है। उसमें मानव-शरीर में ही ब्रह्माण्ड की स्थिति सिद्ध की गई है और कहा है कि मनुष्य उचित साधन द्वारा सहज में ही इस चराचर जगत का स्वामी और नियंत्रक बन सकता है। 'हरिवंश' का यह विवेचन अनेक दृष्टियों से विलक्षण और विशेष महत्वपूर्ण है। इसमें योग का बहुत सूक्ष्म वर्णन करते हुये उसके प्रचलित अष्टाङ्गों का नामोल्लेख नहीं किया है, पर उसकी विधियों तथा उनके परिणामों पर भली भाँति प्रकाश डाला गया है।

'हरिवंश' में मधु-कैटभ के उपाख्यान का अन्य पुराणों की तरह वर्णन करते हुए यह भी प्रकट किया है कि इस कथा में विवेक रूपी विष्णु मोह रूपी मधु दैत्य पर विजय प्राप्त करके उसको नष्ट करते हैं। सृष्टि-रचना में जब विष्णु और मधु का भीषण संग्राम होता तो सिद्धगण आकाश में प्रकट कर उनकी स्तुति करते हैं—

"हे नारायण इस धातु विनिर्मित भौतिक शरीर में जो निर्लिप्त भाव से चेतन बन कर विराजमान रहता है, वह चेतन ही चिन्मय सनातन

ब्रह्म और देहेन्द्रिय संयुक्त जीव के नाम से प्रसिद्ध होता है। यह पाँच भौतिक उपादान प्रलयकाल में सूक्ष्म होकर नारायण में विलीन हो जाता है। फिर जब समय आता है तब वही सूक्ष्म रूपधारी उपादान विभिन्न रूपों में जीवों को उत्पन्न करके अपने मायाजाल में फँसा कर मानस-शरीर धारण करके विभिन्न लोकों में विचरण करता रहता है। वे योगात्मा भगवान शिष्टों का पालन और दुष्टों का निग्रह करने के लिये विभिन्न रूप धारण करके पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं। वे ही भूतधात्री पृथ्वी, शेष नाम वाले अनन्तदेव, स्वर्ग-लोक के धारक हैं और वे ही पंचभूत हैं। इस प्रकार वे ही धार्य और धारक हैं। वे ही वेद रूप से ब्राह्मणों को, युद्ध रूप से क्षत्रियों को, दान रूप से वैश्यों को और सेवा रूप से शूद्रों को पालते हैं। वे दुग्ध रूप से गौ, यज्ञीय प्रोक्षण रूप से अश्व, ऊष्मा रूप से पितर, हवि रूप से देवता, सप्तविध-अन्नरूप से पितृगणों और समस्त त्रिलोकी का पालन करते हैं। आप कभी तेजोमूर्ति धारण कर विश्व को प्रकाशित करते हैं और कभी तमोमूर्ति होकर सब कुछ अन्धकारपूर्ण कर देते हैं। हे भगवान आप ही आकाशादि पंचभूत आप ही अहंकारादि पंचतन्मात्रास्वरूप हैं। आपसे ही ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हुई है। आप सबके मूल कारण हैं। इसलिये अग्नि, वायु प्रभृति आप से ही तेज प्राप्त करते हैं। प्रलयकाल उपस्थित होने पर रुद्र स्वरूप होकर आप सब कुछ भस्म करके आत्मसात् कर लेते हैं।"

इस प्रकार पुराणकार ने कथा और रूपक के साथ विश्व के वास्तविक स्वरूप और उसके मूल आधार पर भी पूरा प्रकाश डाला है। इसका आशय यही है कि पुराण साधारण और विशेष सब श्रेणियों के व्यक्तियों के लिये उपयोगी हैं। साधारण व्यक्ति दृश्य-जगत को ही देखता और समझता है, इसलिये उसके मार्ग-दर्शन के लिये भगवान के लीला-प्रसंग को मनोरंजक रूप में उपस्थित किया गया है। पर ज्ञानीजन इसके मूल स्वरूप को जानने के अभिलाषी होते हैं, इसलिये परमात्मा के सत्स्वरूप और जड़ प्रकृति से नाना प्रकार के अद्भुत और आश्चर्यजनक रचना के प्रकट होने का रहस्य भी बतलाया गया है। रचयिता का यह प्रयत्न निस्सन्देह प्रशंसनीय है।

'हरिवंश' की योग-पद्धति की विशेषता—

शास्त्रों में अध्यात्म-मार्ग में प्रगति होने का मुख्य उपाय योग बतलाया गया है। भक्ति और ज्ञान मार्ग अधिकांश में भावना-प्रधान हैं। यदि हमारी भावनाएँ शुद्ध होंगी, उनमें प्रखरता होगी मनोबल सुदृढ होगा, तभी हम भक्ति और ज्ञान-मार्ग की साधना को प्रभावयुक्त बना सकते हैं। पर योग अधिकांश में व्यावहारिक और क्रियात्मक होता है और उसका प्रतिफल अपने को और दूसरों को भी बहुत कुछ स्पष्ट दिखलाई दिया करता है। इसलिये सभी धर्म-शास्त्रों ने उसका महत्त्व स्वीकार किया है और उसका मार्ग भी बतलाया है। 'हरिवंश' में योग-मार्ग का जो विवेचन किया गया है, उसमें यम-नियम, आसन, प्रत्याहार आदि आठ अङ्गों का नाम नहीं आया है, केवल उनके स्वरूप और विधि का वर्णन एक स्वतन्त्र रूप में ही किया गया है। उससे कुछ विद्वान् यह अनुमान करते हैं कि हरि-वंशीय योग-पद्धति अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक प्राचीन समय की द्योतक है। उदाहरण के लिए उसकी कुछ बातें निम्न प्रकार हैं —

"भगवान ईश्वर, ऐश्वर्य प्राप्ति के साथ ब्रह्मरूप में अवतीर्ण होकर योगासक्त चित्त से स्थाणु (खूँटे) की तरह अचल भाव से रहते हैं। उनके रजोगुण की ओर आकृष्ट होने पर जीव सृष्टि की बहुलता होती है। मोक्ष पद प्राप्ति में जिस प्रकार विविध बाधायें रहती हैं, उसी प्रकार ज्ञान पद की प्राप्ति में भी अनेक विघ्न रहते हैं। किन्तु भगवान मोक्ष पद के समान ज्ञान-पद में भी सहायक होते हैं और ज्ञान-पद से साधन करने में हजारों पद उत्पन्न कर देते हैं। जो ब्रह्म सहृदय ब्राह्मण साधक विकारहीन कार्य में प्रवृत्त होते हैं, उनमें सर्व प्रथम आकाश रूपी ऐश्वर्य का उदय होता है। यह आकाश-ज्ञान ही विशुद्ध ब्रह्म है। वेदों की भली भाँति आलोचना करने से ज्ञात होता है कि ब्रह्मवादी योगी, देहधारी व अन्यान्य सभी पदार्थ ब्रह्म में ही विलीन रहते हैं। ब्रह्म-योग का अनुष्ठान करने से परब्रह्म में आकाश रूपी ऐश्वर्य का ज्ञान होने पर योगीगण उन्हें वायु स्वरूप कहने लगते हैं। इसी प्रकार क्रमश तेज आदि (अग्नि तत्व आदि) विकारों का भी प्रादुर्भाव होता है। इस प्रकार सब

विकारों से उत्तीर्ण हो जाने पर जब साधक मे ध्रुव ऐश्वर्य स्वरूप परब्रह्म के ज्ञान का उदय होता है, तब वह सिद्ध पुरुष कहा जाता है। वह सिद्ध शरीर से निरालम्ब हो वायु आदि महाभूतो के सहारे अदृश्य भाव से आकाश मे विचरण करता है। इहलोक के मनुष्य इन्द्र के सदृश्य हजारो नेत्र पाकर भी उसको नही देख सकते।"

इसके पश्चात् 'ओंकार-योग' का महत्त्व दर्शाते हुए कहा है—"विद्वान् ब्राह्मणो के लिये यह ॐकार ही ब्रह्म स्वरूप रहता है। यह ॐकार चैतन्य परमात्मा के साथ सब जीवो के अन्तरात्मा मे विचरण करता रहता है। श्रेष्ठ साधको का कथन है कि इस 'ॐ' शब्द और ब्रह्म मे तनिक भी भेद नही है। यह नित्य, सर्व वर्ण प्रकाशक और वायु स्वरूप है। यही वैखरी रूप को प्राप्त हो जाता है। यद्यपि ॐकार रूप रहित है, पर नाना प्रकार के तत्वो से मिल कर जीवो के शरीर मे वैखरी स्वरूप हो जाता है। यह ॐकार रूपी ब्रह्म सूक्ष्म रूप से सब जीवो मे विचरण करता रहता है, किन्तु किसी मे लिप्त नही होता। जो उदार मनीषी ब्रह्म मे तन्मय हो जाते हैं वे ही इस ओंकार रूपी ब्रह्म का चिन्तन कर सकते हैं। उत्कृष्ट पद प्राप्त करने के लिये ही वे प्राणपण से विविध प्रकार के कर्म करते हैं।"

आगे चलकर ज्ञान और भक्ति का समन्वय करने के उद्देश्य से कहा गया है—"वे योगी तीन बार प्रदत्त पुष्प-माला की तरह शारोपहार अर्पण करके सत्य पराक्रम विष्णु की आराधना करते हैं। वेद ही जिनका एकमात्र अवलम्ब होता है, ऐसे वेदज्ञ साधक वेदो के प्रमाणानुसार योग और विष्णु-पूजा दोनो प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करते हैं। उनको यह दृढ विश्वास हो जाता है कि ब्रह्म और विष्णु अभिन्न हैं। निर्मल अन्त करण के साधक मोक्ष के अधिकारी बनकर जिस महात्मा का साक्षात्कार करते हैं वही ब्रह्मा, विष्णु, रस, ऐश्वर्य तथा परम आश्चर्यमय पदार्थ है। किन्तु वायु आदि वि .रो के शान्त न होने तक उसका दर्शन अति दुसह होता है।"

इस प्रकार के ब्रह्म-योग और विष्णु-योग मे जो 'विकार' या विघ्न आते हैं उनका वर्णन भी पुराणकार ने बडी स्पष्टता से किया है। पहले

राजस' योगोपसर्गों का वर्णन करते हुए कहा है—"नेत्र, कर्ण आदि पाँच इन्द्रियों को सिद्ध कर लेने से ही दूर-दर्शन तथा दूर-श्रवण आदि का ज्ञान अनायास प्राप्त हो जाता है। अतएव जो पचेन्द्रियों में स्थित रूप और शब्दादि गुणों को त्याग कर सनातन ब्रह्म के विषय में मनन करते हैं, वह उत्कृष्ट वैराग्य-भाव प्राप्त होने के पहले ही योग-सिद्धि के विषय में नाना प्रकार के विघ्न घेर लेते हैं। नव-द्वार युक्त इस शरीर में काम, क्रोध, लोभ, मोह प्रभृति अनेक उपसर्ग विद्यमान रहते हैं। अपनी बुद्धि शक्ति की सहायता से उन उपसर्गों का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर शरीर में एक प्रकार के तेज का प्रादुर्भाव होता है। वह तेज जब मस्तक से निकलता है तो भयानक रूप से धुआँ-सा उठता जान पड़ता है। वह धुआँ नील, रक्त-वर्ण, पीत, श्वेत, मंजिष्ठ, कपोत ग्रीव, वैदूर्य, पद्मराग, स्फटिक आदि मणियों और इन्द्र-धनुष के समान विविध वर्णों का होता है। वह विविध वर्ण का धुआँ मेघ के समान एक साथ समस्त आकाश (व्यक्तिगत) में छा जाता है। तदनन्तर जब वह धूम्र घनीभूत होकर मेघ रूप में परिणित हो जाता है तो उससे 'वर्षा' होने लगती है। उस वर्षा का सारा जल पृथ्वी में समा जाता है।

"इस प्रकार उस धुएँ के शान्त हो जाने पर सैकड़ों लपटों से युक्त भयंकर अग्नि जल उठती है। उस समय उस योगी के शरीर से अनगिनती चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। उधर मेघ से जितना जल बरसता है इधर योगी के शरीर से उतनी ही अग्नि शिखायें उत्पन्न होती हैं। तदनन्तर वह समस्त 'जलधारा' प्रत्यक्ष 'अग्नि शिखा' में प्रविष्ट होकर ज्वाला को शान्त कर देती है। इन दोनों उपसर्गों के शान्त होकर चित्त का उत्कर्ष होने पर घोरतर 'वायु' चलने लगता है। उसका वेग बहुत ही प्रबल होता है, शब्द अत्यन्त भयंकर होता है। इस प्रकार ये अग्नि, वायु, जल, प्रभृति तत्त्व एकत्रित होकर सैकड़ों और हजारों रूप ग्रहण कर लेते हैं। पर वास्तव में वह ब्रह्म ही इस प्रकार के संयोग का कारण होता है। उस समय योगी के दोनों नेत्रों में जो ब्रह्म नाम की वस्तु लक्षित होती है, वह अतिशय सूक्ष्म तथा विराट् के नाम से विख्यात है। अतएव उस समय वह योगी ही स्थूल सूक्ष्म-

भूत, समस्त विद्याओं का आधार एव प्रलयकर्त्ता भगवान विष्णु का रूप … जाता है । इस प्रकार वह योगी सर्वभूत समष्टि रूप हो उठता है । वह अपना स्थूल शरीर त्याग कर भगवान का सारूप्य प्राप्त कर लेता है । ऐसे योगीगण कर्म-बन्धन से मुक्त होकर ही इन्द्रियो के बन्धन से मुक्त होते हैं । अतएव अन्त मे वे जिस प्रकृति को प्राप्त करते हैं, वह प्रकृति यज्ञादि कर्मों मे लगे हुए व्यक्तियो के लिये बहुत दूर की बात रहती है । वे यदि अग्निहोत्रादि यज्ञ तथा कष्ट-साध्य चान्द्रायणादि व्रतो का अनुष्ठान करते हैं, तो उन्हे अपने सत्कार्यों का फल भोगने फिर ससार मे आना पडता है ।"

'तामस विघ्नों का वर्णन करते हुए कहा गया है—"योग साधन के समय विविध विकार उत्पन्न होकर योगियो के मन मे शका उपस्थित करके उसे दुःख देते हैं । कभी योगी को ऐसा मालूम देता है कि वह जल मे डूब रहा है । कभी ऐसा लगता है कि अतिशय शीतल तथा अति उष्ण तरग माला ने आकर उसे सर्वथा ढक लिया है । कभी ऐसा जान पडता है कि वह महा-समुद्र मे निमग्न हो गया है और उसके सब अग भस्म हुए जा रहे हैं । कभी मालूम पड़ता कि नदी का तट ढह गया है और वह जल मे गिर कर डूबा जारहा है । कभी-कभी ऐसा भान होता है कि उसके अन्न-वस्त्र का भी सहारा छूट गया है । कभी ऐसा लगता है कि पीत तथा श्वेत वर्ण की बिजली के समान तेजस्विनी ज्योति उसके मस्तक पर पड रही है । योग साधन के समय मे ये सब उपद्रव उपस्थित होते हैं । जो योगी इन विभीषिकाओ को तुच्छ समझ कर अपना साधन करने मे समर्थ होते है, वे ही ईश्वरत्व प्राप्त करके सिद्ध पुरुष हो जाते हैं ।

"मोक्ष प्राप्ति के साधन स्वरूप योगावलम्बन के समय ब्रह्मवेत्ता व्यक्ति का चित्त स्वभावत सुस्थिर हो जाता है । किन्तु सहसा उसमे कहाँ से विघ्न जनित विविध विकार तथा तैजस ऐश्वर्य का उदय हो उठता है, यह निश्चित नहीं है । उस समय उन्हे ऐसा मालूम पडता है कि विकटाकार, पिंगल नेत्र तथा गम्भीर रूपधारी कुछ पुरुष दण्ड तान कर प्रहार करने को उद्यत हैं । ऐसा लगता है मानो वे विकट पुरुष आँखें निकाल लेंगे और जीभ के संकड़

टुकड़े कर डालेंगे। एक बार वे अपना मुख फैला कर भीषण रूप में चीत्कार करते हैं और तत्काल रूप बदल कर नृत्य गीत द्वारा साधक के मन को सन्तोष देने लगते हैं। कुछ ही क्षणों बाद वे प्राणी सुन्दर स्त्री रूप धारण करके साधक के कन्धे पर हाथ रख देते हैं। तदनन्तर हँस-हँस बातें करते हुए विविध प्रकार के प्रलोभन उपस्थित करते हैं। कुछ देर बाद जैसे दया की भीख माँगते हुए वे साधक के पैरों पर गिर पड़ते हैं और नाना प्रकार की भाव-भंगी के साथ नृत्य करते हुए उसका मन अपनी ओर आकृष्ट करते हैं।"

उपरोक्त वर्णन से प्रकट होता है कि 'हरिवंश' में योग का स्वरूप मुख्यतः तत्वों की साधना करके उन पर विजय प्राप्त करना माना है। क्योंकि यह जगत् पंच तत्वों का ही विकार अथवा खेल है। जो तत्वों पर पूर्ण नियन्त्रण कर सकता है, वह निश्चय ही ईश्वरत्व के निकट पहुँच जायगा, क्योंकि मनुष्यों को ईश्वर का परिचय उसकी पंच तत्वमय रचना के माध्यम से ही मिलता है। "जो साधक पंच तत्वों की माया द्वारा उपस्थित किये गये इन विघ्नों को तुच्छ समझ कर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते चले जाते हैं वे अविनाशी ऐश्वर्य प्राप्त करके सिद्ध बन जाते हैं। पर जो योग-साधक रजोगुण तथा तमोगुण के विकार से उत्पन्न पार्थिव ऐश्वर्य में लुभा जाता है उसका योग मार्ग से पतन हो जाता है और फिर उसकी निन्दा का ठिकाना नहीं रहता। बार-बार अपनी निन्दा सुनकर उसकी ऐसी इच्छा होने लगती है कि वह धरती में समा जाय। किन्तु वह शीघ्र ही नाना प्रकार के भौतिक तथा अन्यान्य विषय रूपी रसों की ओर आकृष्ट हो जाता है और तब संसारी मनुष्य उसे बलपूर्वक विदीर्ण कर डालते हैं।"

योग का लक्ष्य सदैव उच्च ही रहे—

इससे हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि योग एक बहुत ऊँची और पवित्र वस्तु है और उसका लक्ष्य सदैव आत्मोत्कर्ष तथा परोपकार ही होना चाहिए। जो लोग तान्त्रिकों की तरह उसका उपयोग मारण-मोहन-वशीकरण जैसी निकृष्ट स्वार्थपूर्ण क्रियाओं में करते हैं अथवा

हठ-योगियो की तरह उसे प्रदर्शन की चीज बना डालते हैं, वे वास्तविक योग से कोसो दूर हैं। 'हरिवंश' ने इस सम्बन्ध मे बिल्कुल ठीक कहा है—

ब्रह्मयज्ञ तु यजते योगद्वेदात्मक सदा ।
ब्रह्मणो विपुल ज्ञानमैश्वर्यं च प्रवर्तते ॥
ततः प्रथममैश्वर्यं युञ्जानेन प्रवर्तितम् ।
ब्रह्मणा ब्रह्मभूतेन भूताना हित मिच्छता ॥

"जो सच्चे ब्राह्मण वेदानुकूल ब्रह्म-यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, उनको विपुल ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त होता है। उस प्राप्त ऐश्वर्य को स्वार्थ मे व्यय न करके परोपकार मे लगा देना ब्राह्मण का आवश्यक कर्तव्य है।"

धर्म का सबसे बडा लक्षण परोपकार और पर-सेवा ही है। मनुष्य चाहे छोटा हो या बडा, गृहस्थी हो या सन्यासी, भोगी हो या योगी, उसका कर्तव्य है कि अपनी शक्ति और साधनों के अनुसार परोपकार सदा करता रहे। जो इस कर्तव्य का सचाई के साथ पालन करता रहता है, उसका जीवन सार्थक माना जाता है। केवल अपने लाभ की ही चिन्ता रखने वाला अथवा अपनी शक्तियो से दूसरो का अपकार करने वाला चाहे कितना भी बडा योगी, तपस्वी, ज्ञानी, ध्यानी क्यो न हो उसको नष्ट जीवन ही समझना चाहिये। ऐसे ही लोगो की असुर, दैत्य, दानव, राक्षस आदि सज्ञा होती है। वास्तव मे महत्व योग, तप, ध्यान अथवा जप का नही है, वरन् इनको जिस लक्ष्य की पूर्ति के लिये किया जाता है, उसी आधार पर इनकी प्रशसा या निन्दा की जाती है। पुराणा म जगह-जगह यही बतलाया गया है कि हिरण्याक्ष, हिरण्यकुश कीर्तवीर्य अर्जुन, रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद शुम्भ-निशुम्भ, तारकासुर आदि ने भी घोर तपस्यायें की थी, रावण को वेद-शास्त्रो का अपूर्व पण्डित और शिव-योग का अभ्यासी बतलाया गया है, पर ये सब जगत् के अभिशाप स्वरूप ही सिद्ध हुए। इसलिये 'हरिवश' ने यदि योग का लक्ष्य परोपकार बतलाया है तो यह कथन सोलह आने सत्य है।

प की महिमा—

"हरिवंश पुराण" में विष्णु तथा अन्य सभी देवताओं की शक्ति तथा वर्य का आधार तप को बतलाया है। कहा गया है कि "विष्णु ने उत्तर शा में एक पैर से खड़े होकर दस हजार वर्षों तक तप किया। नौ सहस्र ों तक भस्म से आच्छादित होकर तप किया। विष्णु के साथ अन्य अनक ता भी तप में लीन हो गये। ये देवता सोम और वृष रूपधारी महेश्वर थे, ठ सहस्र वर्ष तक महेश्वर के तप के फल स्वरूप वायु घनीभूत होकर उनके त करण में प्रविष्ट हो गया। यह वायु उद्गार के द्वारा फेन रूप में बाहर कला। वायु के सम्पर्क से वह फेन निराधार आकाश में बादल बन गया। ष्टि की इस प्रक्रिया के बाद वायु, अग्नि, वासुकि और पृथ्वी ने तप किया। सके अतिरिक्त आदित्य, वसु, मरुत, अश्विन, गन्धर्व, किन्नर, नाग और ण ने तप किया। इस प्रसंग में तपोशील शेष को कालकूट विष का ारण बताया गया है। पृथ्वी के तप का फल भी शेष के तप की भाँति ष्टि में परिवर्तन का कारण बतलाया गया है। सूर्य ने अपनी किरणों के ारा तपोशील पृथ्वी का रस ग्रहण किया। यह रस बादलों द्वारा मेघ- ल के रूप में पुनः वापस आया तथा इससे नदियों की सृष्टि हुई। सूर्य ी किरणों से समन्वित स्वर्णमय धातुओं वाली नदियां स्फटिक मणि की ाँति शोभित हुई।"

इसमें सन्देह नहीं कि सृष्टि में प्रत्येक श्रेष्ठ पदार्थ के मिलने, येक महान् सफलता के प्राप्त होने का मूलाधार 'तप' ही है। तप का र्थ केवल धूनी तप लेना या किसी कठिन आसन पर बैठे रहकर न्यूनाधिक जप र लेना नहीं है। वरन् इसका आशय यह है कि यदि मनुष्य को कोई र्य—लोकोत्तर कार्य करना हो तो उसके लिये संयम-नियम, ब्रह्मचर्य, रुाहार, अपरिग्रह, मानसिक और शारीरिक संतुलन, सहनशक्ति आदि का यात्मक रूप से पूरा अभ्यास किया जाय। प्राचीन काल के व्यक्ति इस त्य को समझते थे और इसलिये जब कोई महत्वपूर्ण समस्या—कोई म्भीर प्रश्न सामने आता था तो उसके लिये पहले से हर प्रकार का

प्रयत्न, परिश्रम, आत्म-सयम, कष्ट-सहिष्णुता आदि का जीवन व्यती करके उसके योग्य बनने की चेष्टा करते थे। तभी 'देव-शक्तियाँ' उससे प्रस होकर 'वरदान' देती थी। गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो यहाँ तक कहा है-

तप बल रचइ प्रपच विधाता। तप बल विष्णु सकल जग त्राता
तप बल शम्भु करहिं सहारा। तप बल शेष धरइ महि भारा

सासारिक कार्य ही नही, वरन् सृष्टि-सचालन के मूलभूत कार्यों लिये भी किसी न किसी प्रकार के 'तप' की आवश्यकता पडती है। जब त हम अपने लक्ष्य मे पूर्णत तल्लीन न हो जायेगे, उसके लिये बडे से बडा क सकट, श्रम सहन करने को प्रस्तुत न होगे, तब तक कार्य-सिद्धि की आ नही की जा सकती।

इनके अतिरिक्त 'हरिवश' में और भी कई ऐसी विशेषताऐ पाई जा है,जिनके आधार पर पौराणिक-साहित्य मे उसका दर्जा काफी ऊँचा मा जायगा। उसमे भारतीय ललित-कलाओ का जो वर्णन मिलता है उसमे दो- हजार वर्ष पूर्ववर्ती भारत की अच्छी झलक पाई जाती है। उसमे नगर-निर्मा वस्तु-कला, गृह-सज्जा, चित्र-कला, नाट्य-कला आदि के सम्बन्ध मे का महत्वपूर्ण सूचनाये मिलती हैं। श्रीकृष्ण ने द्वारका नगरी को उस समय का कला विशारदो (इजीनियरों) की सहायता से कितना अधिक सुख-सुविधा पू बनाया, इसका वर्णन पढने योग्य है। गन्धर्व-कला के सम्बन्ध मे अनेक बातें इसमे देखने को मिलती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से कई राज-वशों का व इसमे अधिक प्रामाणिक रूप मे पाया जाता है।

कृष्ण-चरित्र प्राचीन और मध्य-कालीन भारतीय-साहित्य का एक वि महत्वपूर्ण अग है। भागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण म महाभारत आदि में उनकी काफी चर्चा की गई है। इधर हिन्दी मे सूरद और अन्य कवियो ने भी अपनी रचनाओ से उनको बहुत लोक-प्रिय बना दि है। 'हरिवश' द्वारा कृष्ण-चरित्र पर जो एक नया प्रकाश पडता है, उस दृ से उसका पठन-पाठन निश्चय ही महत्वपूर्ण है।

श्री हरिवंश पुराण

की

विषयानुक्रमणिका

॥ हरिवंश माहात्म्य ॥

॥ हरिवंश पर्व ॥

विषय	पृष्ठ

श्री हरिवंश पुराण

हरिवंश माहात्म्य

॥ हरिवंश श्रवण माहात्म्य ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१
जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ॥२
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४
त्वया मे भगवन्प्रोक्तो भारतश्रवणे विधिः ।
श्रवणे हरिवंशस्य विशेषाद्वद मे विधिम् ॥५
ब्रह्मविष्णुमहेशानां हरिवंशं जगुर्बुधाः ।
शब्दब्रह्ममयं विद्धि हरिवंशं सनातनम् ॥६
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति ।
हरिवंशपुराणे तु श्रुते वै राजसत्तम ॥७
शारीरं वाचिकं पापं मनसा समुपार्जितम् ।
तत्सर्वं नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा ॥८

का सम्पूर्ण विश्व पान करता है ॥२॥ मैं अज्ञान रूप तिमिर से अंधा हो रहा था, तभी, जिन्होंने ज्ञानाञ्जन की सलाई से मेरे बुद्धि रूपी नेत्रों को खोल कर उनमें ज्ञान का प्रकाश भर दिया है, उन गुरुदेव को नमस्कार करता हूँ ॥३॥ यह अखण्ड मण्डलाकार चराचर विश्व जिस परमात्मा से व्याप्त है, उनके दर्शन का साक्षात् कराने वाले गुरुदेव को नमस्कार है ॥४॥ जनमेजय ने कहा—भगवन् ! आपने मुझे महाभारत की कथा सुनने की विधि बतायी थी, अब कृपा करके हरिवंश-श्रवण की विधि को विशेष रूप से मेरे प्रति कहिये ॥५॥ वैशम्पायनजी ने कहा—ज्ञानियों ने हरिवंश को ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी का स्वरूप कहा है। इसलिये इसे सनातन शब्द ब्रह्म मय समझो, इसमें निष्ठ पुरुष परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥६॥ हे नृपोत्तम ! जैसे सूर्योदय के होने से अंधकार का नाश हो जाता है, वैसे ही हरिवंश पुराण के सुनने से मन, वाणी और देह के द्वारा संचित हुए सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ॥७-८॥

अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत्फलं लभेत् ।
तत्फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः ॥६
स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव वैष्णवं पदमाप्नुयुः ।
जम्बूद्वीपं समाश्रित्य श्रोतारो दुर्लभाः कलौ ॥१०
भविष्यन्ति नरा राजन्सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
स्त्रीभिश्च पुनकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः ॥११
बालघाती च पुरुषो मृतवत्सः प्रजायते ।
श्रवणं हरिवंशस्य कर्तव्यं च यथाविधि ॥१२
गुरुचन्द्राग्निसूर्याणां सम्मुखे मेहते च यः ।
बीजमुत्सृज्यते तेन त्यक्तरेता नरो भवेत् ॥१३
योषित्पुष्पफलानां च बालानां घातिनी तथा ।
फलानां कर्तनकरी मातापितृवियोगिनी ॥१४
स्राविणी परगर्भाणां तत्तत्प्रायोपजोषिणी ।
[illegible] ॥१५

अपुष्पा मृतवत्साश्च काकवन्ध्यास्तथैव च ।
कन्याप्रजात्व च तथा स्रावयुक्ता स्वपातकै. ॥१६
तासा दोषापहारार्थं हरिवंशोऽभिगर्जति ।
मदीयश्रवणात्सद्यो दोषा नश्यन्ति सत्वरम् ॥१७

जो फल अठारह पुराणो के श्रवण से प्राप्त होता है, उतना ही फल विष्णुभक्त को हरिवंश के सुनने से मिल जाता है इसमे सदेह नही है ॥९॥ इसे सुनने वाले स्त्री पुरुष भगवान् विष्णु के धाम को प्राप्त होते हैं। हे राजन् ! मैं सत्य कहता हूँ कि कलिकाल मे जम्बूद्वीप के आश्रय मे निवास करने वालो मे इस ग्रथ के सुनने वाले दुर्लभ हो जायेंगे ॥१०॥ पुत्राकाक्षिणी स्त्रियों को भगवान् विष्णु के इस यश को अवश्य सुनना चाहिये। जिन बाल हत्यारे पुरुषो की सन्तान हो-हो कर मृत्यु को प्राप्त होती है, वह विधि पूर्वक इस हरिवंश को श्रवण करें ॥११-१२॥ गुरु, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि की ओर मुख करके मल-मूत्र का त्याग करने वाला पुरुष जन्म जन्मान्तर मे पुसत्व हीन होता है ॥१३॥ फल फूल तोड़ने और बाल हत्या करने वाली, माता पिता से उनकी सन्तान का विरोध करा देने वाली, दूसरी स्त्रियो के गर्भ नष्ट करने वाली अथवा इसी प्रकार के बुरे कार्य करने वाली स्त्रियाँ अपुष्पा, मृतवत्सा, काक वन्ध्या, कन्याप्रजा तथा स्रावयुक्त आदि दोषो वाली होती हैं, उन सब दोषों को शान्त करने के लिये हरिवंश सदा गर्जता हुआ कहता है कि मेरे सुनने मात्र से सम्पूर्ण दोष तत्काल ही नाश को प्राप्त होते हैं ॥१४-१७॥

॥ हरिवंश श्रवण विधि तथा फल ॥

अथ ते सप्रवक्ष्यामि नवाह्श्रवणे विधिम् ।
सहायैर्बहुभिश्चैव प्राय साध्यो विधिस्त्वः
दैवज्ञ तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नत
विवाहे यादृश वित्त तादृश परिकल्प्य च
नभस्यश्चाश्विनोर्जौ च मार्गशीर्ष शुचिर्न
एते मासा कथारम्भे श्रोतृणा कामसूचक

सहायाश्च त एवास्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये ।
देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रोच्या प्रयत्नतः ॥४
भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः ।
देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवा. कीर्तनोत्सुका. ॥५
तेष्वेव पत्र प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ।
सता समाजो भविता नवरात्र सुदुर्लभ ॥६

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! अब मैं हरिवंश के नवाह्न-श्रवण की विधि कहता हूँ। यह अनेक प्रकार के सहायको से साध्य होती है ॥१॥ प्रथम यत्न-पूर्वक ज्योतिषी को बुलाकर मुहूर्त निकलवावे तथा जितना धन विवाह कार्य के लिये आवश्यक होता है, उतने ही धन की व्यवस्था इसके लिये करे ॥२॥ भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ और श्रावण इन महीनों मे कथा का आरम्भ करना श्रोताओ को अभीष्ट सिद्धि का सूचक है ॥३॥ इस कार्य मे उद्योगी व्यक्ति ही सहायक हो। प्रयत्नपूर्वक कथा होने का सन्देश सर्वत्र विज्ञापित करे और कहलावे कि आप सब सभी सज्जन सपरिवार पधारे ॥४॥ विभिन्न स्थानो मे निवास करने वाले हरिकीर्तन को उत्सुक विरक्त वैष्णव जनों को अवश्य निमन्त्रित करे, निमन्त्रण पत्र मे यह भी लिखे—महानुभावो ! नौ दिनो तक यहाँ सत्पुरुष समागम और सत्सग का परम दुर्लभ सुअवसर है ॥५-६॥

आगन्तुकाना सर्वेषा वासस्थानानि कल्पयेत् ।
तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवण स्मृतम् ॥७
विशाला वसुधा यत्र कर्तव्य तत्कथास्थलम् ।
शोधनं मार्जन भूमेर्लेपन धातुमण्डनम् ॥८
गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ।
कर्तव्यो मण्डप प्रोच्चै कदलीस्तम्भमण्डित. ॥९
फलपुष्पदलैर्विष्वग्वितानेन विराजितः ।
चतुर्दिक्षु ध्वजारोपस्तोरणेन विराजित ॥१०

ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च सप्ताग्रः परिकल्पयेत् ।
तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य वै ॥११
पूर्वं तेषामासनानि कर्त्तव्यानि यथोत्तरम् ।
वक्तुश्चापि तथा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ॥१२

आगत जनों के ठहरने का समुचित प्रबन्ध करे। कथा सुनने का स्थान कोई तीर्थ, वन अथवा अपना घर ही श्रेष्ठ माना गया है ॥७॥ लम्बे चौड़े मैदान में कथा स्थल बनावे, उस स्थान का शोधन, मार्जन और लेपन करके रंग-बिरंगी धातुओं से चौक पूरना चाहिये ॥८। घर की सब वस्तुओं को किसी एक कोने में रखदे तथा कथा के निमित्त केले के खम्भों से युक्त एक ऊँचा मण्डप बनावे ॥९॥ उसे सब ओर से फल, फूल, पत्र तथा चँदोवे आदि से भले प्रकार सजावे, सब दिशाओं में ध्वजायें फैरावे और मण्डप में सुन्दर पताका लगा कर उसकी शोभा वृद्धि करे ॥१०॥ मण्डप में कुछ ऊँचाई पर सात लोक बना कर उनमें विरक्त ब्राह्मणादि को तथा नीचे के सात लोकों में जन साधारण को बैठावे ॥११॥ विरक्त ब्राह्मणों के लिये श्रेष्ठ आसन की और कथा वाचक के लिये दिव्य आसन की व्यवस्था करे ॥१२॥

उदङ् मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ् मुखस्तथा ।
प्राङ् मुखोऽथ भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ् मुखस्तथा ॥१३
विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशारदः ।
दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्यो दयान्वितः ॥१४
वेदवेदान्ततत्त्वज्ञैर्गुणैरभिज्ञैर्ह्यावादिभिः ।
नृणां कृतोपदेशानां सद्यः सिद्धिर्हि जायते ॥१५
अथान्यजनसामान्यैर्गुणैर्नीतिकोविदैः ।
नृणां कृतोपदेशानां सिद्धिर्भवति कीदृशी ॥१६
अनेकधर्मविभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्डवादिनः ।
धर्मशास्त्रकथोच्चारैस्त्याज्यास्ते यदि पण्डिता- ।।१७
वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः ।

पण्डित संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्पर ॥१८
वक्ता क्षौर प्रकर्तव्य दिनादर्वाग्व्रताप्तये ।
वक्तु श्रोतुश्चन्द्रशुद्धौ दम्पत्यो शुभतारके ॥१९
अरुणोदये विनिवर्त्य शौच स्नान समाचरेत् ।
नित्य संक्षेपत कृत्वा सध्याद्य प्रयत्नस्तत ॥२०
सुक्षालितपाणिपाद स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।
गोमयोपलिप्तदेशे सर्वतोभद्रकल्पनम् ॥२१
स्वीयशक्त्यनुसारेण पूजन सर्वमाचरेत् ।
कथाविघ्नविनाशाय गणनाथ प्रपूजयेत् ॥२२

यदि वक्ता का मुख उत्तर की ओर हो तो श्रोताओ का मुख पूर्व की ओर रहे और यदि वक्ता का पूर्वाभिमुख हो तो श्रोतागण उत्तर की ओर मुख करके बैठें ॥१३॥ विरक्त, विष्णुभक्त, वेदशास्त्रो का ज्ञाता, ग्रन्थ के भाव को हृदयङ्गम कराने म कुशल, धीर एव दयालु ब्राह्मण को वक्ता बनावे ॥१४॥ वेद वेदाङ्ग के तत्त्वज्ञ एव ब्रह्मवादी गुरुओ से जिन्होंने उपदेश ग्रहण किया है, उन्हें सिद्धि की सुलभता उसी समय होती है ॥१५॥ परन्तु जो गुरु जनसाधारण के समान ही नीति वाला है उससे उपदेश प्राप्त करने वाले मनुष्यो को सिद्धि-लाभ किस प्रकार सभव है ? ॥१६॥ अनेक मतमतान्तरो मे पड कर भ्रान्त हुए, चोरी करने वाले, लम्पट एव पाखण्डी पुरुष, पण्डित हो तो भी धर्मशास्त्र की कथा कहने के लिये योग्य नहीं हैं उन्हें वक्ता न बनावे ॥१७॥ वक्ता की सहायता के लिए वैसी ही योग्यता वा एक विद्वान और रहना चाहिये, वह भी पण्डित, भ्रम निवारण मे समर्थ और जन-साधारण को समझाने मे चतुर होना चाहिये ॥१८॥ वक्ता को, कथारम्भ से एक दिन पूर्व क्षौर करा लेना चाहिये । वक्ता और श्रोता दोनों के ही चन्द्रबल तथा श्रवण करने वाले दम्पति के ग्रह एवं तारा म अनुकूल हो तभी कथा का आरम्भ करे ॥१९॥ श्रोता को अरुणोदय काल में नित्य क्रिया से निवृत्त होकर स्नान करना चाहिये प्रतिदिन मन को वश में करके सध्याकर्मादि करके ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन करावे, फिर गोबर

। लिपे हुए स्थान पर सर्वतोभद्र मण्डल बनावे और सामर्थ्यानुसार पूजन कर्म को सम्पन्न करे। विघ्नों की शांति के निमित्त श्रीगणेशजी का पूजन करे ॥२०-२२॥

सलक्ष्मीपुत्रसहितं गोपालं स्थापयेत्ततः ।
निर्विघ्नेनैव सिद्धयर्थं देवपूजनपूर्वकम् ॥२३
अद्येत्यादि देशेकालौ स्मृत्वा अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्यामुकशर्मणो मम जन्मनि जन्मनि सञ्चितमहापातकपटलनाशपूर्वकं तेन पापमञ्चयेन कृतसन्तानवाधकताविनाशपूर्वकमिह जन्मनि संतानोत्पत्तिहेतवे तस्य संतानस्य शरदां शतमायुषो वृद्धयर्थं-मात्मनश्च सकलसुखाप्तिहेतवे इह शरीरशुद्धयर्थं परत्र-(चेन्द्रादिलोकातिक्रमणपूर्वकं श्रीमद्विष्णुभक्त्युद्रेकजनितकल्पावधितल्लोकगमनतत्रवासपूर्वकतत्स्वरूपावाप्तिहेतवे) श्रीमद्धरिवंशपुराणश्रवणं करिष्यावहे ॥ अन्यतरकर्तृत्वे करिष्ये इत्येवं संकल्पः ॥ इति कृत्वा तु संकल्पं वक्तारं वृणुयात्ततः ॥
श्रुताध्ययनसंपन्नं पूजयित्वा यथाविधि ॥२४

फिर लक्ष्मी और पुत्रों के सहित गोपाल श्रीकृष्ण की स्थापना करे और कथा की निर्विघ्न रूप से सम्पूर्णता के लिये देव पूजन करके पत्नी-पुत्र, सहित भगवान् श्रीकृष्ण को पूजे ॥२३॥ फिर निम्न प्रकार संकल्प करे—मुझ अमुक गोत्र, अमुक प्रवर, अमुक नाम और जाति वाले, पत्नी युक्त यजमान के जन्म जन्मान्तरों में एकत्र हुए महापाप समूहों का नाश होकर सन्तति बाधा का शमन हो। इस जन्म मे शतायु सन्तति लाभ और सम्पूर्ण सुख लाभ की कामना से, इहलोक मे शरीर-शुद्धि और परलोक मे इन्द्रादि लोकों के पार भगवान् विष्णु की भक्ति के उद्रेक से उपलब्ध विष्णुलोक मे गमन और वहाँ एक कल्प तक निवास तथा इस प्रकार भगवत्स्वरूप की प्राप्ति के निमित्त हम दम्पति यज्ञकर्त्ता होते हुए हरिवंश पुराण को सुनेंगे। यदि एक ही व्यक्ति श्रोता हो तो करेंगे के स्थान पर 'करूँगा' कहे। इस प्रकार संकल्प करके वेद शास्त्रों के पारंगत वक्ता का पूजनपूर्वक वरण करे ॥२४॥

सुवर्णमुद्रिका गृह्य कुण्डले च विशेषत ।
धौतवस्त्र सोत्तरीय चोष्णीषेण समन्वितम् ॥२५
सुवर्णषोडशपल पुष्पताम्बूलसयुतम् ।
पूगीफल चाक्षताश्चैव गृहीत्वा शुद्धमानस ॥२६
(सकल्प) अद्येत्यादि अमुकगोत्रममुकशर्माण ब्राह्मणमेभि-
श्चन्दन ताम्बूलसुवर्णवस्त्रादिभिर्हरिवश श्रवणे वाचकत्वेनावा
दम्पती त्वा वृणीवहे । वृतोऽस्मीति तेनोक्ते ॥ व्रतेन दीक्षा-
माप्नोतीति मन्त्रेण वक्तुर्दक्षिणकरमूले रक्षावन्धन कार्यम् ॥
ब्राह्मणेन श्रोतॄणा रक्षावन्धन कार्यम् । चन्दनाद्युपचारैस्तु
वस्त्रपुष्पाक्षतैस्तथा ।
हेमालकरणै पूगै फलैर्ऋतुसमुद्भवै ॥२७
पुराणपूजन प्रोक्त विधिना षोडशेन तु ।
पूजयित्वा द्विज- श्रेष्ठ श्रवण फलद स्मृतम् ॥२८
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्य विधिपूर्वकम् ।
अथ व्यास नमस्कुर्यमन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥२९
नमस्ते भगवन्व्यास सर्वशास्त्रार्थकोविद ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानमूर्ते सत्यवतीसुत ॥३०
इति व्यास नमस्कृत्य शुभे देशे कुशासने ।
उपविश्य प्रतिदिनमुल्लसत्प्रीतमानस ॥३१

स्वर्ण की मुद्रिका, दो स्वर्णमय कुण्डल सोलह पल स्वर्ण, धोती, चादर, पगडी, पुष्प, ताम्बूल, सुपारी और अक्षत हाथ मे लेकर निम्न सकल्पपूर्वक वक्ता का वरण करे ॥२५ २६॥ हम दम्पति अमुक गोत्र, अमुक शर्मा का इन चदन, ताम्बूल, स्वर्ण, वस्त्रादि से हरिवश की कथा कहने के लिये व्यास रूप से वरण करते हैं। तब वाचक कहे कि 'मेरा वरण हो गया' फिर यजमान 'व्रतेन दीक्षामाप्नोति' इत्यादि मत्र से वाचक के दक्षिण हाथ के मूल मे रक्षा बाँधे। फिर वह ब्राह्मण भी श्रोताओ के रक्षा बाँधे। फिर चन्दनादि उपचार पूर्वक, , पुष्प, अक्षत, स्वर्णभूषण, सुपारी और ऋतुफल आदि से षोडशोपचार

विधि के द्वारा पुराण का पूजन करे ॥२७॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणों का पूजन करके हरिवंश का सुनना अभीष्ट फल देने वाला माना गया है, इसलिये सावधानी से विधिपूर्वक ही इसका श्रवण करना उचित है ॥२८। फिर सभी श्रोता वाचक को नमस्कार करें, उस समय यजमान कहे कि हे सर्व शास्त्रों के अर्थ के ज्ञाता ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव स्वरूप, सत्यवतीपुत्र भगवान् व्यास जी हम आपको नमस्कार करते हैं ॥२९-३०॥ इस प्रकार वाचक को नमस्कार करके श्रेष्ठ पवित्र स्थान पर कुश के आसन पर बैठ कर उल्लासपूर्वक एवं प्रसन्न मन से प्रतिदिन कथा सुने ॥३१॥

बालो युवाऽथ वृद्धो वा दरिद्रो दुर्बलोऽपि वा ।
पुराणज्ञः सदा वन्द्य पूज्यश्च सुकृतार्थिभिः ॥३२
नीचबुद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन ।
यस्य वक्त्रोद्गता वाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ॥३३
गुरवः सन्ति लोकस्य जन्मतो गुणतश्च ये ।
तेषामपि च सर्वेषां पुराणज्ञः परो गुरुः ॥३४
भवकोटिसहस्रेषु भूत्वा भूत्वा च सीदति ।
यो ददाति पुण्यवृत्तिं कोऽन्यस्तस्मात्परो गुरुः ॥३५

पुराण का ज्ञाता बालक, युवा, वृद्ध, दरिद्र अथवा दुर्बल ही क्यों न हो, पुण्याकांक्षी मनुष्यों के लिये वह सदा ही वन्दनीय एवं पूज्य है ॥३२। जिसके मुख से निकलने वाली वाणी देहधारियों के लिये कामधेनु के समान है, उस पुराण के जानने वाले विज्ञ के प्रति बुरे विचार कभी न रखे ।।३३।। जो मनुष्यों के लिये जन्म तथा गुणों से गुरु हैं, पुराणवेत्ता उन सबका भी परम गुरु है ॥३४॥ करोड़ों हजार जन्म लेकर कष्ट को प्राप्त होने वाले प्राणी को पुराण कथा सुना कर पुण्यवृत्ति प्रदान करने वाले से श्रेष्ठ अन्य गुरु कौन हो सकता है ? ॥३५॥

॥ नवाह व्रती के पालने योग्य नियम ॥

नवाहव्रतिना पुंसा नियमाञ्छृणु सत्तम ।
एकवाराशनश्चैव अधःशायी भवेन्नरः ॥१

स्थातव्य ब्रह्मचर्येण यावद्ग्रन्थ समाप्यते ।
हरिवंशे तथा राजन्पायस चरुभोजनम् ॥२
पारणे पारणे यात यथावद्भरतर्षभ ।
मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहार सुखावह ॥३
हविष्यान्नेन कर्तव्यमेकवार कथार्थिना ।
उपोष्य नवरात्र वा शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा ॥४
घृतपान पय पान कृत्वा वा शृणुयात्सुखम् ।
फलाहारेण वा श्राव्यमेकभुक्तेन वा पुन ॥५
सुखसाध्य भवेद्यत्तु कर्तव्य श्रवणाय तत् ।
भोजन तु वर मन्ये कथाश्रवणकारकम् ॥६
नोपवासो वर प्रोक्तो कथाविघ्नकरो यदि ।
शृणुयाद्य शुचिरितश्चनैकचित्ततया सदा । ७
प्रात स्नानादिक कृत्वा पुत्रदारसमन्वित ।
पुराणश्रवण कुर्यात्कृष्णपूजनपूर्वकम् ॥८

वैशम्पायनजी बोले— हे साधु श्रेष्ठ ! नवाह कथा श्रवण का व्रत लेने वालो के आवश्यक नियम कहता हूं। व्रत का पालक श्रोता एक समय भोजन और पृथिवी पर शयन करे ।१॥ ग्रन्थ की समाप्ति पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। हे राजन् ! हरिवंश के प्रत्येक पारण मे खीर अथवा चरु का भोजन करे । २॥ कथा के समय मलमूत्रादि के वेग पर नियन्त्रण रखने के लिये हल्का भोजन उचित है, इसलिये हविष्यान्न का भोजन करे । शक्ति हो तो उपवास करे या केवल दूध या घी का पान करे अथवा फलाहार करे या एक समय भोजन करके कथा श्रवण करे ॥३-५॥ जिससे जिस नियम का निर्वाह हो सके वैसा ही करे, मैं तो उपवास की अपेक्षा भोजन करना ही ठीक समझता हूं ॥६॥ क्योकि

पुष्पधूपफलै सम्यङ नैवेद्यै श्रद्धयोद्धृतै ।
गुरो. शुश्रूपण तेन कर्तव्य फलकाङक्षिणा ॥६
श्रुत्वा यथेच्छया शौच कार्यं पुण्येन वर्त्मना ।
सायकाले गुरुश्रेष्ठ तोषयित्वा सबान्धव ॥१०
स्वपरिग्रहसङ्गेन सुख स्वपिति वै तदा ।
नियमादि प्रकर्तव्य पापाना विनिवर्तने ॥११
यथासुख व्यवहरेन्नित्य विष्णुपरायण ।
शुचि शुद्धमनास्तिष्ठन्पत्रावल्या च भोजनम् ॥१२

इच्छित फल की कामना वाला श्रोता पुष्प धूप, फल तथा श्रेष्ठ नैवेद्य के द्वारा गुरु सेवा करे ॥६॥ कथा श्रवण के पश्चात् सायकालीन कर्मों से निवृत्त होकर बन्धु-बांधवों सहित गुरु श्रेष्ठ व्यास की सेवा मे उपस्थित होकर उन्हें सन्तुष्ट करे और पत्नी सहित घर जाकर पृथक् पृथक् शयन करे। पाप शमनार्थ यम-नियमों का पालन दृढतापूर्वक करे और भगवान् विष्णु के चिन्तन म निरन्तर लगा रहकर पूर्वोक्त नियमो को पाले। १०-११॥ कथा व्रती पुष्प पवित्र एव शुद्ध चित्त से कथा श्रवण करे और कथा समाप्ति पर प्रतिदिन पत्तल म ही भोजन करे ॥१२॥

॥ सन्तान गोपाल स्तोत्र ॥

ॐनमो भगवते वासुदेवाय ।.श्रीशकमलपत्राक्ष देवकीनन्दन हरिम् ।
सुतसम्प्राप्तये कृष्ण नमामि मधुसूदनम् ॥१
नमाम्यह वासुदेव सुतसम्प्राप्तये हरिम् ।
यशोदाङ्कगत बाल गोपाल नन्दनन्दनम् ॥२
अस्माक पुत्रलाभाय गोविन्द मुनिवन्दितम् ।
नमाम्यह वासुदेव देवकीनन्दन सदा ॥३
गोपाल डिम्भक वन्दे कमलापतिमच्युतम् ।
पुत्रसम्प्राप्तये कृष्ण नमामि यदुपुङ्गवम् ॥४

पुत्रकामेष्टिफलदं कञ्जाक्ष कमलापतिम् ।
देवकीनन्दन वन्दे सुतसम्प्राप्तये मम ॥५
पद्मापते पद्मनेत्र पद्मनाभ जनार्दन ।
देहि मे तनय श्रीश वासुदेव जगत्पते ॥६
यशोदाङ्कगत बाल गोविन्द मुनिवन्दितम् ।
अस्माक पुत्रलाभाय नमामि श्रीशमच्युतम् ॥७
श्रीपते देवदेवेश दीनार्तिहरणाच्युत ।
गोविन्द मे सुत देहि नमामि त्वां जनार्दन ॥८
भक्तकामद गोविन्द भक्त रक्ष शुभप्रद ।
देहि मे तनय कृष्ण रुक्मिणी-वल्लभ प्रभो ॥९
रुक्मिणीनाथ सर्वेश देहि मे तनय सदा ।
भक्तमन्दार पद्माक्ष त्वामहं शरणं गतः ॥१०

पुत्र प्राप्ति के निमित्त मैं लक्ष्मी के पति, पद्मनयन, देवकी पुत्र, मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हूँ ॥१॥ पुत्र की प्राप्ति के निमित्त यशोदा के अङ्क मे बाल गोपाल रूप से स्थित एव नन्द को आनन्द देने वाले वासुदेव श्री हरि को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥ पुत्र-लाभ के निमित्त देवकी-वसुदेव के पुत्र, मुनियो द्वारा वन्दना किये हुए गोविन्द को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥ पुत्र-लाभ की कामना से साक्षात् लक्ष्मी के पति, अच्युत होकर भी गोप बालक के रूप मे गौओ की रक्षा मे तत्पर यदुकुल तिलक भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करता हूँ ॥४॥ पुत्र की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ के फलदाता कमलाक्ष कमलापति देवकी सुत श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥ हे कमलापते ! हे कमल नयन ! हे कमलनाभ ! हे जनार्दन ! हे जगदीश्वर वासुदेव ! मुझे पुत्र दीजिये ॥६॥ यशोदा की गोदी मे विराजमान रहने वाले, अपनी महिमा से कभी विलग न होने वाले, मुनियो द्वारा वन्दना किये हुए भगवान् गोविन्द को मैं नमस्कार करता हूँ, मेरे इस कर्म के फल से मुझे पुत्र-लाभ हो ॥७॥ हे भक्तो की कामना पूर्ण करने वाले गोविन्द मुझ भक्त की रक्षा करिये । हे शुभप्रद ! हे रुक्मिणी-व ! हे प्रभो ! हे श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिये ॥८॥ हे रुक्मिणी पते ! हे सर्वेश्वर !

मुझे पुत्र दीजिये। भक्तों के अभीष्ट को पूर्ण करने में कल्पवृक्ष स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण! मैं आपका शरणागत हूँ ॥१०॥

देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनय कृष्ण त्वामहं शरण गतः ॥११
वासुदेव जगद्वन्द्य श्रीपते पुरुषोत्तम।
देहि मे तनय कृष्ण त्वामहं शरण गतः ॥१२
कञ्जाक्ष कमलानाथ परकारुणिकोत्तम।
देहि मे तनय कृष्ण त्वामहं शरण गतः ॥१३
लक्ष्मीपते पद्मनाभ मुकुन्द मुनिवन्दित।
देहि मे तनय कृष्ण त्वामहं शरण गतः ॥१४
कार्यकारणरूपाय वासुदेवाय ते सदा।
नमामि पुत्रलाभार्थं सुखदाय बुधाय ते ॥१५
राजीवनेत्र श्रीराम रावणारे हरे कवे।
तुभ्यं नमामि देवेश तनयं देहि मे हरे ॥१६
अस्माकं पुत्रलाभाय भजामि त्वां जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण वासुदेव रमापते ॥१७
श्रीमानिनीमानचोर गोपीवस्त्रापहारक।
देहि मे तनयं कृष्ण वासुदेव जगत्पते ॥१८
अस्माकं पुत्रसम्प्राप्तिं कुरुष्व यदुनन्दन।
रमापते वासुदेव मुकुन्द मुनिवन्दित ॥१९
वासुदेव सुतं देहि तनयं देहि माधव।
पुत्रं मे देहि श्रीकृष्ण वत्सं देहि महाप्रभो ॥२०

हे देवकीनन्दन! हे गोविन्द! हे वासुदेव! हे जगन्नाथ! हे श्रीकृष्ण मुझे पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥११॥ हे विश्ववंद्य! हे वासुदेव! हे श्रीपते! हे पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपकी शरण में उपस्थित हूँ ॥१२॥ हे कमलाक्ष! हे कमलापते! हे दया करने वालों में सर्वश्रेष्ठ श्रीकृष्ण! मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे पुत्र दीजिये ॥१३॥

हे लक्ष्मीपते ! हे मुनिवन्दित मुकुन्द ! हे श्रीकृष्ण ! मैं आपकी शरण में उपस्थित
हूँ मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥१४॥ आप कार्य कारण रूप, सुख देने वाले
विज्ञ हैं पुत्र की प्राप्ति के निमित्त मैं आप वासुदेव को सदा प्रणाम करता
॥ १५ ॥ हे कमलनयन ! हे रावणार ! हे हर ! हे कवे ! हे द
विष्णो ! आपको नमस्कार है मुझे पुत्र दीजिये ॥१६॥ हे विश्वेश्वर !
प्राप्ति की कामना से मैं आपकी आराधना कर रहा हूँ। हे रमापते ! हे वा
श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान करिये ॥१७॥ हे मानिनी राधा के मान भ
श्रीकृष्ण ! हे वासुदेव ! हे जगन्नाथ मुझे पुत्र प्रदान करिये ॥१८॥ हे यदुन
हे लक्ष्मीपति वासुदेव ! हे मुनिवन्दित मुकुन्द ! हमें पुत्र लाभ कराइये ॥
हे वासुदेव ! मुझे पुत्र दीजिये, हे माधव ! मुझे तनय दीजिये हे श्रीकृ
मुझे पुत्र दीजिय, हे महाप्रभो ! मुझे वत्स प्रदान कीजिये ॥२०॥

चन्द्रसूर्याक्ष गोविन्द पुण्डरीकाक्ष माधव ।
अस्माकं भाग्यसत्पुत्रं देहि देव जगत्पते ॥२१
कारुण्यरूप पद्माक्ष पद्म नाभसमर्चित ।
देहि मे तनयं कृष्ण देवकीनन्दनन्दन ॥२२
देवकीसुत श्रीनाथ वासुदेव जगत्पते ।
समस्तकामफलद देहि मे तनयं सदा ॥२३
भक्तमन्दार गम्भीर शङ्कराच्युत माधव ।
देहि मे तनयं गोपबालवत्सल श्रीपते ॥२४
श्रीपते वासुदेवेश देवकीप्रियनन्दन ।
भक्तमन्दार मे देहि तनयं जगतां प्रभो ॥२५
जगन्नाथ रमानाथ भूमिनाथ दयानिधे ।
वासुदेवेश सर्वेश देहि मे तनयं प्रभो ॥२६
श्रीनाथ कमलपत्राक्ष वासुदेव जगत्पते ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥२७
दासमन्दार गोविन्द भक्तचिन्तामणे प्रभो ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥२८

गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रमानाथ महाप्रभो ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥२९
श्रीनाथ कमलपत्राक्ष गोविन्द मधुसूदन ।
मत्पुत्रफलसिद्धयर्थं भजामि त्वां जनार्दन ॥३०

हे चन्द्र सूर्य रूपी नेत्रधारी गोविन्द ! हे पद्मनयन माधव ! हे जगदीश्वर ! हमें भाग्यवान पुत्र दीजिये ॥२१॥ हे करुणामय ! हे पद्मनयन ! हे पद्मनाभ ! हे विष्णु-सम्मानित देवकीपुत्र श्रीकृष्ण ! हमें पुत्र प्रदान करिये ॥२२॥ हे देवकी-नन्दन ! हे लक्ष्मीपते ! हे जगत्पति वासुदेव ! हे अभीष्ट फलदाता श्रीकृष्ण मुझे सदा तनय प्रदान कीजिये ॥२३॥ हे भक्तों की कामना पूर्ति के लिये कल्प-वृक्ष स्वरूप ! हे गम्भीर स्वभाव वाले अच्युत ! हे मंगलकारी माधव , हे ग्वाल-बालों पर स्नेह करने वाले लक्ष्मीनाथ ! मुझे पुत्र प्रदान करिये ॥२४॥ हे श्रीपते ! हे वसुदेवपुत्र ! हे देवकीनन्दन ईश्वर ! आप भक्तों के लिये कल्पवृक्ष रूप हो, हे जगदीश्वर ! मुझे पुत्र प्रदान करिये ॥२५॥ हे जगन्नाथ ! हे लक्ष्मीनाथ ! हे रमानाथ ! हे दयानिधे ! हे वासुदेव, ईश्वर एवं सर्वेश्वर प्रभो ! मुझे पुत्र दीजिये ॥२६॥ हे कमलनाथ ! हे कमलनयन वासुदेव ! हे जगत्पति श्रीकृष्ण ! मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे पुत्र प्रदान करिये ॥२७॥ हे अपने सेवकों की कामना सिद्धि के लिये कल्पवृक्ष स्वरूप गोविन्द ! भक्तों की इच्छा पूर्ति के निमित्त चिन्तामणि रूप श्रीकृष्ण ! मैं आपका शरणागत हूँ, मुझे पुत्र दीजिये ॥२८। हे पुण्डरीकाक्ष गोविन्द ! हे लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण ! हे महाप्रभो ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपके आश्रय में उपस्थित हूँ ॥२९॥ हे कमलापते ! हे कमललोचन ! हे मधुसूदन गोविन्द ! हे जनार्दन ! पुत्र रूप फल की प्राप्ति के लिये मैं आपकी आराधना करता हूँ ॥३०॥

भवदीयपदाम्भोजे चिन्तयामि निरन्तरम् ।
देहि मे तनयं सीताप्राणवल्लभ राघव ॥३१
राम मत्काम्यवरद पुत्रोत्पत्तिफलप्रद ।
देहि मे तनयं श्रीश कमलासनवन्दित ॥३२

राम राघव सीतेश लक्ष्मणानुज देहि मे ।
भाग्यवत्पुत्रसंतान दशरथात्मज श्रीपते ।।३३
देवकीगर्भसंजात यशोदाप्रियनन्दन ।
देहि मे तनय राम कृष्ण गोपाल माधव ।।३४
कृष्ण माधव गोविन्द वामनाच्युत शङ्कर ।
देहि मे तनय श्रीश गोपबालकनायक ।।३५
गोपबाल महाधन्य गोविन्दाच्युत माधव ।
देहि मे तनय कृष्ण वासुदेव जगत्पते ।।३६
दिशतु दिशतु पुत्रं देवकीनन्दनोऽयं दिशतु दिशतु शीघ्रं
भाग्यवत्पुत्रलाभम् ।
दिशतु दिशतु श्रीशो राघवो रामचन्द्रो दिशतु दिशतु पु
वंशविस्तारहेतोः ।।३
दीयतां वासुदेवेन तनयो मत्प्रियः सुतः ।
कुमारो नन्दनः सीतानायकेन सदा मम ।।३८
राम राघव गोविन्द देवकीसुत माधव ।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालकनायक ।।३९
वंशविस्तारकं पुत्रं देहि मे मधुसूदन ।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः ।।४०

हे राघव ! हे सीताजी के प्राणवल्लभ ! मैं आपके चरणारवि के चिन्तन में रत हूँ आप मुझे पुत्र दीजिये ।। ३१ ।। मुझे अभिल पर और पुत्रोत्पत्ति रूप फल देने वाले हे श्रीराम ! ब्रह्माजी के द्व वंदित हे श्रीपते ! आप मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ।।३२।। हे लक्ष्मण के ज्ये भ्राता ! सीताजी के प्राणपते ! हे दशरथ सुवन ! हे रघुनन्दन श्रीराम श्रीपते ! आप मुझे भाग्यशाली पुत्र दीजिये ।।३३।। हे देवकी के उदर से क लीला हेतु धारे गोपाल ! हे यशोदा के सुवन श्रीकृष्ण ! हे माधव ! हे रा मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ।।३४।। हे माधव ! हे गोविन्द ! हे वामन ! हे अच्यु हे कल्याणकारी लक्ष्मीपते ! हे गोपपुत्रों के अधिनायक ! हे श्रीकृष्ण ! मुझ

यः पठेत् पुत्रस्तोत्र सोऽपि सत्पुत्रवान् भवेत् ।
श्रीवासुदेवकथित स्तोत्ररत्न सुखायच ॥५०
काले पठेन्नित्य पुत्रलाभ धन श्रियम् ।
ऐश्वर्यं राजसम्पन्न सद्यो याति न संशय. ॥५१

पुत्र तथा सम्पत्ति के देने वाले, पुत्र-लाभ कराने वाले और देवताओं द्वा पूजित गोविन्द श्रीकृष्ण का हम सदैव वन्दन करते हैं ॥४१॥ हे प्रभो ! अ करुणा के निधि गोपियो के प्राणवल्लभ एव मुर नामक दैत्य के शत्रु हैं," आप पुत्र-लाभ के निमित्त मेरा नमस्कार है, आप मुझे पुत्र दीजिये ॥४२॥ लक्ष्मीपते ! हे रुक्मिणी के प्राणनाथ ! हे भगवान् श्रीकृष्ण ! आपको नमस्क है। हे गोपबालकों के नायक श्रीपते ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥४३॥ स लक्ष्मीजी की इच्छा रखने वाले आप वासुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ। पुत्र प्रदान करने वाले एव सर्पेन्द्र शेष की शय्या पर शयन करते है, आप श्रीरंगश भगवान् को मेरा नमस्कार है ॥४४॥ हे रंगशायी रमापते ! हे मगल के वाले माधव ! हे गोपबालकों के नायक ! हे लक्ष्मीनाथ ! आप मुझे दीजिये ॥४५॥ हे दीनो के कल्पवृक्ष ! हे राघव ! मुझ दास को पुत्र प्रदान करि हे रमापते ! मुझे पुत्र प्रदान करिये, मुझे पुत्र दीजिये, पुत्र दीजिये ॥४६॥ यशोदानन्दन ! हे मनोभिलषित पुत्र प्रदान में तत्पर श्रीकृष्ण ! मैं आपकी शर आया हूँ, मुझे पुत्र प्रदान करिये ॥ ४७ ॥ हे मेरे इष्टदेव गोविन्द ! हे वासुदेव हे जनार्दन श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान करिये, मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥४ हे भगवन् ! हे इन्द्र द्वारा पूजित वासुदेव ! आपकी कृपा से नीतिमान्, धनव और विद्यावान पुत्र उत्पन्न होता है ॥४८॥ श्री वासुदेव कथित इस पुत्र स्तो का जो पाठ करता है, वह श्रेष्ठ पुत्र से युक्त होता है। यह स्तोत्र-रत्न प्राप्त कराने वाला भी है ॥५०॥ इसका प्रतिदिन पाठ करने वाले को सत्का पुत्र-लाभ होता है और वह शीघ्र ही धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य एव राज से सम्प होता है, इसमे सन्देह नहीं है ॥५१॥

हरिवंश पर्व

।। आदि-सृष्टि का वर्णन ।।

नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वती चैव ततो जयमुदीरयेत् ।।१
द्वैपायनोष्ठपुटनि सृतमप्रमेय पुण्य पवित्रमथ पापहर शिव च ।
यो भारत समधिगच्छति वाच्यमान किं तस्य पुष्करजलैरभिषेच-
नेन ।।२
जयति पराशरसूनु सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यास ।
यस्यास्यकमलगलित वाङ्मयममृत जगत्पिवति ।।३
यो गोशत कनकशृगमय ददाति विप्राय वेदविदुपे वहुविश्रु-
ताय ।
पुण्या च भारतकथा शृणुयाच्च तद्वत्तुल्य फल भवति तस्य
च तस्य चैव ।।४
शताश्वमेधस्य यदत्र पुण्य चतु सहस्रस्य शतक्रतोश्च ।
भवेदनन हरिवशदानात्प्रकीर्तित व्यासमहर्षिणा च ।।५
यद्वाजपेयेन तु राजसूयाद् दृष्ट फल हस्तिरथेन चान्यत् ।
तल्लभ्यते व्यासवच प्रमाण गीत च वाल्मीकिमहर्षिणा च ।।६
यो हरिवश लेखयति यथाविधिना महातपा सपदि ।
स जयति हरिपदकमल मधुपा हि यथा रसेन सलुब्ध ।।७
पितामहाद्य प्रवद ति षष्ठ महर्षिमक्षय्यविभूतियुक्तम् ।
नारायणस्याशजमेकपुत्र द्वैपायन वेदमहानिधानम् ।।८

श्री नारायण एव नरो म भी नरोत्तम, भगवान् के तत्व ज्ञान को प्रकाशित करने वाली भगवती सरस्वती को नमस्कार करके ही जय का स्वाध्याय करे ।।१।। भगवान् व्यासजी के ओष्ठों से निकले हुए, अद्भुत, पवित्र पाप नाशक

एवं सुखदायक महाभारत को जो मनुष्य सुनता हो, उसे पुष्करादि तीर्थों में स्नान करने की क्या आवश्यकता है ? ॥२॥ पराशर नन्दन एवं सत्यवती के हृदय को आनन्द देने वाले उन भगवान व्यासदेव की जय हो, जिनके मुख मुखारविन्द से निःसृत कथामृत का पान यह सम्पूर्ण विश्व करता है ॥३॥ जो मनुष्य स्वर्ण मंडित सींगो वाली सौ गायें किसी बहुश्रुत एवं वेदज्ञाता ब्राह्मण को दान देता है अथवा जो परम पवित्र महाभारत की कथा श्रवण करता है उन दोनों का पुण्य समान ही है ॥४॥ जो मनुष्य सौ अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञ में आगत चार सहस्र अतिथियों को भोजन कराता अथवा जो इन्द्रपद की प्राप्ति कराने वाले शतक्रतु कर्म का अनुष्ठान करता है, उन दोनों से भी अनन्त गुण अधिक की प्राप्ति उसे होती है जो महर्षि व्यास कृत हरिवंश का दान करता है ॥५॥ जो फल वाजपेय यज्ञ से अथवा राजसूय यज्ञ से या हाथी युक्त रथ का दान करने से होता है, वही फल महर्षि वेद व्यास अथवा वाल्मीकिजी द्वारा कथा के कथन-श्रवण से प्राप्त हो जाता है ॥६॥ जो विधिवत् हरिवंश लिखाता है, वह परमतपस्वी रस के लोभी भौंरे के समान हरि चरणों को शीघ्र ही प्राप्त होता है ॥७॥ जिन महर्षि को पितामह से भी महान् समझा जाता था, जो अपरिमित योग रूपी ऐश्वर्य से युक्त थे, जो साक्षात् भगवान् श्री नारायण के अंश से उत्पन्न हुए थे, जिनके केवल एक पुत्र थे, उन द्वैपायन भगवान् श्री-व्यासजी को नमस्कार है ॥८॥

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥९
असच्च सदसच्चैव यद्विश्वं सदसत्परम्।
परावराणां स्रष्टारं पुराणं परमव्ययम् ॥१०
मङ्गल्यं मङ्गलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम्।
नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम् ॥११
नैमिषे च कुलपतिं शौनकस्तु महामुनिः ।
सौतिं पप्रच्छ धर्मात्मा सर्वशास्त्रविशारदः ॥१२
सौते सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम्।

भरताना च सर्वेषां पार्थिवानां तथैव च ॥१३
देवाना दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
दैत्यानामथ सिद्धानां गुह्यकानां तथैव च ॥१४
अत्यद्भुतानि कर्माणि विक्रमा धर्मनिश्चयाः ।
विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ॥१५
कथितं भवता पुण्यं पुराण श्लक्ष्णया गिरा ।
मनःकर्णसुखं सौते प्रीणात्यमृतसंमितम् ॥१६

जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप एव आदि पुरुष थे, जो ईशान, पुरुहूत, पुरुष्टुत, टत, एक, अक्षर, ब्रह्म, व्यक्त एव अव्यक्त, सनातन हैं ॥६॥ जो असत् एव त् हैं, अथवा जो सत् और असत् दोनो से परे हैं, जो विश्वरूप हैं, जो पर और वर के सृष्टा तथा परम अविनाशी हैं ॥१०॥ जो मगल के देने वाले, मगल र, सर्वव्याप्त, वरेण्य और दोष-रहित हैं, जो स्वभावतः शुद्ध, इन्द्रियो के वर्तक, अखिल जगत के उपदेष्टा और सभी पापो के नाशक हैं, उन भगवान पिकेश को नमस्कार करके अपने प्रतिपाद्य विषय को कहता हूं ॥११॥ नैमिषा-ण्य मे कुलपति महामुनि एव सम्पूर्ण शास्त्रो के पारगत धर्मात्मा शौनक जी ने तजी से प्रश्न किया ॥१२॥ शौनक बोले—हे सूतजी ! आपने अत्यन्त श्रेष्ठ व महान् आख्यान सुनाया, उसमे अनेक भरतवंशी भूपालों, देवताओ, दानवों, धर्वों, सर्पों, राक्षसो, दैत्यो, सिद्धो और यक्षो के अद्भुत कर्म तथा धर्म का तिपादन करने वाले सामर्थ तथा अत्यन्त श्रेष्ठ जीवन चरित्रो का वर्णन हुआ ॥१३-१५॥ अपनी मधुर वाणी मे आपने अनेक पुराण भी कहे, आपकी सुधा-मी वाणी हृदय और कानों को अत्यन्त आनन्द देने वाली है ॥१६॥

तत्र जन्म कुरूणां वै त्वयोक्तं लोमहर्षणे ।
न तु वृष्ण्यन्धकाना च तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥१७
जनमेजयेन यत्पृष्ट शिष्यो व्यासस्य धर्मवित् ।
ततोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि वृष्णीनां वंशमादित ॥१८
श्रुत्वेतिहासं कात्स्न्येन भरताना स भारत. ।
जनमेजयो महाप्राज्ञो वैशम्पायनमब्रवीत् ॥१६

एवं सुखदायक महाभारत को जो मनुष्य सुनता हो, उसे पुष्करादि तीर्थों में स्नान करने की क्या आवश्यकता है? ॥२॥ पराशरनन्दन एवं सत्यवती के हृदय को आनन्द देने वाले उन भगवान व्यासदेव की जय हो, जिनके मुखारविन्द से निःसृत कथामृत का पान यह सम्पूर्ण विश्व करता है ॥३॥ जो मनुष्य स्वर्ण मंडित सींगों वाली सौ गायें किसी बहुश्रुत एवं वेदज्ञाता ब्राह्मण को दान देता है अथवा जो परम पवित्र महाभारत की कथा श्रवण करता है, उन दोनों का पुण्य समान ही है ॥४॥ जो मनुष्य सौ अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञ में आगत चार सहस्र अतिथियों को भोजन कराता अथवा जो इन्द्रपद की प्राप्ति कराने वाले शतक्रतु कर्म का अनुष्ठान करता है, उन दोनों से भी अनन्त गुण अधिक की प्राप्ति उसे होती है जो महर्षि व्यास कृत हरिवंश का दान करता है ॥५॥ जो फल वाजपेय यज्ञ से अथवा राजसूय यज्ञ से या हाथी युक्त रथ का दान करने से होता है, वही फल महर्षि वेद व्यास अथवा वाल्मीकिजी कृत कथा के पठन-श्रवण से प्राप्त हो जाता है ॥६॥ जो विधिवत् हरिवंश लिखवाता है, वह परमनस्वी रस के लोभी भौंरे के समान हरि चरणों को शीघ्र ही प्राप्त होता है ॥७॥ जिन महर्षि को पितामह से भी महान् समझा जाता था, जो अपरिमित योग रूपी ऐश्वर्य से युक्त थे, जो साक्षात् भगवान् श्री नारायण के अंश से उत्पन्न हुए थे, जिनके केवल एक पुत्र थे, उन द्वैपायन भगवान् श्री-व्यासजी को नमस्कार है ॥८॥

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥९
असच्च सदसच्चैव यद्विश्वं सदसत्परम्।
परावराणां स्रष्टारं पुराणं परमव्ययम् ॥१०
मङ्गल्यं मङ्गलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम्।
नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम् ॥११
नैमिषे च कुलपतिं शौनकं तु महामुनिम्।
सौतिः पप्रच्छ धर्मात्मा सर्वशास्त्रविशारदः ॥१२
सौतिं सुखदासीनं भरता परिकीर्तितम्।

भरताना च सर्वेषां पार्थिवाना तथैव च ॥१३
देवाना दानवाना च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
दैत्यानामथ सिद्धाना गुह्यकानां तथैव च ॥१४
अत्यद्भुतानि कर्माणि विक्रमा धर्मनिश्चयाः ।
विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ॥१५
कथित भवता पुण्यं पुराण श्लक्ष्णया गिरा ।
मन.कर्णसुखं सौते प्रीणात्यमृतसमितम् ॥१६

जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप एव आदि पुरुष थे, जो ईशान, पुरुहूत, पुरष्टुत, ऋत, एक, अक्षर, ब्रह्म, व्यक्त एव अव्यक्त, सनातन हैं ॥६॥ जो असत् एव सत् हैं, अथवा जो सत् और असत् दोनों से परे हैं, जो विश्वरूप हैं, जो पर और अवर के सृष्टा तथा परम अविनाशी हैं ॥१०॥ जो मगल के देने वाले, मगल रूप, सर्वव्याप्त, वरेण्य और दोष-रहित हैं, जो स्वभावत. शुद्ध, इन्द्रियों के प्रवर्तक, अखिल जगत के उपदेष्टा और सभी पापों के नाशक हैं, उन भगवान हृषिकेश को नमस्कार करके अपने प्रतिपाद्य विषय को कहता हूँ ॥११॥ नैमिषारण्य में कुलपति महामुनि एव सम्पूर्ण शास्त्रों के पारगत धर्मात्मा शौनकजी ने सूतजी से प्रश्न किया ॥१२॥ शौनक बोले—हे सूतजी ! आपने अत्यन्त श्रेष्ठ एव महान् आख्यान सुनाया, उसमे अनेक भरतवशी भूपालों, देवताओं, दानवों, गधर्वों, सर्पों, राक्षसो, दैत्यो, सिद्धो और यक्षो के अद्भुत कर्म तथा धर्म का प्रतिपादन करने वाले सामर्थ तथा अत्यन्त श्रेष्ठ जीवन चरित्रों का वर्णन हुआ है ॥१३-१५॥ अपनी मधुर वाणी में आपने अनेक पुराण भी कहे, आपकी सुधामयी वाणी हृदय और कानो को अत्यन्त आनन्द देने वाली है ॥१६॥

तत्र जन्म कुरूणा वै त्वयोक्त लौमहर्षणे ।
न तु वृष्ण्यन्धकाना च तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥१७
जनमेजयेन यत्पृष्ट शिष्यो व्यासस्य धर्मवित् ।
ततोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि वृष्णीना वंशमादित ॥१८
श्रुत्वेतिहासं कात्स्र्न्येन भरताना स भारत ।
जनमेजयो महाप्राज्ञो वैशम्पायनमब्रवीत ॥१९

महाभारतमाख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम् ।
कथितं भवता पूर्वं विस्तरेण मया श्रुतम् ॥२०
तत्र शूरा समाख्याता बहवः पुरुषर्षभा ।
नामभिः कर्मभिश्चैव वृष्ण्यन्धकमहारथा ॥२१
तेषां कर्मावदातानि त्वयोक्तानि द्विजोत्तम ।
तत्र तत्र समासेन विस्तरेणैव मे प्रभो ॥२२
न च मे तृप्तिरस्तीह कथ्यमाने पुरातने ।
एकश्चैव मतो राशिर्वृष्णय पाण्डवास्तथा ॥२३
भवांश्च वंशकुशलस्तेषां प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
कथयस्व कुलं तेषां विस्तरेण तपोधन ॥२४

इन पुराणो मे कुरुवंशियो का जन्म भी कहा गया, परन्तु वृष्णि और अंधकवंशियो के विषय मे कुछ भी नही बताया गया । अब आप कृपापूर्वक वही कहिये ॥१७॥ सूतजी बोले—हे शौनक ! व्यासजी के शिष्य धर्मात्मा जनमेजय ने जो प्रश्न वृष्णिवंश के विषय मे किये थे, उन्ही के अनुसार वृष्णिवंश की कथा कहता हूं ॥१८॥ अत्यन्त मेधावी भरतवंशी राजा जनमेजय ने भरतवंश के इतिहास को पूर्ण रूप से श्रवण कर वैशम्पायनजी के प्रति कहा था ॥१९॥ जनमेजय बोले—हे भगवन् ! आपके द्वारा कहे गये अर्थ गाम्भीर्यपूर्ण, श्रुतिसम्मत तथा विस्तृत महाभारत की कथा मैंने श्रवण की है ॥२०॥ उसमे आपने प्रद्युम्न आदि अनेक नाम तथा कर्म द्वारा महान् वृष्णि एवं अंधकवंशी महारथियो के श्रेष्ठ चरित संक्षेप मे तथा विस्तार मे भी कहे ॥२१-२२॥ उन पुरातन पुरुषों के चरित्र के श्रवण से मेरी तृप्ति नही हो सकी । आपके कहने से प्रतीत हुआ कि पाण्डव और वृष्णिवंशियो का कुल एक ही था ॥२३॥ हे तपोधन ! आप वंशावलि वर्णन मे निपुण तथा प्रत्यक्षदर्शी भी हैं,इसलिये वृष्णिवंश का सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तार सहित मेरे प्रति कहिये ॥२४॥

यस्य यस्यान्वये ये ये तांस्तानिच्छामि वेदितुम् ।
तं त्वं सर्वमशेषेण कथयस्व महामुने ।

तेषा पूर्वविसृष्टिं च विचिन्त्येमा प्रजापते ॥२५
सत्कृत्य परिपृष्टस्तु स महात्मा महातपा ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास ता कथाम् ॥२६
शृणु राजन् कथा दिव्या पुण्या पापप्रमोचनीम् ।
कथ्यमाना मया चित्रा बह्वर्था श्रुतिसम्मिताम् ॥२७
यश्चेमा धारयेत्तात शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णश ।
स्ववशधारण कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥२८
अव्यक्त कारण यत्तन्नित्य सदसदात्मकम् ।
प्रधान पुरुष तस्मान्निर्ममे विश्वमीश्वरम् ॥२९
त वै विद्धि महाराज ब्रह्माणममितौजसम् ।
स्रष्टार सर्वभूताना नारायणपरायणम् ॥३०
अहङ्कारस्तु महतस्तस्माद्भूतानि जज्ञिरे ।
भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्ग सनातन ३१
विस्तरावयव चैव यथाप्रश्न यथाश्रुतम् ॥
कीर्त्यमान शृणु मया पूर्वेषा कीर्तिवर्द्धनम् ॥३२

हे महामुने ! आप भले प्रकार विचारपूर्वक प्रजापति से सृष्टियों तक के पूर्व जन्म के वृत्तान्तों के सहित, जिस जिस वश में जिसका जन्म हुआ, वह सब मुझे सुनाइये ॥२५॥ सूतजी बोले—महातप वैशम्पायन ने जनमेजय के प्रश्न की सराहना करके सृष्टिवश के चरित्रों को विस्तारपूर्वक कहना प्रारम्भ किया ॥२६॥ वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! अब आपको मैं दिव्य, पवित्र, पाप नष्ट करने वाली, अद्भुत, अनेक अर्थ युक्त एव श्रुति सम्मत कथा सुनाता हूँ ॥२७॥ जो मनुष्य इस कथा को बारबार श्रवण कर हृदयगम कर लेता है, वह अपने वश को अटल कर लेता तथा स्वर्ग पाकर वहाँ पूजित होता है ॥२८॥ जो अव्यक्त कारण, नित्य, सदसदात्मक एव प्रधान पुरुष है, उसी से इस ईश्वरमय जगत की उत्पत्ति हुई है ॥२९। हे राजन् ! उन्हीं अव्यक्त पुरुष को अमित तेज सम्पन्न, सब जीवों का सृष्टा और नारायणपरायण समझो ॥३०॥ उसी

होन् ब्रह्मा से अहंकार उत्पन्न हुआ अहंकार से आकाशादि सूक्ष्मजीव हुए, सूक्ष्मजीवों से पंचतत्व और जरायुज आदि चार प्रकार के जीवों की उत्पत्ति हुई, इसी को सनातन सृष्टि कहते हैं ॥३१॥ अब अपनी बुद्धि के अनुसार उस सृष्टि का वह वृत्तान्त विस्तार सहित कहूँगा, जिसको जान लेने पर यश वृद्धि होती है ॥३२॥

धन्यं यशस्यं शत्रुघ्नं स्वर्ग्यमायुःप्रवर्द्धनम् ।
कीर्तनं स्थिरकीर्तीनां सर्वेषां पुण्यकर्मणाम् ॥३३
तस्मात्कल्याय ते कल्पं समग्रं शुचये शुचि ।
आवृत्तिवशाद्वक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम् ॥३४
ततः स्वयंभूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥३५
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥३६
हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदकेशयम् ।
तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम् ॥३७
हिरण्यगर्भो भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ।
तदण्डमकरोद्द्वैधं दिवं भुवमथापि च ॥३८
तयोः शकलयोर्मध्ये आकाशमसृजत्प्रभुः ।
अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे ॥३९
तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधं मनोरतिम् ।
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन्प्रजापतीन् ॥४०

इसका कीर्तन करने और श्रवण करने से धन तथा यश की वृद्धि होती है, शत्रुओं का नाश होता है आयु बढ़ती है और अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥३३॥ आप शुद्ध और शुभकर्मों में समर्थ हैं इसलिये मैं आपको वृद्धिक्रम सहित चार प्रकार की जीव सृष्टि का वृत्तान्त सुनाऊँगा ॥३४॥ भगवान् ने सूक्ष्म भूतों को प्रकट करके अनेक प्रकार की भौतिक प्रजा उत्पन्न करने के विचार से सबसे पहिले जल की रचना की, फिर उसमें अपना वीर्य डाला

॥३५॥ जल को 'नार' भी कहा गया है तथा वह जल नर का उत्पत्ति स्थान है, इसलिए नर रूपी भगवान् को नारायण कहा गया है ॥३६॥ भगवान् द्वारा जल में डाला गया वीर्य हिरण्य वर्ण का अण्ड होगया, उस अण्ड से स्वयम्भू कहे जाने वाले ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई ॥३७॥ अण्ड में एक वर्ष रह कर ब्रह्माजी ने उसके दो खण्ड कर दिये, उन्होंने एक खण्ड में पृथिवी और दूसरे खण्ड से दिवलोक की रचना की ॥३८॥ उन दोनों खण्डों के अन्तराल से आकाश की रचना करके पृथिवी को जल पर स्थापित किया फिर सूर्य और दशों दिशाओं की रचना की ॥३९॥ उसी अण्ड में उन्होंने रति विषयक प्रीति के सहित पिण्ड सृष्टि की रचना के विचार से काल, मन, वचन, काम, क्रोध एवं अनुराग की सृष्टि की ॥४०॥

मरीचिमत्र्यङ्गिरस पुलस्त्य पुलह क्रतुम् ।
वसिष्ठं च महातेजा सोऽसृजत्सप्त मानसान् ४१
सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयङ्गता ।
नारायणात्मकानां वै सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम् ॥४२
ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसम्भवम् ।
सनत्कुमारं च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥४३
सप्तैते जनयन्ति स्म प्रजा रुद्रश्च भारत ।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठत ॥४४
तेषां सप्त महावंशा दिव्या देवगणान्विता ।
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृता ॥४५
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं च ससर्ज ह ॥४६
ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ।
साध्यास्तैरयजन् देवानित्येवमनुशुश्रुम ।
मुखाद्देवानजनयत्पितॄन् वक्षसोऽपि वदाम ॥४७
प्रजनाच्च मनुष्यान्वै जघनान्निर्ममेऽसुरान् ।
साध्यानजनयद्देवानित्येवमनुशुश्रुम ॥४८

फिर उन्होने अपने मन से मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु एवं वसिष्ठ इन सप्तर्षियो को प्रकट किया ॥४१॥ इन सप्तर्षियों ने अपने को गृहस्थ ब्राह्मण मान कर ब्रह्माजी के द्वारा ही प्रकट सनकादि ऋषियो के तिरस्कार पूर्वक इन्होंने वेद मार्ग को ही श्रेष्ठ समझा ॥४२॥ फिर ब्रह्माजी ने परम क्रोधी रुद्र को उत्पन्न किया तथा मरीचि आदि के भी पूर्वज सनत्कुमार की उत्पत्ति की ॥४३॥ उपरोक्त सप्तर्षि और रुद्र सन्तानोत्पादन कर्म मे लगे, परन्तु सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद और स्कन्द ने अपने तेज को नियन्त्रित कर ब्रह्मचर्य पालन किया ॥४४॥ सप्तर्षि और रुद्र इन आठो ब्रह्म-पुत्रों ने दिव्य, महान्, कर्मवान् तथा सन्तानवान् सात वंशो की उत्पत्ति की, जिनमे यक्ष, आदित्यादि सुर और कश्यपादि महर्षि थे ॥४५॥ फिर उन्होंने विद्युत, वज्र, मेघ, रोहित इन्द्र धनुष तथा गगनचर खगो की रचना की ॥४६॥ फिर यज्ञ कार्य की सम्पन्नता के लिए ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की रचना की। इन्ही वेद मन्त्रो से देवताओ की प्रीति के लिये यज्ञ किया था, ऐसा सुनते हैं। फिर ब्रह्मा ने अपने मुख से देवगण, वक्ष स्थल से पितरगण, उपस्थ से मनुष्य-गण और जघन भाग से असुरगण की रचना करके साध्यो की रचना की ॥४७ ४८॥

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
आपवस्य प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः ॥४९
सृज्यमाना प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा ।
द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ॥५०
अर्धेन नारी तस्या स ससृजे विविधा प्रजा ।
दिवं च पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य तिष्ठत ॥५१
विराजमसृजद्विष्णु सोऽसृजत्पुरुष विराट् ।
पुरुष त मनु विद्धि तद्वै मन्वन्तर स्मृतम् ॥५२
द्वितीयमापवस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते ।
स वैराज प्रजासर्गं ससर्ज पुरुष प्रभु ।
नारायणविसर्ग स प्रजास्तस्याप्ययोनिजा ॥५३
आयुष्मान्कीर्तिमान्धन्य प्रजावान्श्रुतवास्तया ।
आदि सर्गं विदित्वेम यथेष्टा प्राप्नुयाद्गतिम ॥५४

उस समय ब्रह्माजी के अन्यान्य अंगों से अन्य अनेक प्रकार के प्राणी उत्पन्न हुए, उसी अवसर में वसिष्ठ नामक प्रजापति की सृष्टि की ॥४६॥ इस प्रकार विभिन्न सन्ततियों को मन से उत्पन्न करके भी जब ब्रह्मा ने प्रजा की वृद्धि होते हुए नहीं देखी, तो अपने देह के दो भाग करके एक से पुरुष, दूसरे से स्त्री हुए और विभिन्न प्राणियों की रचना की तथा अपने प्रभाव से ही पृथिवी और देवलोक को व्याप्त कर बैठे ॥५०-५१॥ इस प्रकार विष्णु भगवान् ने विराट् रचना की और विराट् ने पुरुष को रचा, पुरुष मनु थे, जिन्होंने मन्वन्तर का क्रम चलाया ॥५२॥ भगवान् विष्णु द्वारा हिरण्यगर्भ से उत्पन्न सृष्टि आपव कही गयी, आपव से उत्पन्न होने वाली प्रजा अयोनिज थी, इसके पश्चात् विष्णु ने ही मनु के द्वारा योनिज सृष्टि की रचना की। इसलिये आपव और योनिज सृष्टि में स्त्री संज्ञक दूसरा अन्तर उपस्थित हो गया, इसीसे मन्वन्तर शब्द चल पड़ा ॥५३॥ आदि सृष्टि विषयक इन बातों को जो मनुष्य जान लेता है, वह आयुष्मान, कीर्तिमान, धनवान, पुत्रवान और विद्वान हो जाता है तथा उसे मनोभिलाषित गति की प्राप्ति होती है ॥५४॥

॥ स्वायम्भुव का वंश—दक्ष की उत्पत्ति ॥

सृष्टास् प्रजास्त्वेवमापवो वै प्रजापतिः ।
लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥१
आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः ।
धर्मेणैव महाराज शतरूपा व्यजायत ॥२
सा तु वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।
भर्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥३
स वै स्वायम्भुवस्तात पुरुषो मनुरुच्यते ।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥४
वैराजात्पुरुषाद्वीरं शतरूपां व्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात्काम्या व्यजायत ॥५

काम्या नाम महाबाहो धर्मस्य प्रजापते ।
काम्यापुत्रास्तु चत्वार सम्राट् कुक्षिर्विराट् प्रभु ।
प्रियव्रत समासाद्य पति सा सुषुवे सुतान् ॥६
उत्तानपाद जग्राह पुत्रमत्रि प्रजापति ।
उत्तानपादाच्चतुर सूनृताऽजनयत्सुतान् ॥७

वैशम्पायन जी ने कहा—इस प्रकार अयोनिज और योनिज दोनों प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करने के पश्चात् आपव प्रजापति हुए, अयोनिजा शतरूपा नाम की कन्या उनकी पत्नी हुई ॥१॥ सर्वव्यापी आपव की महिमा और धर्म के प्रभाव से शतरूपा अनेक रूप वाली हुई ॥ ॥ दस हजार वर्ष तक उसने घोर तपस्या की और फिर सन्तान की कामना से वह अपने तेजस्वी पति के समीप पहुँची ॥३॥ हे जनमेजय ! स्वायम्भुव मनु को विराट् पुरुष कहा गया है, उनके कार्यकाल की इकहत्तर चतुर्युगी व्यतीत होने पर एक मन्वन्तर होता है ॥७॥ शतरूपा ने उन विराट् पुरुष के संसर्ग से वीर नामक एक पुत्र उत्पन्न किया, जिससे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा काम्या नाम की पुत्री उत्पन्न हुई ॥५॥ हे महाबाहो ! प्रियव्रत के संसर्ग से काम्या के चार पुत्र हुए, जिनके नाम सम्राट् कुक्षि, विराट् और प्रभु थे ॥६॥ प्रजापति अत्रि ने उत्तानपाद को अपना उत्तराधिकारी बनाया और उत्तानपाद ने अपनी पत्नी सूनृता से चार पुत्र उत्पन्न किये ॥७॥

धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता ।
उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा ॥८
ध्रुव च कीर्तिमन्त च शिव शान्तमयस्पतिम् ।
उत्तानपादोऽजनयत्सूनृताया प्रजापति ॥९
ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भारत ।
तपस्तेपे महाराज प्रार्थयन्सुमहद्यश ॥१०
तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीत स्थानमप्रतिम भुवि ।
अचल चैव पुरत सप्तर्षीणा प्रजापति ॥११

तस्यानिमात्रागृद्धि च महिमानं निरीक्ष्य च ।
देवासुराणामाचार्यं श्लोकं प्रागुशना जगौ ॥१२
अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो बलम् ।
यदेन पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिता ॥१३
तस्माच्छ्लिष्टि च भव्य च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत ।
श्लिष्टे राधत्त सुच्छाया पञ्चा पुत्रानकल्मषान् ॥१४

ध्रुव की माता सूनृता धर्म की पुत्री थी, उसका जन्म अश्वमेध यज्ञ के द्वारा हुआ था ॥८॥ सूनृता के चार पुत्र ध्रुव, कीर्तिमान, शिव और मयस्पति नामक थे ॥९॥ हे भारत ! महान् यश की प्राप्ति के निमित्त ध्रुव ने तीन हजार दिव्य वर्ष तक घोर तपस्या की थी ॥१०॥ उन पर प्रसन्न होकर भगवान् ब्रह्माजी ने उन्हे सप्तर्षियों से भी उच्च, अचल एवं श्रेष्ठ लोक प्रदान किया था, जिसकी समता नहीं हो सकती ॥११॥ ध्रुव की समृद्धि और महिमा की महानता देख कर सुरासुर गुरु शुक्राचार्य जी ने कहा था ॥१२॥ अहा ! ध्रुव का तप, पराक्रम, बल तथा ज्ञान कितना ऊँचा है कि सप्तर्षि भी इसे अपने से आगे का स्थान देकर स्थित हैं ॥१३॥ ध्रुव के तीन पुत्र हुए—श्लिष्टि ने सुच्छाया नाम की भार्या से पाँच पुण्यात्मा पुत्रों की उत्पत्ति की ॥१४॥

रिपुं रिपुंजयं पुण्यं वृकलं वृकतेजसम् ।
रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ॥१५
अजीजनत्पुष्करिण्यां वीरण्यां चाक्षुषो मनुम् ।
प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महात्मनः ॥१६
मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः ।
कन्यायाममवञ्छ्रेष्ठा वैराजस्य प्रजापतेः ॥१७
ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवान्कविः ।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥ १८
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायाः सुताः स्मृताः ।
ऊरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयी महाप्रभान् ।
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ॥१९

अङ्गात्सुनीथापत्य वै वेनमेकमजायत ।
अपचारात्तु वेतस्य प्रकोप सुमहानभूत ॥२०
प्रजार्थमृषयो यस्य ममन्थुर्दक्षिण करम् ।
वेनस्य पाणौ मथिते बभूव मुनिभि पृथु ॥२१

उन पुत्रो के नाम रिपु, रिपुञ्जय, पुण्य, वृकल और वृकतेजस् थे। पाँचो मे श्रेष्ठ रिपु की पत्नी वृहती हुई, जिसने सब देवताओ के तेज से सम्प चाक्षुष नाम का पुत्र उत्पन्न किया ॥१५॥ चाक्षुष ने वीरण सुता पुष्करिणी भार्या बना कर उसके गर्भ से मनु की उत्पत्ति की ॥१६॥ मनु ने अरण्य प्र पति की पुत्री नड्वला के गर्भ से दस पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम ऊरु, शतद्युम्न, तपस्वी सत्यवान, कवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न और अभिम थे। ऊरु ने आग्नेयी के गर्भ से अङ्ग सुमनस, ख्याति, क्रतु, अंगिरा और नामक महातेजस्वी छ पुत्र उत्पन्न किये। १७ १९॥ अग ने यम की पुत्री सुनी के गर्भ से वेन नामक एक ही पुत्र को जन्म दिया। वेन देवताओ का द्रोही हु जिससे क्रोधित हुए ऋषियो ने उसकी दक्षिण भुजा का मथन किया, जि पृथु नामक एक पुत्र की उत्पत्ति हुई ॥२० २१॥

त दृष्ट्वा ऋषय प्राहुरेष वै मुदिता प्रजा ।
करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ॥२२
स धन्वी कवची खड्गी तेजसा निर्दहन्निव ।
पृथुर्वैन्यस्तदा चेमा ररक्ष क्षत्रपूर्वज ॥२३
राजसूयाभिषिक्तानामाद्य स वसुधाधिप ।
तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥२४
तेनेय गौर्महाराज दुग्धा सस्यानि भारत ।
प्रजाना वृत्तिकामेन देवै सर्षिगणै सह ॥२५
पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वै साप्सरोगणै ।
सर्पै पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भि पर्वतैस्तथा ॥२६
तेषु तेषु च पात्रे दुह्यमाना वसुन्धरा ।
प्रादाद्यथेप्सित क्षीर तेन प्राणानधारयन् ॥२७

पृथुपुत्रौ तु धर्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्द्धिपालितौ।
शिखण्डिनीहविर्धानमन्तर्द्धानाद्व्यजायत ॥२८

उसे देखकर वे ऋषि अत्यन्त प्रसन्न होते हुए बोले—यह पृथु प्रजाजन को प्रसन्न करने वाला तथा अत्यन्त यश वाला होगा ॥२२॥ इसके अनुसार उस अत्यन्त तेज वाले वेन पुत्र पृथु ने धनुष, कवच एवं खड्ग धारण करके पृथिवी की चिरकाल तक रक्षा की। २३॥ वह पृथु राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले प्रथम राजा हुए और उनके यज्ञ में अग्नि के द्वारा सूत और मागध की उत्पत्ति हुई ॥२४॥ उन्होंने प्राणियों को जीवन देने के लिये देवता, ऋषि, पितर, दानव, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, यक्ष, लता, पर्वतादि से मिलकर और पुराणान्तरों में देवादि ने अपने सजातीयों को बछड़ा बना कर गो रूप धारिणी पृथिवी का दोहन किया। तब पृथिवी ने उन्हें अन्नादि दुग्ध प्रदान किया जाकि उनकी जीविका हुई ॥२५-२७॥ राजा पृथु के अन्तर्धान और पाली नाम के दो पुत्र हुए। उनमें से अन्तर्धान के द्वारा शिखण्डिनी के गर्भ से हविर्धान नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई ॥२८॥

हविर्धानात्षडाग्नेयी धिषणाऽजनयत्सुतान्।
प्राचीनबर्हिषं शुक्लं गयं कृष्णं प्रजाजिनौ ॥२९
प्राचीनबर्हिर्भगवान्महानासीत्प्रजापतिः।
हविर्धानान्महाराज येन संवर्द्धिता प्रजा ॥३०
प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां जनमेजय।
प्राचीनबर्हिर्भगवान्पृथिवीतलचारिणः ॥३१
समुद्रतनयायां तु कृतदारोऽभवत्प्रभुः।
महतस्तपसः पारे सवर्णायां महीपतिः ॥३२
सुवर्णाऽऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥३३
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः।
दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥३४

तपश्चरत्सु पृथिवी प्रचेत सु महीरुहा ।
अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षय ॥३५

हविर्धान ने अग्नि की पुत्री धिषणा के गर्भ से छ पुत्र उत्पन्न किये जिनके नाम प्राचीन बर्हि, शुक्ल, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन थे ॥२६॥ हे राजन् ! प्राचीनबर्हि अपने पिता से भी अधिक सामर्थ्यवान् हुए, इसलिये उनके शासनकाल मे प्रजा की बहुत वृद्धि हुई ॥३०॥ हे जनमेजय ! राजा प्राचीनबर्हि के द्वारा किये गये यज्ञो से पूर्व को अग्र भाग करके बिछे हुए कुशो से सम्पूर्ण पृथिवी आवृत्त हो गयी थी इसलिये भूतल मे वे प्राचीन बर्हि नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके प्रचेता नाम वाले दस पुत्र समुद्र मे सोते हुए दस हजार वर्ष तक घोर तप करते रहे ॥ ३१-३४ ॥ इस कारण पृथिवी रक्षक-रहित हो गई और वन के रूप मे दिखायी देने लगी तथा प्रजा नष्ट हो गई ॥३५॥

नाशकन्मारुतो वातु वृत्त खमभवद् द्रुमै ।
दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितु प्रजा ॥३६
तदुपश्रुत्य तपसा युक्त सर्वे प्रचेतस ।
मुखेभ्यो वायुमग्निं च तेऽसृजञ्जातमन्यव ॥३७
उन्मूलानथ तान्हृत्वा वृक्षान्वायुरशोषयत् ।
तानग्निरदहद्धोर एवमासीद्द्रुमक्षय ॥३८
द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किञ्चिच्छिष्टेषु शाखिषु ।
उपगम्याब्रवीदेतान्राजा सोम प्रजापतीन् ॥३९
कोप यच्छत राजान सर्वे प्राचीनबर्हिष ।
वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमारुतौ ॥४०
रत्नभूता च कन्येय वृक्षाणा वरवर्णिनी ।
भविष्य जानता तत्त्व धृता गर्भेण वै मया ॥४१
मारिषा नाम कन्येय वृक्षाणामिति निर्मिता ।
भार्या वोऽस्तु महाभागा सोमवंशविवर्धिनी ॥४२

उस समय तक वायु का प्रवाहित होना रुका रहा और आकाश पेड़ो से ढक गया, इस प्रकार दस हजार वर्ष तक प्रजा भी निश्चेष्ट पड़ी रही ॥३६

जब उन तपस्वी प्रचेताओं को यह वृत्तान्त विदित हुआ तो उन्होंने क्रोध करके अपने मुख से अग्नि और वायु को उत्पन्न किया ।।३७।। उस वायु ने पृथिवी के वृक्षों को सुखा दिया और अग्नि उन्हें भस्म करने लगा ।।३८।। जब कुछ वृक्ष भस्म होने से बचे थे तभी वृक्षों के अधिपति सोम प्रजापति ने उन प्रचेताओं के पास जाकर उनसे कहा ।।३९।। हे प्रचेताओ ! अपने क्रोध का निवारण कीजिये, समस्त पृथिवी वृक्षों से रहित हो गई है, इसलिये अब आप अपने द्वारा उत्पन्न किये हुए अग्नि और वायु को शान्त कर दीजिये ।।४०।। भविष्य की इन घटनाओं को जान कर मैंने वृक्षों की रत्न रूपा मारिषा नाम की कन्या सुरक्षित रखी थी, इसका आप पाणिग्रहण कीजिये, इस कन्या के द्वारा ही वंशवृद्धि होगी ।।४१ ४०।।

युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः ।
अस्यामुत्पत्स्यते पुत्रो दक्षो नाम प्रजापतिः ।।४३
य इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै ।
अग्निनाऽग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्द्धयिष्यति ।।४४
ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः ।
संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीधर्मेण मारिषाम् ।।४५
मारिषायां ततस्ते वै मनसा गर्भमादधुः ।
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ।
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन भारत ।।४६
पुत्रानुत्पादयामास सोमवंशविवर्द्धनान् ।
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथचतुष्पदः ।
स दृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादप्यसृजत्स्त्रियः ।।४७
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
शिष्टाः सोमाय राज्ञेऽथ नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः ।।४८
तासु देवाः खगा नागा गावो दितिजदानवाः ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ।।४९
ततः प्रभृति राजेन्द्र प्रजा मैथुनसम्भवाः ।
सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ।।५०

आपके आधे तपोबल तथा मेरे आधे तेज के मिश्रित होने से दक्ष प्र
पति की उत्पत्ति होगी ॥४३। हमारे तपोबल के कारण वह पुत्र अग्नि के स
तेज वाला होकर इस दग्ध प्राय पृथिवी और प्रजा की वृद्धि करेगा ॥
चन्द्रदेव की बात से प्रसन्न होकर प्रचेतागण क्रोध से निवृत्त हुए और उ
मारिषा को भार्या के रूप में स्वीकार किया ॥४५॥ फिर उनके द्वारा मा
मे गर्भाधान किये जाने पर उन दसो प्रचेताओ और चन्द्रमा के अश से दक्ष प्र
पति उत्पन्न हुए ॥४६॥ उन दक्ष प्रजापति ने चन्द्रवश का विस्तार करने
अनेक पुत्रो तथा दो पाँव और चार पाँव वाले स्थावर जगम प्राणियो की र
की और इसके पश्चात् कुछ कन्याओ को भी उत्पन्न किया ॥४७॥ उन्होने
से दस पुत्रियो का विवाह धर्म के साथ, तेरह का कश्यप के साथ एव नक्षत्र
की कन्यायें चन्द्रमा को दे दी ॥४८॥ उन कन्याओ से देवता, पक्षी, गौ,
दैत्य, गधर्व, अप्सरा एव अ धान्य प्राणियों की उत्पत्ति हुई ॥४६॥ इसके
मनन, दर्शन और स्पर्श द्वारा ही प्रजोत्पत्ति हो जाती थी, दक्ष प्रज
की उत्पत्ति के पश्चात् मैथुनी सृष्टि होने लगी ॥५०॥

देवाना दानवाना च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
सभव कथित पूर्वं दक्षस्य च महात्मन ॥५१
अ गुष्ठाद्ब्रह्मणो जातो दक्ष प्रोक्तस्त्वयाऽनघ ।
वामागुष्ठात्तथा चैव तस्य पत्नी व्यजायत ॥५२
कथ प्राचेतसत्व स पुनर्लेभे महातपा ।
एतन्मे सशय विप्र सम्यगाख्या तुमर्हसि ।
दौहित्रश्चैव सोमस्य कथ श्वशुरता गत ॥५३
उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यौ भूतेषु पार्थिव ।
ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्वासश्चैव ये जना ॥५४
युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो नृपा ।
पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वास्तत्र न मुह्यति ॥५५
ज्येष्ठ्य कानिष्ठ्यमप्येषा पूर्वं नासीज्जनाधिप ।
तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ॥५६

इमां विसृष्टि दक्षस्य यो विद्यात्सचराचराम् ।
प्रजावानायुरुत्तीर्ण स्वर्गलोके महीयते ॥५७

जनमेजय ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! आपने पहिले देवता, दैत्य, गंधर्व, सर्प, राक्षस और दक्ष की उत्पत्ति का वृत्तान्त कहते समय बताया था कि ब्रह्माजी के दक्षिण और बांये अंगूठों से दक्ष व उनकी भार्या उत्पन्न हुये थे ॥५१-५२॥ वे अब इन प्रचेताओं के पुत्र किस प्रकार हुए तथा दक्ष प्रजापति चन्द्रमा के धेवते होकर भी उनके श्वसुर कैसे हो गये ? इसमें मुझे अत्यन्त संशय हो रहा है, इस विषय को भली प्रकार समझा कर कहने की कृपा कीजिये ॥५३॥ वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! इस विश्व में उत्पत्ति और संहार नित्य का क्रम है, इसलिय ऋषियों और विद्वानों को इस विषय में कुछ संशय नहीं होना चाहिए ॥५४॥ युग-युग दक्षादि की उत्पत्ति और नाश होता रहता है, इसलिये विद्वानों को इन बातों में संशय नहीं होता ॥५५॥ उनमें लघुता एवं गुरुता नहीं होती, तपोबल के न्यूनाधिक्य से ही इनमें छोटाई-बडाई मानी गयी है ॥५६॥ दक्ष प्रजापति की चराचर सृष्टि को जो जानता है, वह पुत्र-युक्त होकर अन्त में स्वर्गलोक को प्राप्त होता है ॥५७।

॥ दक्ष द्वारा मरुतों की उत्पत्ति ॥

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
उत्पत्तिं विस्तरेणेमां वैशम्पायन कीर्तय ॥१
प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणु महीपते ॥२
मानसान्येव भूतानि पूर्वमेवासृजत्प्रभुः ।
ऋषीन्देवान्सगन्धर्वानसुरानथ राक्षसान् ।
यक्षभूतपिशाचांश्च वयः पशुसरीसृपान् ॥३
यदाऽस्य तास्तु मानस्यो न व्यवर्द्धन्त वै प्रजाः ।
अपध्याता भगवता महादेवेन धीमता ॥४
तदा संचिन्त्य तु पुनः प्रजाहेतोः प्रजापतिः ।
स मैथुनेन धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥५

असिक्नीमावहत्पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः ।
सुतां सुतपसा युक्तां महतीं लोकधारिणीम् ॥६
अथ पुत्रसहस्राणि वीरण्यां पञ्च वीर्यवान् ।
असिक्न्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः ॥७

जनमेजय बोले—हे वैशम्पायनजी ! आप देवता, दैत्य, गधर्व, नाग
राक्षसों की उत्पत्ति का वृत्तान्त विस्तार सहित कहने की कृपा करें ॥१॥ वैशम्पा
यन ने कहा—हे राजन् ! स्वयंभू भगवान् ब्रह्माजी के द्वारा सृष्टि कार्य
आदेश प्राप्त कर जैसे जीवों की सृष्टि की थी, वह कहता हूँ, श्रवण कीजिये ॥
दक्ष प्रजापति ने प्रथम ऋषि, देवता, गधर्व, असुर, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशा
पक्षी, पशु और सर्पों की मानस सृष्टि की तो उन्हें प्रतीत हुआ कि उन मा
जीवों की वृद्धि नहीं हो रही है ॥३-४॥ तब मैथुनी सृष्टि की उत्पत्ति को
उन्होंने ठीक समझा ॥५। फिर उन्होंने वीरण प्रजापति की तपस्विनी
असिक्नी का पाणिग्रहण किया ॥६॥ उन असिक्नी के गर्भ से दक्ष ने पाँच ह
पुत्रों की उत्पत्ति की ॥७॥

तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान्संविवर्धयिषून्प्रजाः ।
देवर्षिः प्रियसंवादो नारदः प्राब्रवीदिदम् ।
नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा ॥८
यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत् ।
दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः ॥९
पूर्वं स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिना ।
असिक्न्यामथ वैरिण्यां भूयो देवर्षिसत्तमः ।
तं भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम् ॥१०
तेन दक्षस्य पुत्रा वै हर्यश्वा इति विश्रुताः ।
निर्मथ्य नाशिताः सर्वे विधिना च न संशयः ॥११
तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रमः ।
महर्षीन्पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना ॥१२

तनोऽभिसन्धि चक्रुस्ते दक्षस्तु परमेष्ठिना ।
कन्याया नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति ॥१३
ततो दक्षस्तु ता प्रादात्कन्या वै परमेष्ठिने ।
स तस्या नारदो जज्ञे दक्षशापभयादृषि ॥१४

नारद जी ने उन पुत्रों को प्रजा की वृद्धि करने की इच्छा वाला समझ उन्हें कुछ इस प्रकार समझाया कि जिसके कारण दक्ष के शाप से उनके साथ (द जी भी नष्ट हो गये ॥८॥ प्राचीनकाल में पितामह ब्रह्माजी ने प्रथम (द जी को उत्पन्न किया था, परन्तु दक्ष प्रजापति के असाधारण पराक्रम वाले श्व और शवलाश्व नामक पुत्रों को उन्होंने शास्त्रोपदेश द्वारा विरक्त कर ा, इससे वे गृह त्याग कर वनवासी हुए। इस बात को सुन कर दक्ष प्रजा- । को अत्यन्त क्रोध हुआ और उन्होंने शाप देकर नारद का नष्ट कर डाला। ो ब्रह्माजी मरीच्यादि ऋषियों के साथ दक्ष के पास पहुँचे और उन्होंने उनसे (द जी को पुनर्जीवित करने का निवेदन किया ॥६ १२॥ तब दक्ष प्रजापति ने महर्षियों के साथ विचार-विमर्श करके एक कन्या प्रदान करने का निश्चय ा, जिसके द्वारा नारद जी की उत्पत्ति होगी ॥१३॥ ऐसा विचार कर दक्ष ापति ने कश्यप के निमित्त वह कन्या ब्रह्माजी को दे दी। दक्ष के शाप-भय ारण महर्षि कश्यप ने दक्ष द्वारा दी गयी वह कन्या स्वीकार कर ली और ो से ना द जी का पुनर्जन्म हुआ ॥१४॥

कथ विनाशिता पुत्रा नारदेन महर्षिणा ।
प्रजापतेर्द्विजश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत ॥१५
दक्षस्य पुत्रा हर्यश्वा विवर्द्धयिषव प्रजा ।
समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह । १६
बालिशावत यूय वै नास्या जानीथ वै भुव ।
प्रमाण स्रष्टुकामा स्थ प्रजा प्राचेतसात्मजा ।
अन्तरूर्ध्वमधश्चैव कथ स्रक्ष्यथ वै प्रजा ॥१७
ते तु तद्वचन श्रुत्वा प्रयाता सर्वतो दिशम् ।
प्रमाण द्रष्टुकामास्ते गता. प्राचेतसात्मजा ॥१८

वायोरनशन प्राप्य गतास्ते वै पराभवम् ।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगा ॥१९
हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्ष प्राचेतस पुन ।
वैरिण्यामेव पुत्राणा सहस्रमसृजत्प्रभु ॥२०
विवर्द्धयिषवस्ते तु शबलाश्वा प्रजास्तदा ।
पूर्वोक्त वचन तात नारदेनैव नोदिता ॥२१

जनमेजय ने कहा—हे द्विजवर ! मैं यह बात अच्छी प्रकार जानना चाहता हूँ कि महर्षि नारद ने दक्ष के पुत्रो का विनाश क्यो किया था ? ॥१५॥ वैशम्पायनजी बोले–हे राजन् ! जब दक्ष पुत्र हर्यश्वादि प्रजा की वृद्धि के उद्देश्य से नारद के पास गये, तब नारद ने उनसे कहा था ॥१६॥ हे हर्यश्वगण ! तुम अत्यन्त मूर्ख हो क्योंकि तुम्हे इस पृथिवी के उच्च, मध्य और निम्न भाग के विस्तार, परिमाण का ज्ञान नही है, तब तुम प्रजोत्पत्ति किस प्रकार कर सकोगे ? ॥१७॥ नारद जी की बात सुन कर हर्यश्वगण पृथिवी का विस्तार परिणाम जानने के हेतु सब दिशाओ मे चल पडे ॥१८॥ जैसे समुद्र मे मिल कर नदियाँ पुन नही लौट पाती वैसे ही हर्यश्वगण पुन नही लौटे, क्योंकि वे ऐसे स्थान पर पहुँच गये, जहाँ वायु के उपलब्ध न होने से श्वास रुक गया था ॥१९॥ इस प्रकार हर्यश्वो के चले जाने पर दक्ष प्रजापति ने अपनी पत्नी अविसनी के द्वारा एक हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥२०॥ उनका नाम शावलाश्व हुआ, जब उन्होने प्रजोत्पत्ति की इच्छा की तब नारद जी ने उनसे भी उसी प्रकार कहा, जो हर्यश्वो से कहा था ॥२१॥

अन्योन्यमूचुस्ते सर्वे सम्यगाह महामुनि ।
भ्रातणा पदवी ज्ञातु गन्तव्य नात्र सशय ॥२२
ज्ञात्वा प्रमाण पृथ्व्याश्च सुख स्रक्ष्यामहे प्रजा ।
एकाग्रा स्वस्थमनसा यथावदनुपूर्वश ॥२३
तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाता सर्वतो दिशम् ।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रादिव सिन्धव ॥२४

नष्टेषु शबलाश्वेषु दक्षः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ।
नारदं नाशमेहीति गर्भवासं वसेति च ॥२५
तदाप्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणं नृप ।
प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्यं विपश्चिता ॥२६
तांश्चापि नष्टान्विज्ञाय पुत्रान्दक्षः प्रजापतिः ।
षष्टिं भूयोऽसृजत्कन्या वैरिण्यामिति नः श्रुतम् ॥२७
तास्तदा प्रतिजग्राह भार्यार्थं कश्यपः प्रभुः ।
सोमो धर्मश्च कौरव्य तथैवान्ये महर्षयः ॥२८

उनकी बात सुन कर शबलाश्वों ने परस्पर मन्त्रणा की और कहने लगे कि महामुनि का कथन सत्य ही है, हमें अपने भाइयों के मार्ग को अवश्य ही जानना चाहिये ॥२२॥ पृथिवी के परिमाण का ज्ञान होने पर हम एकाग्र तथा स्वस्थ मन से प्रजोत्पत्ति का कार्य पूर्ण कर सकेंगे ॥२३॥ इस प्रकार विचार कर शबलाश्वगण भी सब दिशाओं को चले गये और समुद्र मे मिली हुई नदियों के पुनरावर्तन न होने के समान शबलाश्वगण भी फिर नहीं लौटे ॥२४॥ जब शबलाश्वगण भी चले गये, तब दक्ष ने क्रोध पूर्वक नारद जी से कहा— हे नारद ! तुम इसी समय नाश को प्राप्त होओ और गर्भ मे रहने के दुःखों का भोग करो ॥२५॥ हे राजन् ! उसी समय से भाई की खोज मे जाने वाला भाई नाश को प्राप्त होने लगा, इसलिये विद्वानों को उचित है कि भाई की खोज के लिए भाई को कदापि न भेजे ॥२६॥ दक्ष-प्रजापति ने शबलाश्वों के नष्ट होने के पश्चात् अपनी भार्या वैरिणी के गर्भ से साठ पुत्रियों को उत्पन्न किया ॥२७॥ उन पुत्रियों का विवाह कश्यप, चन्द्रमा, धर्म तथा अन्यान्य ऋषियों के साथ किया गया ॥२८॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥२९
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ॥३०

अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती ।
सकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भारत ।
धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि मे शृणु ।।३१
विश्वेदेवाश्च विश्वाया साध्यान्साध्या व्यजायत ।
मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ।।३२
भानोस्तु भानवस्तात मुहूर्ताया मुहूर्तजा ।।३३
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी च यामिजा ।
पृथिवीविषय सर्वमरुन्धत्या व्यजायत ।।३४
सकल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे सकल्प एव हि ।
नागवीथ्याश्च जामिन्या वृषलम्बा व्यजायत ।।३५

उनमे से दस पुत्रियाँ धर्म को, तेरह कश्यप को, सताईस चन्द्रमा को, चार अरिष्टनेमि को, दो भृगु पुत्र को, दो अंगिरा को तथा दो कृशाश्व को ब्याही गयी । अब उन पुत्रियो के नाम कहते हैं ।।२६ ३०।। उनमे जो धर्म की भार्याएँ हुईं उनके नाम अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती सकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा थे । अब इनकी सन्तान सुनो—।।३१।। विश्वा से विश्वेदेव उत्पन्न हुए, साध्या से साध्यगण ने जन्म लिया मरुत्वती से मरुत्वान् हुए, वसु से वसुगण उत्पन्न हुए ।।३२।। भानु से भानुगण, मुहूर्ता से मुहूर्तगण, लम्बा से घोष, यामी से नागवीथी तथा अरुन्धती से पृथिवी की सभी वस्तुएँ उत्पन्न हुईं ।।३३-३४।। सकल्पा से सभी मे निवास करने वाला सकल्प हुआ, यामी की कन्या नागवीथी से वृषलम्बा उत्पन्न हुई ।।३५।।

या राजन्सोमपत्न्यस्तु दक्ष प्राचेतसो ददौ ।
सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्तिता ।।३६
ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योति पुरोगमा ।
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषा वक्ष्यामि विस्तरम् ।।३७
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलानलौ ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभि स्मृता ।।३८

आपस्य पुत्रो वैतण्डय: श्रम: शान्तो मुनिस्तथा ।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान्कालो लोकप्रकालन: ॥३९
सोमस्य भगवान्वर्च्चा वर्च्चस्वी येन जायते ।
धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ।
मनोहराया: शिशिर: प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥४०
अनिलस्य शिवा भार्या यस्या: पुत्रो मनोजव: ।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥४१
अग्निपुत्र. कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रियान्वित: ।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजा: । ४२
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृत: ।
स्कन्द: सनत्कुमारश्च सृष्ट: पादेन तेजस: ॥४३

हे राजन् ! प्रचेतापुत्र दक्ष ने चन्द्रमा को जो कन्याएँ दी थी, वह सभी ज्योतिप्रद नक्षत्रो के नाम से विख्यात हुई ॥३६॥ इनके अतिरिक्त अत्यन्त तेजस्वी एव प्रसिद्ध देवता अष्टवसु हुए, आप, ध्रुव, सोम, धर, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभात यह उनके नाम हुए ॥३७-३८॥ वैतण्डय, शान्त और मुनि यह चारो पुत्र आप नामक वसु के हुए। ध्रुव का पुत्र लोकनाशक काल हुआ॥३९॥ चन्द्रमा के पुत्र भगवान् वर्चा हुए, इनके पिता होने से ही चन्द्रमा की वर्चस्वी नाम से प्रसिद्धि हुई। द्रविण, हुतहव्यवह तथा मनोहरा के गर्भ से धर के शिशिर, प्राण और रमण नामक पुत्र हुए ॥४०॥ शिवा के गर्भ से अनिल ने मनोजव और अविज्ञातगति नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥४१॥ अग्नि के पुत्र कुमार हुए, उनका पालन कृत्तिकाओ के द्वारा हुआ, इसलिये उन्हें कार्तिकेय भी कहा गया। शाख, विशाख और नैगमेय यह तीनो उन कार्तिकेय के छोटे भाई हुए। स्कन्द और सनत्कुमार इन दोनो की उत्पत्ति अग्नि के चतुर्थांश से हुई थी, इसलिये यह कार्तिकेय के नाम भेद ही हैं ॥४२-४३॥

प्रत्यूषस्य विदु: पुत्रमृषिं नाम्ना च देवलम् ।
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ तपस्विनौ ॥४४

बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी ।
योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता विचाचार ह ॥४५
प्रभासस्य च सा भार्या वसूनामष्टमस्य च ।
विश्वकर्मा महाभागस्तस्या जज्ञे प्रजापति ।४६
कर्त्ता शिल्पसहस्राणा त्रिदशाना च वर्द्धकि ।
भूषणाना च सर्वेषा कर्त्ता शिल्पवता वर ॥४७
य सर्वाता विमानानि देवताना चकार ह ।
मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्प ॥४८
सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादश विनिर्ममे ।
महादेवप्रसादेन तपस भाविता सती ॥४६
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्राश्च भारत ।
त्वष्टुश्चैवात्मज श्रीमाविश्वरूपो महायशा ॥५०

प्रत्यूष के पुत्र देवल हुए, उन महर्षि देवल के दो पुत्र हुए, जो तपस्वी और क्षमाशील थे ॥४४॥ देवताओं के गुरु बृहस्पति जी की बहिन योगसिद्धा एव ब्रह्मचारिणी नाम की थी, वह आसक्ति रहित भाव से ससार मे भ्रमण करती थी, वह आठवें वसु प्रभास की भार्या थी, प्रजापति विश्वकर्मा की उत्पत्ति उसी के गर्भ से हुई थी ॥४५-४६॥ उन विश्वकर्मा ने विश्व मे सहस्रो प्रकार के शिल्पों का आविष्कार किया था, उन्ही ने सब प्रकार के आभूषण और देवताओ के लिए विमान की रचना की वर्तमान काल मे भी उन्ही की शिल्पकला के अनुसार द्वारा असख्य मनुष्य जीविकोपार्जन करते हैं ॥४७-४८॥ सुरभी ने अपनी तपस्या के प्रभाव से भगवान् शकर को प्रसन्न किया और कश्यप के द्वारा ग्यारह रुद्रों को पुत्र रूप मे प्राप्त किया ॥४६॥ वे अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा और रुद्र नाम से प्रसिद्ध थे, त्वष्टा का पुत्र महातप विश्वरूप हुआ ॥५०॥

हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजित ।
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥५१
मृगव्याधश्च सर्पश्च कपाली च विशापते ।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वरा ॥५२

शत त्वेवं ममाख्यात रुद्राणाममितौजसाम् ।
पुराणे भरतश्रेष्ठ यैर्व्याप्ता सचराचरा ॥५३
लोका भरतशार्दूल कश्यपस्य निबोध मे ।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खशा ॥५४
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा ।
कद्रु मुनिश्च राजेन्द्र तास्वपत्यानि मे शृणु ॥५५
पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन्सुरोत्तमा ।
तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥५६
उपस्थितेऽतियशसि चाक्षुषस्यान्तरे मनो ।
हितार्थं सर्वसत्वाना समागम्य परस्परम् ॥५७
आगच्छत द्रुत देवा अदितिं सम्प्रविश्य वै ।
मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्न. श्रेयो भविष्यति ॥५८

ग्यारह रुद्र हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, सर्प और कपाली नामक थे, यह तीनो भुवन के अधीश्वर थे ॥५१-५२॥ हे भरत श्रेष्ठ ! इन रुद्रों के पुराणो सैकड़ो नाम कहे गये हैं तथा यह समस्त चराचर विश्व में असंख्य रूपों मे विद्यमान रहते हैं ॥५३॥ हे भरत शार्दूल ! अब कश्यप की भार्याओ और उनकी सन्तान के नामों को श्रवण करो—अदिति, दिति, दनु अरिष्टा, सुरसा, खशा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि ॥५४-५५॥ चाक्षुष मन्वन्तर में जो तुषित नामक बारह प्रमुख देवता हुए थे, उन्होंने वैवस्वत मन्वन्तर में कहा था ॥५६॥ यह चाक्षुष मन्वन्तर अत्यन्त यशस्वी आया है, इसलिये हम सब एक साथ चलकर प्राणियों के कल्याण के लिए अदिति के गर्भ द्वारा जन्म ग्रहण करें, इसमें हमारा भी हित निहित है ॥५७-५८॥

एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनो ।
मारीचात्कश्यपाज्जातास्तेऽदित्या दक्षकन्यया ॥५९
तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि ।
अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा च भारत ॥६०

विवस्वान्सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृता ॥६१
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासन्ये तुषिता सुरा ।
वैवस्वतेऽन्तरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृता ।६२
सप्तविंशति या प्रोक्ता सोमपत्न्योऽथ सुव्रता ।
तासामपत्यान्यभवन्दीप्तान्यमिततेजसाम् ॥६३
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ।
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युत स्मृता ।६४
प्रत्यगिरसजा श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृता ।
कृशाश्वस्य तु राजर्षेर्देवप्रहरणानि च ॥६५
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव ह ।
सर्वदेवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत् कामजा ॥६६

वैशम्पायन जी बोले—यह कहकर वे सब देवता वैवस्वत मन्वन्तर मे मरीचि पुत्र कश्यप के द्वारा अदिति के गर्भ से प्रकट हुए ॥५६॥ इस प्रकार इन्द्र, विष्णु, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान् सविता, मित्र, वरुण, अंश और भग नामक बारह आदित्य उत्पन्न हुए ॥ ६० ६१ ॥ चाक्षुष मन्वन्तर के तुषित नामक देवगण ही वैवस्वत मन्वन्तर मे इस प्रकार के नाम वाले द्वादश आदित्य हुए ॥६२॥ चन्द्रमा की जो सत्ताईस भार्याएँ हुइ उनके गर्भ से भी बहुत सी सन्तानोत्पत्ति हुई ॥६३॥ अरिष्टनेमि की भार्याओ के सोलह सन्तानें हुई यथा मेघ, इन्द्र धनुष और विद्युत की उत्पत्ति अत्यन्त ज्ञानी और तेजस्वी बहुपुत्र से हुई ॥६४॥ ब्रह्मर्षियो द्वारा सम्मानित सभी ऋक् प्रत्यगिरा के पुत्र थे। देवर्षि कृशाश्व के सभी पुत्र दिव्यशास्त्रो के नामो से विख्यात हुए ॥६५॥ सहस्र युग के व्यतीत होने पर देवगण पुनर्जन्म धारण करते हैं, वसु आदि जो तेतीस देवता हैं, वे कामज कहे गये हैं ॥६६॥

दित्या पुत्रद्वय जज्ञे कश्यपादिति न श्रुतम् ।
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान् ।६७

सिंहिका चाभवत्कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ।
सैंहिकेया इति ख्यातास्तस्याः पुत्रा महाबलाः ।
गणैश्च सह राजेन्द्र दशसाहस्रमुच्यते ॥६८
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
असंख्याता महाबाहो हिरण्यकशिपोः शृणु ॥६९
हिरण्यकशिपो पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः ।
अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान् ॥७०
संह्लादश्च चतुर्थोऽभूद्ध्रादपुत्रो ह्रदस्तथा ।
सह्लादपुत्र. सुन्दश्च निसुन्दस्तावुभौ स्मृतौ ॥७१
अनुह्लादसुतो ह्यायु शिबिः कालस्तथैव च ।
विरोचनश्च प्राह्लदिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात् ॥७२
बलेः पुत्रशतं त्वासीद् बाणज्येष्ठं नराधिप ।
धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमाश्चेन्द्रतापनः ॥७३
कुम्भनाभो गर्दभाक्ष कुक्षिरित्येवमादयः ।
बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठ. पशुपते. प्रिय· ॥७४

सुना गया है कि दिति के गर्भ से कश्यप ने अत्यंत बलवान दो पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुए तथा सिंहिका नाम की एक कन्या भी उत्पन्न की, जिसका विवाह विप्रचित्ति के साथ हुआ। उस सिंहिका के गर्भ से दस हजार अत्यंत बलवान पुत्रों की उत्पत्ति हुई, वे सभी सैंहिकेय कहे गये हैं ॥६७-६८॥ उनके असंख्य पुत्र-पौत्र उत्पन्न हुए। अब हिरण्यकशिपु की सतति के विषय में कहता हूँ ॥६९॥ हिरण्यकशिपु के चार पुत्र हुए, उन तेजस्वियों के नाम अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद और संह्लाद थे। ह्लाद का पुत्र ह्रद और सह्लाद के दो पुत्र सुन्द-निसुन्द हुए ॥७०-७१॥ अनुह्लाद के तीन पुत्र हुए, जिनका नाम आयु, शिबि और काल हुआ। प्रह्लाद के एक ही पुत्र विरोचन नाम का उत्पन्न हुआ ॥७२॥ उस विरोचन का पुत्र बलि हुआ, जिसके बाण, धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्र, इन्द्रतापन, कुम्भनाभ, गर्दभाक्ष और कुक्षि आदि सौ पुत्र हुए। उनमें बाण सबसे बड़ा था, जो शिवजी का प्रिय भक्त हुआ ॥७३-७४॥

बाणस्य चेन्द्रदमनो लोहित्यामुदपद्यत ।
गणास्तथासुरा राजञ्छतसाहस्रसम्मिता ॥७५
हिरण्याक्षसुता पञ्च विद्वांस सुमहाबला ।
झर्झर शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥७६
महानाभश्च विक्रान्त कालनाभस्तथैव च ।
अभवन्दनुपुत्राश्च शत तीव्रपराक्रमा ।
तपस्विनो महावीर्या प्राधान्येन निबोध तान् ॥७७
द्विमूर्धा शकुनिश्चैव तथा शकुशिरा विभु ।
शकुकर्णो विराधश्च गवेष्ठी दुन्दुभिस्तथा ।
अयोमुख शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा ॥७८
मरीचिर्मघवाश्चैव इरा शङ्कुशिरा वृक ।
विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्यशतह्रदौ ॥७९
इन्द्रजित्सत्यजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ।
महानाभश्च विक्रान्त कालनाभस्तथैव च ॥८०
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबल ।
वैश्वानर पुलोमा च विद्रावणमहासुरौ ॥८१
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च तुहुण्डश्च महासुर ।
सूक्ष्मश्चैवातिचन्द्रश्च ऊर्णनाभो महागिरि ॥८२
एते सर्वे दनो पुत्रा कश्यपादभिजज्ञिरे ।
विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवा सुमहाबला ॥८३
एतेषा यदपत्य तु तन्न शक्य नराधिप ।
प्रसङ्ख्यातु महीपाल पुत्रपौत्राद्यनन्तकम् ॥८४

उस बाणासुर की भार्या लोहिती के इन्द्रदमन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, इस प्रकार हिरण्यकशिपु के सतति रूप मे असख्य असुरो की वृद्धि हुई ॥७५॥ इसी प्रकार हिरण्याक्ष के भी पाँच पुत्र अत्यत पराक्रमी हुए, वे झर्झर, शकुनि, भूत सन्तापन, महानाभ और कालनाभ नाम से प्रसिद्ध हुए। कश्यप की

ार्या दनु से भी अत्यत तेजस्वी एव पराक्रमी सौ पुत्र हुए, उनमें जो प्रमुख थे उनके नाम कहता हूँ ॥७६-७७॥ द्विमूर्धा शकुनि, शकुशिरा शकुकर्ण, विराध, विप्ठी, दुन्दुभि, अयोमुख, शम्बर, कपिल, वामन, मरीचि, मघवान्, इरा, र्गशिरा, वृक, विक्षोभन, केतु, केतुवीर्य, शतह्रद, इन्द्रजित, सर्वजित, वज्रनाभ, विक्रान्त, महानाभ, कालनाभ, महाबाहु, एकचक्र, तारक, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महाशिरा, स्वर्भानु, वृषपर्वा तुहुण्ड, सूक्ष्म, अतिचन्द्र, ऊर्णनाभ, महागिरि आदि ॥७८-८२॥ ये सभी दनु पुत्र, कश्यप के वंशधर थे, जिनमे विप्रचित्ति सर्वश्रेष्ठ था, यह सभी दैत्य अत्यन्त बली थे ॥८३॥ पुत्र-पौत्रादि के क्रम से इन दैत्यो की वंश वृद्धि की गणना नही की जा सकती ॥८४॥

॥ पृथु-उपाख्यान ॥

अभिषिच्याधिराज्ये तु पृथु वैन्य पितामह ।
तत क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥१
द्विजाना वीरुधा चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा ।
यज्ञाना तपसा चैव सोम राज्येऽभ्यषेचयत् ॥२
अपा तु वरुण राज्ये राज्ञा वैश्रवण प्रभुम् ।
बृहस्पति तु विश्वेषा ददावाङ्गिरस पतिम् ॥३
भृगूणामधिप चैव काव्य राज्येऽभ्यषेचयत् ।
आदित्याना तथा विष्णु वसूनामथ पावकम् ॥४
प्रजापतीना दक्ष तु मरुतामथ वासवम् ।
दैत्याना दानवाना च प्रह्लादममितौजसम् ॥५
वैवस्वत च पितृणा यम राज्येऽभ्यषेचयत् ।
मातृणा च व्रताना च मन्त्राणा च तथा गवाम् ॥६
यक्षाणा राक्षसाना च पार्थिवाना तथैव च ।
नारायण तु साध्याना रुद्राणा वृषभध्वजम् ॥७

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! ब्रह्माजी ने वेन पुत्र राजा पृथु को ाज्य देकर, अन्यान्य पुरुषो को जो जो कार्य सौंपा उसे तुमसे कहता हूँ ॥१॥

ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को सब ब्राह्मणों, वृक्ष, नक्षत्रों, ग्रहों, यज्ञों और तपस्याओं का अधिपति बनाया ॥२॥ वरुण को जल का राजा, कुबेर को धनाधिपति तथा बृहस्पति को सम्पूर्ण विश्व का अधिपति नियुक्त किया ॥३॥ भृगुवंशियों के अध्यक्ष शुक्राचार्य बनाये गये, आदित्यों के अधिपति विष्णु, और वसुओं के अध्यक्ष अग्नि बनाये गये ॥४॥ प्रजापतियों के अधिपति दक्ष, मरुतों के अधिपति इन्द्र और दैत्यों के अधिपति प्रह्लाद बनाये ॥५॥ सूर्य पुत्र यम पितरों के अधिपति तथा षोडश मातृकाओं व्रतों, मन्त्रों, गौओं, यक्षों, राक्षसों, राजाओं तथा शास्त्रों के अधिपति भगवान् विष्णु को बनाया तथा रुद्रों के अधिपति भगवान् शिव को किया ॥६-७॥

विप्रचित्ति तु राजानं दानवानामथादिशत् ।
सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम् ॥८
शैलानां हिमवन्तं च नदीनामथ सागरम् ।
गन्धानां मरुतां चैव भूतानामशरीरिणाम् ।
शब्दाकाशवतां चैव वायुं च बलिनां वरम् ॥९
गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं प्रभुम् ।
नागानां वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम् ॥१०
वारणानां च राजानमैरावतमथादिशत् ।
उच्चैःश्रवसमश्वानां गरुडं चैव पक्षिणाम् ॥११
मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषं च गवां पतिम् ।
वनस्पतीनां राजानं प्लक्षमेवादिशत्प्रभुम् ॥१२
सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षणस्य च ।
आदित्यानामधिपतिं पर्जन्यमभिषिक्तवान् ॥१३
सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषं राजानमभ्यषेचयत् ।
सरीसृपाणां सर्पाणां राजानं चैव तक्षकम् ॥१४

इसी प्रकार विप्रचित्ति दानवों के और शिवजी सब भूत पिशाचों के स्वामी हुए ॥८॥ सब पर्वतों का राजा हिमवान, नदियों का अधिपति

धो, वायुओं, अशरीरी प्राणियो और शब्दो का राजा प्रवल पराक्रम वाले वायु
ो बनाया ॥९॥ गन्धर्वो का राजा चित्ररथ नागो का राजा वासुकी और सर्पों
ा राजा तक्षक किया गया ॥१०॥ हाथियो का राजा ऐरावत, घोड़ो का राजा
उच्चैःश्रवा और पक्षियो का राजा गरुड हुआ ॥११॥ मृगो का राजा सिंह,
ौओं का राजा वृषभ और सब वृक्षो का राजा पीपल वृक्ष को बनाया ॥१२॥
॥ समुद्रो, नदियो, मेघो और आदित्यो का अधिपति पर्जन्य हुआ ॥१३॥ सब
ाँत वाले प्राणियो का राजा शेष और रेंग कर चलने वाले सर्पो का राजा
क्षक हुआ ॥१४॥

गन्धर्वाप्सरसा चैव कामदेवं तथा प्रभुम् ।
ऋतूनामथ मासाना दिवसाना तथैव च ॥१५
पक्षाणा च क्षपाणा च मुहूर्ततिथिपर्वणाम् ।
कलाकाष्ठाप्रमाणानामृतोरयनयोस्तथा ॥१६
गणितस्याथ योगस्य चक्रे सवत्सर प्रभुम् ।
एव विभज्य राज्यानि क्रमेण स पितामह ॥१७
दिशापालानथ तत स्थापयामास भारत ।
पूर्वस्या दिशि पुत्र तु वैराजस्य प्रजापते ॥१८
दिशापाल सुधन्वान राजान चाभ्यषेचयत् ।
दक्षिणस्या महात्मान कर्दमस्य प्रजापते॥१९
पुत्र शङ्खपद नाम राजान सोऽभ्यषेचयत् ।
पश्चिमाया दिशि तथा राजस पुत्रमच्युतम् ॥२०
केतुमन्त महात्मान राजान सोऽभ्यषेचयत् ।
तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापते ॥२१
उदीच्या दिशि दुर्द्धर्षं राजान सोऽभ्यषेचयत् ।
तेरिय पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ॥२२
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण परिपाल्यते ।
राजसूयाभिषिक्तस्तु पृथुरेभिर्नराधिपैः ।
वेददृष्टेन विधिना राजराज्ये नराधिप ॥२३

तत्तो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि ।
वैवस्वताय मनवे ब्रह्मा राज्यमथादिशत् ।
तस्य विस्तरमाख्यास्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह ।।२४

गंधर्वो और अप्सराओं का राजा कामदेव तथा ऋतु, मास पक्ष, दिन, रात, मुहूर्त, तिथि, पर्व, कला, काष्ठा, ऋतु अयन, योग एवं गणित का अधिपति संवत्सर हुआ। इस प्रकार कार्य विभाग करके ब्रह्माजी ने दिक्पालों को नियुक्त किया। वैराज प्रजापति के पुत्र सुधन्वा को पूर्व दिशा का, कर्दम के पुत्र शंखपद्म को दक्षिण का रजपुत्र अच्युत केतुमान को पश्चिम का और पर्जन्य प्रजापति के पुत्र दुर्धर्ष हिरण्य रोमा को उत्तर दिशा का दिक्पाल बनाया। उसी समय से यह सभी यज्ञाभिषिक्त महाराज पृथु की आधीनता स्वीकार कर अपने-अपने कार्य-भार को वहन करते तथा ग्रामों, नगरों और द्वीपों युक्त पृथिवी का धर्म पूर्वक पालन करते आरहे हैं ।।१५-२३।। इस प्रकार चाक्षुष मन्वन्तर के व्यतीत होने पर वैवस्वत मनु को कार्य-भार सौंपा, अब मैं उसी वैवस्वत मन्वन्तर का वर्णन करता हूँ ।।२४।।

विस्तरेण पृथोर्जन्म वैशम्पायन कीर्तय ।
यथा महात्मना तेन दुग्धा चेयं वसुन्धरा ।।२५
हन्त ते कथयिष्यामि पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम् ।
एकाग्र प्रयतश्चैव शृणुष्व जनमेजय ।।२६
नाशुचे क्षुद्रमनसे नाशिष्यायाव्रताय च ।
कीर्तनीयमिदं राजन्कृतघ्नायाहिताय वा ।।२७
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धर्म्यं वेदेन सम्मितम् ।
रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणु राजन्यथातथम् ।।२८
यश्चैनं कीर्तयेन्नित्यं पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम् ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत्कृताकृतं ।।२९

जनमेजय ने कहा—हे वैशम्पायनजी ! महाराज पृथु के जन्म और उनके

ारा पृथिवी का दोहन किये जाने वाले वृत्तान्त को आप मेरे प्रति विस्तार-
र्वक कहिये ॥२५॥ वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! वेनपुत्र राजा पृथु का
रित्र विस्तार से कहता हूँ, तुम एकाग्र चित्त से श्रवण करो ॥२६॥ यह
ाख्यान अपवित्र, क्षुद्र कुशिष्य, व्रत से हीन, कृतघ्न और अहितकर मनुष्य को
भी न सुनावे ॥२७॥ ऋषि द्वारा कहा गया यह वेद के समान गूढ़ तत्व है,
इसके श्रवण से स्वर्ग, यश एवं दीर्घायु मिलती है, इसलिये अब मैं राजा पृथु
का चरित्र कहता हूँ ॥२८॥ इस चरित्र को जो मनुष्य ब्राह्मणों को नमस्कार
करके श्रवण करता है, उसे अपने द्वारा किये हुए अच्छे या बुरे कर्म के लिये
पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता ॥२९॥

॥ वेन का विनाश-पृथु का जन्म ॥

आसीद्धर्मस्य गोप्ता वै पूर्वमत्रिसमः प्रभुः ।
अत्रिवंशसमुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः ॥१
तस्य पुत्रोऽभवद्वेनो नात्यर्थं धर्मकोविदः ।
जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः ॥२
स मातामहदोषेण वेनः कालात्मजात्मजः ।
स्वधर्मं पृष्ठतः कृत्वा कामाल्लोभेष्ववर्तत ॥३
मर्यादां स्थापयामास धर्मपेतां स पार्थिवः ।
वेदधर्मानतिक्रम्य सोऽधर्मनिरतोऽभवत् ॥४
निःस्वाध्यायवषट्कारास्तस्मिन्राजनि शासति ।
प्रवृत्तं न पपुः सोमं हुतं यज्ञेषु देवताः ॥५
न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः ।
आसीत्प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥६
अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति कुरूद्वह ।
मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥७

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! प्राचीनकाल की बात है, अत्रिवंश
। अंग नामक एक प्रजापति हुए थे। वे महर्षि अत्रि के समान ही सामर्थ्यवान

और धर्म रक्षा मे तत्पर रहते थे ॥१॥ मृत्यु सुता सुनीथा के गर्भ से उनके वेन नामक एक पुत्र हुआ वह धर्म-तत्व से अनभिज्ञ था ॥२॥ वह अपने नाना के दोष से धर्मच्युत होकर अपनी कुत्सित वृत्तियो को तृप्त करने के लिये अत्यन्त चचल हो उठा था। ३॥ उसने वैदिक धर्म को त्याग दिया और धर्म-रहित होकर उसने अधार्मिक शासन चलाया ॥४॥ उसके शासन मे वेदाध्ययन और ओकार का उच्चारण सभव नही था, इसलिये यज्ञ मे देवताओ का सोमपान रुक गया ॥५॥ उसने अपनी मृत्यु को शीघ्र वरण करने के लिये यज्ञ और हवन न करने की आज्ञा प्रसारित की ॥६॥ मैं ही यज्ञ हूँ मैं ही यज्ञकर्त्ता एव सब का साध्य देवता हूँ, इसलिये आज से सभी मनुष्य मेरे निमित्त ही यज्ञ तथा हवन करें ॥७॥

तमतिक्रान्तमर्यादमाददानमसाम्प्रतम् ।
ऊचुर्महर्षय सर्वे मरीचिप्रमुखास्तदा ॥८
वय दीक्षा प्रवेक्ष्याम सवत्सरगणान्बहून् ।
अधर्मं कुरु मा वेन नैष धर्म सनातन ॥९
निधनेऽत्रे प्रसूतस्त्व प्रजापतिरसशयम् ।
प्रजाश्च पालयिष्येऽहमिति ते समय कृत ॥१०
तास्तदा ब्रुवत सर्वान्महर्षीनब्रवीत्तदा ।
वेन प्रहस्य दुर्बुद्धिरिममर्थमनर्थवित् ॥११
स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्य श्रोतव्य कस्य वै मया ।
श्रुतवीर्यतप सत्यैर्मया वा क समो भुवि ॥१२
प्रभव सर्वभूताना धर्माणा च विशेषत ।
समूढा न विदुर्नून भवन्तो मामचेतस ॥१३
इच्छन्दहेय पृथिवी प्लावयेय तथा जलै ।
ख भुव चैव रुन्धेय नात्र कार्या विचारणा ॥१४

इस प्रकार सर्वथा मर्यादा-रहित हुआ राजा वेन लोक निन्दित कार्यों को करने लगा, तब मरीच्यादि ऋषियों ने उसके पास जाकर कहा ॥८॥ हे राजन् ! हे वेन ! हम बहुत वर्षों तक चलने वाले यज्ञ की दीक्षा लेने को हैं, इसलिए तुम अधर्म का त्याग करो, यही सनातन धर्म है ॥९॥ हे राजन् ! तुम महर्षि अत्रि

ऐश्वर हो और तुमने राजधर्म तथा प्रजापालन की प्रतिज्ञा भी ले रखी है ॥१०॥ उन ऋषियों की बात सुन कर दुर्मति वेन हँस पड़ा और बोला कि धर्म का स्रष्टा मेरे अतिरिक्त अन्य कौन है ? मैं किसकी बातों पर ध्यान दूँ ? इस भूतल पर मेरे अतिरिक्त अन्य कौन व्यक्ति शास्त्रज्ञ, पराक्रमी तथा तपस्वी है ? ॥११-१२॥ तुम परिस्थितियों को नहीं जानते इसलिये अत्यन्त मूर्ख हो, तुम्हें ज्ञात नहीं है कि मैं ही सब जीवों के धर्म को उत्पन्न करने वाला हूँ ॥१३॥ मैं पृथिवी को भस्म कर देने अथवा जल में प्रवाहित करने में समर्थ हूँ, मैं आकाश और पृथिवी को अवरुद्ध कर सकता हूँ, इसमें सन्देह नहीं है ॥१४॥

यदा न शक्यते मोहादवलेपाच्च पार्थिवः ।
अनुनेयं तदा वेनस्तत क्रुद्धा महर्षय ॥१५
निगृह्य त महात्मानो विस्फुरन्त महाबलम् ।
ततोऽस्य सव्यमूरुं ते ममन्थुर्जातमन्यव. ॥१६
तस्मिंस्तुमथ्यमाने वै राज्ञ ऊरौ प्रजज्ञिवान् ।
ह्रस्वोऽतिमात्रः पुरुष कृष्णश्चातिबभूव ह ॥१७
स भीतः प्राञ्जलिर्भूत्वा स्थितवाञ्जनमेजय ।
तमत्रिर्विह्वलं दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रवीत्तदा ॥१८
निषादवंशकर्त्ताऽसौ बभूव वदता वर ।
धीवरानसृजच्चाथ वेनकल्मषसम्भवान् ॥१९
ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तुवारास्तुम्बुरास्तथा ।
अधर्मरुचयो ये च विद्धि तान्वेनसम्भवान् ॥२०
ततः पुनर्महात्मानः पाणि वेनस्य दक्षिणम् ।
अरणीमिव सरब्धा ममन्थुस्ते महर्षय ॥२१

हे राजन् ! जब मोह और अहंकार के वशीभूत हुआ राजा वेन उन मुनियों के प्रति शिष्टाचार भी प्रदर्शित न कर सका तो वे सभी मुनि अत्यन्त क्रोधित हुए ॥१५॥ तथा वे राजा वेन को पकड़ कर उसकी दक्षिण जाँघ को मथने लगे, इस कारण वह बहुत छटपटाया ॥१६॥ इस प्रकार कुछ देर तक जाँघ का मन्थन करने पर उसकी जाँघ से एक बौना और काले वर्ण का पुरुष

उत्पन्न हुआ ॥१७॥ वह पुरुष उत्पन्न होते ही उन मुनियों के सामने हाथ जोड़कर भयपूर्वक खड़ा हो गया। उसे अत्यन्त भयभीत देख कर महर्षि अत्रि ने 'निषीद' अर्थात् बैठ जाओ कहा ॥१८॥ उस निषीद शब्द के कारण ही वह पुरुष निषाद वंश का कर्त्ता हुआ। राजा वेन के पाप से उसी के द्वारा धीवर जाति उत्पन्न हुई ॥१६॥ उसी के द्वारा तुषार-तुम्बर आदि अधार्मिक एवं असभ्य जातियाँ उत्पन्न होकर विन्ध्य पर्वत पर निवास करने लगी ॥२०॥ इसके पश्चात् क्रोधित हुए वे ऋषि वेन की दक्षिण भुजा को अरणी के समान मथने लगे ॥२१॥

पृथुस्तस्मात्समुत्तस्थौ कराज्ज्वलनसन्निभ.
दीप्यमान स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन् ॥२२
स धन्वी कवची जात पृथुरेव महायशा ।
आद्यमाजगव नाम धनुर्गृह्य महारवम् ।
शराश्च दिव्यान्रक्षार्थं कवच च महाप्रभम् ॥२३
तस्मिञ्जातेऽथ भूतानि सम्प्रहृष्टानि सर्वंश ।
समापेतुर्महाराज वेनश्च त्रिदिव गत ॥२४
समुत्पन्नेन कौरव्य सत्पुत्रेण महात्मना ।
त्रात स पुरुषव्याघ्र पु नाम्नो नरकात्तदा ॥२५
त समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्वश ।
तोयानि चाभिषेकाय सर्वं एवोपतस्थिरे ॥२६
पितामहश्च भगवान्देवैराङ्गिरसै सह ।
स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि तथैव च ॥ २७
समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम् ।
महता राजराजेन प्रजापाल महाद्युतिम् ॥२८

उसमें अग्नि के समान अत्यन्त तेज वाला एक पुरुष प्रकट हुआ ॥२२॥ वह प्रजा की रक्षा के लिये धनुष, बाण और कवच धारण किये हुए ही उत्पन्न हुआ था, उसका नाम पृथु हुआ ॥२३॥ इन राजा पृथु के जन्म का समाचार सुनकर सभी प्राणी सब ओर से आ-आकर वहाँ एकत्र हुए और राजा वेन स्वर्गगामी हो गया ॥२४॥ हे कौरव ! उस सत्पुत्र महात्मा पृथु के उत्पन्न होने

कारण ही वेन पु नामक नरक को प्राप्त होने से बच सका ॥२५॥ उस समय समस्त नदियाँ और समुद्र विभिन्न प्रकार के रत्न और अभिषेक के लिये जल ले-लेकर वहाँ आगये और सभी देवताओं के लोक पितामह ब्रह्माजी भी वहाँ आ पहुँचे और सब चराचर प्राणी भी आकर एकत्र हो गए ॥२५ २७॥ इस प्रकार सब प्राणियों ने एकत्रित होकर अत्यन्त तेजस्वी राजा पृथु को प्रजा का पालन करने के लिए पृथिवी के राज्य पद पर अभिषिक्त किया ॥२८॥

सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्मकोविदै ।
आदिराज्ये तदा राज्ञा पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ॥२९

पित्राऽपरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिता ।
अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत ॥३०
आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यत ।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥३१
अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्धयन्त्यन्नानि चिन्तया ।
सर्वकामदुघा गाव पुटके पुटके मधु ॥३२
एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे ।
सूत सूत्या समुत्पन्न सौत्येऽहनि महामति ॥३३
तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागध ।
पृथो स्तवार्थं तौ तत्र समाहूतौ महर्षिभि ॥३४
तावूचुर्ऋषय सर्वे स्तूयतामेष पार्थिव ।
कर्मैतदनुरूप वा पात्र चाय नराधिप ॥३५
तावूचतुस्तदा सर्वास्तानृषीन्सूतमागधौ ।
आवा देवानृषींश्चैव प्रीणयाव स्वकर्मभि ॥३६
न चास्य विद्मो वै कर्म न तथा लक्षण यश ।
स्तोत्र येनास्य कुर्याव राजन्तेजस्विनो द्विजा ॥३७

इस प्रकार विद्वानों द्वारा राज्य पद पर अभिषिक्त हुए अत्यन्त पराक्रमी महाराज पृथु अपने पिता से असन्तुष्ट हुई प्रजा को प्रसन्न करने के यत्न में लगे और प्रजा रञ्जन के कारण यथार्थ रूप में राजा हुए ॥२९ ३०॥ जब महाराज

पृथु रणक्षेत्र मे जाने का उद्यत होते थे, तब समुद्र, पर्वत और वृक्षादि उन्हे स्वयं ही मार्ग दे देते थे, इस प्रकार महाराज पृथु के रथ की ध्वजा युद्ध के मार्ग मे कभी भी नत नही हुई ॥३१॥ उनके राज्यकाल मे पृथिवी जोने बोये बिना ही अन्न से परिपूर्ण रहती थी, गायें कामधेनु बन गयी और वृक्षो के पत्ते पत्ते से मधु धार प्रवाहित होती थी ॥३२॥ ऐसे ही समय मे राजा पृथु ने ब्रह्म यज्ञ का प्रारम्भ किया उस यज्ञ मे जो कुण्ड सोम रस से भरा हुआ था, उससे अत्यन्त मेधावी सूत मागध उत्पन्न हुए ॥३३॥ ऋषियो ने उन सूत-मागध को बुला कर कहा—तुम दोनो स्तुति के योग्य महाराज पृथु की स्तुति करो, तुम इस कार्य के सर्वथा योग्य हो ॥३४-३५॥ सूत मागध बोले— हे भगवन् ! हम अपने श्रेष्ठ कर्म से सब देवताओ और ऋषियो को तो प्रसन्न कर सकते हैं, परन्तु इन महाराज के यश, कार्य और लक्षण से अनभिज्ञ होने के कारण इनकी स्तुति करने मे समर्थ नही हैं ॥३६ ३७।

ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ च भविष्यै स्तूयतामिति ।
यानि कर्माणि कृतवा पृथु पश्चान्महाबल ॥३८
सत्यवाग्दानशीलोऽय सत्यसन्धो नरेश्वर ।
श्रीमाञ्जैत्र क्षमा शीलो विक्रान्तो दुष्टशासन ॥३९
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च दयावान्प्रियभाषण ।
मान्यो मानयिता यज्वा ब्रह्मण्य सत्यसङ्गर ॥४०
शम शान्तश्च निरतो व्यवहारस्थितो नृप ।
तत प्रभृति लोकेषु स्तवेषु जनमेजय ।
आशीर्वादा प्रयुज्यन्ते सूतमागधबन्दिभि ॥ ४१
तयो स्तवैन्ते सुप्रीत पृथु प्रादात्प्रजेश्वर ।
अनूपदेश सूताय मगधान्मागधाय च ॥४२
त दृष्ट्वा परमप्रीता प्रजाश्चाहुर्महर्षय ।
वृत्तीनामेष वो दाता भविष्यति जनेश्वर ॥४३
ततो वैन्य महाराज प्रजा समभिदुद्रुवु ।
त्व नो वृत्ति विधत्स्वेति महर्षिवचनात्तदा ॥४४

ऋषियों ने कहा—इन्होंने जो कार्य पूर्व कल्प में किये थे, वही इस कल्प
। करेंगे, इसलिये तुम इनके भविष्य के गुणों को कहते हुए स्तुति करो ॥३८॥
व वे दोनों वन्दीजन राजा पृथु को लक्ष्य कर कहने लगे—हे अत्यन्त पराक्रम
सम्पन्न वेन पुत्र महाराज पृथु ! आपके समान सत्यवक्ता, सत्यप्रतिज्ञ और दान-
शील अन्य कोई नहीं है, आप श्रीमान्, विजययुक्त, क्षमाशील, पराक्रमी तथा
दुष्टों पर शासन करने वाले हैं ॥३९॥ आप धर्म के ज्ञाता, कृतज्ञ, दयालु, प्रिय
बोलने वाले, माननीय, मान देने वाले, यज्ञशील, ब्राह्मणभक्त एवं सत्य प्रतिज्ञ
हैं ॥४०॥ आप दान्त, व्यवहार कुशल तथा अपने कर्म में तत्पर रहने वाले हैं
हे राजन् ! हे जन्मेजय ! सूत मागध ने इस प्रकार स्तुति की, इसलिये यह वन्दी-
जन कहे गये और तभी से इन्हें आशीर्वाद देने का अधिकार प्राप्त हुआ ॥४१॥
उनके द्वारा की गई स्तुति से प्रसन्न होकर राजा पृथु ने सूत को अनूप देश तथा
मागध को मगध देश प्रदान किया ॥४२। राजा पृथु को देख कर अत्यन्त प्रसन्न
हुए ऋषियों ने उपस्थित जनता से कहा—देखो ! यह महाराज पृथु अब तुम्हारी
जीविका का प्रबन्ध करेंगे ॥४३॥ ऋषियों की बात सुनते ही सब लोग दौड़
पड़े और महाराज को घेर कर बोले कि हे महाराज ! आप हमारे लिये जीविका
का प्रबन्ध कीजिये ॥४४॥

सोऽभिद्रुत प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया ।
धनुर्गृह्य पृषत्कांश्च पृथिवीमार्दयद्बली ॥४५
ततो वैन्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही ।
तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ॥४६
सा लोकान्ब्रह्मलोकादीन्गत्वा वैन्यभयात्तदा ।
प्रददर्शाग्रतो वैन्यं प्रगृहीतशरासनम् ॥४७
ज्वलद्भिर्निशितैर्बाणैर्दीप्ततेजसमच्युतम् ।
महायोगं महात्मानं दुर्धर्षममरैरपि ॥४८
अलभन्ती तु सा त्राणं वैन्यमेवान्वपद्यत ।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पूज्या लोकैस्त्रिभिः सदा ॥४९

उवाच वैन्य नाधर्म्यं स्त्रीवध कर्तुं मर्हसि ।
कथ धारयिता चासि प्रजा राजन्विना मया ॥५०
मयि लोका स्थिता राजन्मयेद धार्यते जगत् ।
मद्विनाशे विनश्येयु प्रजा पार्थिव विद्धि तत् ॥५१

यह सुन कर महाराज पृथु ने प्रजा के मंगलार्थ धनुष बाण धारण किया और पृथिवी को पीड़ित करने लगे ॥४५॥ तब पृथिवी महाराज पृथु से भयभीत होकर गौ का रूप धारण करके भागने लगी और महाराज उसका पीछा करने लगे ॥४६। इस प्रकार भय से भागती हुई पृथिवी भूलोक आदि समस्त लोको को लाँघती हुई ब्रह्मलोक मे जा पहुँची परन्तु उसे वहाँ भी धनुष-बाण धारी महाराज पृथु सामने खड़े दिखाई दिये ॥४७॥ महायोगी महात्मा और देवताओ से भी न जीते जाने वाले महाराज पृथु के हाथो मे चमकते हुए तीक्ष्ण बाण लगे हुए थे ॥४८॥ जब तीनो लोको मे पूज्या पृथिवी को कही भी शरण नही मिल सकी तब वह महाराज पृथु की ही शरण मे जाकर करबद्ध निवेदन करने लगी ॥४९॥ हे राजन् ! आप स्त्री-हत्या रूपी पाप कर्म न करिये, यदि मैं ही नष्ट हो जाऊँगी तो आप अपनी प्रजा को किस स्थान पर रखेंगे ? ॥५०॥ सभी लोक मुझ पर आधारित हैं, क्योकि मैं सम्पूर्ण विश्व को अपने ऊपर धारण किये हुए हूँ, यदि मेरा नाश होगा तो सम्पूर्ण प्रजा का ही नाश हो जायगा ॥५१॥

न त्वमर्हसि मा हन्तु श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि ।
प्रजाना पृथिवीपाल शृणु चेद वचो मम ॥५२
उपायत समारब्धा सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमा ।
उपाय पश्य येन त्व धारयेथा प्रजा नृप ॥५३
हत्वाऽपि मा न शक्तस्त्वं प्रजा धारयितु नृप ।
अनुभूता भविष्यामि यच्छ कोप महाद्युते ॥५४
अवध्या च स्त्रिय प्राहुस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि ।
सत्त्वेषु पृथिवीपालन धर्मं त्यक्तुमर्हसि ॥५५
एव बहुविध वाक्य श्रुत्वा राजा महामना ।
कोप निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत् ॥५६

इसलिये हे भूपाल ! यदि आप अपनी प्रजा का हित चाहते हो तो मेरा वचन श्रवण करिये ॥५२॥ भली प्रकार विचार कर किया जाने वाला कार्य ही सफल होता है, इसलिये आप अपनी प्रजा की रक्षा का उपाय सोचिये ॥५३॥ मेरा वध करके भी आप अपनी प्रजा की रक्षा करने में समर्थ न होंगे और फिर मेरी याद करके पश्चात्ताप करेंगे, इसलिये अपने क्रोध को शान्त करिये ॥५४॥ फिर पशु-पक्षी योनि वाली स्त्री का वध भी निषिद्ध है, अतः हे राजन् ! आप अपने धर्म का त्याग मत करिये ॥५५॥ पृथिवी के वचन सुन कर मनस्वी पृथु ने अपने को स्वस्थ किया और पृथिवी से कहने लगे ॥५६॥

॥ पृथु द्वारा पृथ्वी-दोहन ॥

एकस्यार्थाय यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा ।
बहूनी प्राणिनोऽनेक भवेत्तस्येह पातकम् ॥१
सुखमेधन्ति बहवो यस्मिंस्तु निहते सति ।
तस्मिन्नास्ति हते भद्रे पातकं नोपपातकम् ॥२
एकस्मिन्यत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि ।
बहूनां भवति क्षेमं तत्र पुण्यप्रदो वधः ॥३
साऽहं प्रजानिमित्तं त्वां हनिष्यामि वसुन्धरे ।
यदि मे वचनं नाद्य करिष्यसि जगद्धितम् ॥४
त्वां निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङमुखीम् ।
आत्मानं प्रथयित्वाऽहं प्रजा धारयिता स्वयम् ॥५
सा त्वं शासनमास्थाय मम धर्मभृतां वरे ।
सञ्जीवय प्रजाः सर्वाः समर्था ह्यसि धारणे ॥६
दुहितृत्वं च मे गच्छ एनमद्य शरम् ।
नियच्छेयं त्वद्वधार्थमुद्यतं घोरदर्शनम् ॥७

पृथु ने कहा—हे वसुन्धरे ! अपने या पराये उपकार के लिये जो एक या अनेक जीवों की हत्या करता है, वह अवश्य ही पापी होता है ॥१॥ परन्तु,

यदि किसी एक की हत्या से बहुत से लोगों को सुख प्राप्त होना हो तो उसे मार डालने पर कोई पाप अथवा उपपाप नहीं लगता ॥२॥ यदि किसी एक दुष्ट की मृत्यु से अनेक व्यक्तियों को सुख हो तो उसे मारने में पुण्य ही होगा ॥३॥ इसलिये,यदि तुम मेरी बात न मानोगी तो मैं तुम्हारा वध अवश्य कर डालूँगा ॥४॥ मेरे आदेश को न मानने पर तुम्हें अपने बाण से संहार कर समस्त प्रजा की रक्षा करूँगा ॥५॥ तुम धर्मात्मा तथा सब लोकों के धारण में सामर्थ्य वाली हो, इसलिये तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करके मेरी प्रजा की रक्षा करनी चाहिये ॥६॥ तुम मेरी कन्या बनो तो तुम्हारे मारने के लिये जो बाण मैंने ग्रहण किया है, उसे तूणीर में रख सकूँगा ॥ ॥

सर्वमेतदहं वीर विधास्यामि न संशयः ।
उपायतः समारब्धा सर्वे सिद्धयन्त्युपक्रमाः ॥८
उपायं पश्य येन त्वं धारयेथाः प्रजा इमाः ।
वत्सं तु मम सम्पश्य क्षरेयं येन वत्सला ॥९
समां च कुरु सर्वत्र मां त्वं धर्मभृतां वर ।
यथा विस्पन्दमानं मे क्षीरं सर्वत्र भावयेत् ॥१०
तत उत्सारयामास शैलाञ्छतसहस्रशः ।
धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः ॥११
पृथुर्वैन्यस्तदा राजा महीं चक्रे समां ततः ।
मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमाऽऽसीद्वसुन्धरा ॥१२
स्वभावेनाभवन्ह्यस्याः समानि विषमाणि च ।
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासीदेवं तदा किल ॥१३
न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले ।
प्रविभागः पुराणां च ग्रामाणां वा तदाऽभवत् ॥१४
न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः ।
नैव सत्यानृतं तत्र न लोभो न च मत्सरः ॥१५

पृथिवी ने कहा—हे महीपाल ! तुमने जो कहा है, वह मैं करूँगी, परन्तु उपाय के अवलम्बन पूर्वक किया जाने वाला कार्य सफल होता है, इसलिये आप

पहिले प्रजा रक्षण वाले कार्य को स्थिर करिये। सब से पहिले एक ऐसा बछड़ा बनाइये, जिसे देख कर मेरे हृदय में स्नेह उमड़ पड़े और स्तनों में दूध उत्पन्न हो ॥८-९॥ इसके पश्चात् आप मुझे समतल करें, जिससे मेरे स्तन से निकलने वाला दूध समान भाग से सब ओर फैल जाय ॥१०॥ वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! पृथिवी के वचन सुन कर वेन पुत्र पृथु ने भूपृष्ठ को समतल करने के निमित्त अपने धनुष के अग्रभाग से सत-सहस्र पर्वतों को उठा उठा कर नीचे ऊपर के क्रम से पृथक् रख दिया, जिससे वे पर्वत अत्यन्त ऊँचे हो गए ॥११॥ इस प्रकार उन महाराज ने पृथिवी को समतल किया। चाक्षुष मन्वन्तर में पृथिवी के ऊँची-नीची होने के कारण उस समय नगर तथा ग्राम का विभाग नहीं था, एवं गोरक्षा, कृषि, वाणिज्य, मार्ग, सत्य, मिथ्या, लोभ, मात्सर्य कुछ भी नहीं था ॥१२-१५॥

वैवस्वतेऽन्तरे चास्मिन्साम्प्रत समुपस्थिते ।
वैन्यात्प्रभृति राजेन्द्र सर्वस्यैतस्य सम्भव ॥१६
यत्र यत्र सम त्वस्या भूमेरासीदिहानघ ।
तत्र तत्र प्रजा सर्वा सवास समरोचयन् ॥१७
आहार फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा ।
कृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुशुश्रुम ॥१८
सङ्कल्पयित्वा वत्स तु मनु स्वायम्भुव प्रभुम् ।
स्वपाणौ पुरुषश्रेष्ठ दुदोह पृथिवी तत ।
सस्यजातानि सर्वाणि पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ॥१९
तेनान्नेन प्रजास्तात वर्तन्तेऽद्यापि नित्यश ।
ऋषिभि श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
वत्स सोमोऽभवत्तेषा दोग्धा चाङ्गिरस सुत ॥२०
बृहस्पतिर्महातेजा पात्र छन्दासि भारत ।
क्षीरमासीदनुपम तपो ब्रह्म च शाश्वतम् ॥२१
पुनर्देवगणै सर्वै पुरन्दरपुरोगमै ।
काञ्चन पात्रमादाय दुग्धेय श्रूयते मही ॥२२

वैवस्वत मन्वन्तर में भी पृथु के राज्य-काल से इन सब की उपलब्धि हुई थी ॥१६॥ इस समय समतल हुए उस भाग पर प्रजाजन अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार जाकर रहने लगे ॥१७॥ इससे पहिले फल मूल के अतिरिक्त अन्य कोई साधन आहार के लिये नहीं था, इसलिये अत्यन्त कष्ट पूर्वक लोगों का जीवन चल पाता था । १८ । पृथिवी के परामर्श से राजा पृथु ने स्वायंभुव मनु को बछड़ा बनाया और स्वयं पृथिवी से सब प्रकार के अन्न रूप दूध का दोहन किया ॥१६॥ उसी काल से उन अन्नों के द्वारा प्रजा अपना जीवन-यापन करती चली आ रही है । ऋषियों का कहना है कि पृथु के पश्चात् जब ऋषियों ने पृथिवी का दोहन किया तब अंगिरापुत्र बृहस्पति दुहने वाले, चन्द्रमा बछड़ा, चारों वेद दोहन-पात्र और तप रूप शाश्वत ब्रह्म दूध बना ॥२०-२१॥ इसके पश्चात् इन्द्रादि देवताओं ने स्वर्णपात्र लेकर पृथिवी का दोहन किया ॥२२॥

वत्सस्तु मघवानासीद्दोग्धा च सविता प्रभुः ।
क्षीरमूर्जस्करं चैव वर्तन्ते येन देवताः ॥२३
पितृभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
राजतं पात्रमादाय स्वधाममितविक्रमैः ॥२४
यमो वैवस्वतस्तेषामासीद्वत्सः प्रतापवान् ।
अन्तकश्चाभवद्दोग्धा कालो लोकप्रकालनः ॥२५
नागैश्च श्रूयते दुग्धा वत्सं कृत्वा तु तक्षकम् ।
अलाबुं पात्रमादाय विषं क्षीरं नरोत्तम ॥२६
तेषामैरावतो दोग्धा धृतराष्ट्रः प्रतापवान् ।
नागानां भरतश्रेष्ठ सर्पाणां च महीपते ॥२७
तेनैव वर्तयन्त्युग्रा महाकाया विषोल्वणाः ।
तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तदुपाश्रयाः ॥२८
असुरैः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
आयसं पात्रमादाय मायां शत्रुनिबर्हिणीम् ॥२६
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्वत्सस्तेषामभूत्तदा ।
ऋत्विग्द्विमूर्धा दैत्यानां मधुर्दोग्धा महाबलः ॥३०

उस समय सूर्य दोग्धा और इन्द्र बछड़ा हुए, उन्होंने उससे देवताओं के जीविका रूप यज्ञीय हवि स्वरूप दुग्ध का दोहन किया ॥२४-२५॥ इसके बाद जब पृथिवी का दोहन किया गया तब नागों ने तक्षक को बछड़ा बनाया और ऐरावत एवं धृतराष्ट्र ने दुहने वाला बन कर तुम्बी-पात्र में विष रूपी दूध को दुहा ॥२६-२७॥ उसी विष के प्रभाव से सर्पों का स्वभाव अत्युग्र होगया, क्योंकि उनका आहार, व्यवहार, बल और आश्रय सभी कुछ विष था ॥२८॥ इसके पश्चात् असुरों ने पृथिवी-दोहन किया तो उन्होंने लौह-पात्र लेकर विरोचन को वत्स बनाया और दैत्य-पुरोहित द्विमूर्धा मधु दैत्य उसमें दोग्धा हुआ, जिसने पृथिवी से माया रूपी दूध का दोहन किया ॥२९-३०॥

तयैते माययाऽद्यापि सर्वे मायाविनोऽसुरा ।
वर्तयन्त्यमितप्रज्ञास्तदेषाममितं बलम् ॥३१
यक्षैश्च श्रूयते तात पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
आमपात्रे महाराज पुराऽन्तर्द्धानमक्षयम् ॥३२
वत्सं वैश्रवणं कृत्वा यक्षैः पुण्यजनैस्तदा ।
दोग्धा रजतनाभस्तु पिता मणिवरस्य य ॥३३
यक्षानुजो महातेजास्त्रिशीर्षः सुमहातपा ।
तेन ते वर्तयन्तीति परमर्षिरुवाच ह ॥३४
राक्षसैश्च पिशाचैश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
शाव कपालमादाय प्रजा भोक्तु नरर्षभ ॥३५
दोग्धा रजतनाभस्तु तेषामासीत्कुरूद्वह ।
वत्सः सुमाली कौरव्य क्षीरं रुधिरमेव च ॥३६
तेन क्षीरेण यक्षाश्च राक्षसाश्च महोरगा ।
वर्तयन्ति पिशाचाश्च भूतसङ्घास्तथैव च ॥३७

उसी के प्रभाव से असुरगण मायावी तथा अत्यन्त पराक्रमी होकर जीवन-यापन करते हैं ॥३१॥ इसके पश्चात् यक्षों ने पृथिवी को दुहा और दुहने को कच्चा पात्र लिया, उसमें कुबेर बछड़ा और मणिवर के पिता रजतनाभ

दोग्धा हुए, उन्होंने अविनाशी दुग्ध का दोहन किया। उस अंतर्धान विद्या के प्रभाव से ही यक्षगण पर-देह में अप्रत्यक्ष रूप से प्रविष्ट होकर स्वच्छन्द रूप से रहते हैं ॥३२-३४॥ इसके बाद राक्षसों और पिशाचों ने मृतक के कपाल में रुधिर रूप दूध का दोहन किया उस समय सुमाली बछड़ा और रजतनाभ दोग्धा हुआ ॥३५ ३६॥ इस प्रकार रुधिर के प्रभाव से ही यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच सब देवताओं के समान सुखी रहते हैं ॥३७॥

पद्मपत्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वैः साप्सरोगणैः ।
वत्सं चित्ररथं कृत्वा शुचीन्गन्धान्नरर्षभ ॥३८
तेषां च सुरुचिस्त्वासीद्दोग्धा भरतसत्तम ।
गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसन्निभः ॥३९
शैलैश्च श्रूयते राजन्पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
औषधीर्वै मूर्तिमती रत्नानि विविधानि च ॥४०
वत्सस्तु हिमवानासीन्मेरुर्दोग्धा महागिरिः ।
पात्रं तु शैलमेवासीत्तेन शैलाः प्रतिष्ठिताः ॥४१
वीरुद्भिः श्रूयते राजन्पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
पालाशं पात्रमादाय दग्धच्छिन्नप्ररोहणम् ॥४२
दुदोह पुष्पितः सालो वत्सः प्लक्षोऽभवत्तदा ।
सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुन्धरा ॥४३

फिर गंधर्वो और अप्सराओं ने पद्म पत्र रूपी पात्र में अत्यन्त पवित्र गंध द्रव्य रूपी दुग्ध का दोहन किया, उस समय सूर्य के समान तेजस्वी गन्धर्व-राज सुरुचि दोग्धा और चित्ररथ वत्स बने ॥३८-३९॥ फिर जब पर्वतों ने शिला को पात्र बना कर पृथिवी को दुहा, तब हिमालय बछड़ा और सुमेरु दोग्धा बने, उन्होंने विभिन्न प्रकार औषधियों और रत्नों को प्राप्त किया ॥४०-४१॥ फिर वृक्षों ने पलाश पत्र में पृथिवी का दोहन किया तो शालवृक्ष दोग्धा और प्लक्ष वृक्ष बछड़ा बना, इससे पृथिवी से छिन्न-दग्धांकुर रूपी दुग्ध की उत्पत्ति हुई। हे राजन् ! यह पृथिवी के समान ही सब की पोषक अत्यन्त पवित्र है ॥४२-४३॥

चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ।
सर्वकामदुघा दोग्ध्री सर्वसस्यप्ररोहिणी ॥४४
आसीदिय समुद्रान्ना मेदिनीति परिश्रुता ।
मधुकैटभयो कृत्स्ना मेदसाऽभिपरिप्लुता ।
तेनेय मेदिनी देवी प्रोच्यते ब्रह्मवादिभि ॥४५
ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञ पृथोर्वैन्यस्य भारत ।
दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते ।
पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुन्धरा ॥४६
सस्याकरवती स्फीता पुरपत्तनमालिनी ।
एवप्रभावो वैन्य स राजाऽऽसीद्राजसत्तम ॥४७

यह चराचरमय जगत की आश्रयरूपा है, अन्नादि सभी पुष्ट करने वाले द्रव्य इससे उत्पन्न होते हैं, यह कामधनु के समान सभी की कामनाओ को पूर्ण करने म समर्थ है ॥४४॥ यह पृथिवी समुद्र तक विस्तार वाली है, किसी एक समय यह मधु कैटभ के मेद से व्याप्त हुई थी, इसलिये ब्रह्मवादी मुनियो द्वारा मेदिनी कही जाने लगी ॥४५॥ राजा पृथु द्वारा इसे अपनी कन्या मान लेने के कारण ही इसका नाम पृथिवी हुआ । उन राजा ने इस पृथिवी का यथाविधि विभाग कर इसकी सार-सभार की, तब से यह अन्न उत्पन्न करने लगी और तभी इस पर खानो, नगरो और राजधानियो की रचना हुई, राजा पृथु का इतना भारी प्रभाव था ॥४६ ४७

॥ मन्वन्तर-वर्णन ॥

मन्वन्तराणि सर्वाणि विस्तरेण तपोधन ।
तेषा पूर्वविसृष्टि च वैशम्पायन कीर्तय ॥१
यावन्तो मनवश्चैव यावन्त कालमेव च ।
मन्वन्तरमह ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वत ॥२
न शक्यो विस्तरस्तात वक्तु वर्षशतैरपि ।
मन्वन्तराणा कौरव्य सक्षेप त्वेव मे शृणु ॥३

स्वायम्भुवो मनुस्तात मनु स्वारोचिषस्तथा ।
औत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥४
वैवस्वतश्च कौरव्य साम्प्रतो मनुरुच्यते ।
सावर्णिश्च मनुस्तात भौत्यो रौच्यस्तथैव च ॥५
तथैव मेरुसावर्णाश्चत्वारो मनव स्मृता ।
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥६
कीर्तिता मनवस्तात मयैते तु यथाश्रुतम् ।
ऋषींस्तेषा प्रवक्ष्यामि पुत्रान्देवगणास्तथा ॥७

जनमेजय बोले—हे तपोधन ! अब मैं सब मनुओं और मन्वन्तरों का काल परिमाण और सृष्टि क्रम सुनना चाहता हूँ इसलिये आप इसका विस्तार से वर्णन करिये ॥१ २॥ वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! सब मन्वन्तरो का विस्तृत वर्णन तो सौ वर्षों मे भी पूर्ण नहीं हो सकेगा, इसलिये संक्षेप मे ही सब कहता हूँ ॥३॥ स्वायम्भुव, स्वारोचिष औत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, भौत्य, रौच्य, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, मेरुसावर्णि तथा दक्ष सावर्णि इस प्रकार चौदह मनु हैं। इनमे से छै मनुओ का कार्यकाल व्यतीत हो चुका, अब सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है और शेष सात आगे होंगे इन मनुओ के पुत्रो, तत्कालीन ऋषियो और देवताओ को तुम्हे बताता हूँ ॥४ ७॥

मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिरा पुलह क्रतु ।
पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मण सुता ॥८
उत्तरस्या दिशि तथा राजन्सप्तर्षयोऽपरे ।
यामा नाम तथा देवा आसन्स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥९
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसु ।
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्य सवन पुत्र एव च ॥१०
मनो स्वायम्भुवस्यैते दश पुत्रा महौजस ।
एतत्ते प्रथम राजन्मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥११

और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्भ काश्यप एव च।
प्राणो बृहस्पतिश्चैव दत्तोऽत्रिश्च्यवनस्तथा ॥१२
एते महर्षयस्तात वायुप्रोक्ता महाव्रता ।
देवाश्च तुषिता नाम स्मृता स्वारोचिषेऽन्तरे ॥१३
हविध्र सुकृतिर्ज्योतिरापोमूर्तिरयस्मय ।
प्रथितश्च नभस्यश्च नभ ऊर्जस्तथैव च ॥१४
स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोस्तात महात्मन ।
कीर्तिता पृथिवीपाल महावीर्यपराक्रमा ॥१५

स्वायम्भुव मन्वन्तर मे मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ यह सातो ब्रह्मपुत्र ऋषि थे ॥८॥ उत्तर म सप्तर्षि स्थित हैं, वे इनसे भिन्न हैं, इस मन्वन्तर म याम नामक देवता होते हैं ॥९॥ स्वायम्भुव मनु के आग्नीध्र, अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य सवन और पुत्र यह पुत्र होते हैं, इस प्रकार यह प्रथम मन्वन्तर का वणन हुआ जो मैंने तुमसे कहा है ॥१०-११॥ स्वारोचिष मन्वन्तर मे औवं, स्तम्भ, काश्यप, प्राण, बृहस्पति, दत्त, अत्रि और च्यवन ऋषि होते हैं तथा तुषित नामक देवता रहते हैं। स्वारोचिष मनु के पुत्र हविध्र, सुकृति, ज्योति, आप, मूर्ति, अय, स्म, प्रथित, नभस्य, नभ और ऊर्ज होते हैं ॥१२-१५॥

द्वितीयमेतत्कथित तव मन्वन्तर मया ।
इद तृतीय वक्ष्यामि तन्निबोध नराधिप ॥१६
वसिष्ठपुत्रा सप्तासन्वासिष्ठा इति विश्रुता ।
हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्ज्जा नाम महौजस ॥१७
ऋषयोऽत्र मया प्रोक्ता कीर्त्यमानान्निबोध मे ।
औत्तमेयान् महाराज दश पुत्रान्मनोरमान् ॥१८
ईष ऊर्जस्तनूजश्च मधुर्माधव एव च ।
शुचि शुक्र सहश्चैव नमस्यो नभ एव च ॥१९
भानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम् ।
मन्वन्तर चतुर्थं ते कथयिष्यामि तच्छृणु ॥२०

काव्य पृथुस्तथैवाग्निर्जह्नुर्धाता च भारत ।
कपीवानकपीवाश्च तत्र सप्तर्षयोऽपरे ॥२१
पुराणे कथितास्तात पुत्रा पौत्राश्च भारत ।
सत्या देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरे मनो ॥२२

इस प्रकार यह दूसरे मन्वन्तर का विवरण हुआ, अब तीसरे मन्वन्तर का वर्णन कहता हूँ, उसे सुनो ॥१६॥ हे राजन् ! वशिष्ठ के जो सात पुत्र कहे गये हैं, वे ही ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न होकर ऊर्ज नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१७॥ इस मन्वन्तर के ऋषि यही हैं, अब उत्तम मनु के पुत्रों को बताता हूँ—ईष, ऊर्ज तनूज, मधु माधव, शुचि, शुक्र, सह, नभस्य और नभ यह उत्तम मनु के पुत्र हैं ॥१८-१९॥ इस मन्वन्तर के देवता भानुगण होते हैं, यह तीसरे मन्वन्तर का वर्णन किया, अब चौथे का करता हूँ ॥२०॥ इसमें सात ऋषि काव्य, पृथु अग्नि, जह्नु, धाता, कपिवान् एवं अकपिवान् नामक होते हैं ॥२१॥ इनके अतिरिक्त पुराणों में इनके अनेकों पुत्र तथा पौत्र कहे गये हैं, इस मन्वन्तर में सत्य देवता रहते हैं ॥२२॥

पुत्राश्चैव प्रवक्ष्यामि तामसस्य मनोर्नृप ।
द्युतिस्तपस्य सुतपास्तपोमूलस्तपोधन ॥२३
तपोरतिरकल्माषस्तन्वी धन्वी परन्तप ।
तामसस्य मनोरेते दश पुत्रा महाबला ॥२४
वायुप्रोक्ता महाराज पञ्चम तदनन्तरम् ।
वेदबाहुर्यदुघ्नश्च मुनिर्वेदशिरास्तथा ॥२५
हिरण्यरोमा पर्जन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमज ।
सत्यनेत्रस्तथाऽऽत्रेय एते सप्तर्षयोऽपरे ॥२६
देवाश्च भूतरजसस्तथा प्रकृतयोऽपरे ।
पारिप्लवश्च रैभ्यश्च मनोरन्तरमुच्यते ॥२७
अथ पुत्रानिमांस्तस्य निबोध गदतो मम ।
धृतिमानव्ययो युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुक ॥२८

अरण्यश्च प्रकाशश्च निर्मोह सत्यवाक् कृती ।
रैवतस्य मनो पुत्रा पञ्चम चैतदन्तरम् ॥२९
षष्ठ ते सप्रवक्ष्यामि तन्निबोध नराधिप ।
भृगुर्नभो विवस्वाश्च सुधामा विरजास्तथा ॥३०
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते वै महर्षय ।
चाक्षुपस्यान्तरे तात मनोर्देवानिमाञ्छृणु ॥३१

इन तामस मनु के द्युति, तपस्य, सुतपा, तपोमूल तपोधन, तपोरति, अल्माप, तन्वी, धन्वी और परन्तप नाम के पुत्र होते हैं ॥२३-२४॥ पाँचवे मन्वन्तर मे वेदबाहु, यदुध्न वेदशिरा, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, ऊर्ध्वबाहु और सत्यनत्र यह सात ऋषि होते हैं ॥२५-२६॥ इस मन्वन्तर मे सभी देवता रजोगुणी होते हैं। इनका नाम पारिपलव और रैभ्य होता है ॥२७॥ पाँचवे रैवत मनु के धृतिमान, अव्यय युक्त, तत्वदर्शी, निरुत्सुक, अरण्य, प्रकाश, निर्मोह, सत्यवाक् और कृती नामक पुत्र होते हैं ॥२८-२९॥ अब छठवें मन्वन्तर का वृतान्त सुनो। भृगु नभ, विवस्वान् सुधामा, विरजा, अतिनामा और सहिष्णु यह सात ऋषि होते हैं। अब चाक्षुष के अगले मन्वन्तर के देवताओं के नाम सुनो ॥३०-३१॥

आद्या प्रसूता ऋभम पृथग्भावा दिवौकस ।
लेखाश्च नाम राजेन्द्र पच देवगणा स्मृता ।
ऋषेरङ्गिरस पुत्रा महात्मानो महौजस ॥३२
नाड्वलेया महाराज दश पुत्राश्च विश्रुता ।
ऊरुप्रभृतयो राजन्षष्ठ मन्वन्तर स्मृतम् ॥३३
अत्रिर्वसिष्ठो भगवान्कश्यपश्च महानृषि ।
गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च ॥३४
तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मन ।
सप्तमो जमदग्निश्च ऋषय साम्प्रत दिवि ॥३५
साध्या रुद्राश्च विश्वे च मरुतो वसवस्तथा ।
आदित्याश्वाश्विनौ चापि देवौ वैवस्वती स्मृतौ ॥३६

मनोर्वैवस्वतस्यैते वर्तते साम्प्रतेऽन्तरे ।
इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चैव दश पुत्रा महात्मन ॥३७
एतेषां कीर्तितानां तु महर्षीणां महौजसाम् ।
राजन्पुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सर्वासु भारत ॥३८
मन्वन्तरेषु सर्वेषु प्राग्दिश सप्तसप्तका- ।
स्थिता लोकव्यवस्थार्थं लोकसरक्षणाय च ॥३९

आद्य, प्रभूत, ऋषि, ऋषभ और लेखा यह पांच देवता होते हैं, महर्षि अंगिरा के ऊरू आदि दस पुत्र ही छठवें मनु के पुत्र कहे जाते हैं, इस प्रकार छठवें मन्वन्तर का वृत्तान्त पूर्ण हुआ ॥३२-३३॥ अब सातवें मन्वन्तर का वर्णन सुनो—अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज विश्वामित्र और जमदग्नि इस मन्वन्तर के सप्तर्षि हैं ॥३४-३५॥ साध्यगण, विश्वेदेवगण, रुद्रगण, वसुगण, मरुगण, आदित्यगण, और अश्विद्वय देवता हैं तथा वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु, आदि दस पुत्र हैं ॥३६-३७॥ हे राजन् ! जिन परम प्रतापी महर्षियों के विषय में मैंने कहा है, उनके पुत्र पौत्रादि वंशधर सब दिशाओं में व्याप्त हैं ॥३८॥ उपरोक्त सभी मन्वन्तरों में लोकों की व्यवस्था और रक्षा के लिये उनचास वायु स्थित रहते हैं ॥३९॥

मन्वन्तरे व्यतिक्रान्ते चत्वार सप्तका गणा ।
कृत्वा कर्म दिवं यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥४०
ततोऽन्ये तपसा युक्ता स्थानमापूरयन्त्युत ।
अतीता वर्तमानाश्च क्रमेणैतेन भारत ॥४१
एतान्युक्तानि कौरव्य सप्तातीतानि भारत ।
मन्वन्तराणि षट् चापि निबोधानागतानि मे ॥४२
सावर्णा मनवस्तात पञ्चातांश्च निबोध मे ।
एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु प्रजापतेः ॥४३
परमेष्ठिसुतास्तात मेरुसावर्णतां गता ।
दक्षस्यैते हि दौहित्रा प्रियायास्तनया नृप ।
महान्तस्तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः ॥४४

रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम मनुः स्मृतः ।
भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भौत्यो नाम रुचेः सुतः ॥४५
अनागताश्च सप्तैते स्मृता दिवि महर्षयः ।
मनोरन्तरमासाद्य सावर्णस्य ह ताञ्छृणु ॥४६
रामो व्यासस्तथात्रेयो दीप्तिमानिति विश्रुतः ।
भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः ॥४७
गौतमस्यात्मजश्चैव शरद्वान्नाम गौतमः ।
कौशिको गालवश्चैव रुरुः काश्यप एव च ॥४८

एक मन्वन्तर के समाप्त होने पर चतुःसप्तक अपने-अपने कार्य का पूर्ण निर्वाह करके अक्षय ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं ॥४०॥ उनके चले जाने पर अन्यान्य महापुरुष अपने-अपने तपोबल के द्वारा उनके रिक्त स्थान की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार सब मन्वन्तरों का चक्र चलता रहता है ॥४१॥ इस प्रकार सात मन्वन्तरों का विषय-वर्णन हुआ, अब अन्य मन्वन्तरों को भी बताता हूँ ॥४२॥ सावर्णि मनु पाँच कहे गये हैं, इनमें प्रथम वैवस्वत सावर्णि सूर्यपुत्र माने गये हैं, शेष चारों सावर्णि ब्रह्माजी के पुत्र हैं। सुमेरु पर्वत पर तप करने के कारण मेरु सावर्णि के नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई। यह दक्ष सुता प्रिया के पुत्र होने से दक्ष के दौहित्र हुए, यह अत्यन्त तेजस्वी और तपस्वी थे ॥४३-४४॥ रुचि प्रजापति के पुत्र रौच्य और भूति प्रजापति के पुत्र भौत्य, यह भी मनु हुए, शेष मनुओं की उत्पत्ति भूति के गर्भ से हुई इसलिये उनकी प्रसिद्धि भौत्य रूप में हुई ॥४५॥ अब आगामी आठवें सावर्णि में होने वाले ऋषियों का वृत्तान्त कहता हूँ ॥४६। राम, व्यास, दीप्तिमान्, भारद्वाज, अश्वत्थामा, शरद्वान्, गालव, रुरु नामक ब्रह्म के समान तेजस्वी ऋषि होंगे ॥४७-४८॥

वरीयांश्चावरीयांश्च संमतो धृतिमान्वसुः ।
चरिष्णुरप्यधृष्णुश्च वाजः सुमतिरेव च ।
सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्या दश भारत ॥४९
प्रथमे मेरुसावर्णे प्रवक्ष्यामि मुनीञ्छृणु ।
मेधातिथिस्तु पौलस्त्यो वसुः काश्यप एव च ॥५०

ज्योतिष्मान्भार्गवश्चैव द्युतिमानङ्गिरास्तथा ।
सवनश्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हव्यवाहन ॥५१
पौलह सप्त इत्येते मुनयो रोहितेऽन्तरे ।
देवताना गणास्तत्र त्रय एव नराधिप ॥५२
दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापते ।
मनो पुत्रो धृष्टकेतु पचहोत्रो निराकृति ॥५३
पृथु श्रवा भूरिधामा ऋर्चाकोऽष्टहतो गय ।
प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्रा महौजस ॥५४

वरीयान्, अवरीयान्, सम्मत, घृतिमान्, वसु, चरिष्णु, अधृष्णु, आर्य वाज और सुमति यह दस सावर्णि मनु के पुत्र होंगे ॥४६॥ अब प्रथम सावर्णि के मुनियों के नाम सुनो—मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान् अंगिरा, सवन, हव्य वाहन और पौलह यह सप्तर्षि होंगे। इस मन्वन्तर में देवता तीन होंगे ॥५०-५२॥ वे तीनों दक्ष तनय रोहित के पुत्र होंगे। प्रथम सावर्णि के धृष्टकेतु पचहोत्र, निराकृति, पृथु, श्रवा, भूरिधामा, ऋचीक, बृहत् और गय यह नौ पु होंगे ॥५३-५४॥

दशमे त्वथ पर्याये द्वितीयास्यान्तरे मनो ।
हविष्मान्पौलहश्चैव सुकृतिश्चैव भार्गव ।
अयोमूर्तिस्तथाऽत्रेयो वसिष्ठश्चाष्टम स्मृत ॥५५
पौलस्त्य प्रमितिश्चैव नभगश्चैव काश्यप ।
अंगिरा नभस सत्य सप्तैते परमर्षय ॥५६
देवताना गणौ द्वौ तौ ऋषिमन्त्राश्च ये स्मृता ।
मनो सुतौ तमोजाश्च निकुषजश्च वीर्यवान् ॥५७
शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथ ।
भूरिद्युम्न सुवर्चाश्च दश त्वेते मनो सुता ॥५८
एकादशेऽथ पर्याये तृतीयस्यान्तरे मनो ।
तस्य सप्त ऋषीश्चापि कीर्त्यमानान्निबोध मे ॥५९

हविष्मान्काश्यपश्चापि हविष्मान्यश्च भार्गव ।
तरुणश्च तथाऽत्रेयो वासिष्ठस्त्वनघस्तथा ॥६०
अंगिराश्चोदधिष्ण्यश्च पौलस्त्यो निश्चरस्तथा ।
पुलहश्चाग्नितेजाश्च भाव्याः सप्त महर्षयः ॥६१

दसवें मन्वन्तर में हविष्मान्, सुकृति, अयोमूर्ति, अप्तम, प्रमति, नभोग और सत्य यह ऋषि होंगे, इस मन्वन्तर में दक्षिण तथा उत्तर पथ के अभिमानी दो ही देवता होंगे, यह देवता मन्त्र प्रतिपाद्य माने जायेंगे। दक्ष सावर्णि के दस पुत्र सुत, उत्तमौजा, निकृषज, वीर्यवान्, शतानीक, निरमित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न एवं सुवर्चा होंगे ॥५५-५८॥ अब तीसरे सावर्णि के ग्यारहवें मन्वन्तर में जो ऋषि हुए उनके नामों को सुनो—कश्यप पुत्र हविष्मान्, भृगुपुत्र हविष्मान्, आत्रेय तरुण, अनघ, उदधिष्ण्य, निश्चर और अग्नितेजा नाम के सात ऋषि होंगे ॥५९-६१॥

ब्रह्मणस्तु सुता देवा गणास्तेषां त्रयः स्मृताः ।
सर्वत्रकः सुशर्मा च देवानीकः पुरूद्वहः ॥६२
क्षेमधन्वा दृढायुश्च आदर्शः पण्डको मनुः ।
सावर्णस्य तु पुत्रा वै तृतीयस्य नव स्मृताः ॥६३
चतुर्थस्य तु सावर्णेऋषीन्सप्त निबोध मे ।
द्युतिर्वसिष्ठपुत्रश्च आत्रेयः सुतपास्तथा ॥६४
अंगिरास्तपसो मूर्तिस्तपस्वी काश्यपस्तथा ।
तपोशनश्च पौलस्त्य पौलहश्च तनो रविः ॥६५
भार्गवः सप्तमस्तेषां विक्षेपस्तु तथो धृतिः ।
पंचदेवगणाः प्रोक्ता मानसा ब्रह्मणश्च ते ॥६६
देववायुरदूरश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः ।
मित्रवान्मित्रदेवश्च मित्रसेनश्च मित्रकृत् ।
मित्रबाहुः सुवर्चाश्च द्वादशस्य मनोः सुताः ॥६७
त्रयोदशेऽथ पर्याये भाव्ये मन्वन्तरे मनोः ।
अंगिराश्चैव धृतिमान्पौलस्त्यो हव्यपस्तु यः ॥६८

पौलहस्तत्त्वदर्शी च भार्गवश्च निरुत्सुक ।
निष्प्रकम्पस्तथाऽऽत्रेयो निर्मोह कश्यपस्तथा ॥६९
सुतपाश्चैव वासिष्ठ सप्तैते तु महर्षय ।
त्रय एव गणा प्रोक्ता देवताना स्वयभुवा ॥७०

इस मन्वन्तर में ब्रह्मा के पुत्र तीन सम्प्रदायो में बँट कर देवता बनेंगे तथा सवर्तक, सुशर्मा, देवानीक, पुरूद्वह, क्षेमधन्वा, दृढायु, आदर्श, पण्डक और मनु यह इस तीसरे रुद्र सावर्णि के नौ पुत्र होगे ॥६२-६३॥ अब चौथे सावर्णि के ऋषि सुनो—द्युति, सुतपा, अंगिरा, तपस्वी, तपोशन, तपोरवि और विक्षेप नामक सप्तर्षि होगे तथा पाँच भागो मे विभक्त ब्रह्माजी के मानस पुत्र इस मन्वन्तर मे देवता होगे ॥६४-६६॥ द्वादश सावर्णि के पुत्र देवबाहु, अदूर, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रदेव, मित्रसेन, मित्रकृत, मित्रबाहु और सुवर्चा होगे ॥६७॥ तेरहवें रौच्य मन्वन्तर मे धृतिमान् हव्यप, तत्वदर्शी, निरुत्सुक, निष्प्रकम्प, निर्मोह और सुतपा ऋषि होगे तथा ब्रह्माजी के तीन पुत्र देवता होगें ॥६८-७०॥

त्रयोदशस्य पुत्रास्ते विज्ञेयास्तु रुचे सुता ।
चित्रसेनो विचित्रश्च नयो धर्मभृतो धृत ॥७१
सुनेत्र क्षत्रवृद्धिश्च सुतपा निर्भयो दृढ ।
रौच्यस्यैते मनो पुत्रा अन्तरे तु त्रयोदशे ॥७२
चतुर्दशेऽथ पर्याये भौत्यस्यैवान्तरे मनो ।
भार्गवो ह्यतिबाहुश्च शुचिराङ्गिरसस्तथा ॥७३
युक्तश्चैव तथाऽऽत्रेयो शुक्रो वासिष्ठ एव च ।
अजित पौलहश्चैव अन्त्या सप्तर्षयश्च ते ॥७४
एतेषा सत्यमुत्थाय कीर्तनात्सुखमेधते ।
यशश्चाप्नोति सुमहदायुश्चैव भवेत्तथा ॥७५
अतीतानागताना वै महर्षीणा सदा नरः ।
देवताना गणा. प्रोक्ता पञ्च वै भरतर्षभ ॥७६

तरगभीरर्वप्रश्च तरस्वानुग्र एव च ।
अभिमानी प्रवीणश्च जिष्णु सक्रन्दनस्तथा ।।७७
तेजस्वी सबलश्चैव भौत्यस्यैते मनो सुता ।
भौत्यस्यैवाधिकारे तु पूर्णे कल्पस्तु पूर्यते ।।७८
इत्येते नामतोऽतीता मनव कीर्तिता मया ।
तैरिय पृथिवी तात समुद्रान्ता सपत्तना । ७९
पूर्णं युगसहस्र तु परिपाल्या नराधिप ।
प्रजाभिश्चैव तपसा सहारस्तेषु नित्यश ।।८०

चित्रसेन, विचित्र, नय, धर्मभृत, धृत, सुनेत्र, क्षत्रवृद्धि, सुतपा, निर्भय और दृढ यह रौच्य मनु के पुत्र होंगे ।।७१-७२।। चौदहवें मन्वन्तर में आग्नीध्र, भार्गव, अतिबाहु, शुचि, युक्त, शुक्र, और अजित सप्तर्षि होंगे ।।७३-७४।। इन मनुओ, सप्तर्षियो और मनु पुत्रो का नित्य प्रति प्रात काल नाम-कीर्तन करने वाला सुखी होता है तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है ।।७५।। इस प्रकार भूतकाल में हुए तथा आगे होने वाले महर्षियों और देवताओं का वृत्तान्त मैंने कहा है ।।७६।। भौत्य मनु के पुत्र तरग, भीर, वप्र, तरस्वान्, उग्र, अभिमानी, प्रवीण, जिष्णु, सक्रन्दन, तेजस्वी और सबल नाम वाले होंगे । भौत्य मनु के कार्य काल की समाप्ति होने पर एक कल्प की पूर्ति हो जायगी ।।७७ ७८।। हे राजन् ! हे जनमेजय ! इस प्रकार चौदह मनुओं का नामावलि युक्त वृत्तान्त मैंने तुम्हारे प्रति कहा है । ये मनु ही तप तथा प्रजा सृजन करते हुए नगर, ग्राम, सागर आदि से परिपूर्ण पृथिवी का पालन करते हैं, तथा उन्हीं की उपस्थिति म लोक-सहार भी हो जाता है ।।७९-८०।।

।। वैवस्वत मनु और यम की उत्पत्ति ।।

विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यामरिंदम ।
तस्य भार्याऽभवत्सज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वत ।।१
सुरेणुरीति विख्याता त्रिषु लोकेषु भामिनी ।
सा वै भार्या भगवतो मार्तण्डस्य महात्मन ।।२

भर्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी ।
संज्ञा नाम सुतपसा दीप्तेनेह समन्विता ॥३
आदित्यस्य हि तद्रूपं मण्डलस्थस्य तेजसा ।
गात्रेषु परिदग्धं वै नातिकान्तमिवाभवत् ॥४
न खल्वयं मृतोऽण्डस्थ इति स्नेहादभाषत ।
अज्ञानात्कश्यपस्तस्मान्मार्त्तण्ड उच्यते ॥५
तेजस्त्वभ्यधिकं तात नित्यमेव विवस्वतः ।
येनातितापयामास त्रींल्लोकान्कश्यपात्मजः ॥६
त्रीण्यपत्यानि कौरव्य संज्ञायां तपतां वरः ।
आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती । ७

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! कश्यप की भार्या दाक्षायणी के गर्भ से सूर्य की उत्पत्ति हुई, जिनका विवाह विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा के साथ सम्पन्न हुआ ॥१॥ क्रोधी स्वभाव वाली संज्ञा सुरेणु के नाम से प्रसिद्ध थी और वह अत्यन्त रूप-यौवन सम्पन्न होने के कारण भगवान् सूर्य के ताप से असन्तुष्ट थी ॥२ ३॥ सूर्य के तेज से उसका समस्त शरीर दग्ध होने के कारण लावण्य नष्ट हो गया ॥४॥ एक समय की बात है भिक्षार्थ बुध कश्यप के आश्रम पर गये, परन्तु गर्भवती अदिति ने आलस्य के कारण उन्हें भिक्षा नहीं दी, इ कारण कुपित होकर बुध ने उनको गर्भ नष्ट होने का शाप दे डाला । शाप सु कर अदिति रोने लगी, यह देख कर कश्यप ने स्नेहपूर्वक कहा कि तुम्हारे ग का शिशु नष्ट नहीं हुआ है, वह अण्ड में सुरक्षित बैठा है कश्यप के इस प्रका कहने के कारण सूर्य मार्तण्ड नाम से प्रसिद्ध हुए ॥५॥ शनै-शनै सूर्य के ते में इतनी वृद्धि हुई कि उसके कारण सम्पूर्ण त्रैलोक्य परितप्त हो गया ॥६॥ संज्ञा के गर्भ से सूर्य के द्वारा एक कन्या और दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई ॥७॥

मनुर्वैवस्वतः पूर्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः ।
यमश्च यमुना चैव यमजौ सम्बभूवतुः ॥८
सा विवर्णं तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः ।
असहन्ती च स्वां छायां सवर्णां निर्ममे ततः ॥९

मायामयी तु सा सज्ञा तस्याश्छाया समुत्थिता ।
प्राञ्जलि प्रणता भूत्वा छाया सज्ञा नरेश्वर ॥१०
उवाच किं मया कार्यं कथयस्व शुचिस्मिते ।
स्थितास्मि तव निर्देशे शाधि मा वरवर्णिनि ॥११
अह यास्यामि भद्र ते स्वमेव भवन पितु ।
त्वयेह भवने मह्य वस्तव्य निर्विकारया ॥१२
इमौ च बालकौ मह्य कन्या चेय सुमध्यमा ।
सम्भाव्यास्ते न चाख्येयमिद भगवते क्वचित् ॥१३
आकचग्रहणाद्देवि आशापाशं व कर्हिचित् ।
आख्यास्यामि मत तुभ्य गच्छ देवि यथासुखम् ॥१४

उनमें कन्या का नाम यमुना हुआ और पुत्रों का श्राद्धदेव तथा यम हुआ, वही श्राद्धदेव वैवस्वत मनु हुए। यम और यमुना यमज रूप से अर्थात् एक साथ उत्पन्न हुए थे ॥८॥ सूर्य के तेज को सहन न करने के कारण सज्ञा ने अपने ही समान रूप लावण्य, वयादि युक्त एक छाया की रचना की, तब वह छाया उसके सामने हाथ जोड कर स्थित हुई ॥९-१०॥ छाया ने कहा—मैं आपकी आज्ञाकारिणी हूँ, मुझे क्या करना है, इस विषय मे आज्ञा करिये ॥११॥ सज्ञा ने कहा—मैं अपने पिता के यहाँ जा रही हूँ इसलिए तुम्हे यहाँ निर्विकार चित्त से मेरे दोनों पुत्रों और इस कन्या का परिपालन करना है। किन्तु यह भेद सूर्य भगवान् को कभी न बताना ॥१२ १३॥ छाया बोली—हे देवि! जब तक मेरे केश पकड कर कोई मुझे शाप न देगा, तब तक यह बात किसी पर प्रकट नही करूँगी, इसलिए आप सुखपूर्वक जाइये ॥१४॥

समादिश्य सवर्णां तु तथेत्युक्ता च सा तया ।
त्वष्टु समीपमगमद्व्रीडितेव तपस्विनी ॥१५
पितु समीपगा सा तु पित्रा निर्भर्त्सिता तदा ।
भर्तु समीप गच्छेति नियुक्ता च पुन पुन ॥१६
अगच्छद्वडवा भूत्वाऽऽच्छाद्य रूपमनिन्दिता ।
कुरूनथोत्तरान्गत्वा तृणान्येव चचार ह ॥१७

द्वितीयायां तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिन्तयन् ।
आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसमं तदा ॥१८
पूर्वजस्य मनोस्तात सदृशोऽयमिति प्रभुः ।
सवर्णत्वान्मनोर्भूयः सावर्ण इति चोक्तवान् ॥१९
मनुरेवाभवन्नाम्ना सावर्ण इति चोच्यते ।
द्वितीयो यः सुतस्तस्याः स विज्ञेयः शनैश्चरः ॥२०
संज्ञा तु पार्थिवी तात स्वस्य पुत्रस्य वै तदा ।
चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्वजेषु वै ॥२१

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! छाया को समझा कर संज्ञा इस प्रकार अपने पिता के घर पहुँची, परन्तु उसके पिता विश्वकर्मा ने संज्ञा को अपने पति के पास चले जाने को कहा ॥१५-१६॥ तब पिता के बहुत बार आग्रह करने पर संज्ञा ने घोड़ी का रूप धारण किया और वहाँ से उत्तर कुरु प्रदेश में जाकर घूमने लगी ॥१७॥ इधर सूर्य ने छाया को संज्ञा ही समझा और उससे अपने समान तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न किया, वह पुत्र वैवस्वत मनु के समान आकार-प्रकार वाला ही हुआ, इसलिए उसकी प्रसिद्धि सवर्ण नाम से हुई । सूर्य द्वारा छाया के गर्भ से शनैश्चर नामक द्वितीय पुत्र उत्पन्न हुआ । १८-२०॥ अब छाया का स्नेह अपने पुत्रों पर अधिक हो गया, संज्ञा की संतति पर उसका वैसा स्नेह नहीं रहा ॥२१॥

मनुस्तस्याः क्षमत्तत्तु यमस्तस्या न चक्षमे ।
तां सरोषाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ।
तदा सतर्जयामास संज्ञां वैवस्वतो यमः ॥२२
तं शशाप ततः क्रोधात्सावर्णजननी नृप ।
चरणः पततामेष तवेति भृशदुःखिता ॥२३
यमस्तु तत्पितुः सर्वं प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत् ।
भृशं शापभयोद्विग्नः संज्ञावाक्यप्रतोदितः ॥२४
शापोऽयं विनिवर्तेत प्रोवाच पितरं तदा ।
मात्रा स्नेहेन सर्वेषु वर्तितव्यं सुतेषु वै ॥२५

सेयमस्मानपाहाय यवीयास बुभूर्षति ।
तस्या मयोद्यत पादो न तु देहे निपातित ।।२६
बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ।
यस्मात्ते पूजनीयाऽह लघिताऽस्मि त्वया सुत ।।२७
तस्मात्तवैप चरण पतिष्यति न सशय ।
अपत्य दुरपत्य स्यान्नाम्बा कुजननी भवेत् ।।२८

अपनी विमाता का यह व्यवहार वैवस्वत मनु ने तो सहन कर लिया, परन्तु यम इसे सहन नही कर सके । वह बालसुलभ चचलता और रोष के कारण छाया को लात मारने को तत्पर हो गये ।।२२।। छाया को यम का यह व्यवहार दु खप्रद लगा और उसने उसे शाप दिया कि तुम्हारा पैर इसी समय कट कर गिर पडे ।।२३।। *छाया की बात से व्यथित और शाप से भयाकुल यम ने अपने* पिता के पास जाकर कहा कि पिताजी ! शाप निवृत्ति का कुछ उपाय कीजिये, माता को अपने सभी पुत्रो पर समान स्नेह रखना चाहिये ।।२४-२५।। परन्तु हमारी माता अपने छोटे पुत्र का अधिक आदर और हमारी उपेक्षा करती है, इसलिए मैंने अपना पैर उठाया था, परन्तु पदाघात नही किया ।।२६।। मेरे द्वारा यह अनर्थ बाल-स्वभाव वश ही हो गया था, इसे क्षमा कीजिये । माता ने मुझसे क्षोभ मे कहा था कि मैं तुम्हारी माता हूँ, पूजन के योग्य हूँ, तुमने मुझे मारने के लिये अपना पाँव उठा कर मर्यादा भग की है, इसलिये तुम्हारा वह पाँव गिर जायगा । परन्तु हे पिताजी ! पुत्र तो कुपुत्र हो जाता है, परन्तु माता कभी भी कुमाता होती नही देखी गई ।।२७-२८।।

शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनन्या तपता वर ।
तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते ।।२९
असशय पुत्र महद्भविष्यत्यत्र कारणम् ।
येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञ सत्यवादिनम् ।।३०
न शक्यमन्यथा कर्तुं मया मातुर्वचस्तव ।
क्रमयो मासमादाय यास्यन्ति धरणीतलम् ।।३१

तव पादान्महाप्राज्ञ ततस्त्व प्राप्स्यसे सुखम् ।
कृतमेव वचस्तथ्य मातुस्तव भविष्यति ॥३२
शापस्य परिहारेण त्व च त्रातो भविष्यसि ।
आदित्योऽयाब्रवीत्सज्ञा किमर्थं तनयेषु वै ॥३३
तुल्येष्वभ्यधिक स्नेहः क्रियतेऽति पुनः पुनः ।
सा तत्परिहरन्ती तु नाचचक्षे विवस्वते ॥३४
आत्मान सुसमाधाय योगात्तथ्यमपश्यत ।
ता शप्तुकामो भगवान्नाशाय कुरुनन्दन ॥३५

मुझे माता ने शाप दिया है, परन्तु यदि आप मुझ पर प्रसन्न हो जायँ और मेरा अपराध क्षमा कर दें तो मेरा पाँव गिरने से बच जायगा ॥२६॥ भगवान् सूर्य ने कहा—हे पुत्र ! निस्सन्देह किसी महान् कारण से तुम्हारे जैसे सत्यवक्ता और धर्मात्मा को क्रोध की प्राप्ति हुई होगी, परन्तु मैं तुम्हारी माता के शाप को अन्यथा नहीं कर सकता, अनेकों कीट तुम्हारे पाँव का माँस लेकर पृथिवी तल में समा जायँगे, ऐसा होने से तुम्हारी माता के वचन की भी रक्षा होगी और तुम भी शाप से मुक्त हो जाओगे ॥३०-३१॥ इसके पश्चात् सूर्य ने संज्ञा रूपिणी छाया से कहा—माता का स्नेह सभी बालकों के प्रति समान होना चाहिये, फिर तुम छोटे बालक पर ही अत्यधिक स्नेह रखती हो, इसका क्या कारण है ? पर तु छाया ने अपना अभिप्राय प्रकट न करके, बात को आई-गई कर दिया ॥३२-३४। तब भगवान् सूर्य ने योग के बल से सब भेद जान लिया और छाया को नष्ट करने के लिए तत्पर हुए ॥३५॥

मूर्द्धजेषु च जग्राह समयेऽतिगतेऽपि च ।
सा तत्सर्वं यथावृत्तमाचचक्षे विवस्वते ॥३६
विवस्वानथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्यगात्
त्वष्टा तु त यथान्यायमर्चयित्वा विभावसुम् ।
निर्दग्धुकाम रोषेण सान्त्वयामास वै तदा ॥३७
तवातितेजसाऽऽविष्टमिदं रूप न शोभते ।
असहन्ती च तत्सज्ञा वने चरति शाद्वले ॥३८

दृष्टा हि तां मयानघ स्वां भार्यां शुभचारिणीम् ।
नित्यं तपस्यभिरतां वडवारूपधारिणीम् ॥३९
पर्णाहारां कृशां दीनां जटिलां ब्रह्मचारिणीम् ।
हस्तिहस्तपरिक्लिष्टां व्याकुलां पद्मिनीमिव ।
श्लाघ्यां योगबलोपेतां योगमास्थाय गोपते ॥४०
अनुकूलं तु ते देव यदि स्यान्मम तन्मतम् ।
रूपं निर्वर्तयाम्यद्य तव कान्तमरिन्दम ॥४१
रूपं विवस्वतश्चासीत्तिर्यगूर्ध्वसमं तु वै ।
तेनासौ सम्भृतो देवरूपेण तु विभावसुः ॥४२
तस्मात्त्वष्टुः स वै वाक्यं बहु मेने प्रजापतिः ।
समनुज्ञातवांश्चैव त्वष्टारं रूपसिद्धये ॥४३

कुपित होकर उन्होंने छाया के केश पकड़ लिये, इससे संज्ञा के प्रति उसने जो वचन दिया था, वह पूर्ण हो गया और उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥३३॥ छाया की बात पर क्रोधित हुए सूर्य विश्वकर्मा के पास पहुँचे, विश्वकर्मा ने उनका विधिवत् पूजन करके क्रोध शान्त किया ॥३७॥ वे बोले—आपके अत्यधिक तेजोमय स्वरूप से दुःखित हुई संज्ञा घोड़ी के रूप में, वन में विचरण करती हुई तप कर रही है ॥३८॥ आप अपनी उस शुभाचरणा वाली भार्या को स्वयं देखिये, वह बड़वा रूप धारिणी संज्ञा तपस्या-परायण होकर केवल पत्तों का आहार करती हुई कृश, दीन, जटिल, हाथी की सूँड़ से मर्दित कमलिनी के समान व्याकुल हो रही है। तथा इस समय वह ब्रह्मचारिणी योग बल से सम्पन्न है ॥३९-४०॥ हे देव! यदि आप मेरी सम्मति मानें तो मैं आपको अत्यन्त सुन्दर एवं कान्तिमय बना दूँ ॥४१॥ उस समय तक सूर्य की आकृति कुछ असुन्दर एवं समान थी, इसलिए श्वसुर के कहने से सुन्दरता प्राप्त करने के लिए सहमत हो गए और विश्वकर्मा को वैसा करने की अनुमति दे दी ॥४२-४३॥

ततोऽभ्युपगमात्त्वष्टा मार्तण्डस्य विवस्वतः ।
भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातयामास भारत ॥४४

ततो निर्भासित रूप तेजसा सहृतेन वै ।
कान्तात्कान्ततर द्रष्टुमधिक गुशुभे तदा ॥४५
मुखे निर्वतित रूप तस्य देवस्य गोपते ।
तत प्रभृति देवस्य मुखमासीत्तु लोहितम् ।
मुखराग तु यत्पूर्वं मार्त्तण्डस्य मुखच्युतम् ॥४६
आदित्या द्वादशैवेह सम्भूता मुखसम्भवा ।
धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणोऽशो भगस्तथा ॥४७
इन्द्रो विवस्वान्पूषा च पर्जन्यो दशमस्तथा ।
ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यज ॥४८
हर्षं लेभे ततो देवो दृष्ट्वाऽऽदित्यान्स्वदेहजान् ।
गन्धै पुष्परलकारैर्भास्वता मुकुटेन च ॥४९
एव सम्पूजयामास त्वष्टा वाक्यमुवाच ह ।
गच्छ देव निजा भार्या कुरु श्चरति सोत्तरान् ॥५०
वडवारूपमास्थाय वने चरति शाद्वले ।
स तयारूपमास्थाय स्वभार्यारूपलीलया ॥५१
ददर्श योगमास्थाय स्वा भार्या वडवा तत ।
अधृष्या सर्वभूताना तेजसा नियमेन च ॥५२

तब विश्वकर्मा ने उन्हे सान पर चढा कर घिसना आरम्भ प्रकार घर्षण करने से सूर्य की उग्रता कम होने लगी और उनका र मर मुख पर चमकने लगा । तभी से उनके मुख का वर्ण लाल हो गया । उनके मुख से निकलने वाले पहिले तेज से धाता, अर्यमा, मित्रावरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अजघन्य, त्वष्टा और अजघन्य विष्णु नामक बारह आदित्य उत्पन्न हुए ॥४४-४८॥ अपने ही देह से अविर्भूत हुए उन आदित्यो को देख कर सूर्य को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । तब विश्वकर्मा ने पुष्प, चन्दन, अलकार, आभूषण आदि से उनका सत्कार करके कहा—हे आदित्य ! आप अपनी भार्या के पास जाइये, इस समय वह वडवा रूप मे उत्तर कुरु प्रदेश मे, वन मे चर रही है । तब सूर्य ने भी अश्व का रूप धारण किया और वहाँ जाकर सज्ञा को अपने

ल से सम्पन्न होकर सभी प्राणियों के लिए दुर्धर्ष होते हुए वड़वा रूप में रण करते हुए देखा ॥४९-५२॥

वडवावपुषा राजंश्चरन्तीमकुतोभयाम् ।
सोऽश्वरूपेण भगवांस्तां मुखे समभावयत् ॥५३
मैथुनाय विचेष्टन्तीं परपुंसोपशङ्कया ।
सा तन्निरवमच्छुक्रं नासिकाभ्यां विवस्वतः ॥५४
देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ ।
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति ॥५५
मार्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः ।
तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्करः ।५६
सा च दृष्ट्वैव भर्तारं तुतोष जनमेजय ।
यमस्तु कर्मणा तेन भृशं पीडितमानसः ॥५७
धर्मेण रञ्जयामास धर्मराज इमाः प्रजाः ।
लेभे स कर्मणा तेन परमेण महाद्युतिः ॥५८
पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च ।
मनुः प्रजापतिस्त्वासीत्सावर्णः स तपोधनः ॥५९
भाव्यः सोऽनागते काले मनुः सावर्णिकेऽन्तरे ।
मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरति प्रभुः ॥६०

तब सूर्य उसकी ओर अत्यधिक आकर्षित हुए, परन्तु वड़वा ने पर पुरुष मान कर उनके रेतस् को अपने नथुनों से बाहर निकाल दिया, जिससे दो श्विनीकुमार उत्पन्न हुए, उनका नाम दस्र और नासत्य था ॥५३-५५॥ इसके श्चात् सूर्य ने अपना यथार्थ रूप अपनी भार्या संज्ञा को दिखाया और तभी से न कुमारों के पिता सूर्य और माता सूर्य-पत्नी हुई ॥५६॥ हे जनमेजय ! अपने ि के दर्शन से संज्ञा अत्यन्त प्रसन्न हुई। उधर छाया के शाप से दुःखित यम र्मपूर्वक प्रजा पर शासन करने लगे, इससे वे पितरों के अधिपति और लोक-ल हो गए। तपोधन मनु सुमेरु पर्वत पर घोर तपस्या कर रहे हैं, वे सावर्णि न्तर में प्रजा-पालन का कार्य सँभालेंगे ॥५७-६०॥

भ्राता शनैश्चरश्चास्य ग्रहत्वमुपलब्धवान् ।
नासत्यौ यौ समाख्यातौ स्वर्वैद्यौ तौ बभूवतुः ॥६१
सेवतोऽपि तथा राजन्नश्वानां शान्तिदोऽभवत् ।
त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ॥६२
तदप्रतिहतं युद्धे दानवान्तचिकीर्षया ।
यवीयसी तयोर्या तु यमी कन्या यशस्विनी ॥६३
अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकभाविनी ।
मनुरित्युच्यते लोके सावर्ण इति चोच्यते ॥६४

यमराज का भाई शनैश्चर ग्रह बने और दोनों अश्विनीकुमार वैद्य हुए हे राजन् ! वे घोड़ों को स्वस्थ करते हैं। विश्वकर्मा ने सूर्य का जो तेज ग्रहण किया था, उस निकले हुए तेज से भगवान् विष्णु का चक्र बनाया, उसी चक्र से विष्णु ने असख्य असुरों का नाश किया। यम और श्राद्धदेव की बहिन यमी यमुना नदी बन गई, श्राद्धदेव मनु और सावर्णि नाम से प्रसिद्ध हुए ॥६१-६४॥

॥ वैवस्वत मनु के वंशज ॥

मनोर्वैवस्वतस्यासन्पुत्रा वै नव तत्समाः ।
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्णुः शर्यातिरेव च ॥१
नरिष्यश्च तथा प्रांशुः नाभागारिष्टसप्तमाः ।
करूषश्च पृषध्रश्च नवैते भरतर्षभ ॥२
अकरोत्पुत्रकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः ।
मित्रावरुणयोस्तात पूर्वमेव विशाम्पते ॥३
अनुत्पन्नेषु नवसु पुत्रेष्वेतेषु भारत ।
तस्यां तु वर्तमानायामिष्ट्यां भरतसत्तम ॥४
मित्रावरुणयोरंशे मुनिराहुतिमाजुहोत् ।
आहुत्या हूयमानाया देवगन्धर्वमानुषाः ॥५
तुष्टिं तु परमां जग्मुर्मुनयश्च तपोधनाः ।
अहोऽस्य तपसो वीर्यमहोऽस्य श्रुतमद्भुतम् ॥६

तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ।
दिव्यसंहनना चैव इडा जज्ञे इति श्रुतिः ॥७
तामिडेत्येव होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा ।
अनुगच्छस्व मां भद्रे तामिडामित्युवाच ह ।
धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥८

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय ! विवस्वत मनु के नौ पुत्र थे, इनका नाम इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्णु, नरिष्यन्, प्रांशु, नाभागारिष्ट, करूष और पृषध्र था ॥१-२॥ जब वैवस्वत के कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था, तब उन्होंने मित्र और वरुण की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ किया, जिसमें मित्रावरुण के निमित्त मुनियों ने जब आहुति दी तो सब देवताओं, गधर्वों और मुनियों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई, वे बोले—इन महाराज मनु का तप, पराक्रम और शास्त्रज्ञान अद्भुत है ॥३-६॥ सुनते हैं कि उस यज्ञ में इडा नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई, वह दिव्य वस्त्रालंकारों और दिव्य अंगों से सम्पन्न थी। मनु ने उसका नाम इडा रखा और धर्मयुक्त बात उसके प्रति कही—हे पुत्री ! मुझ पुत्र की कामना वाले प्रजापति की बातों का तुम अनुसरण करो ॥७-८॥

मित्रावरुणयोरंशे जातोऽस्मि वदतांवर ।
तयोः सकाशं यास्यामि न मां धर्मो हतोऽवधीत् ॥९
सैवमुक्त्वा मनुं देवं मित्रावरुणयोरिडा ।
गत्वान्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१०
अंशेऽस्मि युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम् ।
मनुना चाहमुक्ता वै अनुगच्छस्व मामिति ॥११
तां तथावादिनीं साध्वी इडां धर्मपरायणाम् ।
मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुर्यन्निबोध तत् ॥१२
अनेन तव धर्मेण प्रश्रयेण दमेन च ।
सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवर्णिनि ॥१३
आवयोस्त्वं महाभागे ख्याति कन्येति यास्यसि ।
मनोर्वंशधरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि ॥१४

सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु शोभने ।
जगत्प्रियो धर्मशीलो मनोर्वंशविवर्द्धन ॥१५

इडा बोली—मैं मित्रावरुण के अंश से आविर्भूत होने के कारण उनके पास ही जाऊँगी, ऐसा न करने से मेरा धर्म नष्ट हो जायगा और मैं भी नाश को प्राप्त हूँगी ॥९॥ इस प्रकार कह कर इडा मित्रावरुण के पास जाकर करबद्ध कहने लगी—हे देव ! मैं आप दोनों के अंश से उत्पन्न हुई हूँ, इसलिये आप मुझे मेरे कर्त्तव्य का निर्देश करें महाराज मनु अपनी आज्ञा का पालन करने को कहते हैं ॥१०-११॥ इडा की बात सुन कर मित्रावरुण ने उस धर्मपरायण से जो कहा उसे सुनो ॥१२॥ मित्रावरुण बोले—हे वरवर्णिनि तुम्हारे इस प्रकार के धम, सत्य और दम आदि गुणों को देख कर हम दोनों ही अत्यन्त प्रसन्न हैं ॥१३॥ हे महाभागे ! तुम सम्पूर्ण त्रैलोक्य में हमारी कन्या और महाराज मनु के वंशधर के पुत्र रूप से विख्यात होगी ॥१४॥ तुम संसार के लिये प्रिय और धर्मात्मा होगी तथा सुद्युम्न नाम से वैवस्वत मनु के वंश को विस्तृत करोगी ॥१५॥

निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिकम् ।
बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता ॥१६
सोमपुत्राद्बुधाद्राजस्तस्या जज्ञे पुरूरवा ।
जनयित्वा तत सा तमिडा सुद्युम्नता गता ॥१७
सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रय परमधार्मिका ।
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च भारत ॥१८
उत्कलस्योत्कला राजन्विनताश्वस्य पश्चिमा ।
दिक्पूर्वा भरतश्रेष्ठ गयस्य तु गयापुरी ॥१९
प्रविष्टे तु मनौ तात दिवाकरमरिंदमम् ।
दशधा तद्दधत्क्षत्रमकरोत्पृथिवीमिमाम् ॥२०
पूयाङ्किता वसुमती यस्येय सवनाकरा ।
इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्नवान् ॥२१
कन्याभावाच्च सुद्युम्नो नैन गुणमवाप्तवान् ।
वसिष्ठवचनाच्चासीत्प्रतिष्ठाने महात्मन ॥२२

उन देवताओं के वचन सुन कर इडा अपने पिता मनु के पास जा रही थी, तभी मार्ग में चन्द्रमा का पुत्र बुध मिला और उसने इडा को अपने पास बुलाया ॥१६॥ तब बुध से उसने पुरूरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। पुरूरवा को जन्म देने के पश्चात् इडा का स्त्रीत्व नष्ट हो गया और वह पुरुष होकर सुद्युम्न नाम से प्रसिद्ध हुई ॥१७॥ और उसके तीन पुत्र उत्कल, गया और विनीताश्व नामक हुए यह तीनों धर्मात्मा थे ॥१८॥ उत्कल को उत्तर का राज्य मिला, विनिताश्व को पश्चिम का तथा गय को पूर्व का राज्य प्राप्त हुआ। गया। की राजधानी का नाम गया हुआ ॥१९॥ प्रजापति मनु के इक्ष्वाकु आदि दस पुत्रों के उत्पन्न होने के पश्चात् जब मनु सूर्य में प्रविष्ट हो गये थे, तब उनके पुत्रों ने वन, ताल आदि युक्त पृथिवी के दस विभाग कर लिये, जिनमें से मध्य-प्रदेश का राज्य इक्ष्वाकु को प्राप्त हुआ ॥२०-२१॥ सुद्युम्न में कन्या भाव के विद्यमान रहने से उसे मध्य प्रदेश प्राप्त नहीं हुआ। उसने गुरु वसिष्ठ के निर्देश से प्रतिष्ठानपुर का राज्य शासन सँभाला ॥२२॥

प्रतिष्ठा धर्मराजस्य सुद्युम्नस्य कुरुद्वह।
तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्य प्राप्य महायशाः ॥२३
सुद्युम्नः कारयामास प्रतिष्ठाने नृपक्रियाम्।
उत्कलस्य त्रय. पुत्रास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।
धृष्टकश्चाम्बरीषश्च दण्डश्चेति सुतास्त्रयः ॥२४
यश्चकार महात्मा वै दंडकारण्यमुत्तमम्।
वनं तल्लोकविख्यातं तापसानामनुत्तमम् ॥२५
तत्र प्रविष्टमात्रस्तु नरः पापात्प्रमुच्यते।
सुद्युम्नश्च दिवं यात ऐलमुत्पाद्य भारत ॥२६
मानवेयो महाराज स्त्रीपुंसोर्लक्षणैर्युतः।
धृतवाग्य इलेत्येव सुद्युम्नश्चेति विश्रुतः ॥२७
नरिष्यतः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भारत।
अम्बरीषोऽभवत्पुत्रः पार्थिवर्षभसत्तमः ॥२८

महायश सुद्युम्न ने प्रतिष्ठानपुर का राज्य कुछ समय ही किया और

पुरूरवा को राज्य देकर उसी से शासन कराने लगा। उत्कल के तीन पुत्र धृष्टक, अम्बरीष और दण्ड तीनो लोको में प्रसिद्ध थे ॥२३-२४॥ हे राजन्! दण्डकारण्य नामक जिस प्रसिद्ध वन मे तपस्वीगण स्वच्छन्द तपस्या करते हैं और जिसमे जाने से ही प्राणी पवित्र हो जाते हैं वह दण्डकारण्य इन्ही राजा दण्ड के नाम पर विख्यात हुआ है। इस प्रकार पुरूरवा को उत्पन्न करके सुद्युम्न स्वर्ग लोक को प्राप्त हुआ ॥२५-२६॥ हे राजन्! मनु पुत्र सुद्युम्न मे स्त्रीत्व और पुरुषत्व दोनों भाव विद्यमान थे और वह सुद्युम्न और इला दोनो ही नाम से प्रसिद्ध था ॥२७॥ नरिष्यन्त के पुत्र शक और नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए ॥२८॥

धृष्णोस्तु धार्ष्टकं क्षत्रं रणधृष्टं बभूव ह।
शर्यातिर्मिथुनं चासीदानर्त्तो नाम विश्रुतः ॥२९
पुत्रः कन्या सुकन्या च या पत्नी च्यवनस्य ह।
आनर्त्तस्य तु दायादो रेवो नाम महाद्युतिः ॥३०
आनर्तविषयश्चासीत्पुरी चास्य कुशस्थली।
रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः ॥३१
ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम्।
स कन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥३२
मुहूर्तभूतं देवस्य गतं बहुयुगं प्रभो।
आजगाम युवैवाथ स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ॥३३
कृतां द्वारवतीं नाम्ना बहुद्वारां मनोरमाम्।
भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वासुदेवपुरोगमैः ॥३४
ततः स रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्वमरिंदम।
कन्यां तां बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम् ॥३५
दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः।
रेमे रामोऽपि धर्मात्मा रेवत्या सहितः सुखी ॥३६

धृष्णु के पुत्र युद्ध मे न जीते जाने वाले धार्ष्टक हुए, शर्याति के आनर्त नामक पुत्र और सुकन्या नाम की पुत्री हुई, वही महर्षि च्यवन की भार्या हुई। आनर्त्त का पुत्र अत्यन्त तेज वाला रेव हुआ ॥२९-३०॥ वह आनर्त देश का

राजा हुआ और उसकी राजधानी कुशस्थली हुई, उस राजा के सौ पुत्र हुए, जिनमें सबसे बड़ा ककुद्मी हुआ। कुछ समय पश्चात् रैवत (ककुद्मी) पुत्री को साथ लेकर संगीत सुनने के लिये ब्रह्मलोक में गया, वहाँ वे ब्रह्मा के एक मुहूर्त तक ठहरे, परन्तु मर्त्यलोक में इतने समय में कई युग व्यतीत हो गये, जब वह अपनी राजधानी द्वारका को लौटे तब वह यादवों से परिपूर्ण थी। उन्होंने देखा कि उस नगरी में यादवों ने अनेक फाटक लगा कर उसे अत्यन्त सुन्दर बना लिया है और उसका नाम द्वारावती रख लिया है वासुदेव आदि वृष्णि, भोज और अंधक वंशीय वीर उसकी रक्षा में तत्पर हैं ॥३१-३४॥ महाराज रैवत ने उस समय की परिस्थिति को भली प्रकार समझ कर अपनी श्रेष्ठ व्रत वाली पुत्री रेवती बलराम जी के साथ विवाह दी और स्वयं सुमेरु पर्वत पर तप करने के लिये चले गये। इधर रेवती को प्राप्त कर बलराम अत्यन्त आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥३५-३६॥

॥ धुन्धु का वध ॥

कथं बहुयुगे काले समतीते द्विजोत्तम ।
न जरा रेवती प्राप्ता रैवतं च ककुद्मिनम् ॥१
मेरुं गतस्य तस्य शर्यातिं संततिं कथम् ।
स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥२
न जरा क्षुत्पिपासे वा न मृत्युर्भरतर्षभ ।
ऋतुचक्रं न भवति ब्रह्मलोके सदाऽनघ ॥३
ककुद्मिनस्तु तं लोकं रैवतस्य गतस्य ह ।
हृता पुण्यजनैस्तात राक्षसैश्च कुशस्थली ॥४
तस्य भ्रातृशतं चासीद्धार्मिकस्य महात्मनः ।
तद्वध्यमानं रक्षोभिर्दिशः प्राद्रवदच्युतम् ॥५
विद्रुतस्य तु राजेन्द्र तस्य भ्रातृशतस्य वै ।
तेषां तु ते भयाक्रान्ता क्षत्रियास्तत्र तत्र ह ॥६
अन्ववायस्तु सुमहांस्तत्र तत्र विशाम्पते ।
येषामेते महाराज शार्याता इति विश्रुताः ॥७

जनमेजय ने कहा—हे द्विजोत्तम ! रैवत और रेवती कई युग तक ब्रह्मलोक में रहे तो भी वृद्धावस्था ने उनका स्पर्श भी नहीं किया ऐसा कैसे हुआ ? ॥ १ ॥ जब राजा रैवत सुमेरु पर्वत पर तप करने को चले गये तब पृथिवी पर उनका वंश अब भी कैसे स्थित है ? यह बात मैं भली प्रकार जानने को उत्सुक हूँ ॥२॥ वैशम्पायन जी बोले—हे अनघ ! ब्रह्म लोक में भूख, प्यास, जरा, मृत्यु और ऋतुपरिवर्तन आदि कुछ भी नहीं होता ॥३॥ ककुद्मान रैवत जब ब्रह्मलोक चले गये थे तब पुण्यजन नामक राक्षसों ने उनकी राजधानी कुशस्थली को उजाड़ दिया ॥४॥ राजा रैवत सौ भाई थे, वे राक्षसों के विनाश से डर कर चारों दिशाओं में भाग निकले ॥५॥ यह भाई जहाँ जाकर बस गये, वहीं उनकी सन्तान-वृद्धि हुई और शर्याति के वंशज कहाने लगे ॥६ ७॥

क्षत्रिया भरतश्रेष्ठ दिक्षु सर्वासु विश्रुता ।
सर्वशः पर्वतगणान्प्रविष्टा कुरुनन्दन ॥८
नाभागारिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ ।
करूषस्य च कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥६
प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजातिरिति नः श्रुतम् ।
पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां जनमेजय ॥१०
शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवैते परिकीर्तिताः ।
वैवस्वतस्य तनया मनोर्वै भरतर्षभ ॥११
क्षुवतश्च मनोस्तात इक्ष्वाकुरभवत्सुतः ।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम् ॥१२
तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु विकुक्षित्वादयोधताम् ।
प्राप्तः परमधर्मज्ञ सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः ॥१३
शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चाशदुत्तमाः ।
उत्तरापथदेशस्था रक्षितारो महीपते ॥१४
चत्वारिंशदथाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि ।
शशादप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो विशांपते ॥१५

हे राजन् ! वे सभी क्षत्रिय दिशाओं में भ्रमते हुए पर्वतों पर जाकर बस गये ॥८॥ नाभागारिष्ट के दो पुत्र वैश्य पत्नी से उत्पन्न हुए थे वे ब्रह्म में लीन हो गये। करूप के सब पुत्र युद्ध कुशल क्षत्रिय थे उनकी कारूप नाम से प्रसिद्धि हुई ॥९॥ प्राशु के प्रजाति नामक एक ही पुत्र हुआ। पृषध्र ने अपने गुरु की गाय की हत्या कर दी, इसलिये गुरु शाप के कारण उसे शूद्रत्व की प्राप्ति हुई। हे जनमेजय ! इस प्रकार मनु के नौओं पुत्रों का वृत्तान्त मैं तुमसे कह चुका ॥१०-११॥ एक समय की बात है—मनु को छींक आने से एक और पुत्र उत्पन्न हुआ, इस इक्ष्वाकु के सौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥१२॥ उन सौ पुत्रों में विकुक्षि सबसे बड़ा था, उसका पेट बहुत बढ़ा हुआ था, इसलिये वह वीर नहीं बन सका, परन्तु सामान्य धर्मात्मा होने के कारण वह अयोध्या का राजा हुआ ॥१३॥ उसके शकुनि आदि पचास पुत्र हुए, वे सब उत्तरापथ में, देश में रह कर वहाँ की रक्षा करने लगे ॥१४॥ उनके शशाद आदि अड़तालीस भाइयों ने दक्षिण दिशा में रह कर उधर के प्रदेशों का रक्षा-कार्य किया ॥१५॥

शशादस्य तु दायाद ककुत्स्थो नाम वीर्यवान्।
इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थोऽजयतासुरान् ॥१६
पूर्वं माडीवके युद्धे ककुत्स्थस्तेन हि स्मृत ।
अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरानेनस स्मृत ॥१७
विष्टराश्व पृथो पुत्रस्तस्मादार्द्रस्त्वजायत।
आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्य तु चात्मज ॥१८
जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता।
श्रावस्तस्य तु दायादो वृहदश्वो महायशा ॥१९
कुबलाश्व सुतस्तस्य राजा परमधार्मिक ।
स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागत ॥२०
धुन्धोर्वधमह ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वत ।
यदर्थं कुबलाश्व सन्धुन्धुमारत्वमागत ॥२१

शशाद के पुत्र ककुत्स्थ ने एक बार देवासुर संग्राम में वृष रूपधारी इन्द्र के ऊपर बैठ कर असुरों को जीता था, इसीलिये उसका नाम ककुत्स्थ हुआ।

उसका पुत्र अनेना, अनेना का पुत्र पृथु का पुत्र विष्टराश्व का आर्द्र का युवनाश्व और युवनाश्व का पुत्र श्रावस्त हुआ ।।१६-१८।। इसी श्रावस्त द्वारा श्रावस्तपुरी का निर्माण हुआ था। श्रावस्त के पुत्र वृहदश्व हुए तथा वृहदश्व के पुत्र राजा कुवलाश्व हुए, जिन्होने धुन्धु को मारा था, इसलिये उनका नाम धुन्धुमार भी हो गया ।। १९-२० ।। जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! राजा कुवलाश्व ने धुन्धु को क्यों मारा, जिससे उन्हे धु धुमार नाम की प्राप्ति हुई, वह वृत्तान्त जानने की मेरी इच्छा है ।।२१।।

कुवलाश्वस्य पुत्राणा शतमुत्तमधन्विनाम् ।
सर्वविद्यासु निपुणा वलवन्तो दुरासदा ।।२२
बभूवुर्धार्मिका सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणा ।
कुवलाश्व सुत राज्ये वृहदश्चो न्ययोजयत् ।।२३
पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वन राजा समाविशत् ।
तमुत्तङ्कोऽथ विप्रर्षि प्रयात प्रत्यवारयत् ।।२४
भवता रक्षण कार्यं तत्तावत्कर्तुमर्हसि ।
निरुद्विग्नस्तप कर्तुं न हि शक्नोषि पार्थिव ।।२५
त्वया हि पृथिवी राजन्रक्षमाणा महात्मना ।
भविष्यति निरुद्विग्ना नारण्य गन्तुमर्हसि ।।२६

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! कुवलाश्व के सौ पुत्र हुए थे, वे सभी धार्मिक, याज्ञिक, विद्वान्, दानी तथा धनुर्वेद में पारगत थे। जब राजा वृहदश्व कुवलाश्व को राज्य सौंप कर वानप्रस्थी हो गये थे, तभी ब्रह्मर्षि उत्तङ्क ने आकर उन्हें वैसा न करने को कहा ।।२२-२४।। उत्तङ्क बोले—हे राजन् ! हमारी रक्षा करना आपका प्रमुख कर्म है, इसलिये आप यही कार्य कीजिये, अन्यथा आप वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करके भी निर्द्वन्द्व भाव से तपस्या में लीन नहीं हो सकेंगे ।।२५।। आप जैसे महात्मा से यह पृथिवी सुरक्षित एव उद्वेग शून्य रह सकती है, इसलिये आप वन को गमन मत कीजिये। २६।।

ममाश्रमसमीपे हि समेषु मरुधन्वसु ।
समुद्रो वालुकापूर्ण उज्जानक इति श्रुत ।
देवतानामवध्यश्च महाकायो महावल ।।२७

अन्तर्भूमिगतस्तत्र वालुकान्तर्हितो महान् ।
राक्षसस्य मधो पुत्रो धुन्धुनामा महासुर ।
शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥२८
संवत्सरस्य पर्यन्ते स नि श्वास प्रमुञ्चति ।
यदा तदा भूश्चलति सशैलवनकानना ॥२६
तस्य नि श्वासवातेन रज उद्धूयते महत् ।
आदित्यपथमावृत्य सप्ताह भूमिकम्पनम् ॥३०
सविस्फुलिङ्ग साङ्गार सधूममतिदारुणम् ।
तेन तात न शक्नोमि तस्मिन्स्थातु स्वकाश्रमे ॥३१
त मारय महाकाय लोकाना हितकाम्यया ।
लोका स्वस्था भवन्त्यद्य तस्मिन्विनिहतेऽसुरे ॥३२

मेरे आश्रम के पास बालू युक्त समतल मरु-भूमि है, वहीं बालू से भरा उज्जानक नामक एक समुद्र है, जिसमे देवताओं द्वारा न मारा जाने वाला, महाकाय तथा अत्यत बलवान मधु पुत्र धुन्ध पृथिवी तल मे बालू के भीतर छिप कर रहता हुआ लोक के विनाशार्थ घोर तपस्या कर रहा है ॥२७ २८॥ वह वर्ष में एक बार ही जब साँस लेता है, तब वनों और पर्वतो से युक्त यह पृथिवी हिलने लगती है । ॥२६॥ उसके श्वास से जो धूल उडती है, उसकी भीषणता से सूर्य छिप जाता और एक सप्ताह तक भूकम्प होता रहता है ॥३०॥ उसके श्वास से भयानक चिगारियाँ, अगार और गगनचुम्बी धूम्र निकलता है, इसीलिये मुझसे आश्रम पर नही रहा जाता ॥३१॥ इसलिए लोकहितार्थ उस महाकाय असुर को तुम मार डालो क्योंकि उसके मरते ही वहाँ के सब प्राणी स्वस्थ हो जायेंगे ॥३२॥

स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना ।
कुवलाश्व सुत प्रादात्तस्मै धुन्धुनिवारणे ॥३३
भगवन्न्यस्तशस्त्रोऽहमय तु तनयो मम ।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न सशय ॥३४
स त व्यादिश्य तनय राजर्षिर्धुन्धुमारणे ।
जगाम पर्वतायैव तपसे सशितव्रत ॥३५

कुवलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह पार्थिव. ।
प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य विनिग्रहे ॥३६
तमाविशत्तदा विष्णुर्भगवांस्तेजसा प्रभुः ।
उत्तङ्कस्य नियोगाद्वै लोकस्य हितकाम्यया ॥३७
तस्मिन्प्रयाते दुर्द्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत् ।
एष श्रीमानवध्योऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति ॥३८
दिव्यैर्माल्यैश्च तं देवा. समन्तात्समवाकिरन् ।
देवदुंदुभयश्चापि प्रणेदुर्भरतर्षभ ॥३९

महात्मा उत्तङ्क द्वारा ऐसा कहे जाने पर राजर्षि बृहदश्व ने धुन्धु को मारने के लिये अपना पुत्र कुवलाश्व उन्हे सौंपते हुए कहा—भगवन् ! मैंने शस्त्र का त्याग कर दिया है, इसलिये इस पुत्र को दे रहा हूँ, यही धुन्धु को मारेगा। यह कह कर राजर्षि बृहदश्व तप करने के लिये पर्वत शिखर पर चले गये ॥३३ ३५॥ इधर कुवलाश्व अपने सौ पुत्रों के सहित महात्मा उत्तङ्क के साथ धुन्धु को मारने के लिये चल दिये ॥३६॥ तभी उत्तङ्क के प्रार्थना करने पर भगवान विष्णु ने कुवलाश्व के देह मे प्रवेश किया ॥३७॥ उस समय अत्यन्त गड़गड़ाहट के साथ आकाशवाणी हुई कि आज कुवलाश्व धुन्धुमार बन जायेंगे ॥३८॥ उस समय देवताओं ने दिव्य पुष्पमालाओं की वृष्टि की और दुंदुभियां बजने लगीं ॥३९॥

स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैः सह वीर्यवान् ।
समुद्रं खानयामास बालुकार्णवमव्ययम् ॥४०
नारायणेन कौरव्य तेजसा व्यापितः स वै ।
बभूव स महातेजा भूयो बलसमन्वित. ॥४१
तस्य पुत्रैः खनद्भिस्तु वालुकान्यहितस्तदा ।
धुंधुरासादितो राजन्दिशमावृत्य पश्चिमाम् ॥४२
मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकानुद्वर्तयन्निव ।
वारि सुस्राव वेगेन महोदधिरिवोदये ॥४३

सोमस्य भरतश्रेष्ठ धारोमिकलिलमद्द्रुत् ।
ास्य पुत्रगन दग्ध त्रिभिरून तु रक्षसा ॥४४
तत स राजा कौरव्य राक्षस त महाबलम् ।
आससाद महातेजा धुधु धुधुनिबर्हण ॥४५
तस्य वारिमय वेगमपिबत् स नराधिप. ।
योगी योगेन वह्नि च शमयामास वारिणा ॥४६
निहत्य त महाकाय बलेनोदकराक्षसम् ।
उत्तक दर्शयामास कृतकर्मा नराधिप. ॥४७
उत्तकस्तु वर प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने ।
ददौ तस्याक्षय वित्त शत्रुभिश्चापराजयम् ॥४८
धर्मे रति च सतत स्वर्गवास तथाक्षयम् ।
पुत्राणा चाक्षर्या लोकान्स्वर्गे ये रक्षसा हता ॥४९

कुवलाश्व ने वहाँ पहुँचते ही अपने पुत्रों से उस बालू के समुद्र को खुद- । आरम्भ किया ॥४०॥ उस समय कुवलाश्व विष्णु तेज से अत्यन्त तेजस्वी ९ पराक्रमी हो गये थे ॥४१॥ उनके पुत्रो ने बालू खोदते हुए देखा कि धुन्धु श्चम की ओर के स्थान पर लेटा है, उन राजकुमारों को देखते ही धुन्धु की ाग्नि प्रदीप्त हो गई, जिससे कुवलाश्व के सत्तानवे पुत्र भस्म हो गये, केवल न पुत्र शेष रह। इसके पश्चात् चन्द्रोदय होने पर समुद्र की अत्यन्त वेग-वृद्धि ने के समान, धुन्धु का क्रोध अधिक बढ़ने पर उसकी देह से अत्यन्त वेग सहित ्नियार प्रवाहित होने लगी, उस समय वह सम्पूर्ण पृथिवी को जलमग्न करने ३ लिए कृत सकल्प-सा प्रतीत होने लगा ॥४२-४४॥ हे कुरुनन्दन ! इसके पश्चात् ाजा कुवलाश्व ने उसके पास जाकर सब जलधारा का पान कर लिया और गन योग बल से जल की वर्षा करके उसका अग्नि बल भी समाप्त कर दिया ।४५-४६॥ फिर उन्होंने बलपूर्वक उसे मार डाला और उसका मृतदेह महर्षि त्तङ्क को दिखाया ॥४७॥ उनके ऐसे पराक्रम से प्रसन्न हुए महर्षि उत्तङ्क ने वलाश्व को अक्षय धन, विजय, धर्मानुराग, स्वर्ग प्राप्ति तथा उनके मरे हुए पुत्रों को भी अक्षय लोकों की प्राप्ति का वर दिया ॥४८-४९॥

।। महर्षि गालव की उत्पत्ति ।।

तस्य पुत्रास्त्रय शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।
चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कुमारौ द्वौ कनीयसौ ।।१
धौन्धुमारिर्दृढाश्वस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मज ।
हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत्क्षत्रधर्मरत सदा ।।२
सहताश्वो निकुम्भस्य पुत्रो रणविशारद ।
अकृशाश्व कृशाश्वश्च सहताश्वसुतौ नृप ।।३
तस्य हैमवती कन्या सता माता दृपद्वती ।
विख्याता त्रिपु लोकेपु पुत्रश्चास्या प्रसेनजित् ।।४
लेभे प्रसेनजिद्भार्यां गौरी नाम पतिव्रताम् ।
अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाऽभवत् ।।५
तस्या पुत्रो महानासीद्युवनाश्वो महीपति ।
मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुत ।।६
तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दो सुताऽभवत् ।
साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि ।।७

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन्! राजा युवलाश्व से बचे पुत्रों मे दृढाश्व ज्येष्ठ था तथा चन्द्राश्व और कपिलाश्व छोटे थे ।।१ का पुत्र हर्यश्व और हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ हुआ, जो सदा क्षात्रधर्म पालन में तत्पर रहता था ।।२।। निकुम्भ का पुत्र सहताश्व हुआ, वह अत्यत युद्ध कुशल था, उसके अकृशाश्व और कृशाश्व नामक दो पुत्र हुए ।।३।। सहताश्व के दृपद्वती नाम की एक कन्या हुई, उस विश्व विख्यात पुत्री का प्रसेनजित् नामक पुत्र हुआ ।।४।। प्रसेनजित् की गौरी नाम की पतिव्रता भार्या थी, वह पति के शाप वश बाहुदा नाम की नदी होगई थी ।।५।। गौरी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र युवना एक महान् राजा था तथा उस युवनाश्व का पुत्र त्रैलोक्य विजयी राजा मान्धात हुआ ।।६।। उसका विवाह शशबिन्दु की कन्या चैत्ररथी के साथ हुआ, जो अपने नाम गुण से विख्यात साध्वी स्त्री थी ।।७।।

पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य सा ।
तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ नृप ॥८
पुरुकुत्सं च धर्मज्ञं मुचुकुन्दं च धार्मिकम् ।
पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत्त्रसद्दस्युर्महीपतिः ॥९
नर्मदायामथोत्पन्नः सम्भूतस्तस्य चात्मजः ।
सम्भूतस्य तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः ॥१०
सुधन्वनः सुतश्चासीत्त्रिधन्वा रिपुमर्दनः ।
राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासीद्विद्वांस्त्रय्यारुणः सुतः ॥११
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः ।
पाणिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्मतिः ॥१२
येन भार्याऽऽहृता पूर्वं कृतोद्वाहा परस्य वै ।
बाल्यात्कामाच्च मोहाच्च सहर्षाच्चापलेन च ॥१३
जहार कन्यां कामात्स कस्यचित्पुरवासिनः ।
अधर्मशङ्कुना तेन राजा त्रय्यारुणोऽत्यजत् ॥१४
अपध्वसेति बहुशो वदन्क्रोधसमन्वितः ।
पितरं सोऽब्रवीत्यक्तः क्व गच्छामीति वै मुहुः ॥१५

वह भी महान् पतिव्रता अपने दस हजार भाइयों की सबसे बड़ी अकेली बहिन थी, उसके गर्भ से मान्धाता ने दो पुत्र उत्पन्न किये ॥८॥ प्रथम पुत्र का नाम पुरुकुत्स और दूसरे का नाम मुचुकुन्द हुआ। पुरुकुत्स का पुत्र राजा त्रसद्दस्यु था ॥९॥ त्रसद्दस्यु ने अपनी भार्या नर्मदा से सम्भूत नामक पुत्र उत्पन्न किया, सम्भूत का पुत्र सुधन्वा हुआ ॥१०॥ सुधन्वा के त्रिधन्वा नामक पुत्र हुआ, त्रिधन्वा के जो पुत्र हुआ, वह त्रय्यारुण नामक अत्यन्त विद्वान था ॥११॥ उसके सत्यव्रत नामक एक अत्यन्त बलवान पुत्र हुआ उसने एक नागरिक के वैवाहिक कार्य में विघ्न उपस्थित किया था ॥१२॥ एक समय की बात है—एक नागरिक के विवाह में वर वधू सप्तपदी होने रहे थे, मन्त्र अभी पूरा नहीं हुआ था, तभी अपने बचपन की चंचलता, बुद्धिहीनता और कामुकता के वशीभूत हुए सत्यव्रत ने उस कन्या का अपहरण किया और उसे अपनी भार्या बना लिया। उसको उच्छृ-

खलता से कुपित हुए महाराज त्रय्यारुण ने उससे कहा—अरे पातकी ! दूर हो। इस बात को महाराज ने अनेक बार दुहरा कर उसे त्याग दिया तब सत्यव्रत ने बारबार अपने पिता से कहा कि आपने मुझे त्याग दिया है तो मैं कहाँ जाऊँ ? ॥१३-१५॥

पिता त्वेनमथोवाच श्वपाकै सह वर्त्तय ।
नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाऽद्य कुलपांसन ॥१६
इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद्वचनात्पितुः ।
न च तं वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः ॥१७
स तु सत्यव्रतस्तात श्वपाकावसथान्तिके ।
पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरः पिता तस्य वनं ययौ ॥१८
ततस्तस्मिंस्तु विषये नावर्षत्पाकशासनः ।
समा द्वादश राजेन्द्र तेनाधर्मेण वै तदा ॥१९
दारांस्तु विषये विश्वामित्रो महातपाः ।
संन्यस्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः ॥२०
तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् ।
शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन वै ॥२१
तं तु बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रीयन्तं नृपात्मजः ।
महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोचयामास भारत ॥२२
सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत् ।
विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ॥२३
सोऽभवद्गालवो नाम गलबन्धान्महातपाः ।
महर्षिः कौशिकस्तात तेन वीरेण मोक्षितः ॥२४

इस पर पिता ने कहा—मैं तुझ जैसे का पिता कहलवाना उचित नहीं समझता इसलिये तू अब चाण्डालों में जाकर निवास कर ॥१६॥ पिता की बात सुन कर सत्यव्रत नगर छोड़ कर बाहर होगया, महर्षि वसिष्ठ ने भी उसे निवारण नहीं किया ॥१७॥ तब सत्यव्रत चाण्डालों की बस्ती में रहने लगा और इधर त्रय्यारुण राज्य को त्याग कर वन में चले गये ॥१८॥ एक विवाह में विघ्न डालने

[प] के कारण इन्द्र ने उस राज्य में वर्षा नहीं की ॥१९॥ इसी समय विश्वा-
[मि]त्र अपनी भार्या को त्याग कर समुद्र के एक जल रहित स्थान में जाकर
[औ]र तपस्या करने लगे ॥२०॥ तब विश्वामित्र की भार्या ने अपने बीच के पुत्र
[के] कंठ में रस्सी बाँधी और कुटुम्ब की जीविका के लिये उसे सौ गौआ के मूल्य
[में] बचने के लिए चल पड़ी ॥२१॥ राजपुत्र सत्यव्रत ने मुनिपुत्र को इस प्रकार
[बि]कते देख कर उसे ले लिया और विश्वामित्रजी की कृपा प्राप्त करने के लिये
[उ]सका भरण पोषण करने लगे ॥२२ २३ उस बालक के गले में रस्सी बँधने के
[का]रण उसका नाम गालव हुआ ॥२४॥

॥ त्रिशंकु की कथा ॥

सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया ।
विश्वामित्रकलत्रं तद्बभार विषये स्थितः ॥१
उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।
पितुर्नियोगादवसत्तस्मिन्वनगते नृपे ॥२
अयोध्यां चैव राष्ट्रं च तथैवान्तःपुरं मुनिः ।
याज्योपाध्यायसंबन्धाद्वसिष्ठः पर्यरक्षत ॥३
सत्यव्रतस्तु बाल्याद्वा भाविनोऽर्थस्य वा बलात् ।
वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास वै तदा ॥४
पित्रा तु तं तदा राज्यं त्यज्यमानं स्वमात्मजम् ।
न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन ह ॥५
पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे ।
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥६
जानन्धर्मं वसिष्ठस्तु न मां त्रातीति भारत ।
सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाऽकरोत् ॥७
गुणबुद्ध्या तु भगवान्वसिष्ठः कृतवांस्तथा ।
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! विश्वामित्रजी के प्रति भक्ति और
[उ]नकी कृपा प्राप्ति से वसिष्ठजी का महत्व दूर करने के लिये विश्वामित्र-

पत्नी का स्वयं ही भरण-पोषण करने लगे ॥१॥ पिता द्वारा वन-गमन किं
जाने पर भी राजा सत्यव्रत ने बारह वर्षों तक जनहीन वन में नियमपूर्वक
व्रतादि नियमों का पालन किया ॥२॥ इस समय में वसिष्ठजी ने पुरोहित औ
आचार्य होने के कारण अयोध्या में राज्य एवं अंतःपुर का रक्षण-कार्य कि
॥३॥ राजा सत्यव्रत बाल चपलता वश भावी अनर्थ का कारण वसिष्ठ क
मानकर उनसे अत्यन्त रुष्ट थे ॥४॥ क्योंकि जब उनके पिता ने उनका त्या
किया था, तब वसिष्ठजी ने उन्हें वैसा करने से नहीं रोका, अन्यथा कुछ सम
में उनके पाप का प्रायश्चित्त हो जाता ॥५॥ पाणिग्रहण की पूर्णता सप्तपद
होने पर ही सिद्ध होती है, उसके बिना नहीं होती, इसलिये सत्यव्रत ने पत्नी
हरण नहीं, परकन्या हरण किया, जिसका पाप बारह वर्षों तक वनवास कर
से दूर हो जायगा, तब सत्यव्रत को पुनः राज्य पद पर अभिषिक्त कर दिय
जायगा, वसिष्ठ के इन मनोभावों को उन्होंने नहीं समझा ॥६॥ उनका क्रो
इसी लिये था कि इस प्रकार का दण्ड देते हुए पिताजी को महर्षि ने रोका नह
॥७ ८॥

तस्मिन्नपरितोषो यः पितुरासीन्महात्मनः ।
तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत्पाकशासनः ॥९
तेन त्विदानीं वहता दीक्षां तां दुर्वहां भुवि ।
कुलस्य निष्कृतिस्तात कृता सा वै भवेदिति ॥१०
न तं वसिष्ठो भगवान्पित्रा त्यक्तं न वारयत् ।
अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवं मतिर्मुनेः ॥११
स तु द्वादश वर्षाणि दीक्षां तामुद्वहद्बली ।
उपांशुव्रतमास्थाय महत्सत्यव्रतो नृपः ॥१२
अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ।
सर्वकामदुघां दोग्ध्रीं ददर्श स नृपात्मजः ॥१३
तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधार्दितः ।
दशधर्मान्गतो राजा जघान जनमेजय ॥१४
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ।
त्वरमाणश्च भीरुश्च लुब्धः कामी च ते दश ॥१५

तच्च मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् ।
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे ।
क्रुद्धस्तु भगवान्वाक्यमिदमाह नृपात्मजम् ॥१६
पातयेयमहं क्रूर तव शंकुमसंशयम् ।
यदि ते द्वाविमौ शंकू न स्यातां वैकृतौ पुनः ॥१७
पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च ।
अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥१८
एवं त्रीण्यस्य शंकूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः ।
त्रिशंकुरिति होवाच स त्रिशंकुरिति स्मृतः ॥१९

हे राजन् ! सत्यव्रत के उन दुष्कर्म से उसके पिता को जो दुःखानुभूति हुई, उसके कारण इन्द्र ने बारह वर्ष तक उनके राज्य में जल वृष्टि नहीं की ॥९॥ इधर सत्यव्रत को वनवास करते हुए बारह वर्ष होरहे थे, तभी उनके आश्रम में अन्न नहीं रहा, दैव-वशात् तभी वसिष्ठ की दुधारु गाय को उन्होंने चरते हुए देखा ॥१०-१३॥ तब हे जनमेजय ! क्रोध, मोह, श्रम से मत्त, उन्मत्त, प्रमत्त और क्षुधार्त होने के कारण सत्यव्रत ने उस गौ का वध कर दिया और उसका मांस स्वयं भक्षण किया और विश्वामित्र के पुत्रों को भी भक्षण कराया। यह सुन कर अत्यन्त क्रोधपूर्वक महर्षि वसिष्ठ ने सत्यव्रत से कहा—यदि तूने पुनः यह पाप न किया होता तो तेरे पहिले पाप को क्षमा कर दिया जाता, परन्तु अब तो तूने तीन पाप किये हैं—पिता का असंतोष, गुरु की गौ की हत्या और असंस्कृत मांस भक्षण। इन तीन शंकुओं (पापों) के कारण वसिष्ठ ने सत्यव्रत का नाम त्रिशंकु रख दिया, तब से उसकी इस नाम से प्रसिद्धि होगई ॥१४-१९॥

विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते ।
स तु तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशङ्कवे ॥२०
छन्द्यमानो वरेणाथ वरं वव्रे नृपात्मजः ।
सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो मुनिः ॥२१

अनावृष्टिभये तस्मिन्गते द्वादशवार्षिके ।
राज्येऽभिषिच्य त्रिश्ये तु याजयामास तं मुनिः ॥२२
मिषता देवताना च वसिष्ठस्य च कौशिकः ।
सशरीर तदा तं तु दिवमारोपयत्प्रभुः ॥२३
तस्य सत्यरथा नाम भार्या कैकयवंशजा ।
कुमार जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥२४
स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति स्मृतः ।
आहर्ता राजसूयस्य स सम्राडिति विश्रुत. ॥२५

तपस्या पूर्ण करके जब विश्वामित्रजी अपने घर आये तब उन्हें सत्यव्रत के द्वारा परिवार के भरण-पोषण की बात ज्ञात हुई, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने सत्यव्रत से वर माँगने को कहा और उनके अनुरोध पर त्रिशकु ने इसी देह से स्वर्ग प्राप्ति का वर माँगा ॥२०-२१॥ अयोध्या मे जब अनावृष्टि समाप्त होगई, तब विश्वामित्र ने उसको राज्य पर अभिषिक्त किया और फिर उससे यज्ञ का अनुष्ठान कराया ॥२२॥ अनुष्ठान के पूर्ण होने पर विश्वामित्र ने वसिष्ठजी तथा सब देवताओ के देखते-देखते त्रिशकु को स्वर्ग मे भेज दिया ॥२३॥ केकय नरेश के वंश मे उत्पन्न हुई सत्यरथा त्रिशंकु की भार्या हुई, उससे हरिश्चन्द्र उत्पन्न हुए ॥२४॥ हरिश्चन्द्र त्रिशकु के पुत्र होने से त्रैशकव भी कहे गये और राजसूय यज्ञ करने के कारण सम्राट् बन गये ॥२५॥

हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम वीर्यवान् ।
- येनेद रोहितपुर कारित राज्यसिद्धये ॥२६
कृत्वा राज्यं स राजर्षिः पालयित्वा त्वथ प्रजाः ।
ससारासारता ज्ञात्वा द्विजेभ्यस्तत्पुर ददौ ॥२७
हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारीत उच्यते ।
विजयश्च सुदेवश्च चञ्चुपुत्रौ बभूवतु ॥२८
जेता क्षत्रस्य सर्वस्य विजयस्तेन संस्मृतः ।
रुरुकस्तनयस्तस्य राजा धर्मार्थकोविदः ॥२९

रुरुकस्य वृक पुत्रो वृकाद्वाहुस्तु जज्ञिवान् ।
शकैर्यवनकाम्बोजै पारदै पल्लवै सह ॥३०
हैहयास्तालजङ्घाश्च निरस्यन्ति स्म त नृपम् ।
नात्यर्थं धार्मिकस्तात स हि धर्मयुगेऽभवत् ॥३१
सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण च ।
और्वस्याश्रममागम्य भार्गवेणाभिरक्षित ॥३२
आग्नेयमस्त्र लब्ध्वा च भार्गवात्सगरो नृप ।
जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान्सहैहयान् ॥३३
शकाना पल्लवाना च धर्मं निरसदच्युत ।
क्षत्रियाणा कुरुश्रेष्ठ पारदाना म धर्मवित् ॥३४

हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित हुए, जिन्होंने रोहितपुर नामक नगर बसाया ॥२६॥ राजर्षि रोहित चिरकाल तक राज-कार्य और प्रजा-पालन करते रहे । फिर उन्होंने वह नगर ब्राह्मणों को दान कर दिया ॥२७॥ रोहित के पुत्र हरित हुए, हरित के चञ्चु और चञ्चु के विजय तथा सुदेव नामक दो पुत्र हुए ॥२८॥ बड़े पुत्र विजय ने समस्त क्षत्रिय जाति पर विजय प्राप्त की थी, इसीलिये उसे विजय कहा गया । विजय के जो पुत्र हुआ, वह धर्म अर्थ का तत्त्वज्ञाता रुरुक था ॥२९॥ रुरुक के वृक और वृक के बाहु नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । यह बाहु अत्यन्त अधार्मिक राजा हुआ, इसलिये वह शक, यवन, काम्बोज, पारद, पल्लव, हैहय एव तालजघ आदि म्लेच्छ राजाओं के द्वारा राज्यच्युत किया गया ॥३०-३१॥ बाहु के सगर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह विष (गर) के साथ उत्पन्न होने से सगर कहलाया, उसका पालन भृगुवशी महर्षि और्व के आश्रम में हुआ था ॥३२॥ कुछ समय बाद सगर ने महर्षि और्व से आग्नेयास्त्र प्राप्त करके तालजंघ, हैहय आदि राजाओं को मार कर भूमि पर विजय प्राप्त की और शक, पल्लव तथा पारदादि राजाओं को क्षात्र-धर्म से हीन कर दिया ॥३३-३४॥

॥ सगर की उत्पत्ति और सागर बनना ॥

कथ स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युत ।
किमर्थं च शकादीना क्षत्रियाणा महौजसाम् ॥१

धर्मं कुलोचित क्रुद्धो राजा निरसदच्युत ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण तपोधन ॥२
बाहोर्व्यसनिनस्तात हृत राज्यमभूत्किल ।
हैययैस्तालजघैश्च शकै सार्द्धं विशाम्पते ॥३
यवना पारदाश्चैव काम्बोजा पह्लवा खशा ।
एते ह्यपि गणा पञ्च हैहयार्थे पराक्रमन् ॥४
हृतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वन ययौ ।
पत्न्या चानुगतो दु खी स वै प्राणानवासृजत् ॥५
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् ।
सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्त पूर्वमभूत्किल ॥६
सा तु भर्तुश्चिता कृत्वा वने तामभ्यरोहत ।
और्वस्ता भार्गवस्तात कारुण्यात्समवारयत् ॥७

जनमजय ने कहा—महाराज सगर की उत्पत्ति विष के साथ हुई तो वे किस प्रकार जीवित रहे और उन्होंने शक आदि के क्षत्रियोचित धर्म को क्यों नष्ट किया ? यह मुझे विस्तार सहित बताइये ॥१ २॥ वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! जब राजा बाहु दुर्व्यसनो में लिप्त होगया था तब शक, यवनादि ने उसे जीत कर उसका राज्य छीन लिया था और राज्य से भ्रष्ट होने के कारण दुखित होकर वह भार्या सहित वन को चला गया वही उसकी मृत्यु हुई ॥३ ५॥ जब बाहु की भार्या अपने स्वामी के साथ वन को चली तभी उसकी सौत ने उसे विष पान करा दिया ॥६॥ जब उसका पति मर गया तब वह उसके साथ सती होना चाहती थी परन्तु महर्षि और्व ने उसे वैसा नही करने दिया ॥७॥

तस्याश्रमे च न गर्भं गरेणैव सहाच्युत ।
व्यजायत महाबाहु सगर नाम पार्थिवम् ॥८
और्वस्तु जातकर्मादि तस्य कृत्वा महात्मन ।
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्र प्रत्यपादयत् ॥९
आग्नेय त महाबाहुरमरैरपि दु सहम् ।
स तेनास्त्रबलेनाजौ बलेन च समन्वित ॥१०

हैहयाग्निजघानाशु क्रुद्धो रुद्र पशूनिव ।
आजहार च लोकेषु कीर्ति कीतिमता वर ॥११
तत शकान्सयवनान्काम्बोजान्पारदान्तथा ।
पह्लवाश्चैव नि शेषान्कर्तुं व्यवसितस्तदा ॥१२
ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ।
वसिष्ठ शरण गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् ॥१३
वसिष्ठस्त्वथ तान्दृष्ट्वा समयेन महाद्युति ।
सगर वारयामास तेषा दत्त्वाऽभय तदा ॥१४

उन्ही के आश्रम में उसने विष स्राव के साथ सगर को उत्पन्न किया ॥८॥ महर्षि और्व ने सगर का जात-कर्म संस्कारादि करके वेद विद्या और युद्ध रया की शिक्षा देकर आग्नेयास्त्र प्रदान किया । उस अस्त्र के बल से सगर ने हयों को वैसे ही नष्ट कर डाला जैसे रुष्ट हुए भगवान शंकर ने पशुओं को ष्ट कर डाला था । इस कारण सगर को महान यश की प्राप्ति हुई ॥९-११॥ [illegible] उन्होंने शक, यवन, काम्बोज, पारद और पह्लव आदि के नष्ट करने का [illegible]चार किया ॥१२॥ परन्तु वह राजागण वसिष्ठजी की शरण में जाकर रक्षा-र्थना करने लगे ॥१३॥ वसिष्ठजी ने उन्हें अभयदान देकर राजा सगर से नका संहार न करने को कहा ॥१४॥

सगर स्वा प्रतिज्ञा च गुरोर्वाक्य निशम्य च ।
धर्मं जघान तेषा वै वेषान्यत्व चकार ह ॥१५
अर्द्ध शकाना शिरसो मुण्ड कृत्वा व्यसर्जयत् ।
यवनाना शिर सर्व काम्बोजाना तथैव च ॥१६
पारदा मुक्तकेशाश्चा पह्लवा श्मश्रुधारिण ।
नि स्वाध्यायवषट्कारा कृतास्तेन महात्मना ॥१७
स धर्मविजयी राजा विजित्येमा वसुन्धराम् ।
अश्व वै प्रेरयामास वाजिमेधाय दीक्षित ॥१८
तस्य चारयत सोऽश्व समुद्रे पूर्वदक्षिणे ।
वेलासमीपेऽपहृतो भूमि चैव प्रवेशित ॥१९

स त देश तदा पुत्रै खानयामास पार्थिव. ।
आसेदुस्ते ततस्तस्न खन्यमाने महार्णवे ॥२०
तमादिपुरुष देव हरिं कृष्ण प्रजापतिम् ।
विष्णु कपिलरूपेण स्वपन्त पुरुषोत्तमम् ॥२१

तब राजा सगर ने गुरु की बात रखने और अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिये उन राजाओ का वध न करके उनके धर्म और वेश मे परिवर्तन कर दिया ॥१५॥ उसके अनुसार शको को अर्द्ध मुण्डित किया, यवनो और काम्बोजो को पूर्ण मुण्डित, पारदो को केश-रहित तथा पह्लवों को मूँछधारी बनाया, और सभी को वेदाध्ययन के अधिकार से च्युत कर दिया ॥१६ १७॥ इस प्रकार राजा सगर ने सम्पूर्ण पृथिवी पर विजय प्राप्त कर अश्वमेध की दीक्षा ली और यज्ञ का घोड़ा छोड़ कर उसकी रक्षा के लिये स्वय उसके पीछे चले ॥१८॥ जब वह अश्व समुद्र तट पर जारहा था, तभी इन्द्र ने उसका अपहरण कर लिया और भूतल मे समा गये ॥१९॥ तब राजा सगर ने अपने पुत्रों से पृथिवी को खुदवाना प्रारम किया और खोदते-खोदते उनके पुत्रों ने भगवान विष्णु को महर्षि कपिल के रूप मे योगमग्न बैठे देखा ॥२०-२१॥

तस्य चक्षु समुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यत ।
दग्धास्ते वै महाराज चत्वारस्त्ववशेषिता ॥२२
बर्हकेतु सुकेतुश्च तथा धर्मरथो नृप ।
शूर पञ्चजनो नाम तस्य वंशकरो नृप ॥२३
प्रादाच्च तस्मै भगवान्हरिर्नारायणो वरान् ।
अक्षय वंशमिक्ष्वाको कीर्ति चाप्यनिवर्तनीम् ॥२४
पुत्र समुद्र च विभु स्वर्गवास तथाऽक्षयम् ।
पुत्राणा चाक्षयाँल्लोकास्तस्य ये चक्षुषा हता ॥२५
समुद्रश्चार्घमादाय ववन्दे त महीपतिम् ।
सागरत्व च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै ॥२६
त चाश्वमेधिक सोऽश्व समुद्रादुपलब्धवान् ।
आजहाराश्वमेधाना शत स सुमहायशा ।
पुत्राणा च सहस्राणि षष्टिस्तस्येति न श्रुतम् ॥२७

उन्हें देखते ही सब सगर-पुत्रो ने वहाँ जाकर उनकी योग-निद्रा भंग कर
ो, तब नेत्र खोलते ही कपिल भगवान् के नेत्रों से अग्नि निकलने लगी, जिसमें
ागर पुत्र भस्म होगए। परन्तु, उनमें से चार पुत्र बहुकेतु, सुकेतु, धर्मरथ और
चजन भस्म होने से बच रहे ॥२२-२३॥ तभी भगवान् ने प्रकट होकर सगर
ो वर दिया—तुम्हारा वंश अक्षय तथा यश स्थायी होगा, यह समुद्र तुम्हारा
ुत्र होगा और अन्त में तुम्हें तथा तुम्हारे सभी पुत्रों को अविनाशी लोक की
ाप्ति होगी ॥२४-२५॥ इस प्रकार का वर देते ही समुद्र दोनों हाथों में अर्घ्य
ात्र लेकर राजा के समक्ष उपस्थित हुआ, महाराज ने उसे तभी से अपना पुत्र
ाना और उसका नाम सागर हो गया ॥२६॥ उसी समुद्र से महाराज को अपना
ाश्व प्राप्त होगया, जिससे अश्वमेध यज्ञ की निर्विघ्न रूप से समाप्ति हुई सुना
ाया है कि राजा सगर के साठ हजार पुत्र थे ॥२७॥

॥ सूर्य-वंश का वर्णन ॥

सगरस्यात्मजा वीरा कथं जाता महात्मनः ।
विक्रान्ताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा द्विज ॥१
द्वे भार्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्विषे ।
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम विश्रुता ॥२
कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी ।
अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥३
और्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तं निबोध जनाधिप ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका तपस्विनी ॥४
एकं वंशधरं त्वेका यथेष्टं वरयत्विति ।
तत्रैका जगृहे पुत्रांल्लुब्ध्वा शूरान्बहूंस्तथा ॥५
एकं वंशधरं त्वेका तथेत्याह च तां मुनिः ।
केशिन्यसूत सगरादसमञ्जसमात्मजम् ॥६
राजा पञ्चजनो नाम बभूव सुमहाबलः ।
इतरा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः ॥७

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन् ! महाराज सगर के साठ हजार पुत्र किस

प्रकार हुए ? ॥१॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! महाराज सगर के दो रानियाँ थी, उनमे विदर्भराज पुत्री केशिनी बडी थी ॥२॥ छोटी रानी अरिष्ट- नेमि की अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी ॥३॥ एक दिन महर्षि और्व ने उन्हें बुला कर कहा—तुम मे से एक रानी साठ हजार पुत्र का, और दूसरी केवल एक ही पुत्र होने का वर माँगे ॥४॥ छोटी रानी ने साठ हजार और बडी ने एक पुत्र की याचना की, इसके अनुसार केशिनी ने असमजस नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥५-६॥ असमजस को पचजन भी कहते थे, वह असामान्य वीर था और छोटी रानी के गर्भ से एक तुम्बे की उत्पत्ति हुई ॥७॥

तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसमिता ।
सबभूवुर्यथाकाल ववृधुश्च यथाक्रमम् ॥८
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान्गर्भान्निदधे पिता ।
धात्रीश्चैकैकश प्रादात्तावतीरेव पोषणे ॥९

ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथासुखम् ।
कुमारास्ते यथाकाल सगरप्रीतिवर्धना ॥१०
षष्टिपुत्रसहस्राणि तस्यैवभवन्नृप ।
गर्भादलाबुमध्याद्वै जातानि पृथिवीपते ॥११

तेषा नारायण तेज प्रविष्टाना महात्मनाम् ।
एक पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह ॥१२
सुत पञ्चजनस्यासीदशुमान्नाम वीर्यवान् ।
दिलीपस्तनयस्तस्य खट्वाङ्ग इति विश्रुत ॥१३

येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्त्त प्राप्य जीवितम् ।
त्रयोऽनुसधिता लोका बुद्धचा सत्येन चानघ ॥१४

उस तुम्बे से तिल के बराबर साठ हजार पुत्र हुए, वे धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त होने लगे ॥८॥ सगर ने एक-एक पुत्र को एक एक घृत-घट में रखवा कर प्रत्येक पुत्र के लिये एक धाय की नियुक्ति करदी ॥९॥ दस महीने व्यतीत होने पर सभी बालक परिपुष्ट होकर राजा सगर की सुख वृद्धि करने लगे ॥१०

हे जनमेजय ! इस प्रकार तूम्बे से राजा सगर के साठ हजार पुत्रों की उत्पत्ति हुई ॥११॥ उन सब राजपुत्रों में नारायण का तेज था, परन्तु राज्यपद पर पंचजन का ही अभिषेक हुआ था ॥१२॥ उस पंचजन का पुत्र अंशुमान हुआ, अंशुमान के पुत्र दिलीप हुए, इन्हें खट्वांग भी कहा गया है ॥१३॥ ये खट्वांग स्वर्ग से पृथिवी तल पर केवल एक मुहूर्त्त के लिये आये थे और इतने ही समय में उन्होंने अपने ध्यान बल से सम्पूर्ण त्रैलोक्य को ब्रह्ममय जान लिया ॥१४॥

दिलीपस्य तु दायादो महाराजो भगीरथः ।
यः स गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठामवतारयत प्रभुः ॥१५
कीर्तिमान्स महाभागः शक्रतुल्यपराक्रमः ।
समुद्रमानयच्चैनां दुहितृत्वेन कल्पयत् ।
तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशवित्तकैः ॥१६
भागीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुतः ।
नाभागस्तु श्रुतस्यासीत्पुत्रः परमधार्मिकः ॥१७
अम्बरीषस्तु नाभागिः सिंधुद्वीपपिताऽभवत् ।
अयुताजित्तु दायादः सिंधुद्वीपस्य वीर्यवान् ॥१८
अयुताजित्सुतस्त्वासीदृतुपर्णो महायशाः ।
दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली ॥१९
ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदार्तुपर्णिर्महीपतिः ।
सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसखोऽभवत् ॥२०
सुदासस्य सुतस्त्वासीत्सौदासो नाम पार्थिवः ।
ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहस्तथा ॥२१

दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए, उन्होंने ही पृथिवी पर गंगाजी को अवतरित किया ॥१५॥ यशस्वी भगीरथ ने गंगाजी को पुत्री रूप में प्राप्त करके उसे समुद्र तक पहुँचा दिया, इसीलिये गंगा भागीरथी के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥१६॥ भगीरथ के पुत्र श्रुत और श्रुत का पुत्र नाभाग हुआ ॥१७॥ नाभाग के पुत्र अम्बरीष, अम्बरीष के सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीप के अयुताजित हुआ ॥१८॥ अयु-

ताजित का पुत्र ऋतुपर्ण हुआ वह द्यूत क्रीडा के मर्म का ज्ञाता और परम यशस्वी था, राजा नल के साथ उसका अत्यन्त सख्य भाव था ॥१९॥ ऋतुपर्ण के आर्तुपर्णि हुआ, आर्तुपर्णि का पुत्र सुदास हुआ वह इन्द्र का सखा था ॥२०॥ सुदास का पुत्र सौदास था, उसे कल्मापपाद और मित्रसह भी कहते थे ॥२१॥

कल्मापपादस्य सुत सर्वकर्मेति विश्रुत ।
अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुत सर्वकर्मण ॥२२
अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नपुत्रौ बभूवतु ।
अनमित्रो रघुश्चैव पार्थिवर्षभसत्तमौ ॥२३
अनमित्रस्य धर्मात्मा विद्वान्दुलिदुहोऽभवत् ।
दिलीपस्तनयस्तस्य रामस्य प्रपितामह ॥२४
दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्नाऽभवत्सुत ।
अयोध्याया महाराजो रघुश्चासीन्महाबल ॥२५
अजस्तु रघुतो जज्ञे अजाद्दशरथोऽभवत् ।
रामो दशरथाज्जज्ञे धर्मात्मा सुमहायशा ॥२६
रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुत ।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निपधस्तस्य चात्मज ॥२७
निपधस्य नल पुत्रो नभ पुत्रो नलस्य तु ।
नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा तत स्मृत ॥२८

कल्मापपाद का पुत्र सर्वकर्मा हुआ तथा सर्वकर्मा का पुत्र अनरण्य हुआ ॥२२॥ अनरण्य का पुत्र निघ्न हुआ, उस निघ्न के अनमित्र और रघु नामक दो पुत्र हुए ॥२३॥ अनमित्र के दुलिदुह और दुलिदुह के दिलीप हुए, यही श्री रामचन्द्रजी के प्रपितामह थे ॥२४॥ दिलीप के पुत्र रघु हुए, इन्हें अयोध्या के राज्यासन पर अभिषिक्त किया गया ॥२५॥ रघु के पुत्र अज और अज के पुत्र दशरथ हुए, इन्हीं दशरथ के परम यशवान एवं धर्मात्मा भगवान् राम ने जन्म लिया था ॥२६॥ राम के पुत्र कुश हुए, कुश के पुत्र अतिथि, अतिथि के पुत्र

[हुए ॥२७॥ निषध के नल, नल के पुत्र नभ, नभ के पुण्डरीक तथा पुण्ड-
के पुत्र क्षेमधन्वा हुए ॥२८॥

क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद्देवानीक प्रतापवान् ।
आसीदहीनगुर्नाम देवानीकसुत प्रभुः ॥२९
अहीनगोस्तु दायाद' सुधन्वा नाम पार्थिव. ।
सुधन्वनः सुतश्चैव ततो जज्ञेऽनलो नृप. ॥३०
उक्थो नाम स धर्मात्माऽनलपुत्रो बभूव ह ।
वज्रनाभः सुतस्तस्य ऊक्थस्य च महात्मन. ॥३१
शंखस्तस्य सुतो विद्वान्व्युषिताश्व इति श्रुत. ।
पुष्यस्तस्य सुतो विद्वानर्थसिद्धिस्तु तत्सुत. ॥३२
सुदर्शन. सुतस्तस्य अग्निवर्ण सुदर्शनात् ।
अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रस्य तु मरु' सुत. ॥३३
मरुस्तु योगमास्थाय कलापद्वीपमास्थित. ।
तस्यासीद्विश्रुतवत. पुत्रो राजा बृहद्बलः ॥३४
नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणे भरतर्षभ ।
वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वह ॥३५
इक्ष्वाकुवंशप्रभवा. प्राधान्येनेह कीर्तिता. ।
एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजस ॥३६
पठन्सम्यगिमा सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः ।
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च ॥३७
प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वत. ।
विपाप्मा विरजाश्चैव आयुष्मांश्च भवत्युत ॥३८

क्षेमधन्वा के पुत्र देवानीक, देवानीक के अहीनगुरु के सुधन्वा तथा
धन्वा के पुत्र अनल हुए ॥२९-३०॥ अनल का पुत्र उक्थ हुआ, उक्थ का वज्र-
भ और वज्रनाभ का पुत्र शंख हुआ, शंख को व्युषिताश्व भी कहते थे शंख
। पुत्र पुष्य और पुष्य का पुत्र अर्थसिद्ध हुआ ॥३१-३२॥ अर्थसिद्ध का पुत्र
र्शन, सुदर्शन का अग्निवर्ण, अग्निवर्ण का शीघ्र और शीघ्र का पुत्र मरु हुआ,

उसने कलापद्वीप में जाकर योगाभ्यास किया, उसका पुत्र बृहद्बल हुआ ॥३३ ३४॥ पुराणों में नल नाम के दो राजाओं का वृत्तान्त उपलब्ध है, उनमें एक वीरसेन का पुत्र हुआ और दूसरा इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुआ था ॥३५॥ इस प्रकार सब प्रधान इक्ष्वाकु वंशीय राजाओं के नाम मैंने तुम्हें कह दिए हैं। यह सभी राजागण सूर्यवंश में उत्पन्न हुए थे ॥३६॥ जो लोग प्रजाजनों के लिए पुष्टिकर श्राद्धदेव की वंशावली का पाठ करते हैं वे पाप रहित तथा आयुष्मान और पुत्रवान होकर अन्त में आदित्य लोक को प्राप्त होते हैं ॥३७-३८॥

॥ वराह, नृसिंह आदि अवतार ॥

प्रादुर्भावान्पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः ।
सतां कथयतामेव वाराह इति नः श्रुतम् ॥१
न जाने तस्य चरितं न विधिं नैव विस्तरम् ।
न कर्मगुणसंतानं न हेतुं न मनीषितम् ॥२
विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुघातिनः ।
श्रोतुमिच्छाम्यशेषेण हरेः कृष्णस्य धीमतः ॥३
कर्मणामानुपूर्व्याच्च प्रादुर्भावाच्च या विभोः ।
या चास्य प्रकृतिर्ब्रह्मंस्तां च व्याख्यातुमर्हसि ॥४
कथं च भगवान्विष्णुः सुरशत्रुनिषूदनः ।
वसुदेवकुले धीमान्वासुदेवत्वमागतः ॥५
अमरैरावृतं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ।
देवलोकं समुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहागतः ॥६
देवमानुषयोर्नेता यो भुवः प्रभवो विभुः ।
किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुष्ये सन्ययोजयत् ॥७
यश्चक्रं वर्तयत्येको मानुषाणामनामयम् ।
मानुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रे चक्रभृतां वरः ॥८
गोपायनं यः कुरुते जगतः सर्वलौकिकम् ।
स कथं गां गतो देवो विष्णुर्गोपत्वमागतः ॥९

स्रुवसोमं शूर्पमुशलं प्रोक्षणं दक्षिणायनम् ।
अध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यं सदनं सदः ॥६
यूपं समित्कुशं दर्वी चमसोलूखलानि च ।
प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं चयनं च यत् ॥७
ह्रस्वान्यतिप्रमाणानि चराणि स्थावराणि च ।
प्रायश्चित्तानि चार्थं च स्थण्डिलानि कुशास्तथा ॥८

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन ! तुमने मुझ पर कठिनाई से ढोया जाने वाला प्रश्न भार लाद दिया है । आज आपने सौभाग्यवश श्रीकृष्ण की कथा सुनने की इच्छा की है, इसलिये मैं उनकी कथा तुम्हारे प्रति कहता हूँ, सुनो ॥१-२॥ वेद के जानने वाले ब्राह्मण जिसे सहस्राक्ष, सहस्रास्य सहस्रभुज, अव्यय सहस्रशिर, सहस्रकर, सहस्रजिह्व, सहस्रमुकुट, सहस्रदत, सहस्रादि आदि कहते हैं ॥३-४॥ जो अक्षय सवन, हवन, हव्य, होता, पवित्र पात्र, यज्ञवदी, दीक्षा, स्रुव, सोम, सूर्य, मुसल प्रोक्षणी पात्र तथा दक्षिणायन हैं, जो सामगान करते वाले विप्र, यज्ञ के सदस्य, यज्ञ सदन सभा, यूप, समिधा, कुश, चमस, उलूखल, प्राग्वंश, यज्ञभूमि, ऋत्विज्, स्थण्डिल, शकट इत्यादि हैं तथा जो सोमक्रयार्थ स्थावर, जंगम, प्रायश्चित, अर्थ और कुश हैं ॥५-८॥

मन्त्रं यज्ञवहं वह्निं भागं भागवहं च यत् ।
अग्रेभुजं सोमभुजं घृतार्चिषमुदायुधम् ॥९
आहुर्वेदविदो विप्रा यं यज्ञे शाश्वतं विभुम् ।
तस्य विष्णोः सुरेशस्य श्रीवत्साङ्कस्य धीमतः ॥१०
प्रादुर्भावसहस्राणि अतीतानि न संशयः ।
भूयश्चैव भविष्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः ॥११
यत्पृच्छसि महाराज पुण्यां दिव्यां कथां शुभाम् ।
यदर्थं भगवान्विष्णुः सुरेशो रिपुसूदनः ।
देवलोकं समुत्सृज्य वसुदेवकुलेऽभवत् ॥१२
यत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वमशेषतः ।
वासुदेवस्य माहात्म्यं चरितं च महाद्युते ॥१३

हितार्थं सुरमर्त्यानां लोकानां प्रभवाय च ।
बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति कार्यतः ॥१४
प्रादुर्भावांश्च वक्ष्यामि पुण्यान्दिव्यगुणैर्युतान् ।
छान्दसीभिरुदाराभिः श्रुतिभिः समलङ्कृतान् ॥१५
शुचिः प्रयतवाग्भूत्वा निबोध जनमेजय ।
इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्चसम्मितम् ॥१६
हन्त ते कथयिष्यामि विष्णोर्दिव्याः कथाः शृणु ।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
धर्मसंस्थापनार्थाय तदा सम्भवति प्रभुः ॥१७

जो मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, तथा एक शाश्वत विभु हैं, उन क्षीरसागरस्थित भगवान् देवदेव श्री नारायण का अवतार अनन्त बार हो चुका है और अभी प्रजापति के द्वारा सुना है कि वे पुनः अवतार धारण करेंगे ॥९-११॥ हे महाराज ! भगवान् विष्णु उस दिव्य देह और देवलोक को छोड़ कर वसुदेव के यहाँ क्यों अवतीर्ण हुए, तुम्हारा यह प्रश्न अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥१२॥ इस प्रश्न के समाधान स्वरूप मैं तुम्हें उनका माहात्म्य एवं चरित्र आदि से अन्त तक सुनाता हूँ, तुम शान्त मन से श्रवण करो ॥१३॥ वे भगवान् सभी भूतों के आत्मा हैं तथा देवताओं और मनुष्यों के कल्याण के निमित्त बारम्बार अवतीर्ण होते हैं ॥१४॥ भगवान् विष्णु के पवित्र चरित्र का सुनना पुराण और वेद के समान पुण्यफल का देने वाला है, इसलिये तुम शान्त एकाग्र मन से इस आख्यान को सुनो, भगवान् का अवतार तभी होता है जब जगत् में धर्म का ह्रास होता है। उस समय वे धर्म का पुनः स्थापन करते हैं ॥१५-१७॥

तस्य त्वेका महाराज मूर्तिर्भवति सत्तमा ।
नित्यं दिविष्ठा या राजंस्तपश्चरति दुश्चरम् ॥१८
द्वितीया चास्य शयने निद्रायोगमुपाययौ ।
प्रजासंहारसर्गार्थं किमध्यात्मविचिन्तकम् ॥१९

सुप्त्वा युगसहस्रं स प्रादुर्भवति कार्यतः ।
पूर्णे युगसहस्रे तु देवदेवो जगत्पतिः ॥२०
पितामहो लोकपालाश्चन्द्रादित्यौ हुताशनः ।
ब्रह्मा च कपिलश्चैव परमेष्ठी तथैव च ॥२१
देवाः स्प्तर्षयश्चैव त्र्यम्बकश्च महायशाः ।
वायु समुद्राः शैलाश्च तस्य देहं समाश्रिताः ॥२२
सनत्कुमारश्च महानुभावो मनुर्महात्मा भगवान्प्रजाकरः ।
पुराणदेवोऽथ पुराणि चक्रे प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः ॥२३
येन चार्णवमध्यस्थौ नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
नष्टे देवासुरगणे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥२४
योद्धुकामौ सुदुर्धर्षौ दानवौ मधुकैटभौ ।
हतौ प्रभवता तेन तयोर्दत्त्वाऽमितं वरम् ॥२५

धर्म के पुनर्स्थापन के लिये भगवान् की जो मूर्ति प्रादुर्भूत होती है वह उनकी राजसी मूर्ति कही जाती है और जो श्रेष्ठ मूर्ति देवलोक मे स्थित रह कर सदा तप-रत रहती है, वह सात्विक कहलाती है ॥१८॥ उनकी जो मूर्ति सृष्टि के संहारार्थ सदा योगनिद्रा का अवलम्बन किये रहती है, वह तामसी मूर्ति है ॥१९॥ योगनिद्रा के आश्रय मे वे भगवान् एक हजार युग तक शयन करते रहते हैं। इसके पश्चात् पुन सृष्टि-रचना मे लग जाते हैं ॥२०॥ उस समय ब्रह्माजी, सभी लोकपाल, सूर्य-चन्द्र, अग्नि, कपिलमुनि, सप्तर्षि, त्र्यम्बक, वायु, चारो समुद्र, सनत्कुमार और प्रजापालक मनु उन भगवान् से ही उत्पन्न होते हैं, तभी प्रदीप्त अग्नि के समान अत्यन्त तेज वाले वे पुराण पुरुष ग्राम, नगर आदि की भी रचना करते हैं ॥२१-२३॥ अब एक हजार युग व्यतीत हो जाते हैं, तब सम्पूर्ण सृष्टि उन्ही के देह मे विलीन हो जाती है। इस प्रकार सभी स्थावर-जगम जीव, देवता, असुर, राक्षस, उरग आदि के नाश को प्राप्त होने पर जब दो दुर्दान्त दैत्य मधु कैटभ भगवान् श्री विष्णु से युद्ध करने के लिये उपस्थित हुए, तब उन्होंने उन दानवो को मोक्ष प्राप्त कराने वाला वर देकर समुद्र मे ह नष्ट कर दिया ॥२४-२५॥

पुरा कमलनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि।
पुष्करे यत्र सम्भूता देवाः सर्षिगणाः पुरा ॥२६
एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः।
पुराणे कथ्यते यत्र वेद श्रुतिसमाहितः ॥२७
वाराहस्तु श्रुतिमुखः प्रादुर्भावो महात्मनः।
यत्र विष्णुः सुरश्रेष्ठो वाराहं रूपमास्थितः।
महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् ॥२८
वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ॥२९
अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः।
आज्यनासः स्रुवतुण्डः सामघोषस्वनो महान् ॥३०

एक समय जब भगवान् योगनिद्रा के आश्रय में क्षीरसिन्धु में सो रहे थे, तो उनकी नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ, जिससे ब्रह्मादि देवताओं और ऋषियों की उत्पत्ति हुई। इसलिए भगवान् के उस अवतार को पुष्करावतार कहते हैं ॥२६-२७॥ हे राजन् ! नारायण का वाराहावतार सुनने में अत्यन्त मधुर है। इस अवतार में नारायण ने वाराह रूप धारण किया था और उन्होंने समुद्र में प्रविष्ट होकर जल में डूबी हुई वन पर्वतों से युक्त पृथिवी को अपने दाँतों से निकाला था ॥२८॥ वाराहावतार के समय चारों वेद उनके पाँव थे, यूप दन्त, यज्ञ हाथ, चिति मुख, अग्नि जिह्वा, कुश रोम, दिन-रात्रि नेत्र, वेदाङ्ग कानों के आभूषण, घृत नासिका, स्रुवा तुण्ड और सामगान उनका गम्भीर स्वर था ॥२९-३०॥

धर्मसत्यमयः श्रीमान्क्रमविक्रमसत्कृतः।
प्रायश्चित्तनखो धीरः पशुजानुर्महाभुजः ॥३१
उद्गात्रान्त्रो होमलिङ्गः फलबीजमहौषधिः।
वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्फिग्विकृतः सोमशोणितः ॥३२
वेदीस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान्।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरर्चितः ॥३३

दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् ।
उपाकर्मोष्ठरुचक प्रवर्ग्यावर्त्तभूषण ॥३४
नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासन ।
छायापत्नीसहायो वै मेरुश्रृङ्ग इवोच्छ्रित ॥३५
मही सागरपर्यन्ता सशैलवनकाननाम् ।
एकार्णवजले भ्रष्टामेकार्णवगता प्रभु ॥३६
दंष्ट्रया य समुद्धृत्य लोकाना हितकाम्यया ।
सहस्रशीर्षो देवादिश्चकार पृथिवी पुन ॥३७
एव यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ।
उद्धृता पृथिवी सर्वा सागराम्बुधरा पुरा ॥३८

धर्म और सत्य श्री थे, पशु दोनो जघा, कार्य विक्रम सत्क्रिय, प्रायश्चित्त अत्यन्त घोर नख,उद्गाता अस्त्र, होम उपस्थ, सब ओषधियाँ वीर्य, वायु अन्तरात्म मन्त्र स्फिक्, विकृत सोम रक्त, वेदी स्कन्ध, हवि गंध, हव्य-कव्य वेग, प्राग्वंश देह दक्षिणा हृदय, स्वाध्याय स्वीकार, ओष्ठ भूषण तथा धर्म स्थापना के लिये महावीर रूप मे परिणति ही उनके आभूषण थे ॥३१-३४॥ विविध छन्द मार्ग हुए, गुप्त उपनिषद आसन, छाया पत्नी रूपा हुई। उस समय इस प्रकार का यज्ञ वाराह रूप धारण करने वाले दीक्षांचित, योगी, सत्यधर्ममयात्मक सहस्र शीर्ष भगवान् विष्णु ऐसे देह को धारण करके सुमेरु श्रृङ्ग के समान अत्यन्त ऊँचे हो गए, फिर उन देवादिदेव भगवान् ने लोककल्याणार्थ जल मे प्रवेश करके पर्वतो और वनो से परिपूर्ण पृथिवी को समुद्र से निकाला ॥३५-३८॥

वाराह एष कथितो नारसिहमत श्रृणु ।
यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हत ॥३९
पुरा कृतयुगे राजन्सुरारिर्बलदर्पित ।
दैत्यानामादिपुरुषश्चचार तप उत्तमम् ॥४०
दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।
जलोपवासनिरत स्थानमौनदृढव्रत ॥४१

तत: शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चानघ ।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥४२
तं वै स्वयंभूर्भगवान्स्वयमागत्य भूपते ।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥४३
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैः सह ।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥४४
दिशाभिर्विदिशाभिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ॥४५
देवर्षिभिस्तपोवृद्धैः सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा ।
राजर्षिभिः पुण्यतमैर्गन्धर्वैश्चाप्सरोगणैः ॥४६
चराचरगुरुः श्रीमान्वृतः सर्वैः सुरैस्तथा ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥४७

यह भगवान् के वाराहावतार का वर्णन हुआ, अब उस नृसिंहावतार का वर्णन करता हूँ जिसे धारण करके भगवान् विष्णु ने हिरण्यकशिपु का संहार किया था ॥३९॥ प्राचीनकाल की बात है, सत्युग में दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने जल-भक्षण के सहारे ग्यारह हजार वर्षों तक संयमपूर्वक घोर तपस्या की थी ॥४०-४१॥ उसके शम-दमादि गुण, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, तप आदि कर्मों से ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए ।४२॥ फिर आदित्य, वसु, साध्य, मरुत्, रुद्र, यक्ष, उरग, सर्प, किन्नर, दिक्, विदिक्, नदी, समुद्र, नक्षत्र, मुहूर्त, खेचर, महाग्रह, देवर्षि, सिद्ध, सप्तर्षि, राजर्षि एवं अप्सराओं सहित देदीप्यमान ब्रह्माजी अपने हंसमय विमान पर बैठ कर हिरण्यकशिपु के पास आकर कहने लगे ॥४३-४७॥

प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेन सुव्रत ।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥४८
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
न मानुषाः पिशाचास्च निहन्युर्मां कथंचन ॥४९
ऋषयो वा न मां शापैः क्रुद्धा लोकपितामह ।
शपेयुस्तपसा मुख्य यदेतद् वृणोम्यहम् ॥५०

न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन वा ।
न शुष्केण न चार्द्रेण स्यान्न चान्येन मे वधः ॥५१
पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम् ।
यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति ॥५२
भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः ।
सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश ॥५३
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ।
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ॥५४

हे श्रेष्ठ व्रत वाले ! मैं तुम्हारे तप से अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम इच्छित माँगो, तुम्हारी कामना अवश्य पूरी होगी ॥४८॥ हिरण्यकशिपु ने कहा—हे पितामह ! मुझे ऐसे वर की कामना है, जिससे देवता, गंधर्व, असुर, यक्ष, उरग, राक्षस, पिशाच और मनुष्य में से कोई भी मेरा वध न कर सके ॥४९॥ तपोयुक्त ऋषि भी रुष्ट हो जायें तो मुझे शाप न दे सकें और शस्त्रास्त्र, पर्वत, वृक्ष या शुष्क अथवा आर्द्र कोई भी पदार्थ मेरी मृत्यु का कारण न हो ॥५०-५१॥ जो एक थप्पड़ मार कर ही भृत्य सेना, वाहनादि के सहित मुझे नष्ट कर सके, मैं उसी के हाथ से मृत्यु को प्राप्त होऊँ, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, आकाश, नक्षत्र, दसों दिशाएँ, काम, क्रोध, वरुण, इन्द्र, यम, कुबेर, यक्ष और किम्पुरुषों का अधीश्वर भी मैं ही हो जाऊँ ॥५३-५४॥

एवमुक्तस्तु दैत्येन स्वयंभूर्भगवांस्तदा ।
उवाच दैत्यराजं तं प्रहसन्नृपसत्तम ॥५५
एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः ।
सर्वान्कामानिमांस्तात प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥५६
एवमुक्त्वा तु भगवाञ्जगामाकाशमेव हि ।
वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥५७
श्रुत्वा देवा वरं तं च दत्तं सलिलयोनिना ।
विभुं विज्ञापयामासुर्देवाः शक्रपुरोगमाः ॥५८

तनो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयस्तथा ।
वरप्रदानं श्रुत्वा ते पितामहमुपस्थिता ॥५९
वरेणानेन भगवन्वधिष्यति स नोऽसुर ।
तन प्रसीद भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥६०
भगवान्सर्वभूताना स्वयंभूरादिकृद्विभु ।
स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तं प्रकृतिर्ध्रुवं ॥६१
सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देव प्रजापति ।
प्रोवाच भगवान्वाक्यं सर्वान्देवगणान्तदा ॥६२
अवश्य त्रिदशास्तेन प्राप्तव्य तपस फलम् ।
तपसोऽन्तेऽस्य भगवान्वधं विष्णु करिष्यति ॥६३
एवच्छ्रुत्वा सुरा सर्वे वाक्य पङ्कजसम्भवात् ।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि जग्मुस्ते वै मुदान्विता ॥६४

हिरण्यकशिपु के इस प्रकार कहने पर स्वयम्भू ब्रह्माजी ने हँसते हुए कहा ॥५५॥ ब्रह्माजी बोले—मैं तुम्हें यह अद्भुत वर देता हूँ, तुम्हारी सब इच्छायें पूर्ण होंगी, इसमें संशय नहीं है ॥५६॥ यह कह कर ब्रह्माजी आकाश मार्ग से ब्रह्मर्षियों द्वारा सेवित ब्रह्मलोक को चले गये ॥५७॥ ब्रह्माजी द्वारा दिये गये वरदान की बात सुन कर इन्द्रादि देवता, नाग, गन्धर्व और मुनिगण ब्रह्माजी के पास पहुँचे ॥५८-५९॥ उन्होंने कहा—हे भगवन् ! आपने इस दैत्य को जो वर दिये हैं उनके प्रभाव से यह दैत्य हमें नष्ट कर देगा, इसलिए अब आप हमारे ऊपर प्रसन्न होकर उसके संहार का कोई उपाय कीजिए ॥६०॥ हे प्रभो ! आप स्वयम्भू हैं, जगत् के सम्पूर्ण जीव आपसे ही उत्पन्न हुए हैं, सब हव्य-कव्य के स्रष्टा आप ही हैं, आपके प्रकृति तत्त्व को जानने में कोई समर्थ नहीं है ॥६१॥ सब लोकों का हित करने वाली इस बात को सुन कर पितामह ब्रह्माजी ने कहा—हे देवगण ! हिरण्यकशिपु को उसकी तपस्या का फल तो अवश्य ही मिलना था, परन्तु तप समाप्ति के पश्चात् भगवान् विष्णु स्वयं ही उसका संहार करेंगे ॥६२-६३॥ ब्रह्माजी के मुख से इस प्रकार का आश्वासन प्राप्त कर सभी इन्द्र देवतादि अपने-अपने लोक को प्रसन्नतापूर्वक गये ॥६४॥

लब्धमात्रे वरे चापि सर्वा सोऽबाधत प्रजा ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पित ।।६५
आश्रमेषु महाभागान्मुनीन्वै शसितव्रतान् ।
सत्यधर्मरतान्दान्तापुरा धर्षितवास्तु स ।।६६
देवास्त्रिभुवनस्थान्तास्तु पराजित्य महासुरः ।
त्रैलोक्य वशमानीय स्वर्गे वसति दानव ।।६७
यदा वरमदोन्मत्तो न्यवसद्दानवो भुवि ।
यज्ञियान्कृतवान्दैत्यान्देवाश्चैवाप्ययज्ञियान् ।।६८
आदित्याश्च ततो रुद्रा विश्वे च मरुतस्तथा ।
शरण्य शरण विष्णुमुपाजग्मुर्महाबलम् ।।६९
वेदयज्ञमय ब्रह्म ब्रह्मदेव सनातनम् ।
भूत भव्य भविष्य च प्रभु लोकनमस्कृतम् ।
नारायण विभु देवा शरण शरणागता ।।७०
त्रायस्व नोऽद्य देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात् ।
त्वहि न परमो धाता ब्रह्मादीना सुरोत्तम ।।७१
त्व हि न. परमो देवस्त्व हि न परमो गुरु ।
उत्फुल्लाम्बुजपत्राक्ष शत्रुपक्षभयकर ।।७२
क्षयाय दितिवशस्य शरण त्व भवस्व न ।।७३

दैत्यराज हिरण्यकशिपु वरदान प्राप्त होते ही मदान्ध हो गया और उसने व्रतपरायण सत्य धर्म रत आश्रमवासी मुनियों को सतप्त करना आरम्भ किया ।।६५ ६६।। फिर त्रैलोक्याधिपति देवताओं को परास्त कर लिया तथा स्वर्ग को जीत कर, उसी में निवास करने लगा ।।६७।। तब उसने देवताओं को यज्ञ भाग से च्युत करके दैत्यों को यज्ञ भागाधिकारी बनाया ।।६८।। यह देख कर आदित्य, रुद्र, विश्वदेवा, मरुद्गण आदि तीनों लोकों के पूजनीय भगवान् विष्णु की शरण में जाकर निवेदन करने लगे—हे देवेश ! आपने ही हमको रचा है, आप ही हमारे परमदेव तथा परमगुरु हैं, हम हिरण्यकशिपु से डर कर आपकी शरण में

स्थित हुए हैं, आप उसका संहार कीजिये, जिस प्रकार भी संभव हो, उसके त्याचारों से हमारी रक्षा करिये ॥६९-७३॥

भयं त्यजध्वममरा ह्यभयं वो ददाम्यहम् ।
तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपत्स्यथ मा चिरम् ॥७४
एष तं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम् ।
अवध्यममरेन्द्राणां दानवं तं निहन्म्यहम् ॥७५
एवमुक्त्वा स भगवान्विसृज्य त्रिदशेश्वरान् ।
हिरण्यकशिपो राजन्नाजगाम हरिः सभाम् ॥७६
नरस्य कृत्वाऽर्धतनुं सिंहस्यार्धतनुं प्रभुः ।
नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ॥७७
जीमूतघनसंकाशो जीमूतघननिःस्वनः ।
जीमूतघनदीप्तौजा जीमूत इव वेगवान् ॥७८
दैत्यं सोऽतिबलं दीप्तं दृप्तशार्दूलविक्रमम् ।
दृप्तैर्दैत्यगणैर्गुप्तं हतवानेकपाणिना ॥७९
नृसिंह एषः कथितो भूयोऽयं वामनोऽपरः ।
यत्र वामनमाश्रित्य रूपं दैत्यविनाशकृत् ॥८०
बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा ।
विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्यः क्षोभितास्ते महासुराः ॥८१

भगवान् विष्णु ने कहा—हे देवगण ! भय का त्याग करो, तुम सबको मैं अभय देता हूँ, तुम्हें शीघ्र ही स्वर्ग के राज्य की पुनः प्राप्ति होगी ॥७४॥ दानवराज हिरण्यकशिपु वर प्राप्त करके तुम्हारे द्वारा मारा नहीं जा सकता, इससे वह अत्यन्त अभिमानी हो गया है, परन्तु मैं उसके सब अनुयायियों का वध कर डालूँगा ॥७५॥ वैशम्पायन जी बोले—हे राजन् यह आश्वासन देकर भगवान् ने देवताओं को विदा किया और स्वयं अर्द्ध भाग में मनुष्य और अर्द्ध भाग में सिंह देह धारण करके हिरण्यकशिपु की सभा में गये, उस समय उनका देह प्रचण्ड मेघ जैसा था। मेघ के समान ही उनकी गर्जना थी, वेग ही वेग था।

वहाँ उन्होंने बल के दर्प से परिपूर्ण दैत्यों से घिर हुए सिंह के समान पराक्र, तथा दुर्धर्ष वीर हिरण्यकशिपु को एक ही थप्पड़ मार कर समाप्त कर दि ॥७६-७६॥ यह नृसिंहावतार की कथा हुई, अब वामनावतार का वर्णन करता जिसमें वामन रूप धारण करके भगवान् ने दैत्यों का संहार किया था ॥८० पूर्वकाल की बात है—राजा बलि के कारण उन्होंने वामन रूप धारण कर अप तीन पगों से दैत्यों में अत्यन्त क्षोभ उपस्थित कर दिया ॥८१॥

नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा महाजवा ।
कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥८२
खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ।
भीमा मकरवक्त्राश्च क्रोष्टुवक्त्राश्च दानवा ।
आखुदर्दुरवक्त्राश्च घोरा वृकमुखास्तथा ॥८३
मार्जारगजवक्त्राश्च महावक्त्रास्तथाऽपरे ।
नक्रमेषानना शूरा गोजाविमहिषानना ॥८४
गोधाशल्यकवक्त्राश्च क्रौञ्चवक्त्राश्च दानवा ।
गरुडानना खड्गमुखा मयूरवदनास्तथा ॥८५
गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बरा ।
चीरसंवृतदेहाश्च तथा वल्कलवासस ।
उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुरा ॥८६
किरीटिनो लम्बशिखा कम्बुग्रीवा सुवर्चस ।
नानावेषधरा दैत्य नानामाल्यानुलेपना ॥८७
स्वान्यायुधानि संगृह्य प्रदीप्तान्यतितेजसा ।
क्रममाण हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वश ॥८८

उन दैत्यो के पास विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्र थे और वेशभूषा अत्यन्त भयानक थी, उनमे भारी उत्साह था, उनमे से कोई मुर्गे के मुख वाला, को कछुए जैसा, कोई खरगोश जैसा और कोई उल्लू जैसे मुख वाला था ॥८२। कोई गधे जैसा, कोई सूअर से मुख का, कोई मगर, सियार, चूहा, मेढक, भेडिय जैसा था तो कोई बिलाव, हाथी अथवा बडे मुख का था। कोई नक्र, भेड, गाय,

री या मेष जैसे मुख वाला था तो कोई गोह अथवा क्रौंच पक्षी के समान था ॥८३-८४॥ किसी ने शेर की खाल ओढ़ रखी थी, कोई काले मृग का चर्म धारण किये हुए था, किसी ने वल्कल ही पहन रखा था, किसी के सिर पर पाग थी तो किसी के शीश पर मुकुट था और कानों में कुण्डल लटक रहे थे ॥८६॥ कोई किरीटधारी था, किसी की शिखा बहुत लम्बी थी, किसी का कंठ शंख जैसा था, इस प्रकार वे दैत्य अत्यन्त ऐश्वर्यशाली लग रहे थे, उनकी विभिन्न प्रकार की वेश-भूषा थी और वे अनेक प्रकार के गन्धादि धारण किये हुए थे ॥८७॥ अपने अलंकारों में सुसज्जित हुए वे दैत्य अत्यन्त तेजस्वी दिखाई देते थे, उन्होंने वामन भगवान् के वहाँ पहुँचते ही उन्हें सब ओर से घेर लिया ॥८८॥

प्रमथ्य सर्वान्दैतेयान्पादहस्ततलैः प्रभुः ।
रूपं कृत्वा महाभीमं जहाराशु स मेदिनीम् ॥८९
तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ।
नभः प्रक्रममाणस्य नाभ्यां किल समास्थितौ ॥९०
परं प्रक्रममाणस्य जानुदेशे व्यवस्थितौ ।
विष्णोरतुलवीर्यस्य वदन्त्येवं द्विजातयः ॥९१
हृत्वा स पृथिवीं कृत्स्नां जित्वा चासुरपुङ्गवान् ।
ददौ शक्राय त्रिदिवं विष्णुर्बलवतां वरः ॥९२
एष ते वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ।
वेदविद्भिर्द्विजैरेतत्कथ्यते वैष्णवं यशः ॥९३
भूयो भूतात्मनो विष्णोः प्रादुर्भावो महात्मनः ।
दत्तात्रेय इति ख्यातः क्षमया परया युतः ॥९४
तेन नष्टेषु वेदेषु प्रक्रियासु मखेषु च ।
चातुर्वर्ण्ये तु सङ्कीर्णे धर्मे शिथिलतां गते ॥९५
अभिवर्धति चाधर्मे सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते ।
प्रजासु शीर्यमाणासु धर्मे चाकुलतां गते ॥९६

तभी वामन देव ने अपनी आकृति को विकराल बना कर पकड़ और दे-मार कर ही उन दैत्यों को पृथिवी पर गिरा दिया और इस प्रकार

पृथिवी का भार दूर हुआ ॥८६॥ वेदविद् ब्राह्मणों का कहना है कि जब वे भगवान् अपना पराक्रम दिखाते हुए पृथिवी पर रहते थे तब उनके वक्ष-स्थल में सूर्य और चन्द्रमा दिखाई देते थे। जब वे आकाश में स्थित रहते तब सूर्य-चन्द्र नाभि में होते थे तथा साधारण ऊँचाई पर स्थित होने से सूर्य-चन्द्र उनके जानु प्रदेश में देखे जाते थे ॥९०-९१॥ इस प्रकार वामन भगवान् ने भीषण असुरों का संहार करके पृथिवी का भार हरण किया और स्वर्ग राज्य इन्द्र को पुनः दिया। वेद विद् ब्राह्मण का गुणानुवाद इसी प्रकार करते आये हैं, यह भगवान् वामन देव की कथा तुम्हें सुनायी है ॥९२-९३॥ अब मैं उनके दत्तात्रेय अवतार का वृत्तान्त कहता हूं ॥९४॥ हे राजन्! जब वेद और वेदोक्त धर्मों का लोप हो गया और चारों वर्णों के मनुष्यों में विचार संकीर्ण हो गये तथा धर्म के शिथिल होने से अधर्म की वृद्धि हो गई, सत्य के स्थान पर असत्य आ गया तब प्रजा छिन्न भिन्न होने लगी और धर्म भी अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥९५-९६॥

सहयज्ञक्रिया वेदा प्रत्यानीता हि तेन वै।
चातुर्वर्ण्यमसंकीर्णं कृतं तेन महात्मना ॥९७
तेन हैहयराजस्य कार्त्तवीर्यस्य धीमतः।
वरदेन वरो दत्तो दत्तात्रेयेण धीमता ॥९८
एतद्बाहुद्वयं यत्ते मृधे मम कृतेऽनघ।
शतानि दश बाहूनां भविष्यन्ति न संशयः ॥९९
पालयिष्यसि कृत्स्नां च वसुधां वसुधाधिप।
दुर्निरीक्ष्योऽरिवृन्दानां धर्मज्ञश्च भविष्यसि ॥१
एष ते वैष्णवः श्रीमान्प्रादुर्भावोऽद्भुतः शुभः।
कथितो वै महाराज यथाश्रुतमरिन्दम।
भूयश्च जामदग्न्योऽयं प्रादुर्भावो महात्मनः ॥१
यत्र बाहुसहस्रेण विस्मितं दुर्जयं रणे।
रामोऽर्जुनमनीकस्थं जघान नृपतिं प्रभुः ॥१०
रथस्थं पार्थिवं रामः पातयित्वाऽर्जुनं युधि।
धर्षयित्वा यथाकामं क्रोशमानं च मेघवत् ॥१

ऐसे समय में भगवान् दत्तात्रेय ने अवतार लेकर पुनः वेदोक्त कर्म, यज्ञानुष्ठान, विचार-विस्तार एवं चारों आश्रमों को व्यवस्थित किया ॥९७॥ श्री दत्तात्रेय जी ने कार्तवीर्य को वर दिया कि समय-समय पर तुम्हारे यह दो हाथ ही सहस्र हाथ हो जाया करेंगे ॥९८-९९॥ हे कार्तवीर्य ! तुम समस्त पृथिवी का पालन करोगे, तुम धर्म के ज्ञाता होगे और शत्रुओं की दृष्टि तुम्हारी ओर कभी न उठ सकेगी ॥१००॥ जिस प्रकार सुना था, वैसे ही तुम्हें दत्तात्रेय जी का वृत्तान्त सुना दिया, अब परशुराम जी का वृत्तान्त सुनो ॥१०१॥ इस अवतार में भगवान् ने परशुराम रूप से युद्ध में अजेय सहस्रभुज कार्तवीर्य का संहार किया था ॥१०२॥ उन्होंने रथारूढ कार्तवीर्य को पृथिवी पर गिरा दिया और पकड़ कर घसीटा, तब वह मेघ के समान गर्जने और चीत्कार करने लगा ॥१०३॥

कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद भृगुनन्दनः ।
परश्वधेन दीप्तेन ज्ञातिभिः सहितस्य वै ॥१०४
कीर्णा क्षत्रियकोटीभिर्मेरुमन्दरभूषणा ।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया कृता ॥१०५
कृत्वा निःक्षत्रिया चैव भार्गवः सुमहातपाः ।
सर्वपापविनाशाय वाजिमेधेन चेष्टवान् ॥१०६
तस्मिन्यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः ।
मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुंधराम् ॥१०७
वारणांस्तुरगाञ्छीघ्रान्रथं च रथिनां वरः ।
हिरण्यमक्षयं धेनूर्गजेन्द्रांश्च महामनाः ।
ददौ तस्मिन्महायज्ञे वाजिमेधे महायशाः ॥१०८
अद्यापि च हितार्थाय लोकानां भृगुनन्दनः ।
चरमाणस्तपो दीप्तं जामदग्न्यः पुनःपुन ।
तिष्ठते देववद्धीमान्महेन्द्रे पर्वतोत्तमे ॥१०९
एष विष्णोः सुरेशस्य शाश्वतस्याव्ययस्य च ।
जामदग्न्य इति ख्यातः प्रादुर्भावो महात्मनः ॥११०

इस अवस्था में ही परशुराम ने अपने फरसे से उसकी हजारों भुजाएँ

काट कर उनके साथियो को भी मार डाला ॥१०४॥ उन्होंने अपने एक फरसे से ही करोडो करोड क्षत्रियो से युक्त इस पृथिवी को इक्कीस बार क्षत्रिय-विहीन कर दिया ॥१०५॥ इस प्रकार क्षत्रिय विहीन करने के पश्चात् उन्होंने उस पाप की निवृत्ति के लिए अश्वमेघ यज्ञ किया ॥१०६॥ जिसमे उन्होने हाथी, घोडे, रथ, अपरिमित स्वर्ण, गौ आदि विविध दक्षिणायें दी और फिर मरीचिपुत्र कश्यप को सम्पूर्ण पृथिवी दान कर दी ॥१०७-१०८॥ वे अब भी लोक कल्याणार्थ घोर तपस्या करते हुए देवताओ के समान, महेन्द्र पर्वत पर निवास करते हैं ॥१०९॥ हे राजन् ! यह शाश्वत और अव्यय भगवान् विष्णु के परशुरामावतार की कथा मैंने कही है ॥११०॥

चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुर सर ।
राज्ञो दशरथस्यार्थे पुत्र पद्मायतेक्षण ॥१११
कृत्वाऽऽत्मान महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वर ।
लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपम ॥११२
प्रसादनार्थं लोकस्य रक्षसा निधनाय च ।
धर्मस्य च विवृद्धयर्थ जज्ञे तत्र महायशा ॥११३
तमप्याहुर्मनुष्येन्द्र सर्वभूतपतेस्तनुम् ।
यस्मै दत्तानि चास्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता ॥११४
वधार्थं देवशत्रूणा दुर्धराणि सुरैरपि ।
यज्ञविघ्नकरौ येन मुनीना भावितात्मनाम् ॥११५
मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिनां वरौ ।
निहतो च निराशौ च कृतौ तेन महात्मना ॥११६
वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मन ।
भग्न माहेश्वर चाप क्रीडता लीलया पुरा ॥११७

चौबीसवें युग मे भगवान् विष्णु ने महामुनि विश्वामित्र को आगे करके अपने को चार भाग मे विभक्त किया और राजा दशरथ के घर अवतरित हुए। सूर्य के समान तेजस्वी भगवान् राम ने इस अवतार में लोक रंजन, राक्षसोन्मूलन

.था धर्म-वृद्धि साधन किया था ॥१११-११२॥ ससारी व्यक्ति उन्हें राजा कहते
, देवताओं के शत्रु राक्षसों को मारने के लिये विश्वामित्र जी ने उन्हें देवताओं
ने भी दुर्लभ महास्त्र अस्त्र प्रदान किया, उन अस्त्रों के प्रभाव से उन्होंने यज्ञ-
विध्वसक मारीच-सुबाहु नामक राक्षसों को अपने बाणों की मार से दूर फेंका
॥११४ ११३॥ राजा जनक द्वारा किये गये यज्ञ में सम्मिलित होकर उन्होंने
लीलापूर्वक ही शिव धनुष को तोड़ दिया ॥११७॥

य समा सर्वधर्मज्ञश्चतुर्दश वनेऽवसत् ।
लक्ष्मणानुचरो राम सर्वभूतहिते रत ॥११८
रुक्मिणी यस्य पार्श्वस्था सीतेति प्रथिता जनै ।
पूर्वोचिता तस्य लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति ॥११९
चतुर्दश तपस्तप्त्वा वने वर्षाणि राघव ।
जनस्थाने वसन्कार्यं त्रिदशाना चकार ह ।
सीताया पदमन्विच्छँल्लक्ष्मणानुचरो विभु ॥१२०
विराध च कबध च राक्षसौ भीमविक्रमौ ।
जघान पुरुषव्याघ्रौ गधर्वौ शापवीक्षितौ ॥१२१
हुताशनार्केन्दुतडिद्घनाभै प्रतप्तजाम्बूनदचित्रपुखै ।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यसारै शरै शपीरेण वियोजितौ बलात् ॥१२२
सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबल ।
वाली विनिहतो युद्धे सुग्रीवश्चाभिषेचित ॥१२३
देवासुरगणाना हि यक्षगधर्वभोगिनाम् ।
अवध्य राक्षसेन्द्र त रावण युधि दुर्जयम् ॥१२४
युक्त राक्षसकोटीभिर्नीलाजनचयोपमम् ।
त्रैलोक्यरावण घोर रावण राक्षसेश्वरम् ॥१२५
दुर्जय दुर्धर दृप्त शार्दूलसमविक्रमम् ।
दुर्निरीक्ष्य सुरगणै वरदानेन दर्पितम् ॥१२६
जघान सचिवै सार्द्ध ससैन्य रावण युधि ।
महाभ्रघनसकाश महाकाय महाबलम् ॥१२७

तमागस्कारिणं घोर पौलस्त्य युधि दुर्जयम् ।
सभ्रातृपुत्रसचिवं ससैन्य क्रूरनिश्चयम् ॥१२८

रावणं निजघानाशु रामो भूतपति. पुरा ।
मधोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम दानव. ॥१२६

हतो मधुवने वीरो वरदृप्तो महासुरः ।
समरे युद्धशौण्डेन तथा चान्येऽपि राक्षसा ॥१३०

एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृता वरः ।
दशाश्वमेधाञ्जारूथ्यानाजहार निरर्गलान् ॥१३१

फिर सब प्राणियो के कल्याण कर्म मे लगे हुए श्रीराम ने, लक्ष्मण सहि[त] चौदह वर्ष वनवास किया ॥११८॥ भगवती लक्ष्मी सीता के रूप मे अवत[रित हो] ग्रहण कर राम की भार्या हुई और वनवास के समय [उ]नके साथ ही गई ॥११६[॥] चौदह वर्ष तक वन मे रह कर श्रीराम ने देव[क]ार्य पूर्ण किया। सीताजी [की] खोज मे लक्ष्मण के सहित जाते हुए उन्होंने, विराध, और कबन्ध नामक राक्ष[सो] को अपने अमोघ बाणो से नष्ट कर [दि]या, जिससे उन राक्षसो को गंधर्व [दे]ह की पुनः प्राप्ति हुई ॥१२०-१२२॥ अत्यन्त बली बालि का वध करके राम [ने] उसके भाई सुग्रीव [को] राज्य पर अभिषिक्त किया ॥१२३॥ जो राक्षस रा[ज] रावण देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस और गंधर्वों द्वारा भी नही मारा जा सकता [था] तथा [ब]ड़े राक्षस जिसकी रक्षा मे सदा तत्पर रहते थे, जो वर प्राप्ति से बा[द] मदोन्मत्त हो गया था और जो सिंह के समान पराक्रमी तथा नीलांजन [के] नील मेघ के समान विशालकाय था उस क्रूर-हृदय, दुराचारी, अपराधी [एवं] अजेय रावण को उसके भाई, पुत्र, मंत्री और सेना के सहित श्रीराम ने [न]ष्ट कर दिया। उन्हीं राम ने मधुतनय लवणासुर एव अन्यान्य राक्षसो को भी म[ारा] तथा इन महान कार्यों को पूर्ण करके उन्होंने अयोध्या जाकर दस अश्वमेध [यज्ञ] किये ॥१२४-१३१॥

नाध्यः मन्ताशुभा वाघो नाशुल मारुतो ययौ ।
न वित्तहरणं त्वासीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥१३२

पर्यदेवन्न विधवा नानर्थाश्चाभवस्तदा ।
सर्वमासीज्जगद्दान्त रामे राज्य प्रशासति ॥१३३
न प्राणिना भय चापि जलानिलनिघातजम् ।
न च स्म वृद्धा बालाना प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥१३४
ब्रह्म पर्यचरत्क्षत्र विश क्षत्रमनुव्रता ।
नार्यो नात्यचरन्भर्तृन्भार्यां नात्यचरत्पति ॥१३५
सर्वमासीज्जगद्दान्त निर्दस्युरभवन्मही ।
राम एकोऽभवद्भर्त्ता राम पालयिताऽभवत् ॥१३६
आयुर्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिण ।
अरोगा प्राणिनश्चासन्रामे राज्य प्रशासति ॥१३७

हे राजन् ! उस रामराज्य में कभी कोई अशुभ बात सुनने को नहीं [मिल]ती थी, समीर सदैव अनुकूल प्रवाहित होती थी, कभी कोई स्त्री विधवा नहीं [हो]ती और चोरी का नाम भी न था, कभी किसी को जल या वायु से कष्ट नहीं [थ]ा, कभी किसी वृद्ध को अपनी सन्तान का प्रेत-कार्य नहीं करना पडता था, [क्ष]त्रिय ब्राह्मणों की सेवा करते, वैश्य क्षत्रियो की और शूद्र तीनों वर्णों की सेवा [म]े तत्पर थे, पति-पत्नी में भी कभी कोई किसी पर परस्पर अत्याचार नहीं करता [थ]ा ॥१३३-१३५॥ एकमात्र राम ही सबके राजा और पालक थे, इसलिये सम्पूर्ण [वि]श्व सुखी तथा दस्युओ से हीन था ॥१३६॥ मनुष्यों की परमायु हजार वर्ष [क]ी थी, एक एक मनुष्य के हजार-हजार पुत्र होते थे, रामराज्य में सभी रोग-[र]हित रहते थे ॥१३७॥

देवतानामृषीणा च मनुष्याणा च सर्वश ।
पृथिव्या समवायोऽभूद्रामे राज्य प्रशासति ॥१३८
गाथा अप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जना ।
रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्य तस्य धीमत. ॥१३९
श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषिता ।
आजानुबाहु सुमुख. सिहस्कन्धो महाभुज. ॥१४०

छिन्नं बाहुसहस्रं च बाणस्याद्भुतकर्मणः ।
नरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः ॥१४९
हृतानि च महीपानां सर्वरत्नानि तेजसा ।
दुराचाराश्च निहताः पार्थिवाश्च महीतले ॥१५०
नवमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पुराऽभवत् ।
वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकर्ण्यपुरःसरः ॥१५१
एको वेदश्चतुर्धा तु कृतस्तेन महात्मना ।
जनितो भारतो वंश सत्यवत्याः सुतेन च ॥१५२
एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः ।
अतीता. कथिता राजन्कथ्यन्ते चाप्यनागताः ॥१५३

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् ने माथुर कल्प मे लोक कल्याणार्थ अवतार ग्रहण कर महात्मा श्रीकृष्ण के रूप मे जो कार्य किये, का वर्णन करता हूँ ॥१४६॥ कृष्णावतार मे उन्होने शाल्व, मैन्द, द्विविद, स, अरिष्ट, वृषभ, केशी, पूतना, कुवलयापीड हाथी, चाणूर, मुष्टिक आदि नेक मनुष्य रूपधारी दैत्यो का सहार किया था । उन्होने बाणासुर की हजार जाएँ काट डाली और अत्यन्त बली यवनराज और नरकासुर को भी मारा था १४७-१४९॥ उन्होने अनेक दुराचारी नरेशो का वध करके उनका धन, रत्नादि न लिया ॥१५०॥ अट्ठाईसवें द्वापर युग मे भगवान् नारायण का नौवाँ अव- र हुआ था, उस समय वे जातूकर्ण्य के साथ वेदव्यास के रूप मे अवतीर्ण हुए १५१॥ उन सत्यवती-पुत्र ने वेद को चार भागो में विभक्त किया तथा भरत- ा को उत्पन्न किया था ॥१५२॥ हे राजन् ! मैंने इस प्रकार तुम्हें भगवान् अतीत मे हुए अवतारो का वृत्तान्त सुनाया, अब आगे होने वाले अवतारो वर्णन कर रहा हूँ ॥१५३॥

कल्किर्विष्णुयशा नाम शम्भलग्रामके द्विजः ।
सर्वलोकहितार्थाय भूयश्चोत्पत्स्यते प्रभुः ॥१५४
दशमो भाव्यसंपन्नो याज्ञवल्क्यपुरःसरः ।
क्षपयित्वा च तान्सर्वान्भाविनाऽर्थेन चोदितान् ॥१५५

दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।
अयोध्याधिपतिर्भूत्वा रामो राज्यमकारयत् ॥१४१
ऋक्सामयजुषां घोषो ज्याघोषश्च महात्मनः ।
अव्युच्छिन्नोऽभवद्राज्ये दीयतां भुज्यतामिति ॥१४२
सत्त्ववान्गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ।
अतिचन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरथिर्बभौ ॥१४३
ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
हित्वाऽयोध्यां दिवं यातो राघवः स महाबलः ॥१४४
एवमेष महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः ।
रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे प्रभुः ॥१४५

उस समय देवता, मनुष्य और ऋषि सब एक ही सभा में साथ-साथ बैठते थे। पुराणवेत्ताओं ने उनका यशगान करते हुए कहा है कि राम में सभी यथार्थ तत्त्वों का समावेश था। उनका श्याम वर्ण, लाल नेत्र और मुख तेजस्वी था, वे मितभाषी और लम्बी भुजाओं वाले थे, उनका स्कन्ध प्रदेश सिंह के समान उन्नत था, वे युवा, बलवान और गुणवान थे, उन्होंने ग्यारह हजार वर्ष तक अयोध्या का राज्य किया था ॥१३८॥ उनके राज्य में प्रत्यंचा की टंकार तथा ऋक्, साम और यजुर्वेद की ध्वनि सदा होती रहती थी, सर्वत्र दान दो और भोग करो की ध्वनि कर्णगोचर होती थी, राम के शौर्य के समक्ष सूर्य-चन्द्र भी लजाते थे ॥१४२-१४३॥ हे राजन्! इस प्रकार राघवेन्द्र राम ने अनुचरों सहित रावण को मारा और प्रचुर दक्षिणा वाले सौ यज्ञों को करके वे परम धाम पधारे ॥१४४-१४५॥

अपरः केशवस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः ।
विख्यातो माथुरे कल्पे सर्वलोकहिताय वै ॥१४६
यत्र शाल्वं च मैन्दं च द्विविदं कंसमेव च ।
अरिष्टमृषभं केशिं पूतनां दैत्यदारिकाम् ॥१४७
नागं कुवलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा ।
दैत्यान्मानुषदेहस्थान्सूदयामास वीर्यवान् ॥१४८

छिन्नं बाहुसहस्रं च बाणस्याद्भुतकर्मणः ।
नरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः ॥१४९
हृतानि च महीपानां सर्वरत्नानि तेजसा ।
दुराचाराश्च निहताः पार्थिवाश्च महीतले ॥१५०
नवमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पुराऽभवत् ।
वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकर्ण्यपुरःसरः ॥१५१
एको वेदश्चतुर्धा तु कृतस्तेन महात्मना ।
जनितो भारतो वंश सत्यवत्याः सुतेन च ॥१५२
एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः ।
अतीताः कथिता राजन्कथ्यन्ते चाप्यनागताः ॥१५३

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् ने माथुर कल्प में लोक
ल्याणार्थ अवतार ग्रहण कर महात्मा श्रीकृष्ण के रूप में जो कार्य किये,
ा वर्णन करता हूँ ॥१४६॥ कृष्णावतार में उन्होंने शाल्व, मैन्द, द्विविद,
अरिष्ट, वृषभ, केशी, पूतना, कुवलयापीड हाथी, चाणूर, मुष्टिक आदि
ः मनुष्य रूपधारी दैत्यों का संहार किया था । उन्होंने बाणासुर की हजार
एँ काट डाली और अत्यन्त बली यवनराज और नरकासुर को भी मारा था
४७-१४६॥ उन्होने अनेक दुराचारी नरेशो का वध करके उनका धन, रत्नादि
लिया ॥१५०॥ अट्ठाईसवें द्वापर युग में भगवान् नारायण का नौवाँ अव-
हुआ था, उस समय वे जातूकर्ण्य के साथ वेदव्यास के रूप में अवतीर्ण हुए
५१॥ उन सत्यवती-पुत्र ने वेद को चार भागो में विभक्त किया तथा भरत-
को उत्पन्न किया था ॥१५२॥ हे राजन् ! मैंने इस प्रकार तुम्हें भगवान्
तीत में हुए अवतारों का वृत्तान्त सुनाया, अब आगे होने वाले अवतारों
वर्णन कर रहा हूँ ॥१५३॥

कल्किर्विष्णुयशा नाम शम्भलग्रामके द्विजः ।
सर्वलोकहितार्थाय भूयश्चोत्पत्स्यते प्रभुः ॥१५४
दशमो भाव्यसंपन्नो याज्ञवल्क्यपुरःसरः ।
क्षपयित्वाच तान्सर्वान्भाविनार्थेन चोदितान् ॥१५५

गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति सानुग ।
तत कुले व्यतीते तु सामात्ये सहसैनिके ॥१५६
नृपेष्वथ प्रनष्टेषु तदा त्वप्रग्रहा प्रजा ।
क्षयेन निवृ ते चैव हत्वा चान्योन्यमाहवे ॥१५७
परस्परहृतस्वाश्च निराक्रन्दा सुदु खिता ।
एव कष्टमनुप्राप्त कलिसध्याशके तदा ।
प्रजा क्षय प्रयास्यन्ति सार्द्धं कलियुगेन ह ॥१५८
क्षीणे कलियुगे तस्मिस्तत कृतयुग पुन ।
प्रपत्स्यते यथान्याय स्वभावादेव नान्यथा ॥१५९
एते चान्ये च बहवो दिव्या देवगुणैर्युता ।
प्रादुर्भावा पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभि ॥१६०
यत्र देवापि मुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्तने ।
पुराण वर्तते यत्र वेदश्रुतिसमाहितम् ॥१६१
एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्त्तनम् ।
कीर्तित कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरो प्रभु ॥१६२
प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावानुकीर्त्तनात् ।
विष्णोरतुलवीर्यस्य य श्रृणोति कृताञ्जलि ॥१६३
एतास्तु योगेश्वरयोगमाया श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापै ।
ऋद्धिं समृद्धिं विपुलाश्च भोगान्प्राप्नोति सर्वं भगवत्प्रसादात्॥

दसवें अवतार का कार्यकाल पूर्ण होने पर भगवान् लोक कल्या
शम्भल ग्राम म विष्णुयशा नामक ब्राह्मण घर कल्की नाम से अवतीर्ण होंगे ॥१
उस समय व याज्ञवल्क्य के साथ क्षणिकवादी बौद्धों को पहिले शास्त्रार्थ मे
युद्ध में जीतेंगे और भावी कार्यों को सम्पन्न करने के लिये गगा-यमुना के
वाले प्रदेश में शान्ति-लाभ करेंगे । फिर नारी आदि के अपहरण जैसे ि
में पड कर उस समय के राजा, मन्त्री और सैनिक आदि परस्पर युद्ध कर
जायेंगे तब विश्व में अराजकता का साम्राज्य हो जायगा, । इसलिये प्र
परस्पर लडेंगे और जो बलवान होंगे वे निर्बलों से सर्वस्व छीन लेंगे । मा

कलिकाल के सध्यांश का होगा, इसलिये उपाय हीन, अत्यन्त दुःख और कलह में संतप्त हुई प्रजा कलियुग की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो जायगी ॥१५५-१५८॥ इस प्रकार कलियुग के समाप्त होने पर सत्ययुग का पुनः आरम्भ होगा और प्रजाजन स्वभाव से ही न्यायप्रिय हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है ॥१५९॥ ब्रह्मवादी ऋषियो ने भगवान् विष्णु के ऐसे अनेक अवतारों का पुराणों में वर्णन किया है, जिन्हें सुन कर देवगण भी चकित हो जायँगे तथा वेद सम्मत पुराणों का अधिकाधिक प्रसार होगा ॥१६०-१६१॥ सब के गुण एवं कीर्तन के योग्य भगवान् विष्णु के अवतारो को यहाँ मैंने संक्षेप में कहा है ॥१६२॥ जो मनुष्य इन असीमित पराक्रम वाले विष्णु की अवतार गाथाओं को विनीत भाव से श्रवण करता है, उसके पितरगण प्रसन्न होते हैं ॥१६३॥ जो हाथ जोड़ कर श्रद्धा-पूर्वक भगवान् की योगमाया का वृत्तान्त श्रवण करते हैं, वे सभी पापों से छूट जाते हैं और भगवत्कृपा से उन्हें विपुल समृद्धि की प्राप्ति होती तथा सब प्रकार के काम्य भोग सुलभ होते हैं ॥१६४॥

॥ भगवान् का ईश्वरत्व और तारकामय संग्राम ॥

विश्वत्वं शृणु मे विष्णोर्हरित्वं च कृते युगे ।
वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च ॥१
ईश्वरत्वं च तस्येदं च तस्येदं गहना कर्मणा गतिम् ।
सम्प्रत्यतीता भाव्या च शृणु राजन्यथातथम् ॥२
अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो यत्रैष भगवान्प्रभुः ।
नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्यय एव च ॥३
एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत्कृते युगे ।
ब्रह्मा शक्रश्च सोमश्च धर्मः शुक्रो बृहस्पतिः ॥४
अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दन ।
एष विष्णुरिति ख्यात इन्द्रादवरजोऽभवत् ॥५
वृत्ते वृत्रवधे तात वर्त्तमाने कृते युगे ।
आसीत्त्रैलोक्यविख्यात संग्रामस्तारकामय ॥६

तत्रासन्दानवा घोरा· सर्वे संग्राममर्दपिताः ।
घ्नन्ति देवगणान्सर्वान्सयक्षोरगराक्षसान् ॥७

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन्! अब भगवान् विष्णु के सत्यगु... विश्वत्व, देवलोक में वैकुण्ठत्व और मर्त्यलोक में कृष्णत्व तथा विभिन्न युगों में किये गये उनके कार्यों का वर्णन करता हूँ ॥१-२॥ वही अविनाशी भगवान् विश्व के स्रष्टा, अनन्तात्मा एव अव्यक्त है, देह धारण करके वही 'हरि' कहे गये, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा, धर्मराज, शुक्र, और बृहस्पति यह सब उन्हीं के रूप हैं, वही अदिति के गर्भ से उत्पन्न इन्द्रानुज विष्णु हुए थे ॥३-५॥ सत्ययुग में वृत्रासुर वध के पश्चात् विश्व-विख्यात एक तारकामय संग्राम हुआ था, उसमें दानवों ने रणोन्मत्त होकर देवता, गंधर्व, यक्ष, रक्ष और नागादि का वध करना आरम्भ किया ॥६-७॥

ते वध्यमाना विमुखा क्षीणप्रहरणा रणे ।
त्रातारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं हरिम् ॥८
एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्षिण ।
सार्कचन्द्रग्रहगणं छादयन्तो नभस्तलम् ॥९
चञ्चद्विद्यु द्गणाविद्धा घोरा निर्ह्रादकारिण ।
अन्योन्यवेगाभिहता· प्रववु सप्त मारुता ॥१०
दीप्ततोयाशनीपातैर्वज्रवेगानिलाकुले· ।
ररास घोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम् ॥११
पेतुरुल्कासहस्राणि मुहुराकाशगान्यपि ।
न्युब्जानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ॥१२
तान्घनौघान्सतिमिरान्दोर्भ्यामुत्क्षिप्य स· प्रभुः ।
वपुः संदर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरि· ॥१३
हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजशोभिते ।
चन्द्रार्कचक्ररचिते मन्दराक्षधृतान्तरे ॥१४

उन दैत्यों के भयंकर प्रहारों से व्याकुल एवं निरस्त्र हुए देवता, गंध आदि युद्धक्षेत्र को छोड़ कर भाग पड़े और भगवान् विष्णु की शरण में पहुँचे ॥८

उस समय आकाश में काले-काले बादल छा गये जिससे ग्रहों के सहित सूर्य-चन्द्र भी आच्छादित हो गये ।।९।। सप्तवायु अत्यन्त वेग से प्रवाहमान् हुए, मेघों के पारस्परिक संघर्ष से भयानक विद्युत चमकने लगी और घोर गर्जन होने लगा ।।१०।। एक साथ ही वज्रपात एवं उल्कापात होने लगा, तप्त जल की वर्षा होने लगी, इन उत्पातों से प्रतीत होता था कि आकाश जल रहा है और पिघल-पिघल कर नीचे आ रहा है, आकाश में उड़ते हुए विमान डांवाडोल होने लगे ।।११-१२।। ऐसे समय में ही भगवान् विष्णु उस अन्धकार राशि को चीर कर दिव्य रूप में प्रकट हुए ।।१३।। वे दिव्य रथ पर आरूढ थे, उस रथ में हरे रंग के घोड़े युक्त थे, ध्वजा पर गरुड विराजमान थे, चन्द्रमा और सूर्य उस रथ के चक्र थे, मँदराचल पर्वत उसका धुरा था ।।१४।।

अनन्तरश्मिसंयुक्ते ददृशे मेरुकूवरे ।
तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे ।।१५
भयेष्वभयदं व्योम्नि देवा दैत्यपराजिता ।
ददृशुस्ते स्थितं देवं दिव्यलोकमये रथे ।।१६
ते कृताञ्जलयः सर्वे देवा शक्रपुरोगमा ।
जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणं गता ।।१७
स तेषा तां गिरं श्रुत्वा विष्णुर्दैवतदैवतं ।
मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे ।।१८
आकाशे तु स्थितो विष्णु मोत्तमे पुरुषोत्तम ।
उवाच देवता सर्वा सप्रतिज्ञमिदं वच ।।१९
शान्तिं भजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुता गणा ।
जिता मे दानवा सर्वे त्रैलोक्य प्रतिगृह्यताम् ।।२०
ते तस्य सत्यसन्धस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिता ।
देवा प्रीतिं परां जग्मु प्राप्येवामृतमुत्थितम् ।।२१
ततस्तम संह्रियते विनेशुश्च बलाहका ।
प्रववुश्च शिवा वाता प्रसन्नाश्च दिशो दश ।।२२

भगवान् शेष अश्वों की रास थे, सुमेरु पर्वत कूबर था, तारागण उसके अद्भुत बेल बूटे थे, ग्रह-नक्षत्र बंधन थे ।।१५।। दैत्यों से हारे हुए देवताओं ने जब उन अभयदाता प्रभु को देखा तभी उच्च स्वर से जय-जयकार करते हुए शरण में गये ।।१६ १७।। उन सब की आर्त्तवाणी सुन कर भगवान् ने युद्ध में दैत्यों का वध करने की प्रतिज्ञा करते हुए कहा ।।१८-१९।। हे देवगण ! भय मत करो, इन दैत्यों को मैं अभी हरा दूँगा, तब तुम त्रैलोक्य के राज्य पर पुन अधिकार करोगे ।।२०।। भगवान् की वाणी सुन कर देवगण को वैसा ही आनन्द प्राप्त हुआ जैसा क्षीरसागर से अमृत प्राप्त करने पर हुआ था ।।२१।। इसके पश्चात् अंधकार दूर हुआ मेघ छिन्न भिन्न हो गये, सुखदायक वायु प्रवाहित होने लगा और दशों दिशायें स्वच्छ हो गयी ।।२२।।

।। देवासुर-संग्राम ।।

ताभ्या बलाभ्या संजज्ञे तुमुलो विग्रहस्तदा ।
सुराणामसुराणा च परस्परजयैषिणाम् ।।१
दानवा दैवतैं सार्द्धं नानाप्रहरणोद्यता ।
समीयुर्युध्यमाना वै पर्वता पर्वतैरिव ।।२
तत्सुरासुरसंयुक्त युद्धमत्यद्भुत बभौ ।
धर्माधर्मसमायुक्त दर्पेण विनयेन च ।।३
ततो रथै प्रजविनैर्वाहनैश्च प्रचोदितै ।
उत्पतद्भिश्च गगन सासिहस्तै समन्तत ।।४
विक्षिप्यमाणै र्मुशलै सप्रेष्यद्भिश्च सायकै ।
चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैश्च मुद्गरै ।।५
तद्य द्धमभवद्घोर देवदानवसकुलम् ।
जगतस्त्रासजनन युगसवर्त्त कोपमम् ।।६
स्वहस्तमुक्तै परिघै क्षिप्यमाणैश्च पर्वतै ।
दानवा समरे जघ्नुर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ।।७
ते वध्यमाना बलिभिर्दानवैर्जितकाशिभि ।
विषण्णमनसो देवा जग्मुरार्ति परां मृधे ।।८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! इसके पश्चात् देवताओं और दैत्यों में घोर युद्ध हुआ ॥१॥ जैसे पर्वत पर पर्वत टूट रहा हो, उस प्रकार देवताओं और दैत्यगण विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्र धारण कर टूट पड़े ॥२॥ जैसे धर्म और अधर्म में अथवा दर्प और विनय में द्वन्द्व होता है, उसी प्रकार देवता-दैत्यों में भीषण और अद्भुत युद्ध होने लगा ॥३॥ वेगवत रथ, दौड़ते हुए वाहन, हाथ में तलवार लेकर उछलते हुए वीर फेंके हुए मूसल, छोड़े हुए बाण तथा गिरते हुए मुद्गर आदि सर्वत्र दिखाई दे रहे थे, सम्पूर्ण विश्व में प्रलय जैसा आतंक छा गया, दानवों ने परिघों तथा शिलाखण्डों से भी देवताओं पर प्रहार किये। विजयोन्मुख दैत्यों द्वारा पीड़ित हुए देवता युद्धस्थल में विषण्णमुख खड़े हो गये ॥४-८॥

तेऽस्त्रजालैः प्रमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः ।
भिन्नोरस्का दितिसुतैर्वेमू रक्तं व्रणैर्मुहुः ॥९
स्यन्दिताः पाशजालैश्च निर्यत्नाश्च शरैः कृताः ।
प्रविष्टा दानवी माया न शेकुस्ते विचेष्टितुम् ॥१०
सस्तम्भितमिवाभाति निष्प्राणसदृशाकृति ।
बलं सुराणामसुरैर्निष्प्रयत्नायुधं कृतम् ॥११
मायापाशान्विकर्षंश्च भिन्दन्वज्रेण तान्शरान् ।
शक्रो दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचनः ॥१२
स दैत्यान्प्रमुखे हत्वा तद्दानवबलं महत् ।
तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत् ॥१३
तेऽन्योन्यं नावबुध्यन्त देवास्तान्दानवानपि ।
घोरेण तमसाविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा ॥१४
मायापाशैर्विमुक्ताश्च यत्नवन्तः सुरोत्तमाः ।
वपूंषि दैत्यसंघानां तमोभूतान्यपातयन् ॥१५
अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसः ।
पेतुस्ते दानवगणाश्छिन्नपक्षा इवाचलाः ॥१६

दानवों के परिघ-प्रहार से अनेक देवताओं के मस्तक फट गए बहुतों के हृदय विदीर्ण होगये जिससे रक्त की धारा प्रवाहित हो चली, देव सेना

दानवों के पाशजालों में बँध कर चेष्टाहीन हो गई और दानवी माया के प्रभाव-वश यह नितान्त अशक्त होगये ॥९ १०॥ मृतक के समान निश्चेष्ट भाव से खड़े हुए देवताओं के सभी शस्त्रास्त्र व्यर्थ होगये, दैत्यों ने उनका सभी पराक्रम हर लिया ॥११॥ यह देख कर इन्द्र अपने वज्र को लेकर दैत्य-सेना पर टूट पड़े, जो उनके सामने आया उसी को मार दिया और फिर तामस अस्त्र समूह से उन्होंने घोर अंधकार कर दिया, जिसके कारण यह पता लगना ही कठिन था कि कौन देवता और कौन दैत्य है ? ॥१२-१४॥ इस प्रकार दानवी माया से मुक्त होकर पूर्ण प्रयत्न पूर्वक देवगण दैत्यों को नष्ट करने लगे, उस घोर अन्धकार कारण भयभीत हुए राक्षस धराशायी होगये ॥१५-१६॥

तद्घनीभूतदैत्यानामन्धकारमहार्णवम् ।
प्रविष्ट बलमुत्त्रस्त तमोभूतमिवाबभौ ॥१७
तदाऽसृजन्महामाया मयस्ता तामसीं दहन् ।
युगान्ताग्निमिवात्युग्रा सृष्टामौर्वेण वह्निना ॥१८
सा ददाह तम सर्वं माया मयविकल्पिता ।
दैत्याश्च दीप्तवपुष सद्य उत्तस्थुराहवे ॥१९
मायामौर्वी समासाद्य दह्यमाना दिवौकस ।
भेजिरे चन्द्रविषय शीतांशुसलिलेशयात् ॥२०
ते दह्यमाना ह्यौर्वेण तेजसा भ्रष्टतेजस ।
शशंसुर्वज्रिणो देवा सतप्ता शरणैषिण ॥२१
सतप्ते मायया सैन्ये दह्यमाने च दानवै ।
चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत् ॥२२

अत्यंत भयभीत दानवों के अधकार मे विलीन होने पर सर्वत्र अधकार छागया और प्रलयकाल उपस्थित होने पर और्व अग्नि जिस लोक-दाहिनी माया को उत्पन्न करता है, उसी माया की मय दानव ने रचना की ॥१७-१८॥ उसके प्रभाव से सम्पूर्ण अन्धकार मिट गया और दैत्यों ने तुरन्त आक्रमण कर दिया। तब मायामयी अग्नि से रक्षा पाने के लिये देवगण ने चन्द्रमा की शरण ली १९-२०॥ उस और्व अग्नि से देवगण निस्तेज और सन्तप्त होगये थे। शरण

प्राप्ति के लिये उन्होने इन्द्र से उसका वर्णन किया ॥२१॥ इस प्रकार जब उस माया से देवसेना व्याकुल हो उठी, तब इन्द्र के सब बात कहने पर जलपति वरुण उनसे बोले ॥२२॥

सैषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा ।
और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना ॥२३
तस्मिस्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्वीर्यैषा न सशय ।
शापो ह्यस्या पुरा दत्त सृष्टा येनैव तेजसा ॥२४
यद्य षा प्रतिहन्तव्या कर्त्तव्यो भगवान्सुखी ।
दीयता मे सखा शक्र तोययोनिर्निशाकर ॥२५
तेनाह सह सगम्य यादोभिश्च समावृत ।
मायामेता हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्न सशय ॥२६

वरुण ने कहा—हे देवराज ! पूर्वकाल मे ऊर्व पुत्र अग्नि ने जिस माया को रचा था, यह वही दुर्लभ माया है ॥२३॥ इस माया के रचयिता और्व अग्नि का कथन है कि यह माया जीवन पर्यन्त अक्षुण्ण प्रभाव वाली होकर हिरण्यकशिपु के पास रहेगी ॥२४॥ यदि इस माया को नष्ट करके सब को सुखी करना है तो जल से उत्पन्न हुए चन्द्रमा को मेरे साथ करिये, तब चन्द्रमा और सभी जल जन्तुओ को साथ लेकर मैं इस माया को निःसन्देह नष्ट कर दूँगा ॥२५-२६॥

॥ देवताओ का दैत्यो को विफल करना ॥

एवमस्त्विति सहृष्ट शक्रस्त्रिदशवर्द्धन ।
सदिदेशाग्रत सोम युद्धाय शिशिरायुधम् ॥१
गच्छ सोम सहायत्व कुरु पाशधरस्य वै ।
असुराणा विनाशाय जयाय च दिवौकसाम् ॥२
त्वमप्रतिमवीर्यश्च ज्योतिषा चेश्वरेश्वर ।
त्वन्मय सर्वलोकाना रस रसविदो विदु ॥३
क्षयवृद्धी तवाव्यक्ते सागरस्येव मण्डले ।
परिवर्त्तस्यहोरात्र काल जगति योजयन् ॥४

श्वेतभानुर्हिमतनुर्ज्योतिषामधिपः शशी ।
अब्दकृत्कालयोगात्मा इज्यो यज्ञरसोऽव्ययः ॥५
ओषधीशः क्रियायोनिरम्भोयोनिरनुष्णभाक् ।
शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः ॥६
त्वं कान्तिः कान्तवपुषां त्वं सोमः सोमवृत्तिनाम् ।
सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट् ॥७
तद्गच्छ त्वं सहानेन वरुणेन वरूथिना ।
शमयस्वासुरीं मायां यया दह्याम संगरे ॥८
यन्मां वदसि युद्धार्थे देवराज जगत्पते ।
एष वर्षामि शिशिरं दैत्यमायापकर्षणम् ॥९
एतान्मच्छीतनिर्दग्धान्पश्य त्वं हिमवेष्टितान् ।
विमायान्विमदांश्चैव दानवांस्त्वं महामृधे ॥१०

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! देवताओं के आनन्द की वृद्धि करने वाले इन्द्र ने वरुण की बात सुन कर चन्द्रमा से कहा ॥१॥ इन्द्र बोले—चन्द्र ! तुम असुरों के विनाश और देवताओं की जीत के लिये युद्ध में वरुण की सहायता करो ॥२॥ क्योंकि तुम महाबली और प्रकाशदाताओं के अधीश्वर हो। रसज्ञों ने तुम्हें सम्पूर्ण प्राणियों का रस कहा है ॥३॥ समुद्र के समान तुम्हारा क्षय और वृद्धि दुर्ज्ञेय है, तुम विश्व में दिन-रात्रि को प्रकट करते हुए अपने ही मंडल में भ्रमण करते हो ॥४॥ तुम श्वेत, भानु तथा हिमज्योति हो, तुम नक्षत्रों के स्वामी तथा संवत्सर के प्रवर्त्तक हो, तुम काल योगात्मक, यज्ञ, यज्ञरस, औषधियों के स्वामी, शीतल, शीतांशु, अमृताधार, छन्दोयोनि, श्वेतवाहन, चपल, सोमपायी की सोम रस तथा जगत् के प्राणियों के सौम्य रूप हो, तुम अन्धकार के नाशक और नक्षत्रों के अधिपति हो ॥५-७॥ अतः तुम सेनाध्यक्ष वरुण के साथ गमन करो, जिससे हम शीघ्र ही इस दग्ध करने वाली आसुरी माया से मुक्त हो सकें ॥८॥ चन्द्रमा ने कहा—हे देवेन्द्र ! मैं युद्ध स्थल में जाकर शीघ्र ही हिम की वर्षा करता हूँ, जिसके प्रभाव से आपके देखते-देखते ही यह माया नष्ट हो जायगी। आप इन सब दैत्यों को अभी हिमाच्छादित तथा गर्व-रहित देखो ॥९-१०॥

ततो हिमकरोत्सृष्टा: सवाप्पा हिमवृष्टय: ।
वेष्टयन्ति स्म तान्घोरान्दैत्यान्मेघगणा इव ॥११
तौ पाशशुक्लाशुधरौ वरुणेन्दू महारणे ।
जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशघातैश्च दानवान् ॥१२
द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ ।
मृधे चेरतुरम्भोभि क्षुब्धाविव महार्णवौ ॥१३
ताभ्यामाप्लावितं सैन्य तद्दानवमदृश्यत ।
जगत्संवर्त्तकाम्भोदैः प्रवृष्टैरिव संवृतम् ॥१४
तावुद्यताशुपाशौ द्वौ शशाकवरुणौ रणे ।
शमयामासतुर्मायां देवौ दैतेयनिर्मिताम् ॥१५
शीतांशुजलनिर्दग्धा पाशश्च प्रसिता रणे ।
न शेकुश्चलितु दैत्या विशिरस्का इवाद्रय. ॥१६
शीतांशुनिहतास्ते तु पेतुर्दैत्या हिमार्दिता. ।
हिमप्रावृतसर्वाङ्गा निरुष्माण इवाग्नय ॥१७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इसके पश्चात् चन्द्रमा ने हिम वर्षा ी, जिससे मेघ के समान वे दुर्दान्त दैत्य ढँक गये ॥११॥ इस प्रकार पाशधारण रने वाले वरुण और हिम की वर्षा करने वाले चन्द्रमा, दोनों ही अपने शस्त्रों ा प्रहार करते हुए उमडते हुए समुद्र के समान युद्ध स्थल मे घूमने लगे ॥१२-३॥ सवर्तक मेघ द्वारा जल वृष्टि होन से जैसे सम्पूर्ण विश्व जल में बहने गता है, वैसे ही उनकी अस्त्र वर्षा से सम्पूर्ण दैत्य-सेना प्लावित होगई और स प्रकार वरुण ने पाश से और चन्द्रमा ने हिम से दानवी माया को छिन्न- भिन्न कर दिया ॥१४-१५॥ इस स्थिति मे दैत्यगण छिन्न मस्तक के समान लने की शक्ति से हीन होकर निष्क्रिय होगये ॥१६॥ चन्द्रमा द्वारा हिम वर्षा रने से वे ठडे हुए अगारो के समान धराशायी होगये ॥१७॥

तेषां तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि च ।
विमानानि विचित्राणि निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥१८

तान्पाशहस्तग्रथिताञ्छादितान्हिमरश्मिना ।
मयो ददर्श माया वै दानवान्दिवि दानवः ॥१९
स शिलाजालवितता गण्डशैलाट्टहासिनीम् ।
पादपोत्कटकूटाग्रा कन्दराकीर्णकाननाम् ॥२०
सिंहव्याघ्रगजाकीर्णा नदन्तीमिव यूथपैः ।
ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम् ॥२१
निर्मिता स्वेन पुत्रेण क्रौञ्चेन दिवि कामगाम् ।
प्रसृता पार्वती माया ससृजे दानवोत्तमः ॥२२
साश्मशब्दैः शिलावर्षैः सपतद्भिश्च पादपैः ।
निजघ्ने देवसङ्घांस्तान्दानवांश्चाप्यजीवयत् ॥२३
नैशाकरी वारुणी च मायेऽन्तर्दधतुस्ततः ।
अश्मभिश्चायसघनैः किरन्देवगणान्रणे ॥२४

उस समय दैत्यों के सब विमान नीचे गिरने लगे ॥१८॥ जब मय दानव ने दैत्यों को वरुणपाश में बद्ध और चन्द्रमा द्वारा किये गये हिमपात से आच्छादित देखा तो उसने अपने पुत्र क्रौंच द्वारा बनाये हुए मायामय पर्वतास्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र पर शिलायें, घाटियाँ, सिंहों और व्याघ्रों के समूह स्थित थे। उस पर्वत का अगला भाग वृक्षों और कन्दराओं वाले वनों से व्याप्त था, उसमें वृक्ष वायु के वेग से हिल रहे थे ॥१९-२२॥ उस माया के प्रयुक्त होते ही पर्वत से बड़ी बड़ी शिलाओं और वृक्षों की वर्षा होने लगी, जिसके कारण देव-सेना द्वारा संतप्त दैत्य सेना में जीवन आगया और चन्द्रमा तथा वरुण की माया नष्ट होगई तथा शिला खण्डों की वर्षा से देव-सेना आच्छादित होगई ॥२३-२४॥

साश्मसघातविषमा द्रुमपर्वतसंकटा ।
अभवद्घोरसंचारा पृथिवी पर्वतैरिव ॥२५
नानाहतोऽश्मभि. कश्चिच्छिलाभिश्चापि ताडितः ।
नानिरुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत संयुगे ॥२६

तदाप्रभ्रष्टप्रनुप भग्नप्रहरणाविलम् ।
नि प्रयत्न सुरानीक वर्ज्जयित्वा गदाधरम् ॥२७
स हि युद्धगत श्रीमानीशो न स्म व्यकम्पत ।
सहिष्णुत्त्वाज्जगत्स्वामी न चुक्रोध गदाधर ॥२८
कालज्ञ कालमेघाभ समीक्षत्कालमाहवे ।
देवासुरविमर्दं स द्रष्टुकामो जनार्दन ॥२९
ततो भगवताऽऽदिष्टौ रणे पावकमारुतो ।
शमनार्थं प्रवृद्धाया मायाया मयसृष्टया ॥३०
तत प्रवृद्धावन्योन्य प्रवृद्धो ज्वालवाहिनौ ।
चोदितौ विष्णु वाक्येन ता माया व्यरङ्पंताम् ॥३१
ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्या प्रवृद्धाभ्या महाहवे ।
दग्धा सा पार्वतीमाया भस्मीभूता ननाश ह ॥३२
सोऽनिलोऽनलसयुक्त सोऽनलश्चानिलाकुल ।
दैत्यसेना ददहतुर्युगान्त इव मूर्छिनी ॥३३

पर्वतीय स्थान के ऊँचा-नीचा होने के समान ही पृथिवी भी शिला खडों से दुर्गम होगयी ॥२५॥ कुछ देवता शिलाखडो और चट्टानो की मार विक्षत होगये, कोई भी देवता कुशलपूर्वक न बच सका ॥२६॥ विष्णु के न सभी देवगण निराश हो रहे थे ॥२७॥ परतु भगवाद् विष्णु तनिक विचलित नही हुए, उनको किंचित् क्रोध भी नही आया ॥२८॥ वे युद्ध का ग करते हुए आक्रमण के लिये उपयुक्त अवसर देख रहे थे ॥२९॥ मय की उस माया की वृद्धि होते हुए देख कर भगवान् ने वायु और अग्नि को करने का सकेत किया ॥३०॥ उनकी आज्ञा पाते ही वायु और अग्नि दानवो को समाप्त करने म जुट गय । तब अग्नि और वायु के सयाग से प्रलय के वृद्धि को प्राप्त होती हुई दैत्य सेना नष्ट होने लगी और दानवो द्वारा पर्वतीय माया का अत होगया ॥३१ ३३॥

वायु प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निश्च मारुतात् ।
चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तौ दनानिलौ ॥३४

धूम्रकेशो हरिश्मश्रु दंष्ट्रालोष्ठपुटाननः ।
त्रैलोक्यान्तरविस्तारो धारयन्विपुलं वपुः ।।५०
बाहुभिस्तुलयन्व्योम क्षिपन्पद्भ्या महीधरान् ।
ईरयन्मुखनिःश्वासैर्वृष्टिमन्तो बलाहकान् ।।५१
तिर्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम् ।
दिधक्षन्तमिवायान्तं सर्वान्देवगणान्मृधे ।।५२
तर्जयन्तं सुरगणाश्छादयन्तं दिशो दश ।
संवर्तकाले क्षुधितं दृप्तं मृत्युमिवोत्थितम् ।।५३
सुतलेनोच्छ्रितवता विपुलाङ्गुलिपर्वणा ।
माल्याभरणपूर्णेन किञ्चिच्चलितवर्मणा ।।५४
उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता ।
दानवान्देवनिहतानुत्तिष्ठध्वमिति ब्रुवन् ।।५५
तं कालनेमिं समरे द्विषतां कालसन्निभम् ।
वीक्षन्ति स्म सुराः सर्वे भयविक्लवलोचनाः ।।५६
तं स्म वीक्षन्ति भूतानि क्रमन्तं कालनेमिनम् ।
त्रिविक्रमं विक्रमन्तं नारायणमिवापरम् ।।५७
[illegible]

रव देवताओं को युद्ध मे भस्म कर डालेगा ॥५०-५२॥ वह देवताओं को भयभीत करता और दसों दिशाओं को अवरुद्ध करता चलता हुआ ऐसा प्रतीत होता था, जैसे प्रलयकाल म क्षुधार्त मृत्यु सामने से आरही हो ॥५३॥ देवताओं के हाथ से जो दैत्य मारे गये थ उन्हें कालनमि ने उठाने का सकेत किया ॥५४ ५५॥ उस समय शत्रुओं के लिये काल के समान उस कालनेमि को देख कर देवगण अत्यन्त भयभीत हुए और सासारिक प्राणियों ने समझा कि यह द्वितीय त्रिविक्रम भगवान् रण क्षेत्र में विचरण कर रहे हैं ॥५६ ५७॥ जब उस असुर ने अपना दक्षिण पग बढाया तब देवगण व्याकुल हो उठे और उनके शस्त्रास्त्र वायु से हिल उठ । उसी समय दानवराज मय ने वहाँ आकर कालनेमि को कठ से लगा लिया उस समय वह मन्दर पर्वत जैसा लगने लगा ॥५८ ५९॥ यम के समान घोर भयानक कालनेमि को युद्ध क्षेत्र में उतरता देख कर इन्द्रादि देवता अत्यन्त भयभीत और व्यथित हो गय ॥६०॥

॥ कालनेमि के साथ देवताओ का युद्ध ॥

८

दानवाश्चापि पिप्रीपु कालनेमिर्महासुर ।
व्यवर्धत महातेजास्तपान्ते जलदो यथा ॥१
त्रैलोक्यान्तर्गत त तु दृष्ट्वा ते दानवेश्वरा ।
उत्तस्थुरपरिश्रान्ता प्राप्येवामृतमुत्तमम् ॥२
ते भीता भयसन्त्रस्ता मयतारपुरोगमा ।
तारकामयसग्रामे सतत जयकाङ्क्षिण ।
रेजुरायोधनगता दानवा युद्धकाङ्क्षिण ॥३
अस्त्रमभ्यस्यता तेषा व्यूह च परिधावताम् ।
प्रेक्षता चाभवत्प्रीतिर्दानव कालनेमिनम् ॥४
ये तु तत्र मयस्यासन्मुख्या युद्धपुर मरा ।
तेऽपि सर्वे भय त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिता ।५

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! महा असुर कालनेमि दानवो को प्रसन्न करने के लिए नवीन मेघ के समान वृद्धि को प्राप्त होने लगा ॥१॥ तीनों लोको

में प्रसिद्ध कालनेमि को अपने मध्य देख कर दानवगण प्रसन्नचित से उठ खड़े होगए, मानो उन्हें श्रेष्ठ अमृत की प्राप्ति होगई हो ॥२॥ मय तथा तार... दानवों का भय दूर होगया । मय तथा तारादि के युद्ध में सभी दानव विजय से प्रसन्न हो उठे ॥३॥ सेना के सभी सैनिक, जो युद्धाभ्यास तथा व्यूह निर्माण आदि मे व्यस्त थे, वे टकटकी बांधकर,कालनेमि को देखने लगे तथा उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई ॥४॥ मय दानव के युद्ध मे निपुण सैनिक भय छोड़कर उत्साह-पूर्वक तथा प्रसन्नचित्त से युद्ध के लिए एकत्र होगए ॥५॥

मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान् ।
विप्रचित्तिसुतः श्वेत खरलम्बावुभावपि ॥६
अरिष्टो बलिपुत्रस्तु किशोरोष्ट्रौ तथैव च ।
स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्रयोधी महाबलः ॥७
एतेऽस्त्रविदुष सर्वे सर्वे तपसि सुव्रता· ।
दानवाः कृतिनो जग्मुः कालनेमिनमुत्तमम् ॥८
ते गदाभिश्च गुर्वीभिश्चक्रैश्च सपरश्वधैः ।
अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्गण्डशैलैश्च दर्शितै. ॥९
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायुधः ।
घातिनीभिश्च गुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च ॥१०
कालकल्पैश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ।
युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैरर्गलैश्चाग्रताडितैः ॥११
दोर्भिश्चायतपीनांसैः पाशैः प्रासैश्च मूर्च्छितै. ।
सर्पैर्लेलिह्यमानैश्च विसर्पद्भिश्च सायकैः ॥१२
वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च तोमरैः ।
विकोशैश्चासिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः ॥१३
ते वै सन्दीप्तमनसः प्रगृहीतत्तोमायुधाः ।
कालनेमि पुरस्कृत्य तस्थु. सङ्ग्राममूर्धनि ॥१४

मय, तार, वराह, हयग्रीव, विप्रचित्ति-पुत्र श्वेत, खर, लम्ब, बलि-पुत्र अरिष्ट, किशोर, उष्ट्र, देवताओं में प्रख्यात वक्रयोधी तथा महान् श...

ये राहु एवं बहुत से अस्त्र-कुशल तथा बलिष्ठ दानव भारी गदा, चक्र, गा, मृत्यु-रूप मूसल, क्षेपणास्त्र, मुद्गर, पर्वतों जैसे बृहद आकार की शिला, शत्रु दुःख देने वाले शतघ्नी, पट्टिश, भिन्दिपाल, उत्तम लोहे की बनी हुई घ, नगर का नाश करने वाली शतघ्नी, युग, यन्त्रयुक्त मुष्टिबन्ध अर्गल, पाश, , लपलपाती हुई जीभ वाले सर्पों के समान सान पर चढ़े हुए तीर, प्रहार, ने के योग्य वज्र, चमचमाती तोमर, म्यान से निकली हुई असि तथा तीक्ष्ण धार और शूल से सजे हुए भाले आदि नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारी रथ-सैनिक कालनेमि को आगे कर युद्ध-स्थल में आ उपस्थित हुए ॥६-१४॥

सा दीप्तशस्त्रप्रवरा दैत्यानां शुशुभे चमूः ।
घौनिमीलितजलदा गगनेवाम्बुदागमे ॥१५
देवतानामपि चमूः शुशुभे शक्रपालिता ।
दीप्ता शीतोष्णतेजोभ्यां चन्द्रभास्करवर्चसा ॥१६
वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी ।
तोयदाऽऽविद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी ॥१७
यमेन्द्रधनदैर्गुप्ता वरुणेन च धीमता ।
संप्रदीप्ताग्निपवना नारायणपरायणा ॥१८
सा समुद्रौघसदृशी दिव्या देवमहाचमूः ।
रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी ॥१९
तयोश्चम्वोस्तदा तत्र बभूव स समागमः ।
द्यावापृथिव्योः संयोगो यथा स्याद् युगपर्यये ॥२०
तद्युद्धमभवद्घोरं देवदानवसंकुलम् ।
क्षमापराक्रममयं दर्पस्य विनयस्य च ॥२१

सेना अनेको प्रकार के अस्त्रो को धारण किए हुए यक्षो तथा गन्धर्वों सहित
के वेग के समान सुशोभित हुई ॥१५-१९॥ जैसे प्रलय के समय पृथिवी
आकाश मिल कर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार दोनो ओर की सेनाओ के मि
ही भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। देवगणो ने प्रारम्भ मे तो इन हारे हुए दा
के साथ शिथिलता दिखलाई, किन्तु बाद म महान् पराक्रम सहित उनको म
लगे। इसके विपरीत दानवो ने नम्र देवगणो के साथ प्रारम्भ मे पराक्रम
लाया, किन्तु बाद मे शिथिलता से युद्ध करने लगे ॥२०-२१॥

निश्चक्रमुर्बलाभ्या तु भीमा सुरासुरा ।
पूर्वापराभ्या सरब्धा सागराभ्यामिवाम्बुदा ॥२२
ताभ्या बलाभ्या सहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवा ।
वनाभ्या पार्वतीयाभ्या पुष्पिताभ्या यथा गजा ॥२३
समाजघ्नुस्ततो भेरी शङ्खान्दध्मुश्च नैकश ।
स शब्दो द्या भुव चैव दिशश्च समपूरयत् ॥२४
ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषा कूजितानि च ।
दुन्दुभीना निनदता दैत्याना निर्दधु स्वनान् ॥२५
तेऽन्योन्यमभिसपेतु पातयन्त परस्परम् ।
बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहून्द्वन्द्वमन्ये युयुत्सव ॥२६
देवतास्त्वशनीर्घोरा परिघाश्चोत्तमायसान् ।
ससृजु राजौ निस्त्रिशान्गदा गुर्वीश्च दानव ॥२७
गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च शकलीकृता ।
परिपेतुर्भृश केचिन्युब्जा केचित्ससर्जिरे ॥२८

समुद्र की पूर्व तथा पश्चिम दिशाओं से उठे हुए मेघो के समान उ
सेनाओ में से दोनो ओर के निडर तथा बहादुर सैनिक निकलने लगे
पुष्पो से परिपूर्ण तथा पर्वतो वाले जगलो मे जिस प्रकार हाथी घूमते
उसी प्रकार दोनों ओर के योद्धा दोनो शिवरो मे घूमते हुए युद्ध करने लगे
यथाभव चारों दिशाओ में भेरी बजने लगी तथा शङ्ख का शब्द गूंजने

उन भेरी तथा शङ्ख की प्रतिध्वनि से तीनों लोक गूँज गए ॥२४॥ धनुषों की चोट, धनुषों की टङ्कार तथा दुन्दुभी की ध्वनि से दानवों का सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया ॥२५॥ अब दोनों दलों के योद्धा आपस में आघात करते हुए एक दूसरे को मारने लगे। कुछ योद्धा परस्पर द्वन्द्व करते हुए एक दूसरे की बाहु तोड़ने लगे ॥२६॥ देवगण लोहे की बनी भोदनु परिघ तथा दीर्घकाय बड़ी-बड़ी तथा भारी गदा और भिन्दिपाल से आघात करते थे ॥२७॥ उनमें बहुत से योद्धाओं के अङ्ग गदाओं के प्रहार से भग्न हो गए और बहुत से योद्धाओं के शरीर तीरों से टुकड़े-टुकड़े हो गए। इसलिए कुछ तो बेदम होकर पृथिवी पर गिर गए तथा कुछ घूमे हुए खड़े रह गए ॥२८॥

ततो रथैः सतुरगैर्विमानैश्चाशुगामिभिः ।
समीयुस्ते तु संरब्धा रोषादन्योन्यमाहवे ॥२९
संवर्तमानाः समरे विवर्तन्तस्तथाऽपरे ।
रथा रथैर्निरुध्यन्ते पदाताश्च पदातिभिः ॥३०
तेषां रथानां तुमुलः स शब्दः शब्दवाहिनाम् ।
प्रावृषीव प्रमत्तानां नभसीव पयोमुचाम् ॥३१
बभञ्जिरे रथाः केचिन्निर्मृदिता रथैः ।
सम्बाधमेके सम्प्राप्य न शेकुश्चलितुं रथाः ॥३२
अन्योन्यस्याभिसमरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दर्पिताः ।
संह्रादमानाभरणा जघ्नुस्तत्रासिचर्मिणः ॥३३
अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना रक्तं वेमुर्हता युधि ।
क्षरज्जलानां सदृशा जलदानां समागमे ॥३४
तदस्त्रशस्त्रग्रथितं क्षिप्तोत्क्षिप्तगदार्गलम् ।
देवदानवसंक्षुब्धं संकुलं युद्धमाबभौ ॥३५

तथा पैदल योद्धाओ द्वारा पैदल योद्धाओं के मार्ग रुक गए ॥३०॥ आकाश में बादलो की गर्जन-ध्वनि के समान रथो से भीषण ध्वनि होने लगी। किसी-किसी का रथ ध्वस्त हो गया तो कुछ रथो से कुचल कर ही मर गए। बहुत से रथियों को इस भीड मे रथ आगे बढाना ही दूभर हो गया ॥३१-३२॥ बहुत से ढाल तथा तलवारो को धारण करने वाले योद्धा अपने दोनो हाथो से गर्वपूर्वक तलवार चलाने लगे। उस समय उसके सभी हथियार तथा आभूषण ध्वनि करने लगे ॥३३॥ बहुत से घायल योद्धाओ के शरीर से रक्त इस प्रकार बहने लगा जिस प्रकार जलवर्षी मेघो से जल बरसता है ॥३४॥ इसी प्रकार दोनो ओर के योद्धाओ के शस्त्रो के आघात से बहुत भीषण युद्ध होने लगा ॥३५॥

तद्दानवमहामेघ देवायुधतडित्प्रभम् ।
अन्योन्यबाणवर्षं तद्युद्धं दुर्दिनमाबभौ ॥३६
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमिर्महासुरः ।
व्यवर्द्धत समुद्रौघैः पूर्यमाण इवाम्बुदः ॥३७
तस्य विद्युच्चलापीडाः प्रदीप्ताशनिवर्षिणः ।
गात्रे नगशिरःप्रख्या विनिष्पेतुर्बलाहकाः ॥३८
क्रोधान्निश्वसतस्तस्य भ्रभेदस्वेदवर्षिणः ।
साग्निनिष्पेषपवना मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥३९
तिर्यगूर्ध्वं च गगने ववृधुस्तस्य बाहवः ।
पञ्चास्याः कृष्णवपुषो लेलिहाना इवोरगाः ॥४०
सोऽस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि ।
दिव्यैराकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव ॥४१
सोऽनिलोद्धूतवसनस्तस्थौ संग्राममूर्द्धनि ।
सन्ध्याऽऽतपग्रस्तशिखः साक्षान्मेरुरिवाचलः ॥४२

दैत्यो रूपी मेघों पर देवगणों के शस्त्रो रूपी विद्युत् तथा दोनों ओर की तीरों के आदान-प्रदान रूपी वर्षा एक हो जाने से युद्धस्थल में भीषण दृश्य उपस्थित हो गया ॥३६॥ तभी महान् दैत्य कालनेमि, समुद्र के जल से भरे हुए बादलों के समान, क्रोध से भर गया ॥३७॥ विद्युत् रूपी माला से अलंकृत, वज्र

समान बरसने वाला, पर्वतों के शिखरों के समान मेघ उसके स्पर्श से टुकड़े-टुकड़े हो गए ॥३८॥ क्रोध के वशीभूत कालनेमि की दोनों भौंहों से पसीना ने लगा। उसका श्वांस जोर पकड़ने लगा। उस समय वज्र की अग्नि शिखा सदृश उसके मुँह से उष्ण श्वांस निकलने लगा ॥३९॥ उसकी सभी बाहु लपलपाती जीभ वाले तथा पाँच मुँह वाले सर्पों के सदृश टेढ़ी होकर ऊपर की र उठ गईं ॥४०॥ ऊँचे शिखरों वाले पर्वतों के समान उसके धनुष, परिघ र अन्य बहुत से अस्त्र-शस्त्रों से सारा आकाश ढँक गया ॥४१॥ जिस समय न् असुर कालनेमि युद्ध स्थल में आया तो उसके वस्त्र वायु के वेग से उड़ थे। उस समय वह दानव शाम के सूर्य के प्रकाश में चमकते हुए ऊँचे खरों वाले सुमेरु पर्वत के समान दिखलाई दे रहा था ॥४२॥

ऊरुवेगप्रतिक्षिप्तैः शैलशृङ्गाग्रपादपैः।
अपातयद्देवगणान्वज्रेणेव महागिरीन् ॥४३
बाहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरसः।
न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि ॥४४
मुष्टिभिर्निहताः केचित्केचिच्च विदलीकृताः।
यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः ॥४५
तेन विस्रासिता देवाः समरे कालनेमिना।
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि प्रतिकर्तुं विचेतसः ॥४६
तेन शक्रः सहस्राक्षः स्तम्भितः शरबन्धनैः।
ऐरावतगतः संख्ये चलितुं न शशाक ह ॥४७
निर्जलाम्भोदसदृशो निर्जलार्णवसप्रभः।
निर्व्यापारः कृतस्तेन विपाशो वरुणो [illegible]
रणे वैश्रवणस्तेन परिघैः काल[illegible]।
व्यलपल्लोकपालेशस्त्याजितो [illegible]

खड्ग के आघात से उनके वक्ष-स्थल तथा मस्तक खण्ड-खण्ड हो गए। आघात से उनमें हिलने-डुलने की शक्ति भी नहीं रही ॥४४॥ कालनेमि मुष्टि की चोट से बहुत से गन्धर्व तथा यक्ष मर गए और बहुतेरे पीड़ित होकर धराशायी हो गए ॥४५॥ इसी तरह कालनेमि द्वारा पीड़ित देवगण अपनी इच्छा के रहते हुए भी बुद्धि खो बैठे तथा वे प्रतिघात न कर सके ॥४६॥ सहस्रों नेत्र वाले इन्द्र कालनेमि के तीरों से पीड़ित होकर अपने ऐरावत हाथी पर अशक्त जैसे बैठे रह गए ॥४७॥ वरुण अपने अस्त्र पाश के नष्ट होने के कारण बिना जल वाले बादल तथा सूखे हुए समुद्र के सदृश उदासीन हो गए ॥४८॥ कालनेमि के मृत्यु समान परिघों के प्रहार से पीड़ित होकर लोकपाल कुबेर की जैसे बुद्धि समाप्त हो गई ॥४९॥

यम सर्वहरस्तेन दण्डप्रहरणो रणे।
याम्यामवस्था समरे नीतः स्वां दिशमाविशत् ॥५०
स लोकपालानुत्साद्य कृत्वा तेषां च कर्म तत्।
दिक्षुसर्वासु देहं स्वं चतुर्धा विदधे तदा ॥५१
स नक्षत्रपथं गत्वा दिव्यं स्वर्भानुदर्शिनम्।
जहार लक्ष्मीं सोमस्य तं चास्य विषयं महत् ॥५२
चालयामास शीतांशुं स्वर्गद्वाराच्च भास्करम्।
सायनं चास्य विषयं जहार दिनकर्म च ॥५३
सोऽग्निं देवमुखे दृष्ट्वा चकारात्ममुखे स्वयम्।
वायुं च तरसा जित्वा चकारात्मवशानुगम् ॥५४
स समुद्रात्समानीय सर्वाश्च सरितो बलात्।
चकारात्मवशे वीर्याद्देहभूताश्च सिन्धवः ॥५५
अपः स्ववशगाः कृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः।
स्थापयामास जगती सुगुप्ता धरणीधरैः ॥५६

यमराज जिनमें सभी को अचेत करने की शक्ति थी, स्वयं ही कालने... के आघात से अचेत हो गए उनके योद्धा उन्हें दक्षिण दिशा की ओर ले... ॥५०॥ हे राजन् जनमेजय ! इस प्रकार उस महान् दैत्य कालनेमि ने लोकपा...

युद्ध मे हराकर अपने शरीर के चार खण्ड किए और चतुर्दिक में स्वय वरुण, द्र आदि लोकपालो के कार्य करने लगा ॥५१॥ वह महादानव कालनेमि राहु रा निर्देशित नक्षत्रो के पथ पर गया। उसने चन्द्रदेव का सारा ऐश्वर्य अपने धिकार मे लेकर उनके राज्य पर भी अधिकार कर लिया ॥५२॥ उसके भय सूर्यदेव स्वर्ग द्वारा विमुग्ध होकर अपन रात्रि तथा दिन करने के कार्य से भी मुख हो गए ॥५३॥ अग्निदव को देवगणो के मुँह म देख कर उसने अपन ह में स्थान दिया तथा पवनदेव को अपन बाहुबल से हरा कर अपना आज्ञा-लव सेवक बना लिया ॥५४॥ उसके शौर्य से सभी नदियाँ आदि समुद्र से ाकर पुन पूर्ण रूप से बहने लगी तथा उसके अधिकार मे हो गई ॥५५॥ सने पृथिवी तथा स्वर्ग में बहने वाली सभी जल धाराएँ पर्वतो से रक्षित भूमि तल पर स्थापित कर दी ॥५६॥

स स्वयम्भूरिवाभाति महाभूतपतिर्महान् ।
सर्वलोकमयो दैत्य. सर्वलोकभयावह ॥५७
स लोकपालैकवपुश्चन्द्रसूर्यग्रहात्मवान् ।
पावकानिलसघातो रराज युधि दानव ॥५८
पारमेष्ठ्ये स्थित स्थाने लोकाना प्रभवात्यये ।
तुष्टुवुस्त दैत्यगणा देवा इव पितामहम् ॥५९

तब सभी लोकों मे भयकर तथा सभी लोको का राजा वह महान् दैत्य लोकपति भगवान् ब्रह्मा के सदृश शोभा को प्राप्त हुआ ॥५७॥ अन्त में सभी लोकपाल, चन्द्रदेव, सूर्यदेव, वायुदेव और अग्निदेव पर उसका अधिकार हो गया ५८॥ जब कालनमि ने इस प्रकार सृष्टि-रचयिता ब्रह्मा के पद पर अधिकार र लिया, तो, जैसे देवगण लोकपति भगवान् ब्रह्मा की स्तुति करते थे, वैसे ही दैत्य-गण दानव-राज कालनमि की स्तुति करने लगे ॥५९॥

॥ विष्णु द्वारा देवताओ को आश्वासन ॥

पञ्च त नाभ्यवर्त्तन्त विपरीतेन कर्मणा ।
वेदो धर्म क्षमा सत्य श्रीश्च नारायणाश्रया ॥१

यास्याम्यपचिति दिष्ट्या पूर्वेषामथ सयुगे ।
इम नारायण हत्वा दानवाना भयावहम् ॥१६
क्षिप्रमेव वधिष्यामि रणे नारायणाश्रितान् ।
जात्यन्तरगतोऽप्येष मृधे बाधति दानवान् ॥१७
एषोऽनन्त पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति स्मृत ।
जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ ।
विनिवेश्य स्वके ऊरौ निहितौ दानवेश्वरौ ॥१८
द्विधाभूत वपु कृत्वा सिंहार्द्धं नरसस्थितम् ।
पितर मे जघानैको हिरण्यकशिपु पुरा ॥१६
शुभ गर्भमधत्तेममदितिर्देवतारणि ।
यज्ञकाले बलेर्यो वै कृत्वा वामनरूपताम् ।
त्रीँल्लोकानाजहारैक क्रममाणस्त्रिभि क्रम ॥२०
भूयस्त्विदानी समरे सप्राप्ते तारकामये ।
मया सह समागम्य सह देवैर्विनक्ष्यति ॥२१

आज यह मेरे सामने भाग्य से ही आ गया है। मेरे तीरो से पीडित होकर अभी यह मेरे समक्ष झुक जायगा ॥१५॥ आज मेरा सौभाग्य है कि मैं इसका वध करके अपने पूर्वजो के ऋण से मुक्त होऊँगा। दानवो के लिए भयानक इस नारायण का नाश कर दूँगा तथा नारायण के आश्रित देवगणो का भी वध कर दूँगा। यह सभव है कि फिर कभी कोई अवतार धारण करके दानवो को कष्ट दे ॥१६-१७॥ क्योकि पहले भी इसी अनन्त ने पद्मनाभ रूप धारण करके मधु तथा कैटभ दैत्यो को अपनी जाँघ पर रख कर चीर कर वध किया था ॥१८॥ इसी विष्णु ने नृसिहदेव का अवतार लेकर मेरे पिता हिरण्यकशिपु को अपनी जाँघ पर चीर कर वध किया था ॥१६॥ इसने शुभ समय मे देवमाता अदिति के गर्भ से जन्म धारण किया था। इसने असुरराज बलि के यज्ञ समय में वामन अवतार धारण किया तथा तीनों लोकों को तीन ही डग मे नाप लिया था ॥२०॥ परन्तु अब इस समय तारादि सग्राम मे सभी देवगणों सहित यह मेरे द्वारा मृत्यु को प्राप्त होगा ॥२१॥

स एवमुक्त्वा बहुधा क्षिपन्नारायणं रणे ॥
वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत् ॥२२
क्षिप्यमाणोऽसुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः ।
क्षमाबलेन महता सस्मितं वाक्यमब्रवीत् ॥२३
अल्पदर्पबलो दैत्य. स्थिरः क्रोधात्समद्ददन् ।
हतस्त्वमात्मनो दोषैः क्षमा योऽन्नीत्य भाषसे ॥२४
अधमस्त्वं मम मतो धिगेतत्तव वाग्बलम् ।
न तत्र पुरुषा. सन्ति यत्र गर्जन्ति योषित. ॥२५
अहं त्वा दैत्य पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनाम् ।
प्रजापतिकृतं सेतुं को भित्त्वा स्वस्तिमान्भवेत् ॥२६
अद्य त्वा नाशयिष्यामि देवव्यापारकारकम् ।
स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवता· ॥२७

हे राजन् ! इस प्रकार दानवराज नाना प्रकार से भगवान को अपमान करता हुआ युद्ध करने को उद्यत हो गया ॥२२॥ उस दैत्य के द्वारा इतना अपमान होने पर भी देवराज भगवान विष्णु क्रोधित नहीं हुए। अपितु धैर्य के साथ मन्द मुस्कान सहित कहने लगे—॥२३॥ हे दानव ! गर्व अत्यन्त तुच्छ होता है। वीर वही होता है जिसे कि शक्ति रहते हुए भी क्रोध न आए। इसलिए तुम धैर्य खोकर, गर्व से दोष से कही गई बातों से ही मर चुके हो ॥२४॥ मैं तो तुमको बड़ा ही पापी जीव समझता हूँ। तुम्हारे बाहु-बल के गर्व के लिए तुम्हें धिक्कार है। जहाँ पुरुष नहीं होते वहीं नारियाँ गरजती फिरती हैं ॥२५॥ मुझे दिखाई देता है, जिस मार्ग पर तुम्हारे पूर्वज गए हैं, वहीं तुम जाना चाहते हो। प्रजापति सृष्टिकर्ता से विमुख होकर कौन प्रसन्नचित्त रह सकता है ॥२६॥ आज मैं तुम्हारा वध कर दूँगा क्योंकि तुमने देवगणों से उनके कार्यों को अपने अधिकार में ले लिया है। मैं सभी देवगणों को पुनः अपने-अपने पदासीन कर दूँगा ॥२७॥

एवं ब्रुवति तद्वाक्यं मृधे श्रीवत्सधारिणि ।
जहास दानवः क्रोधाद्धस्तांश्चक्रे च सायुधान् ॥२८

स बाहुशतमुद्यम्य सर्वास्त्रग्रहणं रणे ।
क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुं वक्षस्यताडयत् ।।२९
दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः ।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दृष्ट्वा विष्णुमथाद्रवन् ।।३०
स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वायुधोद्यतैः ।
न चचाल हरिर्युद्धेऽकम्प्यमान इवाचलः ।।३१
ससक्तश्च सुपर्णेन कालनेमी महासुरः ।
सर्वप्राणेन महती गदामुद्यम्य बाहुभिः ।।३२
मुमोच ज्वलितां घोरां संरब्धो गरुडोपरि ।
कर्मणा तेन दैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमागतः ।।३३
यदा तस्य सुपर्णस्य पतिता मूर्ध्नि सा गदा ।
तदाऽऽगमत्पदा भूमिं पक्षी व्यथितविग्रहः ।।३४
सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा क्षतं च वपुरात्मनः ।
क्रोधात्संरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे ।।३५

वैशम्पायन बोले—हे महाराज ! इस प्रकार पीताम्बरधारी भगवान विष्णु के कहने पर वह दानव क्रोध के साथ जोर से हँसा तथा उसने अपने सभी शस्त्र सम्हाल लिये ।।२८।। इसके पश्चात् उस दैत्य ने सक्रोध सभी अस्त्र शस्त्र अपने सौ बाहुओं में लेकर भगवान विष्णु की छाती पर आघात पहुँचाया ।।२९।। तारकामय इत्यादि दैत्य भी निस्त्रिंशिका आदि शस्त्र लेकर विष्णु भगवान पर आक्रमण करने को उद्यत हुए ।।३०।। अत्यन्त वीर तथा नाना प्रकार के शस्त्रों से शोभित दैत्यों के आघात करने पर भी भगवान विचलित नहीं हुए तथा युद्ध स्थल के मध्य अकम्पित पर्वत के समान खड़े रहे ।।३१।। इसके पश्चात् दानवराज कालनेमि ने अपनी भयंकर गदा से गरुड़ के मस्तक पर प्रहार किया । उस दैत्य के इस कार्य को देखकर विष्णु भगवान विस्मय में पड़ गए ।।३२-३३।। उस गदा के प्रहार से पक्षिराज गरुड़ बहुत पीड़ित हुए तथा भूमि पर उतर आए ।।३४।। जब भगवान विष्णु ने अपना तन तथा पक्षिराज गरुड़ को घायल देखा तो उनके नेत्र क्रोध से लाल हो उठे । तब उन्होंने अपना सुदर्शन चक्र हाथ में ले लिया ।।३५।।

व्यवर्द्धत च वेगेन सुपर्णेन समं प्रभुः ।
भुजाश्चास्य व्यवर्धन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश ॥३६
स दिशः प्रदिशश्चैव खं च गां चैव पूरयन् ।
ववृधे स पुनर्लोकान्क्रान्तुकाम इवौजसा ॥३७
त जयाय सुरेन्द्राणां वर्द्धमानो नभस्तले ।
ऋपयः सह गन्धर्वैस्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥३८
स द्यां किरीटेन लिखन्साभ्रमम्बरमम्बरैः ।
पद्भ्यामाक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य वाहुभिः ॥३९
सूर्यस्य रश्मितुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम् ।
दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनीयं सुदर्शनम् ॥४०
सुवर्णनेमिपर्यन्तं वज्रनाभं भयावहम् ।
मेदोमज्जास्थिरुधिरैर्दिग्धं दानवसंभवैः ४१
अद्वितीयं प्रहारेपु क्षुरपर्यन्तमण्डलम् ।
स्रग्दाममालाविततं कामगं कामरूपिणम् ॥४२

विष्णु भगवान तथा पक्षिराज गरुड का शरीर विस्तार को प्राप्त होने गा । भगवान् विष्णु की भुजाओं ने बढकर दसों दिशाओं को ढक या ॥३६॥ उनके शरीर के विस्तार से दिशा, विदिशा, पृथ्वी तथा आकाश भी ढँक गए । ऐसा मालूम पड़ने लगा जैसे तीनों लोकों को आक्रान्त करने के ए उनका शरीर विस्तार को प्राप्त हो रहा है ॥३७॥ देवगणों के कल्याण लिए विस्तारित शरीर को देखकर नभ-स्थित ऋषि तथा गन्धर्व जन भगवान ष्णु की स्तुति करने लगे ॥३८॥ इस शुभ समय में उनके मस्तक में स्वर्ग, नों में अम्बर से आच्छादित आकाश, चरणों में वसुधा तथा भुजाओं में दसों शाएं व्याप्त थीं ॥३९॥ सूर्य की किरणों के समान चमकता हुआ, हजारों र वाला, तीव्र भड़कती हुई अग्नि के समान, तीक्ष्ण तथा भीषण सुदर्शन चक्र ान के हाथों में सुशोभित हो रहा था ॥४०॥ उस भयानक चक्र की धार ों की थी तथा नाभि वज्र के सदृश थी । उस पर दैत्यों की मेद, मज्जा, स्थि तथा रुधिर लगा हुआ था ॥४१॥ वह प्रहार करने में अद्वितीय था । उसके

किनारे हारो के समान और छुरे की धार जैसे तेज थे। वह भगवान विष्णु, इच्छा के साथ साथ विविध आकार धारण कर सकता था तथा सभी जगह जाने मे समर्थ था ।।४२।।

स्वय स्वयंभुवा सृष्ट भयद सर्वविद्विषाम् ।
महर्षिरोपैराविष्ट नित्यमाहवदर्पितम् ।।४३
क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोका सस्थाणुजङ्गमा ।
क्रव्यादानि च भूतानि तृप्ति यान्ति महाहवे ।।४४
तमप्रतिमकर्माण समान सूर्यवर्चसा ।
चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधर ।।४५
समुष्णन्दानव तेज समरे स्वेन तेजसा ।
चिच्छेद बाहु चक्रेण श्रीधर कालनेमिन ।।४६
तच्च वक्त्रशत घोर साग्निचूर्णाट्टहासिनम् ।
तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरि ।।४७
स छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पत दानव ।
कबन्धावस्थित सख्ये विशाख इव पादप ।।४८
त वितत्य महापक्षौ वायो कृत्वा सम जवम् ।
उरसा पातयामास गरुड कालनेमिनम् ।।४९

उस चक्र का निर्माण भगवान ने स्वय किया था तथा उससे सभी भय थे। उसमें ऋषिजनों का क्रोध समाविष्ट था तथा वह नित्य रण दर्प से पूर्ण था ।।४३।। इसका दुष्टों पर प्रहार करने पर तीनो लोक पुलकित हो उठते उसके प्रहार करने पर युद्ध-स्थल में मृत योद्धाओं का मांस खाने वाले जीवों हृदय प्रसन्नता से भर उठता था ।।४४।। तब भगवान विष्णु ने क्रोध में भ उस भयकर प्रलय स्वरूप चक्र को लेकर अपने तेज से दैत्यो का सारा समाप्त करते हुए महान् असुर कालनेमि की सौ बाहु तथा भयानक हाद करते हुए सौ मस्तकों को काट दिया ।।४५-४७।। वह दैत्य अपने बाहु मस्तकों के कट जाने पर भी कम्पित नहीं हुआ अपितु कबन्ध अवस्था में ही

[स्त्र] वाले वृक्ष के समान खड़ा रहा ॥४८॥ तभी विनता पुत्र पक्षिराज गरुड़ [ने] पंख फैलाकर उड़ने लगे तथा वायु के समान वेग से अपने वज्र का [अ]सुरराज कालनेमि पर प्रहार कर उसे गिरा दिया ॥४६॥

स तस्य देहो विमुक्तो विशाखः स्रास्तरिक्रमन् ।
निपपात दिवं त्यक्त्वा शोभयन्धरणीतलम् ॥५०
तस्मिन्निपतिते दैत्ये देवाः सर्षिगणास्तदा ।
साधु साध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन् ॥५१
अपरे ये तु दैत्या वै युद्धे दुष्टपराक्रमाः ।
ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितुं रणे ॥५२
कांश्चित्केशेषु जग्राह कांश्चित्कण्ठेऽप्यपीडयत् ।
पाटयत्कस्यचिद्वक्त्रं मध्ये कांश्चिदथाग्रहीत् ॥५३
ते गदाचक्रनिर्दग्धा गतसत्त्वा गतासवः ।
गगनाद्भ्रष्टसर्वांगा निपेतुर्धरणीतले ॥५४
तेषु सर्वेषु दैत्येषु हतेषु पुरुषोत्तम ।
तस्थौ शक्रप्रियं कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः ॥५५

इस प्रहार से कालनेमि का बाहु तथा मस्तकहीन शरीर लुढ़कने लगा [त]था आकाश से गिरकर पृथ्वी को अलङ्कृत करने लगा ॥५०॥ उस भयंकर दैत्य [क]ा नाश होने पर देवगण तथा ऋषिजन साधुवाद देते हुए भगवान् श्री विष्णु [क]ी स्तुति करने लगे ॥५१॥ और भी जो दैत्य युद्धस्थल में पराक्रम के साथ [यु]द्ध कर रहे थे, वे सभी भगवान् विष्णु की बाहुओं से मिलकर मृत्यु को प्राप्त [ह]ो गए ॥५२॥ अन्य कुछ दैत्यों को बाल तथा कुछ दैत्यों को कण्ठ मरोड़कर [भ]गवान ने मार डाला। बहुतों को उन्होंने अपने गदा तथा चक्र से मार डाला [त]था सभी दैत्य मृत्यु को प्राप्त होकर आकाश से धरती पर आ गिरे ॥५३-५४॥ [इ]स तरह भगवान् विष्णु देवराज इन्द्र के प्रिय कार्य दैत्यों का संहार करते हुए [अ]न्त प्रसन्नचित्त से खड़े हो गए ॥५५॥

तस्मिन्विमर्दे निर्वृत्ते संग्रामे तारकामये ।
तं देशमाजगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः ॥५६

सर्वैब्रह्मर्षिभि साधं गन्धर्वै साप्सरोगणै ।
देवदेवो हरिं देव पूजयन्वाक्यमब्रवीत् ॥५७
कृत देव महत्कर्म सुराणा शल्यमुद्धतम् ।
वधेनानेन दैत्याना वय हि परितोषिता ॥५८
योऽय हतस्त्वया विष्णो कालनेमी महासुर ।
त्वमेकोऽस्य मृधे हन्ता नान्य कश्चन विद्यते ॥५९
एष देवान्परिभवँल्लोकाश्च सचराचरान् ।
ऋषीणा कदन कृत्वा मामपि प्रतिगर्जति ॥६०
तदनेन तवोग्रेण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा ।
यदय कालतुल्याभ कालनेमी निपातित ॥६१
तदागच्छस्व भद्रं ते गच्छाम दिवमुत्तमाम् ।
ब्रह्मर्षयस्त्वा तत्रस्था प्रतीक्षन्ते सदोगता ॥६२
अह महर्षयश्चैव तत्र त्वा वदता वर ।
विधिवच्चार्चयिष्यामि गीर्भिर्दिव्याभिरच्युत ॥६३

हे राजन् ! इस प्रकार संग्राम का अन्त होने पर लोकपितामह ब्र
सभी ब्रह्मर्षि, साधुजन, गन्धर्व तथा अप्सराओं सहित शीघ्र ही वहाँ पहुँचे हा
देवों के देव भगवान विष्णु की सराहना करते हुए कहने लगे—॥५६-५७॥
देव ! आपने इन दैत्यों के विनाश स्वरूप जटिल कार्य को करके सभी देवग
का भय दूर कर दिया । इससे हम सभी बहुत प्रसन्नचित्त हैं ॥५८॥ हे विष्णो
आपने महान् असुर कालनेमि का नाश किया है, इसको सिवाय आपके क
और नहीं मार सकता था ॥५९॥ यह सभी देवगणों तथा लोकों को जीत
ऋषिजनों को संतप्त करता हुआ मुझ पर भी गरजने लगा था ॥६०॥ आ
मृत्यु रूपी कालनेमि के संहार सदृश यह जटिल कार्य किया है इससे हम स
को अत्यन्त प्रसन्नता हुई ॥६१॥ अब हम सब लोग स्वर्ग चलते हैं, वहाँ
सभी महर्षि एकत्रित हुए आपकी प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं ॥६२॥ इसलिए
वहाँ चलिए । वहाँ सभी महर्षि तथा मैं विविध प्रकार से आपकी स्तुति
पूजन करेंगे ॥६३॥

किं चाहं तव दास्यामि वरं वरभृतां वर ।
सुरेष्वपि सदैत्येषु वराणां वरदो भवान् ॥६४
निर्यातयैतत्त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकण्टकम् ।
अस्मिन्नेव मृधे विष्णो शक्राय सुमहात्मने ॥६५
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः ।
देवाञ्छक्रमुखान्सर्वानुवाच शुभया गिरा ॥६६
श्रूयतां त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ।
श्रवणावहितैर्देहैः पुरस्कृत्य पुरंदरम् ॥६७
अस्मिन्नः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः ।
दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः ॥६८
तस्मिन्महति सक्रन्दे द्वावेव तु विनिःसृतौ ।
वैरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः ॥६९
तदिष्टां भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च ।
याम्यां यमः पालयतामुत्तरां च धनाधिपः ॥७०

वैसे हम आपको वर तो क्या दे सकते हैं क्योंकि आप तो स्वयं ही सभी देवगणों तथा दैत्यगणों को वर देते हो ॥६४॥ अब तीनों लोक में कोई भी कण्टक न होने से आनन्दमग्न हैं। अतः आप स्वयं देवराज इन्द्र को तीनों लोकों का स्वामित्व दीजिए ॥६५॥ इस प्रकार भगवान विष्णु पितामह ब्रह्माजी के कहने पर इन्द्र आदि सभी देवगणों से यह शुभ संवाद कहने लगे ॥६६॥ भगवान विष्णु बोले—यहाँ इन्द्रादि जो भी देवगण हैं, सभी ध्यानपूर्वक मेरी बात को सुनें ॥६७॥ इस महायुद्ध में इन्द्र से भी अधिक शूरवीर कालनेमि आदि दैत्यों, को मैंने नाश कर दिया है ॥६८॥ इस भयानक संग्राम में दो दानव बच गए हैं—एक विरोचन का पुत्र बलि और दूसरा राहु ॥६६॥ अब देवराज इन्द्र तथा वरुण अपनी अपनी दिशाओं पर राज्य करें। दक्षिण दिशा पर यमराज तथा उत्तर दिशा पर कुबेर राज्य करें ॥७०॥

ऋक्षैः सह यथायोगं काले चरतु चन्द्रमाः ।
अब्दं ऋतुमुखं सूर्यो भजतामयनैः सह ॥७१

आज्यभागा प्रवर्त्तन्ता सदस्यैरभिपूजिता ।
हूयन्तामग्नयो विप्रै र्वेददृष्टेन कर्मणा ॥७२
देवाश्च वलिहोमेन स्वाध्यायेन महर्षय ।
श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथासुखम् ॥७३
वायुश्चरतु मार्गस्थस्त्रिधा दीप्यतु पावक
त्रयो वर्णाश्च लोकास्त्रीन्वर्द्धयन्त्वात्मजैर्गुणैं ॥७४
क्रतव सप्रवर्त्तन्ता दक्षिणीयैर्द्विजातिभि ।
दक्षिणाश्चोपवर्त्तन्ता यथार्हं सर्वसत्रिणाम् ॥७५
गाश्च सूर्यो रसान्सोमो वायु प्राणाश्च प्राणिषु ।
तर्पयन्त प्रवर्त्तन्ता शिवै सौम्यैश्च कर्मभि ॥७६
यथावदनुपूर्व्येण महेन्द्रसलिलोद्भवा ।
त्रैलोक्यमातर सर्वा सागर यान्तु निम्नगा ॥७७

नक्षत्रो सहित चन्द्रमा अपने समय के अनुसार भ्रमण करे तथा अपने अयन मे बैठकर सूर्य ऋतुओ का ध्यान करते हुए अपने कार्य मे सलग्न हो ॥७१॥ ब्रह्मजन यज्ञ मे विधानानुसार सभी सदस्यो द्वारा पूजित हवि तथा आहुति तीनों अग्नियो को प्रदान करें ॥७२॥ देवगण बलि-होम द्वारा, ऋषिजन स्वाध्याय द्वारा तथा पितृगण श्राद्ध द्वारा प्रसन्नतापूर्वक पूर्ण रूप से तृप्त हो ॥७३॥ वायु अपने मार्ग पर अग्रसर होते रहे अग्नि यज्ञ कुण्ड मे गार्हपत्य से सन्तुष्ट होकर दीप्यमान हो तथा त्रिलोकी वासी तीनो वर्णों के अनुसार अपने अपने गुणो का पालन करें ॥७४॥ दीक्षा ग्रहण करने के लिए द्विजाति यज्ञ प्रारम्भ कराऐ । यज्ञ का आयोजन कराने वाले जितनी दक्षिणा देने को कहे, उतनी दक्षिणा ही बाटी जाय ॥७५॥ सूर्य अपने शुभ कार्य से प्राणियो के नेत्रो, चन्द्र अन्न आदि रसो तथा वायु सभी प्राणियो के श्वास को तृप्त करें ॥७६॥ इन्द्र द्वारा वर्षित से निकली हुई तीनो लोको की प्राणदायिनी नदियाँ पुन पूर्व समय की तरह बहती हुई सागर मे गिरें ॥७७॥

दैत्येभ्यस्त्यज्यता भीश्च शान्ति व्रजत देवता ।
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोक सनातनम् ॥७८

स्वगृहे सर्वलोके वा सग्रामे वा विशेषत. ।
विश्वम्भो हि न मन्तव्यो नित्य क्षुद्रा हि दानवाः ॥७६
छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न चैषा सस्थितिर्ध्रुवा ।
सौम्यानामृजुभावाना भवता चार्जवे मति. ॥८०
अह नु दुष्टभावाना युष्मासु सुदुरात्मनाम् ।
असभ्यग्वर्त्तमानाना मोह दास्यामि देवना. ॥८१
यदा च सुदुराधर्ष दानवेभ्यो भय भवेत् ।
तदा समुपगम्याशु विधास्ये वस्ततोऽभयम् ॥८२
एवमुक्त्वा सुरगणान्विष्णु सत्यपराक्रमः ।
जगाम ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोक महायशा ॥८३
एतदाश्चर्यमभवत्सग्रामे तारकामये ।
दानवाना च विष्णोश्च यन्मा त्व परिपृच्छसि ॥८४

हे देवगणो ! अब दानवों का भय छोड़कर शान्तिपूर्वक जीवनयापन ...., तुम्हारा कल्याण होगा । तथा मैं अपने सनातन ब्रह्मलोक को जाता ॥७८॥ दैत्यगण अत्यन्त नीच होते है, अत इनके घर, स्वर्ग तथा विशेषतया ...स्थल मे इन पर कभी विश्वास नही करना ॥७६॥ तनिक रास्ता मिलते ...ी ये दैत्य उपद्रव शुरू कर देते हैं । मर्यादा का पालन करना तो ये जानते ही ...ही । तुम सभी अत्यन्त मृदु तथा शान्त प्रकृति के हो ॥८०॥ जब-जब ये दुष्ट ...था पापी दैत्य तुमको सताएंगे तथा तुम इनसे अत्यन्त भय-ग्रस्त होंगे, तब ...त मैं शीघ्र आकर तुम्हारा भय दूर कर दूंगा ॥८१-८२॥ वैशम्पायन ने कहा— ...राजन् ! इस प्रकार देवगणो से कह कर सत्यपराक्रम तथा तेजस्वी भगवान् ...विष्णु पितामह ब्रह्मा के ब्रह्मलोक को चले गए ॥८३॥ मय तथा तारादि ...ग्राम मे दैत्यो तथा भगवान के बारे मे जानने की आपने मुझसे इच्छा प्रकट ...ी थी, उसी विस्मयभरी कथा का वर्णन मैंने आपसे किया ॥८४॥

॥ विष्णु भगवान विषयक प्रश्न ॥

ब्रह्मणा देवदेवेन सार्द्ध सलिलयोनिना ।
ब्रह्मलोक गतो ब्रह्मन्वैकुण्ठ कि चकार ह ॥१

किमर्थं चादिदेवेन नीतः कमलयोनिना ।
विष्णुर्दैत्यवधे वृत्ते देवैश्च कृतसत्क्रियः ॥२
ब्रह्मलोके च किं स्थानं वा योगमुपास्त सः ।
कं वा दधार नियमं स विभुर्भूतभावनः ॥३
कथं तस्यासतस्तत्र विश्वं जगदिदं महत् ।
श्रियमाप्नोति विपुलां सुरासुरनरार्चिताम् ॥४
कथं स्वपिति घर्मान्ते बुध्यते चाम्बुदप्लवे ।
कथं च ब्रह्मलोकस्थो धुरं वहति लौकिकीम् ॥५
चरितं तस्य विप्रेन्द्र दिव्यं भगवतो दिवि ।
विस्तरेण यथातत्त्वं सर्वमिच्छामि वेदितुम् ॥६

महाराज जनमेजय ने कहा—हे ब्राह्मणदेव ! दानव संहार के पश्चा पितामह ब्रह्माजी के साथ ब्रह्मलोक जाकर भगवान श्रीविष्णु ने क्या-क्या कार्य किये ? ॥१॥ कमलयोनि ब्रह्मा उन्हें ब्रह्मलोक किस प्रयोजन से ले गए ? ॥, विष्णु भगवान ब्रह्मलोक के किस भाग में गए, वहाँ उन्होंने किस योग उपासना की तथा किन नियमों का पालन किया ? ॥२॥ वहाँ रहते हुए त्रिलो को देवगण, दैत्यगण तथा मनुष्य-जनों द्वारा पूज्य लक्ष्मीजी किस प्रकार मिली ॥४॥ भगवान् क्यों ग्रीष्म-ऋतु के अन्त सोते हैं तथा बरसात के बाद उठते हैं ब्रह्मलोक में रहकर तीनों लोकों का पालन किस प्रकार करते हैं ? ॥५॥ विप्रवर ! मैं भगवान् विष्णु की इन दिव्य लीलाओं का वर्णन विस्तारपूर्व आरम्भ से अन्त तक सुनना चाहता हूँ ॥६॥

शृणु नारायणस्यादौ विस्तरेण प्रवृत्तय ।
ब्रह्मलोकपथारूढो ब्रह्मणा सह मोदते ॥७
कामं तस्य गतिः सूक्ष्मा देवैरपि दुरासदा ।
यत्तु वक्ष्याम्यहं राजंस्तन्मे निगदतः शृणु ॥८
एष लोकमयो देवो लोकाश्चैतन्मयास्त्रयः ।
एष देवमयश्चैव देवाश्चैतन्मया दिवि ॥९

तस्य पारं न पश्यन्ति बहवः पारचिन्तकाः ।
तत् पारं परं चैव लोकानां वेद माधवः ॥१०
यस्य देवान्धकारस्य मार्गितव्यस्य दैवतैः ।
शृणु वै यत्तदा वृत्तं ब्रह्मलोके पुरातनम् ॥११
स गत्वा ब्रह्मणो लोकं दृष्ट्वा पैतामहं पदम् ।
ववन्दे तानृषीन्सर्वान्विष्णुरार्षेण कर्मणा ॥१२
सोऽग्निं प्रातःसवने दृष्ट्वा हूयमानं महर्षिभिः ।
अवन्दत महातेजाः कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ॥१३
स ददर्श मन्त्रैराज्यैरिज्यमानं महर्षिभिः ।
भागं यज्ञियमग्नानं स्वदेहमपरं स्थितम् ॥१४

वैशम्पायन ने कहा—महाराज ! भगवान् श्री विष्णु ने पितामह ब्रह्माजी के साथ ब्रह्मलोक में जो कार्य किया, सुनिए, विस्तारपूर्वक पहले मैं उसी का वर्णन कर रहा हूँ ॥७॥ परन्तु उनकी लीलाओं का आधार अत्यन्त गहन है। उनकी लीलाओं को देवगण भी नहीं जान पाते। अपितु मैं यथाशक्ति आपको बता रहा हूँ, सुनिए ॥८॥ देवों के देव भगवान् विष्णु में तीनों लोक समाये हुए हैं तथा तीनों लोकों में भगवान व्याप्त हैं। इसी तरह स्वर्ग भगवान में समाया हुआ है तथा भगवान् स्वर्ग में व्याप्त हैं ॥९॥ अनेकों योगी महापुरुष बहुत प्रयत्न करने पर भी भगवान् का पार न पा सके। परन्तु भगवान् तीनों लोकों का ओर-छोर तथा उनके मर्म को भली भाँति समझते हैं ॥१०॥ वे महाप्रभु हैं, हृदय तथा वचन से दूर हैं। देवगण नित्यप्रति उनकी खोज करते रहते हैं। मैं अब भगवान् के सनातन ब्रह्मलोक का वर्णन करता हूँ सुनिए ॥११॥ ब्रह्मलोक में पहुँचकर सबसे पहले उन्होंने उसको भली-भाँति देखा। तत्पश्चात् भगवान् ने वहाँ रहने वाले ऋषिजनों की विधिवत् अभ्यर्थना की ॥१२॥ वहाँ भगवान् ने देखा कि उषावेला में वहाँ रहने रहने वाले महर्षि हवन में आहुति दे रहे हैं। प्रातः क्रिया के समाप्त होने पर भगवान् विष्णु ने अग्नि देवता को नमस्कार किया था ॥१३॥ ऋषिजनों द्वारा आह्वान करने पर आहुति ग्रहण करने वाले अग्नि देवता भगवान् के ही अन्य रूप हैं ॥१४॥

अभिवाद्याभिवाद्यानामृषीणां ब्रह्मवर्चसाम् ।
परिचक्राम सोऽचिन्त्यो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥१५
स ददर्शोच्छ्रितान्यूपाश्रपालाग्रविभूषितान् ।
मखेषु च ब्रह्मर्षिभिः शतशः कृतलक्षणान् ॥१६
आज्यधूमं समाघ्राय शृण्वन्वेदान्द्विजेरितान् ।
यज्ञं रिज्य तमात्मानं पश्यस्तत्र चचार ह ॥१७
ऊचुस्तमृषयो देवाः सदस्याः सदसि स्थिताः ।
अर्घोद्यतभुजाः सर्वे पवित्रान्तरपाणयः ॥१८
देवेषु वर्त्तते यद्वै तद्धि सर्वं जनार्दनात् ।
यत्प्रवृत्तं च देवेभ्यस्तद्विद्धि मधुसूदनात् ॥१९
अग्नीषोममयं लोकं यं विदुर्विदुषो जनाः ।
तं सोममग्निं लोकं च वेद विष्णुं सनातनम् ॥२०

चिन्ता रहित भगवान् विष्णु पूज्य तथा ब्रह्मवर्चस्वी ऋषिजनों की अभ्यर्थना करके सनातन ब्रह्मलोक में घूमने लगे ॥१५॥ उन्होंने देखा कि वहाँ पर रहने वाले ब्रह्मर्षियों द्वारा चिन्हित करके बड़े बड़े उच्च यज्ञ स्तम्भ स्थित किये हुए हैं ॥१६॥ शुद्ध घी की सुगन्ध आ रही है ब्राह्मणजन वेदों का उच्चारण कर रहे हैं तथा भगवान् की प्रार्थना के लिए यज्ञों का आयोजन हो रहा है। यह सब देखते हुए वे फिर घूमने लगे ॥१७॥ वहाँ रहने वाले ऋषिजन तथा देवगण आदि शुद्ध मनोभावना के साथ अपने शुभ हाथों में अर्घ्य लिए हुए कहने लगे ॥१८॥ हे भगवन्! हम सभी जो भी कार्य कर रहे हैं तथा जो जो कार्य कर चुके हैं, उसमें आपकी सहायता की अत्यन्त आवश्यकता है ॥१९॥ सभी विद्वानगण इस संसार की सृष्टि अग्नि तथा चन्द्र से हुई मानते हैं, अतः अग्निदेव, चन्द्रदेव और यह संसार आपके द्वारा रचित है ॥२०॥

स्वागतं ते सुरश्रेष्ठ पद्मनाभ महाद्युते ।
इदं यज्ञियमातिथ्यं मन्त्रतः प्रतिगृह्यताम् ॥२१
त्वमस्य यज्ञपूतस्य पात्रं पाद्यस्य पावन ।
अतिथिस्त्वं हि मन्त्रोक्तः सदृष्टः सततं मतः ॥२२

त्वयि योद्धु गते विष्णो न प्रावर्त्तन्त न क्रिया ।
अवैष्णवस्य यज्ञस्य न हि कर्म विधीयते ॥२३
सदक्षिणस्य यज्ञस्य त्वत्प्रसूति फल भवेत् ।
अथात्मानमिहास्माभिरिज्यमान निरीक्ष्यते ॥२४
एवमस्त्विति तान्सर्वान्भगवान्प्रत्यपूजयत् ।
मुमुदे ब्रह्मलोकस्थो ब्रह्मा लोकपितामह ॥२५

हे महाराज ! इस प्रकार स्वागत प्रार्थना आदि के अन्त में देवादिदेव भगवान् श्रीविष्णु की ओर उन्मुख होकर मुनिजन कहने लगे—हे भगवन् ! आप हमारे विधिवत् पूर्ण इस यज्ञ के अतिथि बनें ॥२१॥ आप ही हमारे यज्ञपूत के पात्र तथा पाद्य को ग्रहण करने योग्य हैं। हमें ज्ञात है कि आप ही हमारे मन्त्रों द्वारा ध्यान योग्य अतिथि हैं ॥२२॥ आपके सग्राम भूमि में चले जाने के कारण हमारे सभी कार्य रुक गए थे। क्योंकि हम जानते हैं कि बिना आपके भी यज्ञ-कर्म व्यर्थ सिद्ध होते हैं ॥२३॥ यज्ञ के दक्षिणा आदि कार्यों के पूरे होने पर आप ही यज्ञ का लाभ वितरित करते हैं। अत हम लोग आज आपकी उपस्थिति में ही यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहते हैं ॥२४॥ हे राजन् ! ऋषिगणों द्वारा ऐसा कहने पर भगवान् श्री विष्णु ने उनको 'ऐसा ही हो' कहकर सम्मान किया तथा उस ब्रह्मलोक में अत्यन्त प्रसन्नता से ब्रह्माजी के साथ रहने लगे ॥२५॥

॥ ऋषियों की ब्रह्मलोक यात्रा ॥

ऋषिभि पूजितस्तैस्तु विवेश हरिरीश्वर ।
पौराण ब्रह्मसदन दिव्य नारायणाश्रमम् ॥१
स तद्विवेश हृष्टात्मा तानामन्त्र्य सदोगतान् ।
प्रणम्य चादिदेवाय ब्रह्मणे पद्मयोनये ॥२
स्वेन नाम्ना परिज्ञात स त नारायणाश्रमम् ।
प्रविशन्नेव भगवानायुधानि व्यसर्जयत् ॥३
स तत्राम्बुपतिप्रख्य ददर्शालयमात्मन ।
स्वधिष्ठित देवगणै शाश्वतैश्च महर्षिभि ॥४

संवर्त्तकाम्बुदोपेत नक्षत्रस्थानसंकुलम् ।
तिमिरौघपरिक्षिप्तमप्रधृष्य सुरासुरै ॥५
न तत्र विषयो वायोर्नेन्दोर्न च विवस्वत. ।
वपुष. पद्मनाभस्य स देशस्तेजसाऽऽवृत ॥६
स तत्र प्रविशन्नेव जटाभार समुद्वहन् ।
सहस्रशीर्षो भूत्वा तु शयनायोपचक्रमे ॥७
लोकानामन्तकालज्ञा कालो नयनशालिनी ।
उपतस्थे महात्मानं निद्रा तं कालरूपिणी ॥८

वैशम्पायन कहने लगे—हे राजन् ! इस तरह भगवान् श्री विष्णु ब्रह्मलोक मे रहने वाले ऋषिजनो से सम्मान पाकर, उस स्थान पर उपस्थित सबसे विदा हो तथा पितामह ब्रह्माजी को प्रणाम करके प्रसन्नचित्त से पुराण द्वारा स्तुत्य तथा अपने नाम के लिए प्रसिद्ध अपने दिव्य लोक को चल दिए ॥१–२॥ अपने लोक पहुँचने पर और शस्त्रास्त्रो को यथास्थान रखते ही भगवान नारायण ने देखा कि समस्त देवगण तथा ऋषिगण समुद्र के समान उमडते हुए उनके आश्रम पर आए हुए है ॥३–४॥ उनका आश्रम प्रलय काल के सदृश घने बादलों से ढँका हुआ, नक्षत्रो से भरा हुआ, घोरतम तिमिरो से आच्छादित तथा देवगणो और दैत्यगणो के लिए भी अगम्य था ॥५॥ उस स्थान पर सूर्यदेव, चन्द्रदेव तथा वायुदेव का कोई प्रभाव नही था । वह स्थान भगवान् पद्मनाभ के तेज से चमचमा रहा था ॥६॥ वहाँ जाकर भगवान् ने केश भार धारण किया, उनके हजारो मस्तक होगए तथा वे सोने के प्रयास मे लग गए ॥७॥ ऐसे समय मे ही त्रिलोकी का अन्त समय जानकर नयनशालिनी कालस्वरूप निद्रा देवादिदेव भगवान् श्री विष्णु की स्तुति करने लगी ॥८॥

स शिश्ये शयने दिव्ये समुद्राम्भोदशीतले ।
हरिरेकार्णवोक्तेन व्रतेन व्रतिनां वर. ॥९
तं शयानं महात्मानं भवाय जगतः प्रभुम् ।
उपासांचक्रिरे विष्णुं देवाः सर्षिगणास्तथा ॥१०

तस्य सुप्तस्य शुशुभे नाभिमध्यात्समुत्थितम् ।
आद्य तस्यासन पद्म ब्रह्मणः सूर्यवर्चसम् ।
सहस्रपत्र वर्णाढ्य सुकुमार विभूषितम् ॥११
ब्रह्मसूत्रोद्यतकरः स्वपन्नेव महामुनिः ।
आवर्त्तयति लोकाना सर्वेषा कालपर्ययम् ॥१२
विवृतात्तस्य वदनान्निः श्वासपवनेरिता ।
प्रजाना पड्क्तयो ह्युचैर्निष्पतन्त्युत्पतन्ति च ॥१३
ते सृष्टाः प्राणिनो मेध्या विभक्ता ब्रह्मणा स्वयम् ।
चतुर्द्धा स्वा गति जग्मुः कृतान्तोक्तेन कर्मणा ॥१४
न तं वेद स्वयं ब्रह्मा नापि ब्रह्मर्षयोऽव्ययाः ।
विष्णोर्निद्रामय योग प्रविष्ट तमसाऽऽवृतम् ॥१५

व्रतधारियो मे श्रेष्ठ भगवान् श्रीविष्णु एकार्णव विधि से समुद्रीय मेघ समान शीतल तथा दिव्य शय्या पर लेट गए ॥६॥ उस समय सभी देवगण ऋषिजन ससार की सृष्टि के लिए लेटे हुए महात्माओ मे श्रेष्ठ भगवान् विष्णु की सराहना करने लगे ॥१०॥ इसी शयनावस्था मे ही भगवान् की ली मे सूर्य के सदृश तेजवाला, हजारों पत्र सहित तथा कई वर्णों वाले एक ल की उत्पत्ति हुई ॥११॥ यही कमल ब्रह्माजी की उत्पत्ति का द्योतक था। वान् श्रीविष्णु उसी स्वप्नावस्था में ही ब्रह्मसूत्र द्वारा अपने हाथ उठाए हुए ो लोकों में भ्रमण करने लगे ॥१२॥ जैसे भगवान् ने ब्रह्माजी की उत्पत्ति वैसे ही ब्रह्माजी के मुँह से निकली हुई श्वास से इस ससार की सृष्टि हो ॥१३॥ इसके पश्चात् प्रजापति ब्रह्मा द्वारा रचित प्रजाजन ब्रह्मा द्वारा ही : गए चार वर्णों में वेदो बतलाए गए कर्मों के अनुसार अपने-अपने धर्म तथा वरभक्ति में सलग्न हो गये ॥१४॥ स्वय ब्रह्मा तथा कोई भी ऋषिजन उन : तिमिर युक्त तथा दिव्य स्वप्नावस्थित भगवान् श्रीविष्णु के रूप को नहीं पाए ॥१५॥

स तया निद्रयाच्छन्नस्तस्मिन्नारायणाश्रमे ।
शेते विभुः सदा विष्णुर्मोहयञ्जगदव्ययः ॥१६

तस्य वर्षसहस्राणि शयानस्य महात्मन ।
जग्मु कृतयुग चैव त्रेता चैव युगोत्तमम् ॥१७
स तु द्वापरपर्यन्ते ज्ञात्वा लोकान्सुदु खितान् ।
प्राबुध्यत महातेजा स्तूयमानो महर्षिभि ॥१८
जहीहि निद्रा सहजा भुक्तपूर्वामिव स्रजम् ।
इमे ते ब्रह्मणा सार्द्ध देवा दर्शनकाक्षिण ॥१९
इमे त्वा ब्रह्मविद्वासो ब्रह्मसस्तववादिन ।
वर्द्धयन्ति हृषीकेश ऋषय सशितव्रता ॥२०
एतेषामात्मभूताना भूताना भूतभावन ।
शृणु विष्णो शुभा वाचो भूव्योमाग्न्यनिलाम्भसाम् ॥२१

इसी प्रकार वे विनाशहीन भगवान श्रीविष्णु अपने आश्रम में उ निद्रावस्था मे ही ससार को मोहित करते हुए शयन-सलग्न रहे ॥ तथा उनको शयन करते करते सतयुग और त्रेतायुग अर्थात् एक दिव्य स वर्ष बीत गए ॥१७॥ द्वापर युग के अन्त समय मे समस्त ससार के जीवात्मा के अत्यन्त पीडित होने पर तथा सभी ऋषिजनों द्वारा सराहना करने भगव जागे ॥१८॥ ऋषिजन कहने लगे—हे भगवन् ! अब आप भुक्तपूर्व माला समान इस निद्रा को त्याग कर देखिए—सभी ब्रह्मजन, सत्यवादी तथा व्रतधा ऋषिगण एव देवगण प्रजापति ब्रह्मा सहित आपके दर्शनो की अभिलाषा आपकी प्रार्थना कर रहे हैं ॥१९-२०॥ हे भगवन् ! अपने रूपातर पृ आकाश, अग्नि, वायु एव जल के अधिष्ठाता सदृश देवगणो की प्रार्थ सुनें ॥२१॥

इमे त्वा सप्त मुनय सहिता मुनिमण्डलै ।
स्तुवन्ति देवा दिव्याभिर्गेयाभिर्गीर्भिरञ्जसा ॥२२
उत्तिष्ठ शतपत्राक्ष पद्मनाभ महाद्युते ।
कारण किंचिदुत्पन्न देवाना कार्यगौरवात् ॥२३
स सक्षिप्य जल सर्व तिमिरौघ विदारयन् ।
उदतिष्ठद्धृषीकेश श्रिया परमयाज्वलन् ॥२४

स ददर्श सुरान्सर्वान्समेतान्सपितामहान् ।
विवक्षत. प्रक्षुभितान्जगदर्थे समागतान् ॥२५
तानुवाच हरिर्देवो निद्राविश्रान्तलोचन ।
तत्त्वदृष्टार्थया वाचा धर्महेत्वर्थयुक्तया ॥२६
कुतो वो विग्रहो देवा. कुतो वो भयमागतम् ।
कस्य वा केन वा कार्यं किं वा मयि न वर्तते ॥२७
किं खल्वकुशले लोके वर्तते दानवोत्थितम् ।
नृणामायासजननं शीघ्रमिच्छामि वेदितुम् ॥२८
एष ब्रह्मविदा मध्ये विहाय शयनोत्तमम् ।
शिवाय भवतामर्थं स्थित किं करवाणि व. ॥२९

इधर सप्तमुनियों सहित यह सम्पूर्ण मुनिमण्डली दिव्य वाक्यों तथा ...वत् छन्दों द्वारा आपकी सराहना कर रहे हैं ॥२२॥ हे शतपत्राक्ष ! हे हायुते ! अब आप उठिए किसी विशेष कार्य के उत्पन्न होने कारण ही ये ास्त देवगण यहाँ पर एकत्रित हुए हैं ॥२३॥ वैशम्पायन ने कहा—हे हाराज ! इस प्रकार सभी देवगणों तथा ऋषिजनों द्वारा स्तुति करने पर गवान् श्री विष्णु ने उस विस्तृत जलराशि को सूक्ष्म किया तथा तेज से अन्धकार ा नाश करते हुए दिव्य-शैय्या से उठ बैठे ॥२४॥ निद्रा से जागकर भगवान् ी विष्णु ने देखा कि समस्त देवगणों सहित ब्रह्माजी संसार की भलाई हेतु छ कहने को मौन धारण किए हुए खड़े हैं ॥२५॥ उन सभी को उपस्थित खकर निद्रारहित चक्षुवाले भगवान् उनको सम्बोधित करते हुए धर्म तथा र्थपूर्ण शब्द कहने लगे ॥२६॥ भगवान् श्री विष्णु बोले—हे देवगणो ! अब ाप लोगों की किसके साथ कलह हो गई तथा आप लोग किससे भयभीत हैं ? ापके शत्रु दैत्यों ने फिर कोई विनाशकारी कार्य तो नहीं किया ? यह सब मुझे ीघ्र बतलाओ ॥२७-२८॥ आपकी सहायता हेतु मैं अपनी दिव्य शैय्या त्याग का हूँ । बतलाओ अब मुझे क्या कार्य करना है ? ॥२९॥

॥ विष्णु का देवताओं से वार्तालाप ॥

सन्ध्युस्य. विष्णुर्हरि. ब्रह्मा. लोकपितामह ।
उवाच परम वाक्य हित सर्वदिवौकसाम् ॥1

नास्ति किंचिद्भयं विष्णो सुराणामसुरान्तक ।
येषां भवानभयदः कर्णधारो रणे रणे ॥२
शक्रे जयति देवेशे त्वयि चासुरसूदन ।
धर्मे प्रयतमानानां मानवानां कुतो भयम् ॥३
सत्ये धर्मे च निरतान्मानवान्विगतज्वरान् ।
नाकाले धर्मिणो मृत्युः शक्नोति प्रसमीक्षितुम् ॥४
मानवानां च पतयः पार्थिवाश्च परस्परम् ।
षड्भागमुपभुञ्जाना न भेदं कुर्वते मिथः ॥५
ते प्रजानां शुभकराः करदैरवगर्हिताः ।
सुकरैर्विप्रयुक्तार्थाः कोशानां पूरयन्त्युत ॥६
स्फीताञ्जनपदान्सर्वान्पालयन्तः क्षमापराः ।
अतीक्ष्णदण्डाश्चतुरो वर्णाञ्जुगुपुरञ्जसा ॥७
नोद्वेजनीया भूतानां सचिवैः साधुपूजिताः ।
चतुरङ्गबलैर्गुप्ताः षड्गुणानुपभुञ्जते ॥८

वैशम्पायन ने कहा—हे महाराज ! भगवान् श्री विष्णु के ऐसे शब्द सुनकर लोकपितामह ब्रह्माजी सभी देवगणों के कल्याणार्थ शुभ वचन कहने लगे ॥१॥ ब्रह्माजी बोले—हे असुर विनाशी भगवन् ! जब हमारे पास आप जैसे कर्णधार का बल है तो युद्ध स्थल मे हमे किसका भय है ? ॥२॥ जब देवेन्द्र हमारे राजा हैं तथा आप सभी शत्रुओं को मारकर हमे भयमुक्त करते रहते हैं तो किस बात का भय है ? ऐसे समय मे तो बिना काल मृत्यु भी हमारी ओर नही देख सकती ॥३-४॥ मनुष्यों पर राज्य करने वाले सभी राजा प्रजाजनों से प्राप्त होने वाले करके छठवें हिस्से का उपभोग करते हुए आपस में नही लड़ते ॥५॥ अपितु सभी राजा अपने एकत्रित धन से राज्य के खजाने की कमी को पूरा तथा प्रजा की प्रसन्नता और उन्नति का प्रयत्न करते रहते हैं ॥६॥ वे क्षमाशील राजा लोग अपने-अपने राज्यों के सुख, उन्नति व जनता की सुरक्षा करते हुए, किसी को भी कड़ा दण्ड नहीं देते तथा चारों वर्णों का धर्मानुसार पालन करते हैं ॥७॥ प्रजाजनों में से किसी को भी किसी प्रकार

कष्ट नहीं है। प्रजाजन अपने राज्य के मन्त्रियों के उच्च विचार सद्व्यवहार तथा चारों प्रकार की सेवा में सुरक्षित नयमुक्त होकर षड्गुणों से जीवननिर्वाह कर रहे हैं ॥८॥

धनुर्वेदपरा सर्वे सर्वे वेदेषु निष्ठिता ।
यजन्ते च यथाकाल यज्ञैर्विपुलदक्षिणैः ॥९
वेदानधीत्य दीक्षाभिर्महर्षीन्ब्रह्मचर्यया ।
श्राद्धैश्च मेध्यै शतशस्तर्पयन्ति पितामहान् ॥१०
नैषामविदित किञ्चित्त्रिविध भुवि दृश्यते ।
वैदिक लौकिक चैव धर्मशास्त्रोक्तमेव च ॥११
ते परावरदृष्टार्था महर्षिसमतेजस ।
भूय कृतयुग कर्तुमुत्सहन्ते नराधिपा ॥१२
तेषामेव प्रभावेण शिव वर्षति वासव ।
यथार्थं च ववुर्वाता विरजस्का दिशो दश ॥१३
निरुत्पाता च वसुधा सुप्रचाराश्च खे ग्रहा ।
चन्द्रमाश्च सनक्षत्र सौम्य चरति योगत ॥१४
अनुलोमकर सूर्यस्त्वयने द्वे चचार ह ।
हव्यैश्च विविधैस्तृप्त शुभगन्धो हुताशन ॥१५
एव सम्यक्प्रवृत्तेषु विवृद्धेषु मखादिषु ।
तर्पयत्सु मही कृत्स्ना नृणा कालभय कुत ॥१६

इस समय समस्त मानव जन धनुर्वेद के विद्वान, सभी वेदों के ज्ञाता [illegible] यथा समय यज्ञों में पूर्ण दक्षिणा देने वाले हैं ॥९॥ समस्त मानव वेदों के [illegible]यन से ऋषिजनों को, विधिवत् किए गए यज्ञों द्वारा देवगणों को तथा [illegible]हों पवित्र श्राद्धों को करके अपने पूर्वजों को प्रसन्न करते हैं ॥१०॥ ऐसा [illegible] भी कार्य नहीं जिसको वे लोग न जानते हों तथा वे वैदिक, लौकिक और [illegible]स्त्र युक्त सभी कार्यों को करते हैं ॥११॥ विधिवत् सभी कार्य करते हुए [illegible]ा लोग भी ऋषि-गणों के समान तेजवान होकर पृथ्वी पर फिर से [illegible]ग लाने में प्रयत्नशील हैं ॥१२॥ उन राजाओं के इन शुभ कार्यों के करने

से जलधर समय पर बरसते हैं तथा वायु भी अपने पथ पर यथारूप बहती है जिससे चतुर्दिक मे कही भी धूल के गुब्बारे आदि नही उडते ॥१३॥ पृथ्वी पर इस समय किसी प्रकार के उपद्रव नही होते । सभी ग्रह अपने चक्र पर घूमते हैं। चन्द्रमा सभी नक्षत्रो सहित शान्त भाव से विचरता है। सूर्य नियमानुसार अपने दोनों अयनो तथा अग्नि नाना प्रकार के यज्ञो से प्रस न होकर चतुर्दिक में सुगन्ध का सचार करते हैं ॥१४ १५॥ भगवन् ! जब विधिवत् यज्ञ तथा अन्य सभी कार्यो के आयोजित होने से भूमि तृप्त तथा प्रस न रहती है तो समस्त मानवो को मृत्यु का भय क्यो होगा ? ॥१६॥

तेषा ज्वलितकोर्तीनामन्योन्यवशवर्तिनम् ।
राज्ञा बलैर्बलवता पीडयते वसुधातलम् ॥१७
सेयं भारपरिश्रान्ता पीडचमाना नराधिपैः ।
पृथिवी समनुप्राप्ता नौरिवासन्नविप्लवा ॥१८
युगान्तसदृशं रूपं शैलोच्चलितबन्धना ।
जलोत्पीडाकुला स्वेद धारयन्ती मुहुर्मुहु ॥१९
क्षत्रियाणा वपुर्भिश्च तेजसा च बलेन च ।
नृणा च राष्ट्रं विस्तीर्णं श्राम्यतीव वसुन्धरा ॥२०
पुरे पुरे नरपति कोटिसख्यैबलैर्वृत ।
राष्ट्रे राष्ट्रे च बहवो ग्रामा शतसहस्रश ॥२१
भूमिपाना सहस्रैश्च तेषा च बलिना बलैः ।
ग्रामायुतार्धं राष्ट्रैश्च भूमिर्निर्विवरा कृता ॥२२
सेयं निरामय कृत्वा निश्चेष्टा कालमग्रत ।
प्राप्ता ममालय विष्णो भवाश्चास्या परा गति ॥२३
धर्मभूर्मनुष्याणा भूमिरेषा व्यथा गता ।
यथा न सीदेत्तत्कार्यं जगत्येषा हि शाश्वती ॥२४

परन्तु इन अग्नि के समान प्रसिद्ध यशयुक्त राजाओं की बड़ी सेना के भार से पृथ्वी को बड़ा कष्ट हो रहा है ॥१७॥ इन बढती हुई

के भार से दबी हुई पृथ्वी इस प्रकार पीड़ित है जिस प्रकार शीघ्र डूबने वाली शिथिल नाव होती है ॥१८॥ समुद्र के बीच में जो पर्वत पृथ्वी को रोकने का काम कर रहे थे, अब वे भी धीरे-धीरे कटते जा रहे हैं। सागरीय लहरों से अत्यन्त पीड़ित होकर कभी-कभी पृथ्वी को पसीना आने लगता है ॥१९॥ राजा लोगों के शरीर, तेज, बल तथा विस्तार से फैले राज्यों का बोझ ढोने में वसुधा असमर्थ हो चुकी है ॥२०॥ आजकल नगर-नगर में एक राजा है जिनके पास करोड़ों की संख्या में सैनिक हैं। एक एक नगर में सैकड़ों तथा हजारों गाँव हैं ॥२१॥ तथा ऐसे सहस्रों वीर राजाओं की बढ़ती हुई सेना, ग्राम तथा नगरों से वसुधा सांस तक लेने में असमर्थ होगई है ॥२२॥ हे विष्णु ! इस तरह पीड़ित वसुधा काल सहित मेरे समक्ष उपस्थित हुई है। अत अब आप ही इसका कोई उपाय कीजिए ॥२३॥ अब आप कोई सत्कार्य कीजिए जिससे समस्त मानवों की कर्म भूमि यह वसुधा और अधिक बोझ से न दबे ॥२४॥

एव जगति वर्त्तन्ते मनुष्या धर्मकारणात् ।
यथा धर्मवधो न स्यात्तथा मन्त्र प्रवर्त्यताम् ॥२५
सता गतिरिय मान्या धर्मश्चास्था सुसाधनम् ।
राज्ञा चैव वध कार्यो धरण्या भारनिर्णये ॥
तदागच्छ महाभाग सह वै मन्त्रकारणात् ।
प्रजामो मेरुशिखर पुरस्कृत्य वसुन्धराम् ॥२६
एतावदुक्त्वा राजेन्द्र ब्रह्मा लोकपितामह ।
पृथिव्या सह विश्वात्मा विरराम महाद्य ति ॥२७

इस समय ससार में समस्त मानव धर्म के कार्यों में सलग्न हैं। इसलिए कोई ऐसा उपाय होना चाहिए जिससे धर्म का नाश न हो सके ॥२५॥ सज्जनों की धर्म की अपेक्षा कोई और दशा नहीं तथा मानव-जनों को वसुधा के अतिरिक्त कोई और दशा नहीं है। इसलिये यही उत्तम है कि पृथ्वी का बोझ कम करने के लिए राजाओं का सहार किया जाय ॥२६॥ हे भगवन् ! इस समस्या के निश्चित विचार हेतु मेरु पर्वत की चोटी पर चलें—हे राजन् ! इस प्रकार कहकर महा तेजवान् पितामह ब्रह्मा मौन हो गए ॥२७॥

॥ पृथिवी का दुःख वर्णन ॥

बाढमित्येव सह तैर्दुर्दिनोम्भोदनिःस्वनः ।
प्रतस्थे दुर्दिनाकारः सदुर्द्दिन इवाचलः ॥१
नातिदीर्घेण कालेन सम्प्राप्ता रत्नपर्वतम् ।
ददृशुर्देवतास्तत्र तां सभां कामरूपिणीम् ॥२
मेरोः शिखरविन्यस्तां संयुक्तां सूर्यवर्चसा ।
काञ्चनस्तम्भरचितां वज्रसमानतोरणाम् ॥३
मनोनिर्माणचित्राढ्यां विमानशतमालिनीम् ।
रत्नजालान्तरवतीं कामगां रत्नभूषिताम् ॥४
सर्वरत्नसमाकीर्णां सर्वर्तुकुसुमोत्कराम् ।
देवमायाधरां दिव्यां विहितां विश्वकर्मणा ॥५
ता हृष्टमनसः सर्वे(यथा)स्थानं यथाविधि॥
यथानिदेशं त्रिदशा विविशुस्ते सभां शुभाम् ॥६
ते निषेदुर्यथोक्तेषु विमानेष्वासनेषु च ।
भद्रासनेषु पीठेषु कुथास्वास्तरणेषु च ॥७
ततः प्रभञ्जनो वायुर्ब्रह्मणा साधु चोदितः ।
मा शब्दमिति सर्वत्र प्रचक्रामाथ तां सभाम् ॥८

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! जलीय मेघों के सदृश ... भगवान् श्री विष्णु शब्दो स्वरूप मेघों से आच्छन्न पर्वत के सदृश गहन 'ऐसा ही हो' बोले तथा उन समस्त देवगणों सहित मेरु शिखर की ... दिए ॥१॥ यथाशीघ्र वे उस सुमेरु पर्वत पर पहुंचे तथा वहाँ उन समस्त देवगणों ने सूर्य रश्मि से देदीप्यमान् काम स्वरूप देव सभा देखी ॥२॥ वह देव सभा मेरु शिखर पर स्थित थी तथा वह सदा सूर्य की किरणों से प्रकाशित रहती थी । उसके स्तम्भ स्वर्ण के बने थे तथा तोरण हीरे का और द्वार रत्न से जड़े हुए थे ॥३॥ उसके मध्य में मनोबल के द्वारा नाना प्रकार के रत्नों की चित्रकारी हो रही थी । सैकड़ों विमान उस पर हमेशा उड़ान भरते थे ।

देव सभा के बाग में सभी ऋतुओं के पुष्प खिल रहे थे। उसमें देवगणों की शिल्पकला की निपुणता स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही थी। तथा वह विश्वकर्मा द्वारा निर्मित थी ॥४-५॥ सभी देवगण उस देवसभा का निरीक्षण करते हुए प्रसन्नचित्त मे उसके अन्दर समाविष्ट हुए तथा विधिवत् विमान, आसन, भद्रासन, पीठासन, तथा कुशासन पर बैठे ॥६-७॥ इसके पश्चात् पितामह ब्रह्माजी ने वायुदेव को देवसभा में किसी प्रकार का शोर-गुल न होने के लिए निर्देशित किया तथा अपने कार्य मे व्यस्त हो गए ॥८॥

निःशब्दस्तिमिते तस्मिन्समाजे त्रिदिवौकसाम् ।
बभाषे धरणी वाक्यं खेदात्करुणभाषिणी ॥६
त्वया धार्या ह्यहं देव त्वया वै धार्यते जगत् ।
त्वं धारयसि भूतानि भुवनानि बिभर्षि च ॥१०
यत्त्वया धार्यते किञ्चित्तेजसा च बलेन च ।
ततस्तव प्रसादेन मया यत्नाच्च धार्यते ॥११
त्वया धृतं धारयामि नाधृतं धारयाम्यहम् ।
न हि तद्विद्यते भूतं यत्त्वया नानुधार्यते ॥१२
त्वमेव कुरुषे देव नारायण युगे युगे ।
मम भारावतरणं जगतो हितकाम्यया ॥१३
तवैव तेजसा क्रान्ता रसातलतलं गताम् ।
त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ तवैव शरणं गताम् ॥१४
दानवैः पीड्यमानाऽहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः ।
त्वामेव शरणं नित्यमुपयास्ये सनातनम् ॥१५
तावन्मेऽस्ति भयं भूयो यावन्न त्वां ककुद्मिनम् ।
शरणं यामि मनसा शतशो ह्युपलक्षये ॥१६

जब समस्त सभा सदस्य शान्तिपूर्वक उस सभा में बैठ गए तो शोक-ग्रस्त करुणाजनक वचनों से भगवान् श्री विष्णु को सम्बोधन करके पृथ्वी कहने ॥६॥ पृथ्वी ने कहा—हे भगवन् ! आपमें मैं, समस्त संसार, समस्त प्राणि समाविष्ट हैं ॥१०॥ आप अपने तेज तथा अपनी शक्ति से जिस-जिस का

भगवन्ह्रियतामस्या धरण्या भारमतनि ।
शरीरकर्ता लोकाना त्व हि लोकस्य चेश्वर ॥२

यत्कर्तव्य महेन्द्रेण यमेन वरुणेन च ।
यद्वा कार्यं धनेशेन स्वय नारायणेन च ॥३
यद्वा चन्द्रमसा कार्यं भास्करेणानिलेन वा ।
आदित्यैर्वसुभिर्वाऽपि रुद्रैर्वा लोकभावनं ॥४
अश्विभ्या देववैद्याभ्या साध्यैर्वा त्रिदशालयं ।
बृहस्पत्युशनोभ्या वा कालेन कलिनाऽपि वा ॥५
महेश्वरेण वा प्रद्युन्त्रिशाखेन गुहेन वा ।
यक्षराक्षसगन्धर्वैश्चारणैर्वा महोरगैं ॥६
पतगै पर्वतैश्चापि सागरैर्वा महर्षिभि ।
गगामुख्याभिर्दिव्याभि सरिद्भिर्वा सुरेश्वर ॥७
क्षिप्रमाज्ञापय विभो कथमंश प्रयुज्यताम् ।
यदि ते पार्थिव कार्यं कार्य पार्थिवविग्रहे ॥८

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार पृथ्वी के कहने पर उसका कष्ट दूर करने के उद्देश्य से समस्त देवगण पितामह ब्रह्माजी से बोले—॥१॥ भगवन् ! ऐसा कोई कार्य कीजिए, जिससे कि पृथ्वी का कष्ट दूर हो। इन लोकों की आपने ही रचना की है तथा आप ही इन लोकों के स्वामी हैं ॥२॥ हम समस्त देवगण देवराज इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, देवाधिदेव भगवान विष्णु, चन्द्र, सूर्य, वायु आदित्यगण आठों वसु, रुद्र गण, दोनों अश्विनीकुमार, साध्यगण, बृहस्पति, शुक्र, काल, कलि, भगवान् शंकर, शिखिवाहन स्वामि कार्तिकेय, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध चारण, पर्वत, उत्ताल तरंगयुक्त समुद्र तथा गंगादि नदी को क्या कार्य करना चाहिए यह विस्तारपूर्वक बताइए ॥३-७॥ अगर राजाओं में परस्पर युद्ध कराकर पृथ्वी का भार हलका करना चाहते हैं, तो फिर हम लोगों को बतलाइए कि हमें क्या-क्या कार्य

धारण करते हैं, आपकी महत्ता से मैं भी प्रयत्नपूर्वक उनका बोझ
जब उनको आप धारण करते हैं तो मुझे भी उन सबका बोझ
अगर आप धारण न करें तो मैं भी नहीं कर सकती। तथा इ
भी ऐसी वस्तु नहीं जो कि आपमें समाविष्ट न हो ॥१२॥ के
मे यथा समय मेरा भार हलका करते रहते है ॥१३॥ आपके
रसातल पहुँची हूँ। हे देवाधिदेव! मैं आपकी शरण में आई
क्षा करके मुझे निर्भय कीजिए ॥१४॥ जब-जब दुष्ट दैत्य
ने पीड़ा पहुचाई तब तब मैं आपकी शरण मे आई हूँ ।
नक मैं शुद्ध मन से आपकी शरणागत नहीं आती,
ने डर लगे रहते हैं तथा मैं भयग्रस्त रहती हूँ ॥१६॥

त्वद्युष्मत्प्रवृत्तेन दैवेन परिपाल्यते ।
वांछितार्थं कुरुत राज्ञा हेतु रण क्षये ॥१७
ग्रास्ति मयि कारुण्य भारशैथिल्यकारणात्

देवताओं के दे नाना प्रसंगों की कथा पर विचार करते हुए समय व्यतीत कर
मग ॥१५-१६॥

शरी कुर्वंतस्तु कथास्तास्ताः सह गंगया ।
यत्समीपमाजगामाशु युक्तस्तोयदमारुतैः ॥१७
यद्वा । वीचिविषमां कुर्वन्गति वेगतरंगिणीम् ।
यद्वा गदोगणविचित्रेण संच्छन्नस्तोयवाससा ॥१८
आदि खमुक्तामलतनुः प्रवालद्रुमभूषणः ।
अश्वि कश्चन्द्रमसा पूर्णं उग्रगम्भीरनिःस्वनः ॥१९
बृहस्प मां परिभवन्नेव स्वां वेला समतिक्रमन् ।
दयामास चपलैर्लावणैरम्बुविस्रवैः ॥२०
महेश्वरे । देशं व्यवसिताः समुद्रोऽद्भिर्विमर्दितुम् ।
यक्षराक्ष संरब्धया वाचा शान्तोऽसीति मया तदा ॥२१
पतगैः पर्व ऽसीत्युक्तमात्रस्तु तनुत्वं सागरो गतः ।
गणामुखा मितरंगौघः स्थितो राजश्रिया ज्वलन् ॥२२
क्षिप्रमाज्ञा व मया प्राप्तः समुद्रः सह गंगया ।
यदि ते पाप मतिं कृत्वा युष्माकं हितकाम्यया ॥२३
राजतुल्येन वपुषा समुपस्थितः ।
वैशम्पायन ने महीपालो राजेव त्वं भविष्यसि ॥२४

कष्ट दूर करने के उद्देश्य
हे भगवन् ! ऐसा कोई में गया, जलधर तथा मारुत सहित सागर मेरे समक्ष
तीनों लोकों को आपने ही समय सागर के यथावेग ही उसमें लहरें भी उठ रही थीं।
अब हम समस्त देवगण)वों के कारण उसका वस्त्रसा लग रहा था तथा उसका पानी
श्री विष्णु, चन्द्र, सूर्य, आ १८॥ सागर का तन शंख तथा मोतियों सदृश साफ था ।
कुमार, साध्यगण, बृहस्पति, शुक्र, म मणि थे और उसकी गम्भीर जलधर के सदृश वाणी
स्वामि कार्तिकेय, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, मैं से अचानक उफान खाता हुआ अपनी सीमा
समुद्र, तथा गंगादि नदीयों को क्या किया । तथा अपने अत्यधिक खारी जल से
उपस्थित रहेंगे ॥२-७॥ अगर राजाओं में पृथ्वी में अत्यन्त गहन वाणी में उसमें बोला—
रना चाहते हैं, तो फिर हम लोगों
ी है ॥८॥

धारण करते हैं, आपकी महत्ता से मैं भी प्रयत्नपूर्वक उनका बोझ ढोती हूँ ॥११॥
जब उनको आप धारण करते हैं, तो मुझे भी उन सबका बोझ ढोना पड़ता है।
अगर आप धारण न करें तो मैं भी नहीं कर सकती। तथा इस संसार में कोई
भी ऐसी वस्तु नहीं जो कि आपमें समाविष्ट न हो ॥१२॥ केवल आप ही युग
में यथा समय मेरा भार हलका करते रहते हैं ॥१३॥ आपके तेज से ही मैं
रसातल पहुँची हूँ। हे देवाधिदेव! मैं आपकी शरण में आई हूँ अब आप मेरी
रक्षा करके मुझे निर्भय कीजिए ॥१४॥ जब-जब दुष्ट दैत्यों तथा राक्षसों ने
पीड़ा पहुँचाई तब तब मैं आपकी शरण में आई हूँ, ॥१५॥ हे भगवन्!
तक मैं शुद्ध मन से आपकी शरणागत नहीं आती, तब-तब मुझे बड़े
डर लगे रहते हैं तथा मैं भयत्रस्त रहती हूँ ॥१६॥

दे
ता तद्युष्मत्प्रवृत्तेन दैवेन परिपाल्यते।
ऋद्धितार्थं कुरुत राज्ञा हेतु रण क्षये ॥१७
यथा स्त मयि कारुण्य भारशैथिल्यकारणात्।
ते निपे चक्रधर श्रीमानभय मे प्रयच्छतु ॥१८
भद्रासनेषु रसतप्ता सम्प्राप्ता शरणार्थिनी।
तत प्रभ वरोप्तव्यो विष्णुरेप ब्रवीतु माम् १६
मा शब्दमि

देवताओं द्वा नाना प्रसंगों की कथा पर विचार करते हुए समय व्यतीत कर गए ॥१५-१६॥

गरी कुर्वतस्तु कथास्तास्ताः सह गंगया ।
मत्समीपमाजगामाशु युक्तस्तोयदमारुतैः ॥१७
दद्रा । वीचिविषमां कुर्वन्नति वेगतरंगिणीम् ।
मद्रा नदीगणविचित्रेण संच्छन्नस्तोयवाससा ॥१८
आदि खमुक्तामलतनुः प्रवालद्रुमभूषणः ।
अभि कश्चन्द्रमसा पूर्ण उग्रगम्भीरनिःस्वनः ॥१९
बृहस्पत मां परिभवन्नेव स्वां वेलां समतिक्रमन् ।
दयामास चपलैर्लवणैरम्बुविस्रवैः ॥२०
महेश्वरो, देशं व्यवसितः समुद्रोऽद्भिर्विमर्दितुम् ।
यक्षराक्ष, संरब्धया वाचा शान्तोऽसीति मया तदा ॥२१
पन्नगः पर्व ऽभीत्युक्तमात्रस्तु तनुत्वं सागरो गतः ।
गंगामुख्यामितरंगौघः स्थितो राजश्रिया ज्वलन् ॥२२
शिप्रमाशाव मया शप्तः समुद्रः सह गंगया ।
यदि ते पार्थ मतिं कृत्वा युष्माकं हितकाम्यया ॥२३
राजतुल्येन वपुषा समुपस्थितः ।
वैशम्पायन ने । महीपालो राजैव त्वं भविष्यसि ॥२४

ष्ट दूर करने के उद्देश

भगवन् ! ऐसा कोई मैं गया, जलधर तथा मारुत सहित सागर मेरे समक्ष
गों लोकों की आपने ही समय सागर के यथावेग ही उसमें लहरें भी उठ रही थीं।
व इन समस्त देवगण वों के कारण उसका बदनमा लग रहा था तथा उसका पानी
। विष्णु, चन्द्र, सूर्य, धा १८॥ सागर का तन शंख तथा मोतियों सदृश साफ था ।
ार, मार्कण्डेय, बृहस्पति, शुक्र, ो मणि थे और उसकी गम्भीर जलधर के सदृश वाणी
मि कार्तिकेय, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, मिया । तथा अपने अत्यधिक खारी ज
तथा गंगादि नदी को कथा का ॥२०॥ उस समय वह मुझे सिर्फ
ए ॥२-७॥ अगर राजाओं में पानी में अत्यन्त गहन वाणी मे उससे
चाहते है

'शान्त हो जाओ' ॥२१॥ मेरे ऐसा कहते ही सागर शान्त होकर अपनी सीमा में चला गया। इस समय उसका वेग, उसकी लहरें समाप्त हो गई तथा वह पुन. राज्यश्री से शोभित दिखलाई देने लगा ॥२२॥ इसके पश्चात् मैं आप समस्त देवगणो के हित को ध्यान मे रखते हुए गगा तथा सागर को श्राप देकर बोला—हे सागर ! क्योंकि तुम मेरे समक्ष राजा के समान आए, इसलिए जाओ अब तुम राजा ही बनो ॥२३-२४॥

ऐसे वचन सुन कर सागर अत्यन्त क्रोध में बोला—हे भगवन्! हे देवाधिदेव! मेरा आपके अतिरिक्त कोई और नहीं है तथा मैं आपका आज्ञा-परायण पुत्र हूँ। आपने मेरे लिए ऐसे अशुभ वचनों में शाप क्यों दिया? ॥२९-३०॥ आपके द्वारा निर्धारित मैं प्रत्येक पूर्णिमा को कर्तव्य-पालन की दृष्टि से बढ़ता हूँ, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है ॥३०॥ पूर्णिमा के दिन कर्तव्य-पालन करते हुए वायु के वेग से उठान कर अगर मैंने आपका स्पर्श कर लिया तो मैं आपका अपराधी नहीं हूँ ॥३१॥ आज वायुवेग, आच्छादित मेघ तथा पूर्ण चन्द्र रश्मि युक्त पूर्णिमा से ही मैं इस प्रकार अचानक उद्विग्न हो गया था ॥३२॥

एवं यद्यपराद्धोऽह कारणं स्त्वत्प्रकल्पितं ।
क्षन्तुमर्हसि मे ब्रह्मञ्छापोऽयं विनिवर्त्यताम्॥३३
एव मयि निरालम्बे शापाच्छिथिलतां गते ।
कारुण्य कुरु देवेश प्रमाण यद्यवेक्षसे ॥३४
अस्यास्तु देवगङ्गाया गा गतायास्त्वदाज्ञया ।
मम दोषाददोषाया प्रसाद कर्तु महंसि ॥३५
तमह श्लक्ष्णया वाचा महार्णवमयाब्रुतम् ।
अकारणज्ञ देवाना ग्रस्त शापानलेन तम् ॥३६
शान्ति व्रज न भेतव्य प्रसन्नोऽस्मि महोदधे ।
शापेऽस्मिन्सरिता नाथ भविष्य शृणु कारणम् ॥३७
त्व तात भारते वर्षे स्वदेह स्वेन तेजसा ।
आधत्स्व सरिता नाथ त्यक्त्वेमा सागरी तनुम् ॥३८
महोदधे महीपालस्तत्र राजश्रिया वृत ।
पालयश्चतुरो वर्णान्रम्यसे सलिलेश्वर ॥३९

इस प्रकार आपके निर्धारित कर्तव्य पालन में अगर मैं किसी प्रकार दोषी हो मेरा दोष भूल जाइए तथा मुझे शाप-मुक्त कीजिए ॥३३॥ अगर आपको इस पर विश्वास न हो तो शाप ग्रस्त निश्चेष्ट शरीर वाले मुझ अभागे पर कृपा कीजिए ॥३४॥ गंगा नदी निर्दोष है इसको मेरे कारण शाप नहीं मिलना चाहिए अतः आप इसको भी शाप मुक्त कीजिए ॥३५॥ ब्रह्माजी बोले कि हे देवगणो!

समुद्र के ऐसा कहने पर मैं उससे बोला—हे समुद्र ! तुम्हे देवगणों का विधा-ज्ञात नहीं है। तुम धैर्य रखो तथा मेरे श्राप से भय न खाओ, तुमको थोड़ा भी भयग्रस्त नहीं होना चाहिए। हे समुद्र ! मैं तुमसे कुपित नहीं हूँ तथा मैंने तुमको श्राप किस लिए दिया इसका कारण बतलाता हूँ ॥३६-३७॥ तुम अपने इस समुद्र-शरीर को छोड़ कर पृथिवी पर भरतवश मे जन्म लो। हे समुद्र ! तुम अपने तेज से प्रभावित होकर चक्रवर्ती राजा बनोगे तथा चारों वर्णों का वर्णा-नुसार पालन करते हुए आनन्द से जीवन-निर्वाह करोगे ॥३८-३९॥

सहित तुम नाना प्रकार के आनन्द उपभोगों से अपने 'मानव रूप के दु:ख को एकदम भुला दोगे ॥४१॥ जैसा मैं तुमसे कह रहा हूं, उसी प्रकार तुम गंगा सहित अपनी प्रजा का विधिवत् पालन करते हुए राज्य करो ॥४२॥ इस समय अष्ट-वसु स्वर्ग से विमुख होकर पाताल चले गए हैं अतः उनको फिर से जन्म देने के प्रयोजन से ही तुमको मैंने यह शाप दिया है ॥४३॥ यह गंगा अष्टवसुओं को अपने गर्भ से फिर से जन्म देगी। अग्नि के समान तेजवान् अष्टवसुओं के पुनर्जन्म से देवगण अत्यन्त आनन्दित होंगे ॥४४॥ हे समुद्र! इस प्रकार तुम अष्टवसुओं को जन्म देकर तथा कुरुकुल को विस्तृत करने के पश्चात् पुनः सागर-शरीर धारण करोगे ॥४५॥ ब्रह्माजी बोले—हे देवगणो! मैं पहले ही जानता था कि पृथिवी का भार बढ़ेगा अतः तुम्हारे कल्याण हेतु मैंने पूर्व समय में ही शान्तनुवंश की उत्पत्ति कर दी है। हे देवगणो! इस शान्तनुवंश में पुनर्जन्म पाकर सात वसु तो स्वर्ग पहुँच गए, किन्तु गंगा के पुत्र भीष्म भी एक वसु हैं, वे अभी पृथिवी पर ही हैं ॥४६-४८॥

द्वितीयायां च सृष्टायां द्वितीया शन्तनोस्तनु ।
विचित्रवीर्यो द्युतिमानासीद्राजा प्रतापवान् ॥४९
वैचित्रवीर्यौ द्वावेव पार्थिवौ भुवि साम्प्रतम् ।
धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विख्यातौ पुरुषर्षभौ ॥५०
तत्र पाण्डोः श्रिया जुष्टे द्वे भार्ये सम्बभूवतुः ।
शुभे कुन्ती च माद्री च देवयोषोपमे तु ते ॥५१
धृतराष्ट्रस्य राज्ञस्तु भार्यैका तुल्यचारिणी ।
गान्धारी भुवि विख्याता भर्तुर्नित्यं व्रते स्थिता ॥५२
तत्र वंशौ विभज्यन्तां विपक्षाः पक्ष एव च ।
पुत्राणां हि तयो राज्ञोर्भविता विग्रहो महान् ॥५३
तेषां विमर्दे दायाद्ये नृपाणां भविता क्षयः ।
युगान्तप्रतिमं चैव भविष्यति महद्भयम् ॥५४
सबलेषु नरेन्द्रेषु शातयत्स्वितरेतरम् ।
विविक्तपुरराष्ट्रौघा क्षितिः शैथिल्यमेष्यति ॥५५

द्वापरस्य युगस्यान्ते मया दृष्टं पुरातनम् ।
क्षयं यास्यन्ति शस्त्रेण मानवैः सह पार्थिवाः ॥५६

महाराज शान्तनु और शान्तनु की दूसरी पत्नी से विचित्रवीर्य नामक पुत्र हुआ। तथा विचित्रवीर्य का ही राजा के पद पर अभिषेक हुआ था ॥४९॥ इस समय उनके संसार में प्रसिद्ध राजा पाण्डु तथा धृतराष्ट्र दोनों पुत्र भूमि पर रह रहे हैं ॥५०॥ महाराज पाण्डु की दो पत्नियाँ थीं—अत्यन्त सौन्दर्यशालिनी देव पत्नियों के समान तथा यौवना कुन्ती और माद्री ॥५१॥ महाराज धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी थी जो कि सर्व गुण सम्पन्न तथा तीनों लोकों में अपने पतिव्रत धर्म के लिए प्रसिद्ध थी ॥५२॥ अतः हे देवगणो! अब तुम समस्त जन शान्तनु-वंश में जन्म धारण करो। कुछ महाराज पाण्डु के तथा कुछ महाराज धृतराष्ट्र के यहाँ क्योंकि कुछ समय पश्चात् दोनों के पुत्रों में भीषण संग्राम होगा ॥५३॥ इस संग्राम में अनेकों राजा लोग मृत्यु को प्राप्त होकर यमलोक पहुँच जाएँगे तथा यह युद्ध प्रलय के सदृश भयंकर होगा ॥५४॥ इस संग्राम में सभी राजा महाराजा आपस में संघर्ष करते हुए अपने-अपने वाहनों सहित मृत्यु को प्राप्त होंगे तथा, ग्रामों से भरी पृथिवी का भार कम हो जाएगा ॥५५॥ मुझे अपने ज्ञानचक्षुओं द्वारा दिखलाई दे चुका है कि द्वापर के अन्त तक समस्त राजा आपस में संघर्ष द्वारा अपनी सम्पूर्ण सेना तथा वाहनों सहित मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे ॥५६॥

ततावशिष्टान्मेतुजान्सुप्तान्निशि विचेतस ।
धक्ष्यते शंकरस्यांश पावकेनाक्षतेसा ॥५७
अन्तकप्रतिमे तस्मिन्निवृत्ते क्रूरकर्मणि ।
समाप्तमिदमाख्यास्ये तृतीय द्वापर युगम् ॥५८
महेश्वरांशेऽप्यसृते ततो माहेश्वर युगम् ।
तिष्या प्रवर्त्तते पश्चाद्युग दारुणदर्शनम् ॥५९
अधर्मप्रायपुरुष स्वल्पधर्मप्रतिग्रहम् ।
उत्सन्नसत्यसयोगं वर्धितानृतसचयम् ॥६०
महेश्वर कुमार च द्वौ च देवौ समाश्रिता ।
भविष्यन्ति नरा सर्वे लोके न स्थविरायुष. ॥६१

तदेष निर्णयः श्रेष्ठः पृथिव्यां पार्थिवान्तकः ।
अंशावतरणं सर्वे सुराः कुरुत मा चिरम् ॥६२
धर्मस्यांशस्तु कुन्त्या वै माद्र्यां च विनियुज्यताम् ।
विग्रहस्य कलिर्मूलं गान्धार्यां विनियुज्यताम् ॥६३
एतौ पक्षौ भविष्यन्ति राजानः कालचोदिताः ।
जातरागाः पृथिव्यर्थे सर्वे संग्राममलालसाः ॥६४

जो भी राजा उस सघर्ष मे जिन्दा बचेंगे, उनको रात्रि के शयन-समय में भगवान् श्री शंकर के अंश रूप अश्वत्थामा अपनी शस्त्ररूपी अग्नि में दहन कर मृत्यु लोक पहुंचा देगा ॥५७॥ प्रलय के समान इस भीषण सघर्ष के अन्त तक तृतीय द्वापर युग भी समाप्त हो जाएगा ॥५८॥ देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्ण के निधन होते ही अत्यन्त भयंकर कलियुग का प्रारम्भ हो जाएगा ॥५६॥ कलि-युग मे समस्त प्राणी-जन अधर्मी हो जायेंगे । कोई-कोई ही धर्म-कार्य करेगा । सत्य का नाश होते हुए असत्य का उत्थान हो जायगा ॥६०॥ उस युग में समस्त प्राणी भगवान् श्री शंकर तथा कार्तिकेय की भक्ति-पूजा करेंगे तथा सभी वृद्धावस्था से पहले ही मृत्यु को प्राप्त होने रहेंगे ॥६१॥ इसलिए मैंने राजाओं को नष्ट करने के लिए यही उपाय सबसे उत्तम मान कर निश्चित किया है । अब तुम लोग बिना कार्य के समय नष्ट न करो तथा अपने-अपने तेज से प्रभावित होकर अवतार ग्रहण करो ॥६२॥ तुम लोग जाकर कुन्ती तथा माद्री के गर्भ धारण से धर्म स्वरूप तथा गान्धारी के गर्भ मे कलि के अंश स्वरूप तथा सघर्ष की जड़ की उत्पत्ति करो ॥६३॥ इस तरह दोनों प्रकार के अवतार धारण करने से पक्षों की स्थापना हो जायगी तथा भूमि के समस्त राजा समय के प्रभाव से स्वर्ग-लालायित होकर दोनों पक्षों में बंट जायेंगे ॥६४॥

गच्छत्वियं वसुमती स्वां योनिं लोकधारिणीम् ।
सृष्टोऽस्य नैष्ठिको राज्ञामुपायो लोकविश्रुतः ॥६५
श्रुत्वा पितामहवचः सा जगाम यथागतम् ।
पृथिवी सह कालेन वधार्थं पृथिवीक्षिताम् ॥६६

देवानचोदयद्ब्रह्मा निग्रहार्थे सुरद्विषाम् ।
नरं चैव पुराणर्षिं शेषं च धरणीधरम् ॥६७
सनत्कुमारं साध्याश्च सुराश्चाग्निपुरोगमान् ।
वरुणं च यमं चैव सूर्याचन्द्रमसौ तदा ॥६८
गन्धर्वाप्सरसश्चैव रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ ।
ततोऽशानवनिं देवा सर्वं एवावतारयन् ॥६९
यथा ते कथितं पूर्वमशावतरणं मया ।
अयोनिजो योनिजाश्च ते देवा पृथिवीतले ॥७०
दैत्यदानवहन्तारः सभूता पुरुषेश्वरा ।
क्षीरिकावृक्षसकाशा वज्रसहननास्तथा ॥७१
नागायुतबला केचित्केचिदोघबलान्विता ।
गदापरिघशक्तीना सघा परिघबाहव ॥७२

अब पृथिवी वापस जाकर लोकधारी स्वरूपधारी हो। पृथिवी पर राज्य करने वाले समस्त राजाओं को नष्ट करने के लिए यह योजना मैंने बहुत समय पूर्व ही निश्चित करली थी ॥६५॥ पितामह ब्रह्माजी के इस प्रकार कहने पर पृथिवी अपने भूलोक पहुँच कर समस्त ससार के नष्ट होने की प्रतीक्षा करने लगी ॥६६॥ इस प्रकार अपनी योजना समझाते हुए ब्रह्माजी ने पृथिवी के भार को हल्का करने के लिये प्रोत्साहन देते हुए भगवान् श्री विष्णु, पृथिवी को धारण करने वाले भगवान् शेषनाग, सनत्कुमार, साध्यगण, वसुगण, चन्द्रमा, सूर्य, वरुण, अग्नि आदि समस्त देवगणों, गन्धर्वों, अप्सराओं, रुद्रों, आदित्यों तथा दोनों अश्विनीकुमारों को अपने-अपने तेज से प्रभावित होकर अवतार ग्रहण करने को कहा ॥६७-६९॥ ब्रह्माजी द्वारा निर्देशानुसार समस्त देवगणों ने पृथिवी पर अवतार ग्रहण किए। पहले मैंने आदि पर्व में अशावतारों का वर्णन विस्तृत रूप से कर दिया है। इस प्रकार समस्त अयोनिज तथा योनिज देवगण दैत्यों तथा राक्षसों का नाश करने को भूमण्डल पर अवतारित हुए। वे सभी अश्वत्थ वृक्ष के सदृश भरे शरीर वाले तथा वज्र के समान कठोर अंगों वाले थे ॥७०-७१॥ उनमें से बहुतों का शारीरिक बल दस हजार हाथियों के बराबर था तथा बहुत

ग शरीर समुद्र के समान वेगवान् था। गदा, परिघ तथा शक्ति का प्रहार करने
में सभी निपुण थे और उनकी भुजाऐं परिघ के समान कठोर थीं ॥७२॥

गिरिशृङ्गप्रहर्त्तारः सर्वे परिघयोधिनः ।
वृष्णिवंशसमुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥७३
कुरुवंशे च ते देवाः पञ्चालेषु च पार्थिवाः ।
याज्ञिकानां समृद्धानां ब्राह्मणानां च योनिषु ॥७४
सर्वास्त्रज्ञा महेष्वासा वेदव्रतपरायणाः ।
सर्वद्धिगुणसंपन्ना यज्वानः पुण्यकर्मिणः ॥७५
आचालयेयुर्यं शैलान्क्रुद्धा भिन्द्यु र्महीतलम् ।
उत्पतेयुरथाकाशं क्षोभयेयुर्महोदधिम् ॥७६
एवमादिश्य तान्ब्रह्मा भूतभव्यभवत्प्रभुः ।
नारायणे समावेश्य लोकाञ्शान्तिमुपागमत् ॥७७
भूयः शृणु यथा विष्णुरवतीर्णो महीतले ।
प्रजानां वै हितार्थाय प्रभुः प्राणहितेश्वरः ॥७८
ययातिवंशजस्याथ वसुदेवस्य धीमतः ।
कुले पूज्ये यशस्कर्मा जज्ञे नारायणः प्रभुः ॥७९

पर्वतों की चट्टानों को चूर्ण करने तथा परिघ आदि शस्त्रों से युद्ध करने में वे सभी योग्य थे। उन सभी ने इस प्रकार वृष्णिवंश, कुरुवंश, पाञ्चवंश तथा [याज्ञिक स]म्हौत्री ब्राह्मण वंशों में जन्म लिया ॥७३-७४॥ ये सभी अवतारित देवगण [शस्त्रास्त्]र निपुण, महान् धनुर्वीर, वेद तथा धर्मपरायण, सभी प्रकार से सम्पन्न तथा [यज्ञ]-कर्त्ता थे तथा सदैव पुण्य-कार्यों का आयोजन करने के लिए उद्यत रहते थे [॥७]५॥ वे क्रोधित होकर पर्वतों को कम्पायमान कर देते थे, पृथिवी को नष्ट [कर] सकते थे, आकाश में उड़ने में समर्थ थे तथा उनके डर से समुद्र में हलचल [मच] जाती थी ॥७६॥ हे राजन्! इस प्रकार कमलयोनि पितामह ब्रह्माजी ने [सम]स्त देवगणों को आदेश देकर तथा सारा उत्तरदायित्व भगवान् श्री विष्णु पर [छोड़]कर मौन धारण कर लिया ॥७७॥ इसके पश्चात् देवादिदेव भगवान् विष्णु ने समस्त प्राणियों के कल्याणार्थ भूमण्डल पर अवतार धारण किया,

यह कथा मैं पुनः सुना रहा हूँ ॥७८॥ अपने यश के लिए त्रिलोकी मे प्रसिद्ध तथा पुण्यात्मा भगवान् श्री विष्णु ने ययातिवंश के विद्वान्वसुदेव जी के यहाँ जन्म धारण किया ॥७९॥

॥ नारद-विष्णु संवाद ॥

कृतकार्ये गते काले जगत्या च यथानयम् ।
अंशावतरणे वृत्ते सुराणां भारते कुले ॥१
भागेऽवतीर्णे धर्मस्य शक्रस्य पवनस्य पवनस्य च ।
अश्विनोर्देवभिषजोर्भागे वै भास्करस्य च ॥२
पूर्वमेवावनिगते भागे देवपुरोधसः ।
वसूनामष्टमे भागे प्रागेव धरणीं गते ॥३
मृत्योर्भागे क्षितिगते कलेर्भागे तथैव च ।
भागे शुक्रस्य सोमस्य वरुणस्य च गां गते ॥४
शंकरस्य गते भागे मित्रस्य धनदस्य च ।
गन्धर्वोरगयक्षाणां भागाशेषु गतेषु च ॥५
भागेष्वेतेषु गगनादवतीर्णेषु मेदिनीम् ।
तिष्ठन्नारायणस्याशे नारदः समदृश्यत ॥६
स नारदोऽय ब्रह्मर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः ।
स्थितो देवसभामध्ये सरब्धो विष्णुमब्रवीत् ॥७

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! योजनानुसार यथासमय समस्त देवगणों ने अपने तेज से प्रभावित होकर भरतवंश मे जन्म धारण किया । युधिष्ठिर धर्म के, अर्जुन इन्द्र के, भीमसेन वायु के, नकुल तथा सहदेव दोनों अश्विनी कुमारों के, कर्ण सूर्य के, द्रोणाचार्य सुरगुरु बृहस्पति के, आठवें वसु भीष्म वसु के, विदुर यमराज के, दुर्योधन कलि के, अभिमन्यु चन्द्रमा के, भूरिश्रवा शुक्र के, श्रुतायुध वरुण के, अश्वत्थामा शंकर भगवान् के, वणिक मित्र के, धृतराष्ट्र कुबेर के तथा देवक, अश्वसेन, दुःशासन आदि योद्धा यक्षों, गन्धर्वों तथा सर्पों के अंश से अवतरित हुए थे ॥१-५॥ इस प्रकार समस्त देवगणों के भूमण्डल पर अं

ग्रहण करने के पश्चात् देवपथ मे शामिल होते हुए देवर्षि नारद भगवान् विष्णु की उस सभा मे पहुँच गए ॥६॥ समस्त लोको मे भ्रमण करने वाले अमर वे ब्रह्मर्षि नारद देव सभा में पहुँच कर कुपित वाणी मे भगवान् विष्णु से कहने लगे ॥७॥

अ शावतरण विष्णोर्यदिद त्रिदशै कृतम् ।
क्षयार्थं पृथिवीन्द्राणा सर्वमेनदकारणम् ॥८
यदेतत्पार्थिव क्षत्रं स्थित त्वयि यदीश्वर ।
ननारायणयुक्तोऽस्य कार्यार्थ प्रतिभाति मे ॥६
न युक्तं जानता देव त्वया तत्त्वार्थदर्शिना ।
भूदेवत पृथिव्यर्थे प्रयोक्तु कार्यमीदृशम् ॥१०
त्व हि चक्षुष्मता चक्षुः श्लाघ्य प्रभवता प्रभः ।
श्रेष्ठो योगवता योगी गतिर्गतिमतामपि ॥११
देवभागान्गतान्दृष्ट्वा कि त्व सर्वाश्रयो विभुः ।
वसुंधराया साह्यार्थमश स्व नानुयुञ्जसे ॥१२
त्वया सनाथा देवाश्चास्त्वन्मयास्त्वत्परायणा ।
जगत्या संचरिष्यन्ति कार्यात्कार्यान्तरं गता ॥१३
मूर्तयो हि तवाव्यक्ता दृश्यादृश्या सुरोत्तमै ।
तासु सृष्टास्त्वया देवा समविष्यवन्ति भूतले ॥१४
तवावतरणे विष्णो कस स विनशिष्यति ।
सेत्स्यते तव कार्यार्थो यस्यार्थे भूमिरागता ॥१५
त्व भारते कार्यगुरुस्त्व चक्षुस्त्व परायणम् ।
तदागच्छ हृषीकेश क्षितौ ताञ्जहि दानवान् ॥१६

हे विष्णु ! समस्त देवगणों ने उन अनेकों राजाओं का सहार करने के ...ना प्रकार के अवतार धारण किए हैं, यह सब निर्मूल है ॥८॥ जब तक ...यण दोनों ही पृथिवी पर अवतीर्ण न हों तब तक कुछ नहीं हो सकता ...प ही इन राजा लोगो का परस्पर सघर्ष कराके सहार कर सकते हैं ॥९॥ ...भी तत्वो के देखने तथा जानने वाले हैं फिर भी आपकी यह योजना उत्तम

नहीं है ॥१०॥ हे भगवन् ! आप सभी प्राणियों के नेत्र, देवगणों के देवता, पू
के पूज्य, योगियों के योग तथा वेगवालों के उत्तम गति हैं ॥११॥ इसलिए जब
समस्त देवगणों ने पृथिवी का कष्ट दूर करने के लिए अवतार धारण कर लिए
तो फिर अभी तक आपने अवतार धारण क्यों नहीं किया ? समस्त देवगण जो
कि अवतार धारण कर चुके हैं, उनको जब आप सहायता तथा प्रोत्साहन दे
रहेंगे तभी वे अपने उस अभीष्ट को सिद्ध कर सकेंगे ॥१२-१३॥ आपके रूपों की
कोई व्याख्या नहीं है। ब्रह्मा आदि देवगण भी आपके रूपों को नहीं जान पाते।
समस्त देवगण प्रत्यक्षदर्शी नाना प्रकार के स्वरूपों में भूमण्डल पर अवत
ग्रहण कर चुके हैं अत: आपको भी शीघ्र ही अवतार धारण करना चाहि
॥१४॥ आपके अवतीर्ण होने से पापी कंस का संहार होकर पृथिवी का भा
हलका हो जाएगा ॥१५॥ भारत का यह अभीष्ट कार्य आप सिद्ध कर सकते हैं
अतः हे भगवन् ! भारतभूमि पर अवतरित होकर आप उन पापी राक्षसों
विनाश कीजिए ॥१६॥

॥ पितामह ब्रह्मा की योजना ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा सस्मित मधुसूदनः ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं वरेण्यः प्रभुरीश्वरः ॥१
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय यन्मां वदसि नारद ।
तस्य सम्यक्प्रवृत्तस्य श्रूयतामुत्तरं वचः ॥२
विदिता देहिनो जाता मर्यैते भुवि दानवाः ।
यां च यस्तनुमादाय दैत्यः पुष्यति विग्रहम् ॥३
जगत्यर्थे कृतो योऽयमशोत्सर्गो दिवौकसः ।
सुरदेवर्षिगन्धर्वैरितश्चानुमते मम ॥४
विनिश्चयो हि प्रागेव नारदाय कृतो मया ।
निवासं ननु मे ब्रह्मान्विदधातु पितामहः ॥५
यत्र देशे यथा जाता येन वेषेण वा वसन् ।
तानहं समरे हन्या तन्मे ब्रूहि पितामह ॥६

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन्! देवादिदेव भगवान् श्री विष्णु
हर्षि नारद के ऐसे वचन सुन कर मुस्कान सहित बोले॥१॥ हे नारद!
तुमने तीनों लोकों के लाभ हेतु जो वचन कहे। सुनो! मैं उनका उत्तर देता
हूँ ॥२॥ दैत्य-गणों ने पृथिवी मण्डल पर आकर जो भी शरीर धारण किए हैं,
वह सभी मुझे ज्ञात हैं ॥३॥ देवगण, देवर्षि तथा गन्धर्व सभी इस जगत् के लाभ
हेतु इस अवतार में, संसार में मेरी ही आज्ञा से जिस प्रकार अवतरित हुए हैं वह
आपके सामने मैंने पहले ही निश्चय कर दिया था। अब पितामह ब्रह्माजी मुझे
आदेश दें कि मैं किस वंश में तथा क्या अवतार लेकर इन असुरों का संहार
करूँ? ४-५-६॥

नारायणेमं सिद्धार्थमुपायं शृणु मे विभो।
भुवि यस्ते जनयिता जननी च भविष्यति ॥७
यत्र त्वं च महाबाहो जातः कुलकरो भुवि।
यादवानां महद्वंशमखिलं धारयिष्यसि ॥८
तांश्चासुरान्समुत्पाट्य वंशं कृत्वाऽऽत्मनो महत्।
स्थापयिष्यसि मर्यादा नृणां तन्मे निशामय ॥९
पुरा हि कश्यपो विष्णो वरुणस्य महात्मनः।
जहार यज्ञिया गा वै पयोदास्तु महामखे ॥१०
अदितिः सुरभिश्चैते द्वे भार्ये कश्यपस्य तु।
प्रदीयमाना गास्तास्तु नैच्छेतां वरुणस्य वै ॥११
ततो मा वरुणोऽभ्येत्य प्रणम्य शिरसा ततः।
उवाच भगवन्गावो गुरुणा मे हृता इति ॥१२
कृतकार्यो हि गास्तास्तु नानुजानाति मे गुरुः।
अन्ववर्तत भार्ये द्वे अदितिं सुरभिं तथा ॥१३

पितामह ब्रह्माजी कहने लगे—हे भगवन्! इस भूमण्डल पर आपके
माता-पिता कौन होंगे? आप किस वंश में जन्म धारण करके उन महाबलधारी
असुरों का संहार करेंगे तथा अपने कुल को विस्तृत करके अपनी मर्यादा को सुर-
क्षित रखेंगे, इसके लिए मैं आपको एक सरल प्रयोजन बतलाता हूँ ॥७-८-९॥

महात्मा वरुण ! के पास यज्ञ-काल के लिए कुछ दूध देने योग्य गायें थीं। एक बार प्रजापति भगवान् कश्यप उन गायों को महात्मा वरुण से मांग कर ले गए, तो उनकी भार्याओं अदिति, सुरभी ने गायें वरुण को लौटाने के लिए अनिच्छा प्रकट की ॥१०-११॥ एक बार वरुण मेरे यहाँ आकर तथा मुझे प्रणाम करके बोले—हे भगवन् ! मेरी समस्त गायें मेरे पिता भगवान् कश्यप ने ले ली हैं। यद्यपि उनका कार्य सम्पन्न हो चुका है, किन्तु उन्होंने मेरी गायें नहीं लौटाई हैं और अपनी दोनों पत्नियों अदिति तथा सुरभी की इच्छा का ही समर्थन कर रहे हैं ॥१२-१३॥

मम ता अक्षया गावो दिव्याः कामदुघा प्रभो ।
चरन्ति सागरान्सर्वान्रक्षिता स्वेन तेजसा ॥१४
कस्ता धर्षयितु शक्तो मम गा कश्यपादृते ।
अक्षय या क्षरन्त्यग्र्य पयो देवामृतोपमम् ॥१५
प्रभुर्वा व्युत्थितो ब्रह्मन्गुरुर्वा यदि वेतर ।
त्वया नियम्या सर्वे वै त्व हि न परमा गति ॥१६
यदि प्रभवता दण्डो लोके कार्यमजानताम् ।
न विद्यते लोकगुरोर्न स्युर्वै लोकसेतव ॥१७
यथा वाऽस्तु तथा कर्तव्ये भगवान्प्रभु ।
मम गाव प्रदीयन्ता ततो गन्ताऽस्मि सागरम् ॥१८
या आत्मदेवता गावो या गाव सत्त्वमव्ययम् ।
लोकाना त्वत्प्रवृत्तानामेक गोब्राह्मण स्मृतम् ॥१९
त्रातव्या प्रथम गावस्त्रातास्त्रायन्ति ता द्विजान् ।
गोब्राह्मणपरित्राण परित्रात जगद्भवेत् ॥२०

उन कामधेनुओं को नष्ट करना असम्भव है। वे अपने तेज से प्रभा होकर सुरक्षित हैं तथा सागरीय तटों पर विचरती फिर रही हैं ॥१४॥ वो और मेरी उन गायों को प्रजापति कश्यप के अलावा अन्य कोई स्पर्श नहीं कर सकता है। उन गायों का दूध अत्यन्त लाभदायक अमृत के र

महात्मा वरुण ! के पास यज्ञ-काल के लिए कुछ दूध देने योग्य गायें थी। एक बार प्रजापति भगवान् कश्यप उन गायो को महात्मा वरुण से मांग कर ले गए तो उनकी भार्याओ अदिति, सुरभी ने गाये वरुण को लौटाने के लिए अनिच्छा प्रकट की ॥१० ११॥ एक बार वरुण मेरे यहाँ आकर तथा मुझे प्रणाम करके बोले—हे भगवन् ! मेरी समस्त गायें मेरे पिता भगवान् कश्यप ने ले ली हैं। यद्यपि उनका कार्य सम्पन्न हो चुका है, किन्तु उन्होने मेरी गायें नही लौटाई हैं और अपनी दोनो पत्नियो अदिति तथा सुरभी की इच्छा का ही समर्थन कर रहे हैं ॥१२-१३॥

मम ता अक्षया गावो दिव्या कामदुघा प्रभो।
चरन्ति सागरान्सर्वान्रक्षिता स्वेन तेजसा ॥१४
कस्ता धर्षयितु शक्तो मम गा कश्यपादृते।
अक्षय या क्षरन्त्यग्र्यं पयो देवामृतोपमम् ॥१५
प्रभुर्वा व्युत्थितो ब्रह्मन्गुरुर्वा यदि वेतर ।
त्वया नियम्या सर्वे वै त्व हि न परमा गति ॥१६
यदि प्रभवता दण्डो लोके कार्यमजानताम् ।
न विद्यते लोकगुरोर्न स्युर्वै लोकसेतव ॥१७
यथा वाऽस्तु तथा वर्तव्ये भगवान्प्रभु. ।
मम गाव प्रदीयन्ता ततो गन्ताऽस्मि सागरम् ॥१८
या आत्मदेवता गावो या गाव. सत्त्वमव्ययम् ।
लोकाना त्वत्प्रवृत्तानामेक गोब्राह्मण स्मृतम् ॥१९
त्रातव्या प्रथम गावस्त्रातास्त्रायन्ति ता द्विजान् ।
गोब्राह्मणपरित्राण परित्रात जगद्भवेत् ॥२०

उन कामधेनुओ को नष्ट करना असम्भव है। वे अपने तेज से प्रम होकर सुरक्षित हैं तथा सागरीय तटो पर विचरती फिर रही हैं ॥१४॥ तो और मेरी उन गायों को प्रजापति कश्यप के अलावा अन्य कोई दुह नहीं कर सकता है। उन गायो का दूध अत्यन्त लाभदायक अमृत के

मृदु तथा नाशरहित है ॥१५॥ हे पितामह ! चाहे कोई स्वामी हो, गुरु हो अथवा कोई भी हो, सभी को निर्धारित सीमा का उल्लंघन करने पर आप उसको दण्डित करते हैं। आपके अलावा मेरा कोई भी सहायक नहीं क्योंकि आप ही मेरे अत्यन्त हितैषी हैं। अगर इस जगत् मे अपराधी अपने अपराध के लिए नियमित रूप से दण्डित न हो तो इस समस्त संसार का विनाश हो जायगा तथा इसकी मर्यादा-भंग हो जायगी ॥१६-१७॥ हे ब्रह्मन् ! इस सन्दर्भ मे मैं और कुछ नहीं, सिर्फ अपनी गायें वापिस चाहता हूँ वह आप मुझे अवश्य दिलवाइए। इसके पश्चात् मैं सागर की ओर पहुँच जाऊँगा। उन गायों से ही मेरा जीवन तथा बल है। आपने सृष्टि-रचना के समय सर्व प्रथम गाय तथा ब्राह्मणों की उत्पत्ति की थी। इसलिए गायों की रक्षा ही आपका सर्वप्रधान कर्त्तव्य है। आपके द्वारा बन्धन मुक्त तथा सुरक्षित वे गायें ही हम समस्त ब्राह्मणों की रक्षा कर सकती हैं। तथा इसी तरह इन दोनों की रक्षा करने से समस्त जगत की रक्षा सम्भव होगी ॥१८-१९-२०॥

इत्यम्बुपतिना प्रोक्तो वरुणेनाहमच्युत ।
गवा कारणतत्त्वज्ञः कश्यपे शापमुत्सृजन् ॥२१
येनांशेन हृता गावः कश्यपेन महर्षिणा ।
स तेनांशेन जगतीं गत्वा गोपत्वमेष्यति ॥२२
या च सा सुरभिर्नाम अदितिश्च सुरारणिः ।
तेऽप्युभे तस्य भार्ये वै तेनैव सह यास्यतः ॥२३
ताभ्यां च सह गोपत्वे कश्यपो भुवि रंस्यते ।
स तस्य कश्यपस्यांशस्तेजसा कश्यपोपम ॥२४
वसुदेव इति ख्यातो गोषु तिष्ठति भूतले ।
गिरिर्गोवर्धनो नाम मथुरायास्त्वदूरतः ॥२५
तत्रासौ गोषु निरतः कंसस्य करदायकः ।
तस्य भार्याद्वयं जातमदितिः सुरभिश्च ते ॥२६
देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्य धीमतः ।
सुरभी रोहिणी देवी चादितिर्देवकी त्वभूत् ॥२७

हे विष्णु ! महात्मा वरुण के ऐसे वचनों को सुनकर इस सन्दर्भ समस्त ज्ञान प्राप्त करके भगवान् ने कश्यप को श्राप दे दिया तथा कहा ।।२१।। भगवान् कश्यप ने अपने जिस तेज से प्रभावित होकर उन गायों को अपहृत किया है, उसी के प्रभाववश वे भूमण्डल पर ग्वाला का जन्म धारण करें ।।२२।। तथा दोनों देवमाता अदिति तथा सुरभी उनकी पत्नियों के स्वरूप पृथ्वी पर उनके साथ जन्म धारण करेंगी ।।२३।। इस पृथ्वी पर ग्वाला का जन्म धारण कर महर्षि कश्यप अपनी दोनों भार्याओं सहित आनन्दपूर्वक जीवन यापन करते रहेंगे। इसी के अनुसार वर्तमान समय में भगवान् कश्यप के तेज स्वरूप वसुदेव नाम से प्रसिद्ध होकर पृथ्वी पर गायों की सेवा करते हुए जीवन यापन करते रहे हैं। मथुरा के ही समीप गोवर्धन पर्वत है। उसी स्थान पर पापी कंस के आधीन होकर गोकुल पर राज्य कर रहे हैं। महात्मा कश्यप की दोनों पत्नियाँ अदिति और सुरभि वसुदेव की दोनों पत्नियाँ देवकी तथा रोहिणी रूप में अवतीर्ण हुई हैं ।।२४-।२७।।

तत्र त्व शिशुरेवादौ गोपालकृतलक्षण ।
वर्द्धयस्व महाबाहो पुरा त्रैविक्रमे यथा ।।२८
छादयित्वात्मनात्मान मायया योगरूपया ।
तत्रावतर लोकाना भवाय मधुसूदन ।।२९
जयाशीर्वचनैस्त्वेते वर्द्धयन्ति दिवौकस ।
आत्मानमात्मना हि त्वमवतीर्य महीतले ।।३०
देवकी रोहिणी चैव गर्भाभ्या परितोषय ।
गोपकन्यासहस्राणि रमयश्चर मेदिनीम् ।।३१
गाश्च ते रक्षतो विष्णो वनानि परिधावत ।
वनमालापरिक्षिप्त धन्या द्रक्ष्यन्ति ते वपु ।।३२
विष्णो पद्मपलाशाक्ष गोपालवसति गते ।
बाले त्वयि महाबाहो लोको बालत्वमेष्यति ।।३३
त्वद्भक्ता पुण्डरीकाक्ष तव चित्तवशानुगा ।
वने चारयतो गाश्च गोष्ठेषु परिधावत ।।३४

मज्जतो यमुनाया च रति प्राप्स्यन्ति ते त्वयि ।
जीवित वसुदेवस्य भविष्यति सुजीवितम् ॥३५

हे देवादिदेव भगवान् श्री विष्णु ! अब आप ससार के साभार्य वसुदेव जी के यहाँ ग्वाले के रूप में अवतार धारण करो । पहले भी आपने अपने माया-जाल से वामन रूप धारण करके अपना शरीर विस्तृत कर लिया था, तो अब भी उसी तरह ग्वाल बाल के वेष मे अपने शरीर को विस्तृत कीजिए ॥२८ २९॥ ये इन्द्र सहित ये सभी देवगण आपकी महिमा गाते हुए सराहना कर रहे हैं । इसलिए आप भी पृथ्वी पर वसुदेव के यहाँ देवकी तथा रोहिणी के गर्भ मे जन्म धारण करके सभी को सन्तुष्ट करें । पृथ्वी पर जन्म धारण करने के पश्चात् आपके लिए सभी गोपियाँ आपके मनोरजन का साधन बनेंगी ॥३०-३१॥ आपको गायो को चराते हुए वन मे भ्रमण करते समय आपके वनमाला से शोभित सुन्दर शरीर को निहारकर समस्त प्राणीजन स्वय को धन्य समझेंगे ॥३२॥ हे कमलनयन भगवान् श्री विष्णु ! आपके द्वारा बाल रूप धारण करने पर जगत् के समस्त प्राणी आपकी माया से ज्ञान रहित होकर बच्चो के समान ममता में बँध जाऐंगे ॥३३॥ सभी ग्वाले आपके सच्चे आज्ञाकारी बनकर जगलो तथा गौशालाओ मे आपको सहायक होंगे । आपको जल-क्रीडा के लिए यमुना नदी मे कूदेंगे तो उन लोगो को अत्यन्त प्रसन्नता होगी । तथा वसुदेवजी तो आपको प्राणों से भी अधिक चाहेंगे ॥३४-३५॥

यस्त्वया तात इत्युक्त स पुत्र इति वक्ष्यति ।
अथवा कस्य पुत्रत्व गच्छेया कश्यपादृते ॥३६
का च धारयितु शक्ता त्वा विष्णो अदिति विना ।
योगेनात्मसमुत्थेन गच्छ त्व विजयाय वै ।
वयमप्यालयान्स्वान्स्वान्गच्छामो मधुसूदन ॥३७
सदेवानभ्यनुज्ञाय विविक्ते त्रिदिवालये ।
जगाम विष्णु स्व देश क्षीरोदस्योत्तरा दिशम् ॥३८
तत्र वै पार्वती नाम गुहा मेरो सुदुर्गमा ।

त्रिभिस्तस्यैव विक्रान्तैर्नित्य पर्वसु पूजिता ॥३९
पुराण तत्र विन्यस्य देह हरिरुदारधी ।
आत्मान योजयामास वसुदेवगृहे प्रभु ॥४०

जिनको अभी तक आपने पिता तुल्य माना है, पृथ्वी पर वे ही तुम्हारे पिता होंगे आप सिर्फ महात्मा कश्यप के ही पुत्र बनेंगे तथा देवमाता अदिति के ही गर्भ से जन्म ग्रहण करोगे। हे भगवन्। अब आप अपने माया-जाल से समस्त राजाओं को हराने के लिए पृथ्वीमण्डल मे अवतार धारण कीजिए। तथा हम लोग भी अपने धाम को जाते हैं ॥३६-३७॥ वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! भगवान् श्री विष्णु ने देवगण के पृथ्वी पर अवतीर्ण होने के कारण उन्हे स्वित देवलोक मे जाने की आज्ञा दी तथा स्वय क्षीर सागर के उत्तर दिशा मे स्थित अपने स्थान को चल दिए ॥३८॥ वहीं मेरु पर्वत की पार्वती नामक भयकर गुफा थी, जिस पर भगवान् वामन के पदचिह्न थे, तथा प्रत्येक पर्व उसकी पूजा होती रही थी, वहीं शान्तचित्त भगवान् श्री विष्णु ने अपनी उस दिव्य-देह को छोडकर पृथ्वी पर वसुदेवजी के यहाँ जन्म ग्रहण किया था ॥३९-४०॥

विष्णु पर्व

॥ नारद कंस संवाद ॥

ज्ञात्वा विष्णुं क्षितिगतं भागांश्च त्रिदिवौकसाम् ।
विनाशशंसी कंसस्य नारदो मथुरां ययौ ॥१
त्रिविष्टपादापतितो मथुरोपवने स्थितः ।
प्रेषयामास कंसस्य उग्रसेनसुतस्य वै ॥२
स दूतं कथयामास मुनेरागमनं वने ।
स नारदस्यागमनं श्रुत्वा त्वरितविक्रमः ॥३
निर्जगामासुरः कंसः स्वपुर्याः पद्मलोचनः ।
स ददर्शातिथिं श्लाघ्यं देवर्षिं वीतकल्मषम् ॥४
तेजसा ज्वलनाकारं वपुषा सूर्यवर्चसम् ।
सोऽभिवाद्यर्षये तस्मै पूजां चक्रे यथाविधि ॥५
आसनं चाग्निवर्णाभं विसृज्योपजहार सः ।
निषसादासने तस्मिन्स वै शक्रसखो मुनिः ॥६

वैशम्पायन ने कहा—हे महीप ! जब सम्पूर्ण देवगण एवं स्वयं भगवान् विष्णु भी अपने अपने अंशों सहित पृथ्वी पर अवतरित हो गये, तब इसका संवाद सुनाने महर्षि नारद कंस के समीप मथुरा आये। इसलिए कि उनकी भी यही आकांक्षा थी कि कंस को तुरन्त नष्ट किया जाय ॥१॥ सुरलोक से प्रस्थान कर देवर्षि नारद मथुरा में स्थित एक उपवन में आये जहाँ से उन्होंने एक दूत उग्रसेन के पुत्र कंस के पास भेजा ॥२॥ नारदजी के संदेश वाहक ने देवर्षि नारद के पधारने की सूचना दी। जिसको सुनते ही कंस तुरन्त मिलने को चल पड़ा ॥३॥ महीपाल कंस अपनी नगरी के बाहर निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुँचा और उसने देखा कि अग्नि जैसे तेजवान् देहधारी, पवित्र आत्मा एवं सूर्य की भाँति चमकने वाले देवमुनि नारद सामने खड़े हैं। राजा कंस ने देवर्षि को

इत्युक्त्वा नारदे याते तस्य वाक्य विचिन्तयन् ।
जहासोच्चस्ततः कंस. प्रकाशदशनश्चिरम् ॥२१
सस्मित चैव प्रोवाच भृत्यानामग्रत स्थित· ।
हास्य खलु स सर्वेषु नारदो न विशारद ॥२२
नाह भीषयितु शक्यो देवैरपि सवासवैः ।
आसनस्य शयानो वा प्रमत्तो मत्त एव च ॥२३
योऽह दोर्भ्यामुदाराभ्या क्षोभयेय धरामिमाम् ।
कोऽस्ति मा मानुषे लोके य क्षोभयितुमुत्सहेत् ॥२४
अद्यप्रभृति भूतानामह देवानुवर्तिनाम् ।
नृपक्षिपशुसघाना करोमि कदन महत् ॥२५
आज्ञाप्यता हय केशी प्रलम्बो धेनुकस्तथा ।
अरिष्टो वृषभश्चैव पूतना कालियस्तथा ॥२६
अटध्व पृथिवी कृत्स्ना यथेष्ट कामरूपिण ।
प्रहरध्व च सर्वेषु येऽस्माक पक्षदूषका ॥२७
गर्भस्थानामपि गतिर्विज्ञेया चैव देहिनाम् ।
नारदेन हि गर्भेभ्यो भय न. समुदाहृतम् ॥२८

देवर्षि नारद के इस प्रकार कहकर वापिस प्रस्थान कर जाने पर विचा[illegible] कर कंस दाँत निपोरकर बहुत समय तक हँसता रहा ॥२१॥ फिर हँसता हुआ अपने भृत्यों से बोला—हे सेवको ! मुनि नारद की बातें सदैव हँसी [illegible] समान हैं। उनकी बातें योग्य बुद्धिमानों जैसी नहीं है ॥२२॥ इसलिए कि यदि मैं यु[illegible] में, सोते समय, मत्त या प्रमत्त किसी भी अवस्था में ही होऊँ, फिर भी इ[illegible] आदि सुर मुझे कदापि भयभीत नहीं कर सकते ॥२३॥ मैं अपनी भुजाओं [illegible] शक्ति से सम्पूर्ण भूतल को क्षुब्ध कर सकता हूँ। फिर पृथ्वी पर ऐसा शक्ति[illegible] शाली कौन है जो मुझसे अटके और मुझे क्रोधित करने का दुस्साहस करे ॥२४॥ देवताओं के अनुयायी समस्त मनुष्यों, पशु पक्षियों व अन्य प्राणियों को [illegible] समय में ही नष्ट कर दूँगा ॥२५॥ हयग्रीव केशी, प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, वृ[illegible] पूतना व कालिया नाग को मेरा निर्देश भेजा जाय कि वे स्वेच्छापूर्वक स्व[illegible]

परिवर्तन कर समस्त भूतल पर भ्रमण करें और जिस स्थान पर भी मेरे विपक्षी
, उन्हें वध कर डालें ॥२७॥ देव मुनि नारद जिस गर्भस्थ बालक के बारे में
ह गये हैं, इस कारण हयग्रीव व केशी नामक गण गर्भस्थ बालकों पर निगरानी
रखें ॥२८॥

भवन्तो हि यथाकामं मोदन्ता विगतज्वराः ।
मां च वो नाथमाश्रित्य नास्ति देवकृतं भयम् ॥२९
स तु केलिकिलो विप्रो भेदशीलश्च नारदः ।
सुश्लिष्टानपि लोकेऽस्मिन्भेदयँल्लभते रतिम् ॥३०
कण्डूयमानः सततं लोकानटति चञ्चलः ।
घटमानो नरेन्द्राणां तन्त्रैर्वैराणि चैव हि ॥३१
एवं स विलपन्नेव वाङ्मात्रेणैव केवलम् ।
विवेश कंसो भवनं दह्यमानेन चेतसा ॥३२

फिर अपने सभाजनों की ओर इंगित कर कहा—"तुम सभी लोग भय और घबड़ाहट को त्याग कर पूर्ण आनन्द से रहो। मेरे जैसे स्वामी के होते हुए तुम्हें देवलोक से कोई भय नहीं करना चाहिए ॥२९॥ देवमुनि नारद कौतुक करने वाले और कलह कराने व मतभेद उत्पन्न करने में बड़े चतुर हैं। आपस में घनिष्ठ दो मनुष्यों में मतिरोध उत्पन्न कराकर वे हर्ष का अनुभव करते हैं ॥३०॥ मनुष्यों में इस प्रकार उत्तेजना उत्पन्न करना और विचरण करना उनका कार्य है। वे अपनी कूटनीतियों से भूपतियों के बीच शत्रुता की अग्नि प्रज्वलित करते रहते हैं ॥३१॥ लेकिन फिर भी चिन्ता रूपी अग्नि कंस के अन्तर्मन को जला रही थी और इसी अवस्था में ही वह अपने निवास-गृह की ओर चल दिया ॥३२॥

॥ योगनिद्रा-विष्णु वार्तालाप ॥

सोऽज्ञापयत सरव्धः सचिवानात्मनो हितान् ।
यत्ता भवत सर्वे वै देवक्या गर्भकृन्तने ॥१

प्रथमादेव हन्तव्या गर्भास्ते सर्व एव हि ।
मूलादेव तु हन्तव्य सोऽनर्थो यत्र संशयः ॥२
देवकी च गृहे गुप्ता प्रच्छन्नैरभिरक्षिता ।
स्वैरं चरतु विश्रब्धा गर्भकाले तु रक्ष्यताम् ॥३
मासान्वै पुष्पमासादीन्गणयन्तु मम स्त्रियः ।
परिणामे तु गर्भस्य शेषं ज्ञास्यामहे वयम् ॥४
वसुदेवस्तु संरक्ष्यः स्त्रीसनाथासु भूमिषु ।
अप्रमत्तैर्मम हितै रात्रावहनि चैव हि ।
स्त्रीभिर्वर्षवरैश्चैव वक्तव्यं न तु कारणम् ॥५
एष मानुष्यको यत्नो मानुषैरेव साध्यते ।
श्रूयतां येन दैवं हि मद्विधैः प्रतिहन्यते ॥६
मन्त्रग्रामैः सुविहितैरौषधैश्च सुयोजितैः ।
यत्नेन चानुकूल्येन दैवमप्यनुलोम्यते ॥७

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार कंस क्रोध से आवेश में हो मन्त्रिगण से कहने लगा—मन्त्रियो! देवकी बहिन का गर्भ समाप्त करने के लिए तुम लोग सदैव तत्परतापूर्वक सावधान रहना ॥१॥ प्रारम्भ से ही देवकी के समस्त गर्भ नष्ट करते रहो। क्योंकि नीति के अनुसार जिससे मनुष्य को सन्देह हो, उसे वह पूर्ण रूपेण शमन करदे। देवकी की देख-रेख मेरे गुप्तचर कर रहे हैं। इसलिए आठवें गर्भ के उत्पन्न होने तक, उसे औषधि आदि देकर उसके गर्भों का नाश करते चलो, जिससे कि कोई सन्देह भी न रहे ॥२॥ देवकी महलों में सब तक विश्वासपूर्ण चित्त सहित स्वेच्छाचारितापूर्वक रहेगी। अन्तःपुर की सेविकाऐं उसकी सावधानीपूर्वक रक्षा करेंगी ॥३॥ अब भी देवकी के गर्भ धारण का अवसर हो, उस समय विशेष सावधानी रहे, उस काल मेरी पत्नियां उचित ढंग से महीनों की गणना करेंगी। उसके परिणाम में गणना द्वारा मैं उसके गर्भों के विषय में निश्चित रूप से जान सकूँ ॥४॥ विशेष विश्वासी सेवक प्रत्येक क्षण मेरे महलों में रहने वाले वसुदेव की रक्षा सावधानीपूर्वक संलग्न रहकर उस पर विशेष देख रेख रखें। इस बात का

भी विशेष ध्यान रखें कि अन्त. पुर के सेवक वसुदेव और इस नगर की स्त्रियों को इस विशेष रक्षा एवं देख रेख प्रबन्ध के विषय मे न बतावें ॥५॥ मेरे बताये सभी कार्य मनुष्य साध्य हैं एव मनुष्य उन्हे पूरा कर सकते हैं ॥६॥ मन, औषधि, यत्न और समय की अनुकूलता का उचित रूप में पालन किया जाय तो मेरे समान मनुष्य अवश्य ही भाग्य को भी अपनी इच्छानुसार परिवर्तित कर सकते हैं और उसे अपने अनुकूल बना सकते हैं ॥७॥

एवं स यत्नवान्कसो देवकीगर्भकृन्तने।
भयेन मन्त्रयामास श्रुतार्थो नारदात्स वै ॥८
एव श्रुत्वा प्रयत्न वै कंसस्यारिष्टसंज्ञितम् ।
अन्तर्द्धान गतो विष्णुश्चिन्तयामास वीर्यवान् ॥९
सप्तेमान्देवकीगर्भान्भोजपुत्रो वधिष्यति ।
अष्टमे च मया गर्भे कार्यमाधानमात्मनः ॥१०
तस्य चिन्तयतस्त्वेव पातालमगमन्मनः ।
यत्र ते गर्भशयना. षड्गर्भा नाम दानवा. ॥११
विक्रान्तवपुषो दीप्तास्तेऽमृतप्राशनोपमा. ।
अमरप्रतिमा युद्धे पुत्रा वै कालनेमिनः ॥१२
ते ताततात संत्यज्य हिरण्यकशिपुं पुरा ।
उपासाचक्रिरे दैत्याः पुरा लोकपितामहम् ॥१३
तप्यमानास्तपस्तीव्रं जटामण्डलधारिणः ।
तेषा प्रीतोऽभवद्ब्रह्मा षड्गर्भाणा वरं ददौ ॥१४

वैशम्पायन जी बोले—हे नृप ! घोर असुरराज कस देव मुनि नारद द्वारा अपने विनाश का वर्णन सुनकर एकदम भयभीत हो गया और तभी से देवकी के गर्भों को नष्ट करने के विषय मे विचार विमर्श करने लगा ॥८॥ भगवान् विष्णु ने भी अपने ध्यान-योग की शक्ति द्वारा कस का गर्भ नष्ट करने सबधी उद्देश्य जान लिया और वे भी मन मे विचार करने लगे कि यह भोजपुत्र कस अपनी बहिन देवकी के सात गर्भों को तो समाप्त कर देगा और फिर आठवें गर्भ में मुझे जन्म लेकर अपना उद्देश्य पूर्ण करना होगा ॥९ १०॥ भगवान् विष्णु

इस पर विचार कर रहे थे, तभी उन्हें स्मरण हुआ कि भूगर्भ तल मे देवताओं
समान महावीर्यवान् शक्तिशाली कालनेमि के छः पुत्र हैं और वे महान् तपस्वी
तथा अमृत-पान किये हुए सुरो के सदृश दीर्घायु हैं ॥११-१२॥ आदिकाल में वे
अपने पितामह हिरण्यकशिपु का विरोध और अपमान करके जगत्पिता ब्रह्माजी
की आराधना मे लग गये ॥१३॥ उन्होने जटाएँ भी धारण की और फिर तपस्या
मे तल्लीन हो गये, जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उन्हे वरदान दिया ॥१४॥

[illegible] दानवशार्दूलास्तपसाऽहं सुतोषित. ।
[illegible] करोम्यहम् ॥१५
भो भो [illegible] व वक्तव्य न तु [illegible]वन् ।
ब्रूत वो [illegible] त [illegible] साध्य[illegible]रः ॥१६
ते तु सर्वा दैत्या ब्रह्माणं [illegible] प्रतिहन्य[illegible] ।
यदि [illegible] दीयता नो [illegible] ॥१७
[illegible] समह[illegible] ॥
यक्ष [illegible] परम[illegible]चारणमानवैः ।
मा भू[illegible]गवन्ददासि यदि नो वरम् ॥१८
तानुवा[illegible] ततो ब्रह्मा सुप्रीतेनान्तरात्मना ।
भवद्भिर्यदिदं प्रोक्त सर्वमेतद्भविष्यति ॥१९
षड्गर्भाणा वरं दत्त्वा स्वयंभूस्त्रिदिव गत. ।
ततो हिरण्यकशिपुः सरोषो[illegible]क्यमब्रवीत् ॥२०
मामुत्सृज्य वरो यस्माद्वृतो व: पद्मसभवात् ।
तस्माद्वस्त्याजित. स्नेहः शत्रुभूतास्त्यजाम्यहम् ॥२१

ब्रह्माजी ने कहा—हे दानव शार्दूल ! मैं तुम्हारी आराधना से अत्यधिक
प्रसन्न हूँ । तुम अपनी-अपनी इच्छा कहो, मैं वह पूर्ण करूँगा ॥१५॥ इस
वे सब एकमत होकर कहने लगे—हे जगपालक ! यदि आप वास्तव मे हम
प्रसन्न हैं तो आप हमे यह वरदान दीजिए कि हम देवता, विशाल सर्पों,
देने वाले मुनियों, यक्ष, सिद्ध, गन्धर्व, चारण और किसी भी मनुष्य के हाथों
मर सकें । तब ब्रह्माजी ने उन्हें वरदान दिया—तुम्हारी आशंसा पूर्ण हो
॥१६-१९॥ ब्रह्माजी उन छः को वरदान प्रदान कर अपने लोक चले गये । उ

ने जाने के पश्चात् हिरण्यकशिपु बहुत क्रोधित हुआ उनसे कहने लगा—तुमने ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त कर मेरी अवहेलना की है और इसलिए तुम से मेरा कोई सबंध नहीं और तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह सदैव के लिए समाप्त हो गया। अब तुम मेरे शत्रु हो ॥२०-२१॥

षड्गर्भा इति योऽयं वः शब्दः पित्राऽभिवर्धितः।
स एव वो गर्भगतान्पिता सर्वान्वधिष्यति ॥२२
षडेव देवकीगर्भाः षड्गर्भा वै महासुराः।
भविष्यथ ततः कंसो गर्भस्थान्वो वधिष्यति ॥२३
जगामाथ ततो विष्णुः पातालं यत्र तेऽसुराः।
षड्गर्भाः संयताः सन्ति जले गर्भगृहेशयाः ॥२४
संददर्श जले गुप्तान्षड्गर्भान्गर्भसंस्थितान्।
निद्रया कालरूपिण्या सर्वानन्तर्हितान्स वै ॥२५
स्वप्नरूपेण तेषां वै विष्णुर्देहानथाविशत्।
प्राणेश्वरांश्च निष्कृष्य निद्रायै प्रददौ तदा ॥२६
तां चोवाच ततो निद्रां विष्णुः सत्यपराक्रमः।
गच्छ निद्रे मयोत्सृष्टा देवकीभवनान्तिकम् ॥२७
इमान्प्राणेश्वरान्गृह्य षड्गर्भान्दानवोत्तमान्।
सर्वप्राणेश्वरांश्चैव षड्गर्भान्नाम देहिनः।
षड्गर्भान्देवकीगर्भे योजयस्व यथाक्रमम् ॥२८

उसने शाप दिया—तुम्हारे जिस पिता ने तुम्हारा नामकरण षड्गर्भ किया है, वही तुम्हारा दमन भी करेगा ॥२२॥ तुम सभी देवकी के गर्भ से जन्म प्राप्त करोगे और कंस एक-एक करके तुम छहों का गर्भ के समय ही वध कर डालेगा ॥२३॥ वैशम्पायन बोले—हे नृप! कालनेमि के उन छः पुत्रों का स्मरण करते ही भगवान् विष्णु ने तुरन्त ही भूतल लोक को प्रस्थान किया, जहाँ पर वे छः असुर जलपूर्ण शैया पर एक साथ सो रहे थे ॥२४॥ भगवान् विष्णु ने यह देखकर कि वे छहों कालरूपिणी निद्रा में मोहित होकर जलमय शैया पर निद्रित पड़े हैं ॥२५॥ तो भगवान् विष्णु ने अपनी माया-शक्ति द्वारा स्वप्न की भाँति

उनकी देहो मे प्रवेश किया और उनके प्राणो को लेकर निद्रा देवी को दे दि ।।२५।। उन्होने निद्रा देवी से कहा—हे निद्रे ! तुम यहाँ से प्रस्थान कर देवकी के अंत.पुर मे पहुँचो ।।२७।। वहाँ इन षड्गर्भो के प्राणो को एक एक कर देवकी के गर्भ मे प्रस्थापित कर दो ।।२८।।

जातेष्वेतेषु गर्भेषु नीतेषु च यमक्षयम् ।
कंसस्य विफले यत्ने देवक्या सफले श्रमे ।।२९
प्रसादं ते करिष्यामि मत्प्रभावसम भुवि ।
येन सर्वस्य लोकस्य देवि देवी भविष्यसि ।।३०
सप्तमो देवकीगर्भो योऽश सौम्यो ममाग्रज ।
स सक्रामयितव्यस्ते सप्तमे मासि रोहिणीम् ।।३१
सकर्पणात्तु गर्भस्य स तु सकर्षणो युवा ।
भविष्यत्यग्रजो भ्राता मम शीतांशुदर्शन ।।३२
पतितो देवकीगर्भ सप्तमोऽय भयादिति ।
अष्टमे मयि गर्भस्थे कसो यत्न करिष्यति ।।३३
या तु सा नन्दगोपस्य दयिता भुवि विश्रुता ।
यशोदा नाम भद्र ते भार्या गोपकुलोद्वहा ।।३४
तस्यास्त्व नवमो गर्भ कुलेऽस्माक भविष्यसि ।
नवम्यामेव संजाता कृष्णपक्षस्य वै तिथौ ।।३५

देवकी के गर्भ से उत्पन्न होकर ये सब कस द्वारा एक-एक करके वध दिये जायेंगे । इस प्रकार कस का प्रयत्न तो असफल होगा और देवकी का भी सफल होगा ।।२९।। उस काल मे मेरी प्रसन्नता का कारण यनोगी मेरी प्रसन्नता व कृपा के कारण सम्मान प्राप्त करके सभी मनुष्यो व प्राणि द्वारा सम्मानित होओगी ।।३०।। इसके उपरान्त देवकी के सातवें गर्भ मे चन्द्र का जो अश प्रवेश करेगा, वह मेरा बड़ा भाई होगा । सातवें महीने मे वह सप्त गर्भ देवकी के गर्भ से परिवर्तित कर रोहिणी के गर्भ मे प्रस्थापित कर ।।३१।। इस प्रकार गर्भ सकर्षण से उत्पन्न उस बालक नाम सकर्षण होगा वह शिशु जो मेरा बड़ा भाई होगा, वह चन्द्रमा के सदृश अत्यन्त सुन्दर

३२॥ इस गर्भ संकर्षण का परिणाम यह होगा कि यह समाचार फैल जायगा भय के कारण देवकी का गर्भ गिर गया। इसके पश्चात् देवकी के आठवें गर्भ में मैं स्वयं प्रवेश करूँगा और तब मेरा वध करने के लिए कंस विभिन्न यत्न करेगा ॥३३॥ वसुदेव के अभिन्न मित्र नन्द गोपराज की पत्नी यशोदा के गर्भ में तुम प्रवेश करो और कृष्णपक्ष की नवमी को जन्म लो ॥३४-३५॥

अहं त्वभिजितो योगे निशाया यौवने स्थिते ।
अर्द्धरात्रे करिष्यामि गर्भमोक्षं यथासुखम् ॥३६
अष्टमस्य तु मासस्य जातावावां ततः समम् ।
प्राप्स्यावो गर्भव्यत्यासं प्राप्ते कंसस्य नाशने ॥३७
अहं यशोदां यास्यामि त्वं देवि भज देवकीम् ।
आवयोर्गर्भव्यत्यासे कंसो गच्छतु मूढताम् ॥३८
ततस्त्वां गृह्य चरणे शिलायां पातयिष्यति ।
निरस्यमाना गगने स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥३९
मच्छरीरसदृशी कृष्णा संकर्षणसमानना ।
बिभ्रती विपुलौ बाहू मम बाहूपमौ दिवि ॥४०
त्रिशिखं शूलमुद्यम्य खड्गं च कनकत्सरुम् ।
पात्रीं च पूर्णां लघुना पङ्कजं च सुनिर्मलम् ॥४१
नीलकौशेयसंवीता पीतेनोत्तरवाससा ।
शशिरश्मिप्रकाशेन हारेणोरसि राजता ॥४२

उसी समय मैं भी अर्धरात्रि काल में अभिजित् नक्षत्र के, योग के समय जन्म लूँगा ॥३६॥ अष्टम मास में हम एक साथ जन्म लेंगे, जिससे गर्भ परिवर्तन होगा और उससे कंस के वध करने में सफलता मिलेगी ॥ ३७॥ गर्भ परिवर्तन के द्वारा मैं यशोदा के पास पहुँच जाऊँगा और तुम देवकी के पास आ जाओगी। ऐसी परिस्थिति में उस घोर असुरराज कंस की मति भ्रष्ट हो जायगी ॥३८॥ आठवें गर्भ को नष्ट करने के लिए कंस तुम्हारा पैर पकड़ कर तुम्हें उस समय शिला पर दे मारेगा और तुमको आकाश में स्थित होकर शाश्वत स्थान प्राप्त होगा ॥३९॥ उस समय तुम्हारी देह की आभा मेरे सदृश कृष्ण वर्ण, मेरी भुजाओं

के समान विशाल भुजाऐं और तुम्हारा मुख तेरे, ज्येष्ठ भ्राता बलराम के सदृश अति सुन्दर होगा ॥४०॥ उस समय तुम्हारे हाथों में त्रिशूल, सोने की मूठ वाली तलवार, मदिरापूर्ण पात्र और अत्यन्त स्वच्छ कमल होगा ॥४१॥ तुम्हारी देह पर नीलवर्ण का रेशमी वस्त्र और पीतवमन का उत्तरीय शोभायमान होगा। चन्द्रमा की किरणो के सदृश अत्यन्त स्वच्छ हार तुम्हारे वक्षस्थल पर सुशोभित होगा ॥४२॥

दिव्यकुण्डलपूर्णाभ्यां श्रवणाभ्यां विभूषिता ।
चन्द्रसापत्नभूतेन मुखेन त्वं विराजिता ॥४३
मुकुटेन विचित्रेण केशबन्धेन शोभिना ।
भुजङ्गाभोगभुजैर्भीमैर्भीषयन्ती दिशो दश ॥४४
ध्वजेन शिखिबर्हेण उच्छ्रितेन विराजिता ।
अङ्गजेन मयूराणामङ्गदेन च भास्वता ॥४५
कीर्णा भूतगणैर्घोरैर्मन्नियोगानुवर्तिनी ।
कौमारं व्रतमास्थाय त्रिदिवं त्वं गमिष्यसि ॥४६
तत्र त्वां शतदृक्छक्रो मत्प्रदिष्टेन कर्मणा ।
अभिषेकेण दिव्येन दैवतैः सह योक्ष्यते ॥४७
अत्रैव त्वां भगिन्यर्थे गृहीष्यति स वासवः ।
कुशिकस्य तु गोत्रेण कौशिकी त्वं भविष्यसि ॥४८
स ते विन्ध्ये नगश्रेष्ठे स्थानं दास्यति शाश्वतम् ।
ततः स्थानसहस्रैस्त्वं पृथिवीं शोभयिष्यसि ॥४९

श्रेष्ठ अलकृत दो कुण्डल तुम्हारे दोनों कानों में लटके होंगे। तुम्हारी अपूर्व मुख-आभा को विलोक कर चन्द्रमा को भी ईर्ष्या होने लगेगी। अलौकिक मुकुट एवं अनुपम केशराशि से तुम्हारा मस्तक अत्यन्त शोभायमान उठेगा। भयानक विषधरों जैसी तुम्हारी भुजाओं को देखकर सम्पूर्ण दिशाएं भयातुर हो जायेंगी ॥४४॥ इसके अतिरिक्त तुम्हारी शोभा उस समय असीम होगी, जब तुम मोर पंख लगी उच्च पताका और तेजस्वी अंगद धारण करोगी ॥४५॥ उस काल तुम प्रमथगणों से घिरी हुई होगी और कौमार व्रत का पालन एवं मेरी आज्ञाओं का पालन करती हुई स्वर्गलोक

मे स्थित होओगी ॥४६॥ जहाँ सहस्र नेत्र धारी इन्द्र मेरी आज्ञा के पालनस्वरूप तुम्हें अभिषिक्त करेगा और अपने देवगण मे मिला लेंगे ॥४७॥ और वह इन्द्र तुम्हें अपनी बहिन का स्थान देंगे। चूंकि तुम कुशिक गोत्रीया हो, इस कारण तुम्हारा नाम कौशिकी होगा ॥४८॥ विन्ध्याचल पर देवेश्वर इन्द्र तुम्हें शाश्वत स्थान प्रदान करेंगे। फिर तुम अपनी अलौकिक आभा से सहस्रों स्थानो को अलोकित करोगी ॥४६॥

त्रैलोक्यचारिणी सा त्व भुवि सत्योपयाचना।
चरिष्यसि महाभागे वरदा कामरूपिणी ॥५०
तत्र शुम्भनिशुम्भौ द्वौ दानवौ नगचारिणौ।
तौ च कृत्वा मनसि मा सानुगौ नाशयिष्यसि ॥५१
कृत्वाऽनुयात्रा भूतैस्त्व सुरामासबलिप्रिया।
तिथौ नवम्या पूजा त्व प्राप्स्यसे सपशुक्रियाम् ॥५२
ये च त्वा मत्प्रभावज्ञा प्रणमिष्यन्ति मानवा।
तेषा न दुर्लभ किञ्चित्पुत्रतो धनतोऽपि वा ॥५३
कान्तारेष्वनसन्नाना मग्नाना च महार्णवे।
दस्युभिर्वा निरुद्धाना त्व गति परमा नृणाम् ॥५४

तुम्हारे वरदान से प्राणियो की मनेच्छाएं पूर्ण होंगी और मनेच्छित रूप परिवर्तन करके समस्त लोगो मे विचरण करोगी ॥५०॥ विन्ध्याचल पर निवास करने वाले शुम्भ-निशुम्भ नामक दो विकराल असुरों को तुम मेरा ध्यान करके समूल दमन कर दोगी ॥५१॥ तत्पश्चात् आमिष और बलि तुम्हें प्रिय लगेंगी और भूत प्रेतों को संग लेकर विचरण करोगी एव मनुष्य प्रत्येक नवमी को तुम्हें बलि समर्पित करके तुम्हारी अर्चना करेंगे ॥५२॥ मेरे प्रभाव को जानने वाले जो मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे, वे धन सम्पत्ति एव पुत्रादि सर्व सुख प्राप्त करेंगे ॥६३॥ कोई भी मनुष्य किसी भी विपत्ति म क्यों न हो, चाहे वन मे रास्ता भूल गया हो, विशाल समुद्र की लहरों मे फँस गया हो अथवा दस्युओ के कब्जे मे हो, वह जैसे ही तुम्हारा ध्यान करेगा, तुरन्त उसका सकट दूर हो जायगा ॥५४॥

॥ भगवान् कृष्ण का जन्म ॥

कृते गर्भविधाने तु देवकी देवतोपमा ।
जग्राह सप्त तान्गर्भान्ययावत्समुदाहृतान् ॥१
षड्गर्भान्नि सृतान्कसस्ताञ्जघान शिलातले ।
आपन्न सप्तम गर्भ सा निनायाथ रोहिणीम् ॥२
सार्द्धं रात्रे स्थित गर्भ पातयन्ती रजस्वला ।
निद्रया सहसाऽऽविष्टा पपात धरणीतले । ३
सा स्वप्नमिव त दृष्ट्वा स्वे गर्भे गर्भमादधत् ।
अपश्यन्ती च त गर्भ मुहूर्त व्यथिताऽभवत् ॥४
तामाह निद्रासविग्ना नैशे तमसि रोहिणीम् ।
रोहिणीमिव सोमस्य वसुदेवस्य धीमत. ॥५
कर्षणेनास्य गर्भस्य स्वगर्भे चाहितस्य वै ।
सकर्षणो नाम सुत शुभे तव भविष्यति ॥६
सा त पुत्रमवाप्यैव हृष्टा किञ्चिदवाङ्मुखी ।
विवेश रौहिणी वेश्म सुप्रभा रोहिणी यथा ॥७
तस्य गर्भस्य मार्गेण गर्भमाधत्त देवकी ।
यदर्थं सप्त ते गर्भा कसेन विनिपातिता ॥८

वैशम्पायन जी ने कहा—हे नृप ! जैसा मैंने पहले वर्णन किया, उस प्रकार देवकी के गर्भ स्थिति प्रारम्भ हुई और जैसे-जैसे उसके गर्भ से शिशु जन्म लेते थे, वैसे-वैसे कस इन्हे पृथिवी पर पटक-पटक कर वध कर देता था। इस प्रकार देवकी के जब सातवी बार गर्भ स्थिति हुई उस समय योगमाया ने अपनी मायाशक्ति द्वारा देवकी के गर्भ को रोहिणी के गर्भ मे स्थित कर दिया ॥१-२॥ इससे अर्धरात्रि काल मे रजस्वला देवकी का गर्भपात हो गया। देवकी निद्रा से मोहित होकर पृथिवी पर लेट गयी ॥३॥ और योगमाया की माया का उन्हें ज्ञान न हो सका। उन्हे एक स्वप्नमात्र अनुभूति हुई कि उन्होने गर्भ धारण किया और वह गिर भी गया। इसके कारण कुछ समय उन्हे वेदना अवश्य हुई ॥४॥ उस घोर अन्धकारमयी रात्रि मे चन्द्र पत्नी रोहिणी के सदृश सुन्दर रोहिणी से

योगमाया बोली, मैंने देवकी का गर्भ तुम्हारे गर्भ में प्रविष्ट कर दिया है, अतएव इस गर्भ सङ्क्रमण से जो पुत्र तुम्हारे जन्म लेगा, उसका नाम सकर्षण होगा ॥६॥ इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर रोहिणी के पुत्र-जन्म हुआ। रोहिणी को पुत्र-प्राप्ति के कारण बहुत हर्ष था और हर्षित होती हुई रोहिणी ने जब अपने शिशु सहित अपने गृह में प्रविष्ट हुई, उस समय उसकी शोभा ऐसी लग रही थी कि मानो चन्द्र-पत्नी रोहिणी अपने पुत्र बुध को लेकर प्रविष्ट हुई हो ॥७॥ इधर कंस ने देवकी के सप्तम गर्भ की खोज प्रारम्भ कराई और इसी अवधि में देवकी को पुन आठवीं बार गर्भ स्थिति हो गई ॥८॥

त तु गर्भं प्रयत्नेन ररक्षुस्तस्य मन्त्रिण ।
सोऽप्यत्र गर्भवसतौ वसत्यात्मेच्छया हरि ॥९
यशोदाऽपि समाधत्त गर्भं तदहरेव तु ।
विष्णो शरीरजा निद्रा विष्णुनिर्देशकारिणीम् ॥१०
गर्भकाले त्वसम्पूर्णे अष्टमे मासि ते स्त्रियौ ।
देवकी च यशोदा च सुषुवाते सम तत ॥११
यामेव रजनी कृष्णो जज्ञे वृष्णिकुलोद्वह. ।
तामेव रजनी कन्या यशोदाऽपि व्यजायत ॥१२
नन्दगोपस्य भार्यैका वसुदेवस्य चापरा ।
तुल्यकाल च गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा ॥१३
देवक्यजनयद्विष्णु यशोदा ता तु दारिकाम् ।
मुहूर्तेऽभिजिति प्राप्ते सार्द्ध रात्रे विभूषिते ॥१४

अब तक देवकी के सात गर्भों को नष्ट किया जा चुका था। उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कंस के मन्त्री व राजसेवकों द्वारा देवकी के अष्टम गर्भ की देख-रेख की जा रही थी। फिर स्वय भगवान् विष्णु स्वेच्छा से देवकी के गर्भ में आये ॥९॥ और उधर भगवान् विष्णु की शरीर निद्रादेवी भगवान् विष्णु के निर्देश के अनुसार यशोदा के गर्भ में प्रवेश कर गई ॥१०॥ इस प्रकार प्रसव की अवधि पूर्ण होने पर आठवें महीने में इधर देवकी ने पुत्र और यशोदा ने कन्या को एक साथ जन्म दिया ॥११॥ इस प्रकार जिस रात्रि में भगवान् विष्णु ने

वृष्णिकुल मे जन्म लिया, उसी रात्रि गोपराज नन्द की पत्नी यशोदा ने भी एक कन्या को जन्म दिया ॥१२॥ चूंकि नन्द गोप की भार्या यशोदा और वसुदेव की भार्या देवकी एक साथ गर्भवती हुई थी ॥१३॥ इसलिए उस अभिजित् नक्षत्र में अर्धरात्रि काल मे उन दोनो के पुत्र एव कन्या उत्पन्न हुए ॥१४॥

सागराः समकम्पन्त चेलुश्च धरणीधरा ।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जायमाने जनार्दने ॥१५
शिवाश्च प्रववुर्वाताः प्रशान्तमभवद्रजः ।
ज्योतीष्यतिव्यकाशन्त जायमाने जनार्दने ॥१६
अभिजिन्नाम नक्षत्रं जायन्ती नाम शर्वरी ।
मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दन. ।
अव्यक्त. शाश्वत सूक्ष्मो हरिर्नारायण प्रभु. ॥१७
जायमानो हि भगवान्नयनैर्मोहयन्प्रभु. ।
अनाहता दुन्दुभयो देवानां प्राणदन्दिवि ॥१८
आकाशात्पुष्पवृष्टिं च ववर्ष त्रिदशेश्वरः ।
गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम् ॥१६
महर्षय. सगन्धर्वा उपतस्थु सहाप्सराः ।
जायमाने हृषीकेशे प्रहृष्टमभवज्जगत् ॥२०
इन्द्रश्च त्रिदशैः सार्द्धं तुष्टाव मधुसूदनम् ।
वसुदेवश्च त रात्रौ जात पुत्रमधोक्षजम् ॥२१
श्रीवत्सलक्षण दृष्ट्वा युतं दिव्यैश्च लक्षणै. ।
उवाच वसुदेवस्तु रूप संहर वै प्रभो ॥२२
भीतोऽहं देव कंसस्य तस्मादेव ब्रवीम्यहम् ।
मम पुत्रा हतास्तेन तव ज्येष्ठाम्बुजेक्षण ॥२३

भगवान् का जैसे ही जन्म हुआ वैसे समस्त भूमण्डल मे उथल-पुथल होने लगी, समुद्र उमड़ने लगा, पर्वत हिलने लगे और अग्नि भी धधकने लगी ॥१५॥ आनन्ददायक वायु वेगवती हो गई, धूल गुब्बार शान्त हो गये और नक्षत्र एकदम चमकने लगे ॥१६॥ भगवान् के जन्म के समय अभिजित् नक्षत्र, जयन्ती नामक

रात्रि और विजय नामक मुहूर्त्त था। उन अव्यक्त, शाश्वत और सूक्ष्म हरि-नारायण प्रभु ॥१७॥ के जन्म लेते ही देवताओं ने स्वर्ग में वाद्य बजाने प्रारम्भ कर दिये ॥१८॥ सुरराज इन्द्र अपने लोक से उन पर पुष्प बरसाने लगे। मंगलमय वाक्यों के उच्चारण द्वारा सुरगण, मुनिगण, गन्धर्व व अप्सराएं उनकी आराधना करने लगे। उनके जन्म लेते ही समस्त भूतल आनन्दित हो उठा ॥१९-२०॥ देवेश्वर इन्द्र भी अपने देवताओं सहित भगवान् की स्तुति करने लगे। इस अंधकारमयी रात्रि के समय श्रीवत्सलक्षण एवं उत्तम लक्षण युक्त उन भगवान् के रूप को विलोक वसुदेव बोले—हे प्रभो! आप अपने इस रूप को संवरित कीजिए। मुझे कंस से बहुत भय है। उसने आपसे बड़े मेरे कई पुत्रों का वध कर डाला है ॥२१-२३॥

वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं चाहरदच्युतः।
अनुज्ञाप्य पितृत्वेन नन्दगोपगृहं नय ॥२४
वसुदेवस्तु संगृह्य दारकं क्षिप्रमेव च।
यशोदाया गृहं रात्रौ विवेश सुतवत्सलः ॥२५
यशोदायास्त्वविज्ञातस्तत्र निक्षिप्य दारकम्।
प्रगृह्य दारिकां चैव देवकीशयने न्यसत् ॥२६
परिवर्ते कृते ताभ्यां गर्भाभ्यां भयविक्लवः।
वसुदेवः कृतार्थो वै निर्जगाम निवेशनात् ॥२७
उग्रसेनसुतायाथ कंसायानकदुन्दुभिः।
निवेदयामास तदा तां कन्यां वरवर्णिनीम् ॥२८

वैशम्पायन जी बोले—हे महाराज! वसुदेव की प्रार्थना पर भगवान् ने अपना वह अलौकिक रूप संवरित कर लिया और फिर उन्होंने वसुदेव से कहा—हे पिताजी! आप यहाँ से मुझे गोपराज नन्द के यहाँ ले चलिये ॥२४॥ भगवान् की ऐसी आज्ञा सुन वसुदेव तुरन्त ही बालक को लेकर रात्रि में ही यशोदा के घर पहुँचे ॥२५॥ देवकी को इस सब बात का ज्ञान भी नहीं था और वे अपने बालक को यशोदा के निकट लिटाकर और यशोदा की कन्या को लेकर चल पड़े।

यद्यपि देवकी और यशोदा के गर्भों का परिवर्तन करके वसुदेव भयभीत थे फिर भी अपने को कृतार्थ मानकर वे नन्द भवन से बाहर आये और मथुरा पहुँचे ॥२६-२७॥ फिर वसुदेव ने उग्रसेन तनय कंस को देवकी के कन्या उत्पन्न होने का सन्देश भेजा ॥२८॥

तच्छ्रुत्वा त्वरितं कंसो रक्षिभिः सह वेगिभिः ।
आजगाम गृहद्वारं वसुदेवस्य वीर्यवान् ॥२९
स तत्र त्वरितं द्वारि किं जातमिति चाब्रवीत् ।
दीयतां शीघ्रमित्येव वाग्भिः समभितर्जयन् ॥३०
ततो हाहाकृताः सर्वा देवकीभवने स्त्रियः ।
उवाच देवकी दीना बाष्पगद्गदया गिरा ॥३१
दारिका तु प्रजातेति कंसं समभियाचती ।
श्रीमन्तो मे हताः सप्त पुत्रगर्भास्त्वया विभो ॥३२
दारिकेयं हतैवैषा पश्यस्व यदि मन्यसे ।
दृष्ट्वा कंसस्तु तां कन्यामाकृष्य तामुदायत ॥३३
हतैवैषा यदा कन्या जातेत्युक्त्वा वृथामतिः ।
सा गर्भशयने क्लिष्टा गर्भाम्बुक्लिन्नमूर्द्धजा ॥३४
कंसस्य पुरतो न्यस्ता पृथिव्यां पृथिवीसमा ।
स चैनां गृह्य पुरुषः समाविध्यावधूय च ॥३५
उद्यच्छन्नेव सहसा शिलायां समपोथयत् ।
सावऽधूता शिलापृष्ठेऽनिष्पिष्टा दिवमुत्पतत् ॥३६

जन्म का समाचार सुनते ही कंस अपने सेवकों सहित तेजी से वहां पहुँचा ॥२९॥ वसुदेव और देवकी को डराकर उसने कहा—जो कुछ उत्पन्न हुआ है उसे तुरन्त मेरे पास लाओ ॥३०॥ कंस के ऐसे आदेश को सुनकर देवकी के अंतःपुर की स्त्रियाँ चीत्कार कर उठीं और देवकी ने विदारक स्वर में कंस से कहा ॥३१॥ राजन् ! अब मेरे कन्या उत्पन्न हुई है । अब तक तुमने मेरे सात पुत्रों का वध कर डाला तो यह कन्या तो वैसे ही मरी-सी है । स्वयं तुम देखो ॥३२-३३॥ ऐसा कह देवकी ने उस गर्भक्लिष्टा कन्या को कंस के आ

पृथिवी पर लाकर लिटा दिया। फिर हर्षित होते हुए कंस ने कहा—"वास्तव में यह कन्या तो मर ही चुकी है" और यह कहकर उसने कन्या के पैर पकड़ कर, घुमा कर उसे पृथिवी पर दे मारा ॥३४-३६॥

हित्वा गर्भतनुं सा तु सहसा मुक्तमूर्द्धजा।
जगाम कंसमादिश्य दिव्यस्रगनुलेपना ॥३७
हारशोभितसर्वाङ्गी मुकुटोज्ज्वलभूषिता।
कन्यैव साऽभवन्नित्यं दिव्या देवैरभिष्टुता ॥३८
नीलपीताम्बरधरा गजकुम्भोपमस्तनी।
रथविस्तीर्णजघना चन्द्रवक्त्रा चतुर्भुजा ॥३९
विद्युद्विस्पष्टवर्णाभा बालार्कसदृशेक्षणा।
पयोधरस्तनवती सन्ध्येव सपयोधरा ॥४०
सा वै निशि तमोग्रस्ते बभौ भूतगणाकुले।
नृत्यती हसती चैव विपरीतेन भास्वती ॥४१
विहायसि गता रौद्रा पपौ पानमनुत्तमम्।
जहास च महाहासं कंसं च रुषिताऽब्रवीत् ॥४२

जैसे ही कंस ने कन्या को पृथिवी पर पटका, वैसे ही वह कन्या अपना कलेवर त्याग कर आकाश में उड़ गई। इस समय उसके केश फैले हुए और उसकी देह श्रेष्ठ हार एवं दिव्य चन्दन से सुशोभित थी ॥३७॥ उसके सम्पूर्ण अंगों पर मालाएं सुशोभित थीं। अद्भुत मुकुट मस्तक पर धारण था। ऐसी देवी की समस्त सुरगण उसकी प्रार्थना करने लगे ॥३८॥ उस कन्या ने नील एवं पीत वर्ण के परिधान धारण कर रखे थे। हाथी के मस्तक सदृश उभरे हुए उसके स्तन थे और रथ जैसा विशाल उसका जघन प्रदेश था। उसका मुख चन्द्रमा के समान रूपवान था एवं उसकी चार भुजाएँ थीं ॥३९॥ उसके शरीर की आभा दमकती विद्युत् के सदृश थी एवं उषाकालीन सूर्य के समान रक्त वर्ण उसके नेत्र थे। सायंकाल की मेघयुक्त सन्ध्या के समान उसके पयोधर थे ॥४०॥ भूत प्रेतों सहित उस घोर अंधकारमयी रात्रि में वह बारम्बार नाचती, हँसती

और आकाश मे विचरती हुई मदिरा पान करने लगी। फिर भयानक अट्टहास सहित क्रोधित स्वर मे कंस से उसने कहा ॥४१-४२॥

कंस कंस विनाशाय यदहं घातिता त्वया ।
सहसा च समुत्क्षिप्य शिलायामभिपोथिता ॥४३
तस्मात्तवान्तकालेऽहं कृष्यमाणस्य शत्रुणा ।
पाटयित्वा करैर्देहमुष्णं पास्यामि शोणितम् ॥४४
एवमुक्त्वा वचो घोरं सा यथेष्टेन वर्त्मना ।
खं सा देवालयं देवी सगणा विचचार ह ॥४५
सा कन्या ववृधे तत्र वृष्णिसंघसुपूजिता ।
पुत्रवत्पाल्यमाना सा वसुदेवाज्ञया तदा ॥४६
विद्धि चैनामथोत्पन्नामशाद्देवीं प्रजापते ।
एकानंशा योगकन्या रक्षार्थं केशवस्य तु ॥४७
तां वै सर्वे सुमनसः पूजयन्ति स्म यादवाः ।
देववद्दिव्यवपुषा कृष्णः संरक्षितो यया ॥४८
तस्यां गतायां कंसस्तु तां मेने मृत्युमात्मनः ।
विविक्ते देवकीं चैव व्रीडितः समभाषत ॥४९
मृत्योः स्वसुः कृतो यत्नस्तव गर्भा मया हताः ।
अन्य एवान्यतो देवि मम मृत्युरुपस्थितः ॥५०

हे पापी कंस ! मेरा वध करने हेतु तूने मुझे पृथिवी पर पटका ॥४३॥ जब तेरा मृत्युकाल आयेगा, उस समय तेरे शत्रु तुझे पकड कर घसीटेंगे और उस समय मैं अपने हाथों से तेरे शरीर को चीरकर तेरा रुधिर पान करूँगी ॥४४॥ हे नृप ! कंस से इस प्रकार क्रोधपूर्वक वचन कहकर वह कन्या अपने भूत प्रेतो सहित आकाश मंडल में विचरने लगी ॥४५॥ इसके पश्चात् भगवान् विष्णु के निर्देशानुसार वृष्णिवंशियों के घर में पुत्र समान बड़े प्रयत्न के साथ उसका पालन पोषण हुआ तो वह बढ़ने लगी ॥४६॥ वह कन्या भगवान् प्रजापति के अंश से उत्पन्न थी। इसलिए सभी यादव लोग भगवान् कृष्ण की रक्षिका के रूप में उस कन्या की पूजा करते ॥४७॥ देवताओं के समान अद्भुत

देहधारिणी वह कन्या जब कृष्ण भगवान् की रक्षा करके चली गई, तब कंस बड़ा लज्जित हुआ और अकेले मे देवकी से बोला—"देवकी बहिन ! मैंने अपनी मृत्यु के भय से तुम्हारे अनेक पुत्रों का वध कर डाला, लेकिन अब ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी मृत्यु का कारण कोई अन्य व्यक्ति ही बनेगा ॥४८-५०॥

नैराश्येन कृतो यत्न स्वजने प्रहृन मया ।
दैव पुरुषकारेण न चातिक्रान्तवानहम् ॥५१
त्यज गर्भकृता चिन्ता सताप पुत्रज त्यज ।
हेतुभूतस्त्वह तेपा सति कालविपर्यये ॥५२
काल एव नृणा शत्रु कालश्च परिणामक ।
कालो नयति सर्व वै हेतुभूतस्तु मद्विध ॥५३
आगमिष्यन्ति वै देवि यथाभागमुपद्रवा ।
इद तु कष्ट यज्जन्तु कर्त्ताऽहमिति मन्यते ॥५४
मा कार्षी पुत्रजा चिन्ता विलाप शोकज त्यज ।
एव प्रायो नृणा योनिर्नास्ति कालस्य संस्थिति ॥५५
एप ते पादयोर्मूर्ध्ना पुत्रवत्तव देवकि ।
मद्गतस्त्यज्यता रोपो जानाम्यपकृत त्वयि ॥५६

कस ने दुख प्रकट करते हुए कहा—मैं बड़ा निर्दयी हूँ और मैंने अपने प्रियों का ही शमन किया, फिर भी विधि ने जो भाग्य मे लिख दिया उसे मैं किसी प्रकार भी परिवर्तित नहीं कर सका ॥५१॥ हे सती ! तुम्हे अब पुत्रों के वध के विषय मे सभी चिन्ता और सताप त्याग देना चाहिए। विधि के विधान के कारण ही मैंने उनका वध किया ॥५२॥ यदि तुम इस पर गहन विचार करो तो तुम्हे प्रतीत होगा कि मैं तो विधि के विधान का निमित्त मात्र हूँ। समय ही मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है और वही उसका विनाशक है ॥५३॥ जो होना होना है, वह अवश्य होता है। लेकिन सताप तो यह है कि दैव के विधान का मनुष्य स्वय ही कर्ता बन जाता है ॥५४॥ इसलिए तुम्हें पुत्रों की चिन्ता त्यागकर यह शोकपूर्ण रुदन बन्द कर देना चाहिए। मनुष्यों की गति

ही ऐसी है, वह काल को जीत नहीं सकता ॥५५॥ हे बहिन ! एक पुत्रवत् मैं तुम्हारे चरणों में शीश नवाता हूँ, तुम्हें मेरे ऊपर से क्रोध का त्यागकर देना चाहिए। मैंने तुम्हारा बड़ा अपकार किया है ॥५६॥

इत्युक्तवन्त कस सा देवकी वाक्यमब्रवीत् ।
साश्रुपूर्णमुखा दीना भर्तारमुपवीक्षती ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्सेनि कस मातेव जल्पती ॥५७
ममाग्रतो हता गर्भा ये त्वया कालरूपिणा ।
कारण तत्र वै पुत्र कृतान्तान्नोऽप्यत्र कारणम् ॥५८
गर्भकृन्तनमेतन्मे सहनीय त्वया कृतम् ।
पादयो पतता मूर्ध्ना स्व च कर्म जुगुप्सता ॥५९
गर्भे तु नियतो मृत्युर्बाल्येऽपि न निवर्तते ।
युवाऽपि मृत्योर्वशग स्थविरो मृत एव तु ॥६०
कालभूतमिद सर्वं हेतुभूतस्तु त्वद्विध ।
अजाते दर्शन नास्ति यथा वायुस्तथैव च ॥६१
जातोऽप्यजातता याति विधात्रा यत्र नीयते ।
तद्गच्छ पुत्र मा ते भूत्मद्गत मृत्युकारणम् ॥६२
मृत्युनाऽपहृते पूर्वं शेषो हेतु प्रवर्त्तते ।
विधिना पूर्वदृष्टेन प्रजासर्गेण तत्त्वत ॥६३
मातापित्रोस्तु कार्येण जन्मतस्तूपपद्यते ।
निशम्य देवकीवाक्य स कस स्व निवेशनम् ॥६४
प्रविवेश स सरब्धो दह्यमानेन चेतसा ।
कृत्ये प्रतिहते दीनो जगाम विमना भृशम् ॥६५

यह कंस अपने चरणों में पड़ा इस प्रकार सताप करते देखकर देवकी की आँखों में आँसू उमड़ आए, वह अपने पति वसुदेव की ओर विलोककर एक माँ की भाँति द्रवित हृदय से कंस से बोली—हे वत्स ! उठो। तुमने जो मेरे पुत्रों का वध किया, उसके कारण तुम नहीं हो, इसका प्रमुख कारण काल ही है ॥५७-५८॥ अब जबकि इसके लिए तुम मेरे चरणों में माथा टेककर इस प्रकार

उत्पन्न होकर खेद प्रकट कर रहे हो, इसलिए मैं तुम्हें क्षमा करती हूँ ॥५६॥
र्भ, बाल्यावस्था, यौवनावस्था अथवा वार्धक्य कोई भी स्थिति क्यों न हो,
किन्तु काल की गति नहीं रुकती ॥६०॥ देवकी ने पुनः कहा—ऐसा समय
बल काल के वशीभूत होकर ही आता है। काल का जो कार्य होना था,
सके तुम निमित्त मात्र हो। पुत्र का जन्म न हो तो यह सन्तोष रहता है कि
त्पन्न ही नहीं हुआ, किन्तु जन्म हो और उसके पश्चात् वह न रह पाये तो
ह ईश्वर की कृपा पर आधारित है। विधाता प्राणी को अपनी इच्छा के
अनुसार जहाँ चाहता है, ले जाता है। इसलिए हे वत्स ! अब तुम जाओ और
ह भूल जाओ कि मुझे तुम पर कोई कोप है ॥६१-६२॥ जिसको जाना होता
है वह मृत्यु को अवश्य प्राप्त करता है, उसके पश्चात् उसका केवल अवशिष्ट
मात्र रह जाता है ॥६३॥ अनेक जन्मों के पाप-दोष, माँ-बाप के दोष और जन्म
पों के कारण जीव को मृत्यु प्राप्त होती है। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं
। इस प्रकार देवकी के सांत्वनापूर्ण वचन सुनकर कंस अपने अन्तःपुर चला
या ॥६४॥ किन्तु उसके मतैच्छिक उद्देश्य की पूर्ति में जो बाधा पड़ गई थी,
ससे उसे चिन्ता रूपी अग्नि जला रही थी ॥६५॥

॥ श्रीकृष्ण की व्रज-यात्रा ॥

प्रागेव वसुदेवस्तु व्रजे शुश्राव रोहिणीम् ।
जाता पुत्रमेवाग्रे चन्द्रार्ककान्ततराननम् ॥१
। नन्दगोपं त्वरितः प्रोवाच शुभया गिरा ।
गच्छानया सहैव त्वं व्रजमेव यशोदया ॥२
तत्र तौ दारकौ गत्वा जातकर्मादिभिर्गुणैः ।
योजयित्वा व्रजे तात संवर्द्धय यथासुखम् ॥३
रौहिणेयं च पुत्रं मे परिरक्ष शिशुं व्रजे ।
अहं वाच्यो भविष्यामि पितृपक्षेषु पुत्रिणाम् ॥४
योऽहमेकस्य पुत्रस्य न पश्यामि शिशोर्मुखम् ।
ह्रियते हि बलात्प्रज्ञा प्राज्ञस्यापि सतो मम ॥५

अस्माद्धि मे भयं कंसान्निर्घृणाद्वै शिशोर्वधे।
तद्यथा रौहिणेय त्वं नन्दगोप ममात्मजम् ।।६
गोपायसि यथा तात तत्त्वान्वेषी तथा कुरु।
विघ्ना हि बहवो लोके बालानुत्रासयन्ति हि ।।७

वैशम्पायन ने कहा—हे नृप ! देवकी द्वारा जन्म दिये जाने से पूर्व ही वसुदेव ने अपनी दूसरी पत्नी रोहिणी को गोपराज नन्द के यहाँ भेज दिया था। तत्पश्चात् उनको समाचार मिला था कि रोहिणी की कोख से चन्द्रमा के सदृश सुन्दर मुख वाले बालक ने जन्म लिया है ।।१।। गोपराज नन्द अपना वार्षिक कर चुकाने के लिये अपने पुत्र व पत्नी सहित मथुरा आये थे, तब यह सुनकर वसुदेव उनसे भेंट करने पहुँचे और नन्द से उन्होंने कहा—गोपराज ! व्रज में तुरन्त वापिस पहुँचकर आप उन दोनों बालकों का जातकर्म संस्कार आदि सम्पन्न करके उनका पोषण करें ।।२-३।। जिस प्रकार यशोदा के पुत्र का पालन हो ठीक उसी प्रकार रोहिणी के पुत्र का पालन होना चाहिए, क्योंकि रोहिणी के पुत्र से ही मैं संसार की दृष्टि में पुत्रवान् कहलाऊँगा ।।४।। मैंने अभी तक अपने पुत्र का मुख भी नहीं देखा है। कंस की निर्दयता और उसके द्वारा निरन्तर शिशुओं का वध किये जाने से मैं खिन्न होकर भी मन्द बुद्धि हो गया हूँ। इसलिए विशेष सावधानी सहित यशोदा व रोहिणी दोनों के बालकों की रक्षा करें और उनका पालन करें। चूँकि उन बालकों पर अनेकों प्रकार के संकट आ रहे हैं ।।५-६-७।।

स च पुत्रो मम ज्यायान्कनीयाश्च तवाप्ययम्।
उभावपि समं नाम्ना निरीक्षस्व यथासुखम् ।।८
वर्द्धमानावुभावेतौ समानवयसौ यथा।
शोभेतां गोव्रजे तस्मिन्नन्दगोप तथा कुरु ।।९
बाल्ये केलिकिलः सर्वो बाल्ये मुह्यति मानवः।
बाल्ये चण्डतमः सर्वस्तत्र यत्नपरो भव ।।१०
न च वृन्दावने कार्यो गवां घोषः कथञ्चन।
भेतव्यं तत्र वसतां केशिनः पापदर्शिनः ।।११

सरीसृपेभ्य कीटेभ्य शकुनिभ्यस्तथैव च ।
गोष्ठेषु गोभ्यो वत्सेभ्यो रक्ष्यौ ते द्वाविमौ शिशू ॥१२
नन्दगोप गता रात्रि शीघ्रयानो व्रजाशुग ।
इमे त्वा व्याहरन्तीव पक्षिण सव्यदक्षिणम् ॥१३
रहस्य वसुदेवेन सोऽनुज्ञातो महात्मना ।
यान यशोदया सार्द्धमारुरोह मुदान्वित ॥१४
कुमारस्कन्धवाह्याया शिविकाया समाहित ।
सवेशयामास शिशु शयनीय महामति. ॥१५

आपका पुत्र ज्येष्ठ है और मेरा पुत्र छोटा है। फिर भी उन दोनों की लगभग बराबर की आयु है, उसी प्रकार उनके नामकरण का प्रयत्न करिएगा ।८॥ हे सखे ! आपका ऐसा प्रयत्न हो कि ये दोनो समान आयु वाले बालक गायो के झुण्ड साथ लेकर क्रीडा करें और विचरें ॥९॥ बाल्यकाल मे अधिकतर सभी प्राणी स्वेच्छाचारी व उद्दण्ड स्वभाव के होते हैं, इस विषय मे आप विशेष सतर्क रहें ॥१०॥ वृन्दावन मे गोपो का निवास स्थान न बनवाइयेगा। क्योंकि केशी नामक राक्षस, अनेक प्रकार सर्प और हिंसक पशु पक्षियो का वहाँ भय है। अपने गोष्ठ मे भी गायों और उनके बछडो को बचाते रहें ॥११ १२॥ वसुदेव ने कहा—सखे नन्द ! रात्रि समाप्त हो चुकी है, प्रस्थान की शीघ्रता करिये। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुतेरे पक्षी आपके इधर-उधर चक्कर लगा लगा रहे हों ॥१३॥ हे भूपते ! महान् आत्मा वसुदेव के मुख से ऐसे रहस्यपूर्ण वचन सुनकर नन्द गोपराज सावधान हो गये और फिर नन्द ने वसुदेव से विदा माँगी, तत्पश्चात् यशोदा सहित अपनी पालकी मे बैठ गये और साथ उन्होंने अपने पुत्र को भी उसमें बिठा लिया ॥१४-१५॥

जगाम च विविक्तेन शीतनानितिनर्पिणा ।
बहूदकेन मार्गेण यमुनातीरगामिना ॥१६
सन्ददर्श शुभे देशे गोवर्द्धनसमीरगे ।
यमुनातीरसबद्धशीतमारुतसेवितम् ॥१७

विरुतश्वापदै रम्यं लतावल्लीमहाद्रुमम् ।
गोभिस्तृणविलग्नाभिः स्यन्दतीमिरलङ्कृतम् ॥१८

समप्रचारं च गवां समतीर्थजलाशयम् ।
वृषाणां स्कन्धघातैश्च विषाणोद्घृष्टपादपम् ॥१९

भामामिषादानुसृतं श्येनैश्चामिषगृध्नुभिः ।
शृगालमृगसिंहैश्च वसामेदाशिभिर्वृतम् ॥२०

शार्दूलशब्दाभिरुतं नानापक्षिसमाकुलम् ।
स्वादुवृक्षफलं रम्यं पर्याप्ततृणवीरुधम् ॥२१

इसके उपरान्त वे यमुना के किनारे-किनारे एकान्त एवं अधिक जलपूर्ण मार्ग से चले। उस काल प्रभातकालीन मन्द शीतल वायु बह रहा था ॥१६॥ आगे बढने पर उन्हें गो व्रज दिखाई पड़ने लगा, जो कि हिंसक पशुओं से शून्य था। यह मनोरम प्रदेश गोवर्धन पर्वत के निकट एवं यमुना के किनारे स्थित था और उस स्थान पर शीतल व मन्द वायु बह रहा था ॥१७॥ उस मनोरम प्रदेश की शोभा विभिन्न प्रकार के लता, कुंज और वृक्ष समूहों से थी। अनेक दुधार गौएँ वहाँ घास चर रही थीं ॥१८॥ वह एक समतल भूमि थी जहाँ गौएँ सुविधापूर्वक चर सकती थीं और वहाँ अत्यन्त सुन्दर तालाब भी थे। साँड़ो के कन्धों की रगड़ तथा सींगों के प्रहार से अनेक वृक्षों की छाल छिल गई थी ॥१९॥ ऐसा मनोरम वन प्रदेश गृद्ध, बाज, शृगाल, मृग और सिंह आदि मांसाहारी वन पशुओं को शरण दिये हुए था ॥२०॥ वहाँ हर समय सिंहों का गर्जन का घोर शब्द होता रहता था। अनेक प्रकार के पक्षिगण वहाँ सर्वत्र विचरण करते रहते थे। स्वादिष्ट व मधुर फलों का बाहुल्य था। घास भी बहुत थी ॥२१॥

गोव्रजं गोरुतं रम्यं गोपनारीभिरावृतम् ।
हुम्भारवैश्च वत्सानां सर्वतः कृतनिस्वनम् ॥२२

शकटावर्तविपुलं कण्टकीवाटसंकुलम् ।
पर्यन्तेष्वावृतं वन्यैर्वृहद्भिः पतितैर्द्रुमैः ॥२३

वत्सानां रोपितैं कीलैर्दामभिश्च विभूषितम् ।
करीषाकीर्णवसुधं कटच्छन्नकुटीमठम् ॥२४
क्षेम्यप्रचारबहुलं हृष्टपुष्ट जनावृतम् ।
दामनीपाशबहुलं गर्गरोद्गारनिस्वनम् ॥२५
तक्रनिःस्रावबहुलं दधिमण्डार्द्रमृत्तिकम् ।
मन्थानवलयोद्गारैर्गोपीनां जनितस्वनम् ॥२६
काकपक्षधरैर्बालैर्गोपालैः क्रीडनाकुलम् ।
सार्गलद्वारगोवाटमध्ये गोस्थानसंकुलम् ॥२७
सर्पिषा पच्यमानेन सुरभीकृतमारुतम् ।
नीलपीताम्बराभिश्च तरुणीभिरलङ्कृतम् ॥२८

वहाँ अनगिनत गोपियाँ दिखाई पड़ती थी और हर दिशा में गौओं का शब्द गूँजता था। और हर तरफ से गौओं के बछड़ों की हुम्मा शब्द ध्वनि गूँजती थी ॥२२॥ अनेकों बैलगाड़ियाँ गोलाकार करके खड़ी थी। जगह-जगह पर काँटों से रुँधा मार्ग स्थित था, जिनके किनारे अनेक जङ्गली वृक्ष भी गिरे पड़े थे ॥२३॥ कई स्थानों पर बछड़ों के बाँधने के लिए रस्सी सहित खूँटे गड़े पड़े थे। कई स्थानों पर उपले का चूरा फैला पड़ा था। और उस स्थान के सभी घर और मठ फूस से छाये हुए थे ॥२४॥ अवसर उस स्थान पर अच्छे-अच्छे सैनिक आया जाया करते थे। उस स्थान के सभी प्राणी स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट थे। किसी किसी स्थान पर मोटी रस्सियाँ भी पड़ी हुई थी और कहीं-कहीं गोपियों द्वारा दही मथते समय उनके हाथों के आभूषणों की ध्वनि सुनाई देती थी ॥२५॥ स्थान स्थान पर दही व मट्ठा गिरने के कारण वहाँ की मिट्टी जमीन पर गीली हो गई ॥२६॥ जो गोपों के बालक वहाँ खेल रहे थे उनकी बड़ी-बड़ी शिखायें थी। गायों के सभी बाड़ों का द्वार बन्द था और उनमें गौओं को रखने के लिए सभी प्रकार की सुविधाएँ विद्यमान थी ॥२७॥ वहाँ वातावरण में चारों तरफ से पके हुए घी की सुगन्धि आ रही थी। सभी तरफ नीले-पीले रङ्ग की पोशाक धारण करके युवा स्त्रियाँ दृष्टिगत हो रही थीं ॥२८॥

वन्यपुष्पावतंसाभिर्गोपकन्याभिरावृतम् ।
शिरोभिर्घृतकुम्भाभिर्बद्धैरग्रस्तनाम्बरैः ॥२९
यमुनातीरमार्गेण जलहारीभिरावृतम् ।
स तत्र प्रविशन्हृष्टो गोव्रजं गोपनादितम् ॥३०
प्रत्युद्गतो गोपवृद्धैः स्त्रीभिर्वृद्धाभिरेव च ।
निवेशं रोचयामास परिवृत्तं सुखाश्रये ॥३१
सा यत्र रोहिणी देवी वसुदेवसुखावहा ।
तत्र तं बालसूर्याभं कृष्णं गूढं न्यवेशयत् ॥३२

वे गोपियाँ अंगिया और साड़ी पहने हुए और पुष्पों के आभूषण पहनकर जलपूर्ण घड़े को अपने सिर पर रखकर एक पंक्ति में चल रही थीं। उस गो-व्रज में प्रवेश करते ही गोपराज नन्द अपने गोपगणों के साथ मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२९-३०॥ गोपराज नन्द को आता देखकर उस तरफ बढ़कर बूढ़ी गोपियों और वृद्ध गोपों ने स्वागत किया। इसके उपरान्त नन्द को शकट आदि से परिवृत करके एक सुखदायी और सुविधापूर्ण स्थान पर बैठाया ॥३१॥ तत्पश्चात् नन्द वसुदेव की पत्नी रोहिणी के निकट गये, जहाँ पहुँच कर उन्होंने रोहिणी को नवोदित सूर्य के सदृश तेजस्वी कृष्ण को दे दिया ॥३२॥

॥ श्रीकृष्ण द्वारा शकटासुर-वध ॥

तत्र तस्यासतः कालं सुमहानत्यवर्त्तत ।
गोव्रजे नन्दगोपस्य बल्लवत्वं प्रकुर्वतः ॥१
दारकौ कृतनामानौ ववृधाते सुखं च तौ ।
ज्येष्ठः सङ्कर्षणो नाम कनीयान्कृष्ण एव तु ॥२
मेघकृष्णस्तु कृष्णोऽभूद्देहान्तरगतो हरिः ।
व्यवर्धत गवां मध्ये सागरस्य इवाम्बुदः ॥३
शकटस्य त्वधः सुप्तं कदाचित्पुत्रगर्धिनी ।
यशोदा तं समुत्सृज्य जगाम यमुनां नदीम् ॥४

शिशुलीला तत कुर्वन्स हस्तचरणौ क्षिपन् ।
ररोद मधुर कृष्ण पादावूर्ध्वं प्रसारयन् ॥५
स तत्रैकेन पादेन शकट पर्यवर्तयत् ।
न्युब्ज पयोधराकाक्षी चकार च ररोद च ॥६
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता यशोदा शीघ्रगामिनी ।
स्नाता प्रस्रवदिग्धाङ्गी बद्धवत्सेव सौरभी ॥७
सा ददर्श विपर्यस्त शकट वायुना विना ।
हाहेति कृत्वा त्वरिता दारक जगृहे तदा ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! गोपो की सुख-सुविधा का ध्यान रखते हुए नन्द को वहाँ रहते हुए कुछ काल बीत गया ॥१॥ उनके दोनों पुत्रो का जब नामकरण हुआ, तब बड़े पुत्र का नाम सकर्षण और छोटे का कृष्ण हुआ ॥२॥ देहान्तर को प्राप्त हुए तथा मेघ के समान श्याम शरीर वाले कृष्ण ...ओ के बीच निवास करते हुए समुद्र के जल के समान सुखपूर्वक वृद्धि को प्राप्त होने लगे ॥३॥ एक दिन कृष्ण को निद्रा प्राप्त होने पर गोपरानी यशोदा ने उन्हें एक छकड़े के नीचे शयन कराया और स्वय स्नानार्थ यमुना तट पर ...यी ॥४॥ इधर कृष्ण की निद्रा भग होगई और वह हाथ-पाँव चलाता हुआ मधुर स्वर मे रोने लगा और स्तनपान की इच्छा करते हुए उसने अपना पाँव जैसे ही ऊपर की ओर चलाया वैसे ही उसके आघात से वह छकड़ा उलट गया ॥५ ६॥ उसी समय यशोदा भी भीगे वस्त्र पहिने हुए ही शीघ्रता से स्नान करके आगई और उन्होने देखा कि छकड़ा उलटा हुआ पड़ा है, इसके व्याकुल होकर उन्होने पुत्र को अपनी गोद मे ले लिया ॥७ ८॥

न सा बुबोध तत्केन शकट परिवर्तितम् ।
स्वस्ति मे दारकायेति प्रीता भीता च साऽभवत् ॥९
किं नु वक्ष्यति ते पुत्र पिता परमकोपन ।
त्वय्यद्य शकटे सुप्ते अकस्माच्च विलोडिते ॥१०
किं मे स्नानेन दुःस्नाने किं च मे नपरे नदीपु ।
पर्यस्ते शकटे पुत्र य त्वा पश्याम्यपावृतम् ॥११

एतस्मिन्नन्तरे गोभिराजगाम वनेचरः ।
काषायवाससी बिभ्रन्नन्दगोपो व्रजान्तिकम् ॥१२
स ददर्श विपर्यस्तं भिन्नभाण्डघटीघटम् ।
अपास्तधूर्विभिन्नाक्षं शकटं चक्रमौलिनम् ॥१३
भीतस्त्वरितमागत्य सहसा साश्रुलोचनः ।
अपि मे स्वस्ति पुत्रायेत्यसकृद्वचनं वदन् ॥१४
पिबन्तं स्तनमालक्ष्य पुत्रं स्वस्थोऽब्रवीत्पुनः ।
वृषयुद्धं विना केन पर्यस्तं शकटं मम ॥१५

परन्तु वह यह नहीं जान सकी कि छकड़े को किसने उलट दिया। अपने शिशु को सकुशल देखकर कहने लगी—हे लाल ! तुम्हारे पिता बड़े क्रो[धी] हैं, जब वे सुनेंगे कि मैं तुम्हें छकड़े के नीचे शयन कराकर यमुना-स्नान [को] चली गयी थी और इसी समय में छकड़ा उलट गया तो न जानें क्या क[हें] ॥९-१०॥ मुझे इस प्रकार स्नान के लिये यमुनाजी पर क्यों जाना चाहिये थ[ा] मेरे अच्छे भाग्य थे, जिससे छकड़े के उलट जाने पर भी तुम्हें कुशलपूर्वक [देख] सकी हूँ ॥११॥ यशोदाजी इस प्रकार कह ही रही थी, तभी काषाय वस्त्रों [को] धारण किये हुए नन्दराय भी गौओं के सहित वन से लौट आये और देखा [कि] छकड़े का प्रत्येक भाग टूटा पड़ा है, पहिये वाला धुरा टूट गया और जुआ पृथ[क] जा गिरा है ॥१२-१३॥ यह देखकर नन्दजी अत्यन्त भय-पूर्वक नेत्रों में आँ[सू] भरकर घर में तेजी से घुस आये और पूछने लगे कि मेरा लाल तो ठीक है ॥१४। फिर बालक को स्तनपान करते देखकर शान्त हुए और बोले कि परस्[पर] बैल भी तो नहीं लड़े, फिर यह छकड़ा कैसे उलट गया ? ॥१५॥

प्रत्युवाच तं भीता गद्गदभाषिणी ।
न विजानाम्यहं केन शकटं परिवर्तितम् ॥१६
अहं नदीं गता सौम्य चैलप्रक्षालनार्थिनी ।
आगता च विपर्यस्तमपश्यं शकटं भुवि ॥१७
तयोः कथयतोरेवमत्र वस्त्र दारकाः ।
अनेन शिशुना यानमेतत्पादेन लोडितम् ॥१८

अस्माभि मपतद्भिश्च दृष्टमेतद्यदृच्छया ।
नन्दगोपस्तु तच्छ्रुत्वा विस्मय परम ययौ ॥१९
प्रहृष्टश्चैव भीतश्च किमेतदिति चिन्तयन् ।
न च ते श्रद्दधुर्गोपा सर्वे मानुपबुद्धय ॥२०
आश्चर्यमिति ते सर्वे विस्मयोत्फुल्लोचना ।
स्वे स्थाने शकट चैव चक्रुर-ग्रमकारयन् ॥२१

नन्दजी का प्रश्न सुनकर यशोदा का कण्ठ गद्‌गद हो गया, वह भयपूर्वक स्वर मे बोली कि छकडा किसने गिराया, यह मैं नही जानती ॥१६॥ मैं तो कपडे धोने के लिये यमुना तीर पर गयी थी और जब वहाँ से आई तो इस छकडे को इस प्रकार उलटा पडा हुआ पाया ॥१७॥ जब नन्द यशोदा म यह बातें हो रहीं थी सभी वहाँ पर इकट्ठे हुए बालक आकर बोले—यह छकडा इसी ने अपन पाँव से उलट दिया है, हमने यह बात अपने नेत्रों से देखी है, यह सुनकर नन्द अत्यन्त चकित हुए ॥१८-१९। नन्दराय हर्षित हुए और भयभीत भी, वह बारम्बार सोचते थे कि ऐसा कैसे हो गया ? परन्तु साधारण मति वाले गोपा ने बालकों की बात को यथार्थ नही माना ॥२०॥ वे विस्मयपूर्वक यही कहते रहे कि अत्यन्त आश्चर्य की बात हुई है, फिर उन्होने उस टूटे हुए छकडे को जोडकर पुन ठीक कर दिया ॥२१॥

॥ भगवान द्वारा पूतना-वध ॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य शकुनीवेपधारिणी ।
धात्री कसस्य भोजस्य पूतनेति परिश्रुता ॥१
पूतना नाम शकुनी घोरा प्राणभयकरी ।
आजगामार्द्धरात्रे वै पक्षी क्रोधाद्विधुन्वती ॥२
ततोऽर्द्धरात्रसमये पूतना प्रत्यदृश्यत ।
व्याघ्रगम्भीरनिर्घोप व्याहरन्ती पुन पुन ॥३
निलिल्ये शकटाक्षे सा प्रस्रवोत्पीडवर्पिणी ।
ददौ स्तन च कृष्णाय तस्मिन्सुप्ते जने निशि ॥४

तस्या स्तनं पपौ कृष्ण. प्राणैः सह विनद्य च ।
छिन्नस्तनी तु सहसा पपात शकुनी भुवि ॥५
तेन शब्देन वित्रस्तास्ततो वुबुधिरे भयात् ।
स नन्दगोपो गोपा वै यशोदा च सुविक्लवा ॥६
ते तामपश्यन्पतितां विसंज्ञां विपयोधराम् ।
पूतनां पतितां भूमौ वज्रेणेव विदारिताम् ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इस बात को कुछ समय व्यतीत हो गया तब कंस की धाय पूतना पक्षिणी का रूप धारण कर पक्षों से भयानक शब्द करती हुई, आधी रात के समय नन्दजी के घर पर क्रोधपूर्वक पहुँची ॥१-२। सिंह के समान भीषण गर्जना करने वाली वह पूतना बारम्बार घोर शब्द करती और दूध की वर्षा करती हुई एक छकड़े के धुरे पर जाकर बैठ गयी । जब सब लोग निद्रामग्न हो गये तब उसने कृष्ण के पास जाकर अपने स्तनपान कराया ॥३-४॥ कृष्ण ने उसका स्तनपान करते-करते उसके प्राणों को भी पान कर लिया, तब अत्यन्त व्याकुल होती हुई पूतना घोर चीत्कार करती हुई पृथिवी पर लेट गयी ॥५॥ उसके चीत्कार को सुनकर नन्दादि गोप तथा यशोदा आदि स्त्रियाँ अत्यन्त शंकित और भीत होते हुए उठ पड़े ॥६॥ तब उन्होंने देखा कि वज्र से फटे हुए पर्वत के समान निष्प्राण पूतना पृथिवी पर पड़ी है, तथा उसके स्तन भी कट गये हैं ॥७॥

इदं किं त्विति संत्रस्ता कस्येदं कर्म चेत्यपि ।
नन्दगोपं पुरस्कृत्य गोपास्ते पर्यवारयन् ॥८
नाध्यगच्छन्त च तदा हेतुं तत्र कदाचन ।
आश्चर्यमाश्चर्यमिति ब्रुवन्तोऽनुययुर्गृहान् ॥९
गतेषु तेषु गोपेषु विस्मितेषु यथागृहम् ।
यशोदां नन्दगोपस्तु पप्रच्छागतसम्भ्रमाम् ॥१०
कोऽयं विधिर्न जानामि विस्मयो मे महानयम् ।
पुत्रस्य मे भयं तीव्रं भीरुत्वं समुपागतम् ॥११

यशोदा त्वब्रवीद्भीता नार्य जानामि किं त्विदम् ।
दारकेण सहानेन सुप्ता शब्देन बोधिता ॥१२

यशोदायामजानन्त्या नन्दगोप. सबान्धवः ।
वसाद्भूय चकाराग्र विस्मय च जगाम ह ॥१३

उसे देखकर सभी अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए और नन्द को घेर कर खड़े हो गये और यह कार्य किसने किया ? इसकी चिन्ता करने लगे ॥८॥ बहुत विचार करने पर भी उसका कोई कारण उनकी समझ में नहीं आया और 'विस्मय है' ऐसा कहते हुए अपने-अपने घर को गये ॥६॥ जब वे गोप आश्चर्य मे भरे हुए अपने-अपने घर चले गये तब नन्द ने अत्यन्त घबराहट भरे स्वर मे यशोदा से पूछा कि यह कैसी घटना हुई है, इसे देखकर तो मुझे अपने बालक के लिये अत्य त भय दिखाई देने लगा है ॥१०-११॥ इस पर यशोदा ने भी भय पूर्वक कहा—मुझे भी कुछ नही मालुम कि यह सब क्या और कैसे हुआ ? मैं तो अपने बालक को साथ लेकर सो गई थी और इस भयकर शब्द को सुनकर ही जग पडी हूँ ॥१२॥ यशोदा द्वारा अनभिज्ञता प्रकट करने पर नन्दादि गोप क्रम से ही इस भय की उपस्थिति मानते हुए विस्मय मे पड़ गये ॥१३॥

॥ यमलार्जुन भग होने की कथा ॥

काले गच्छति तौ सौम्यौ दारकौ कृतनामकौ ।
कृष्णसकर्षणौ चोभौ रिङ्गिणौ समपद्यताम् ॥१

तावन्योन्यगतौ बालौ बाल्यादेवैकता गतौ ।
एकमूर्तिवरौ कान्तौ बालचन्द्रार्कवर्चसौ ॥२

एकनिर्माणनिर्मुक्तावेकशय्यासनाशनौ ।
एकवेषधरावेक पुष्यमाणौ शिशुव्रतम् ॥३

एककार्यान्तरगतावेकदेहौ द्विधाकृतौ ।
एककार्यौ महावीर्यविकस्य शिशता गतौ ॥४

एकप्रमाणौ लोकानां देववृत्तान्तमानुषौ ।
कृत्स्नस्य जगतो गोपौ संवृत्तौ गोपदारकौ ॥५
अन्योन्यव्यतिषक्ताभिः क्रीडाभिरभिशोभितौ ।
अन्योन्यकिरणग्रस्तौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ॥६
विसर्पन्तौ तु सर्वत्र सर्पभोगभुजावुभौ ।
रेजतुः पांसुदिग्धाङ्गौ दृप्तौ कलभकाविव ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! नामकरण होने के पश्चात् जैसे-जैसे समय व्यतीत होने लगा, वैसे वैसे ही सौम्य दर्शन कृष्ण संकर्षण वृद्धि को प्राप्त होते हुए घुटनों के बल चल पड़े ॥१॥ उन दोनों की आकृति, प्रकृति, भोजन, वसन, भूषण, शयन, कार्य, बल एक समान थे तथा वे समान रूप वाले बालक नवोदित चन्द्र और प्रातः काल के सूर्य के समान तेज वाले थे ॥२॥ उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि एक ही शरीर के दो भाग हैं, क्योंकि उनके सभी कार्यों में समानता थी तथा उनकी शय्या, आसन, शिशुलीलायें वेश तथा उद्देश्य में भी अन्तर नहीं था ॥३-४॥ दोनों समान कद के थे तथा लोक रक्षणार्थ दोनों ही समान वेश—गोप रूप धारण किया था ॥५॥ उनकी अलौकिक लीलायें और तेजस्विता से प्रतीत होता था कि चन्द्रमा सूर्य रश्मियों को और सूर्य चन्द्र किरणों का ग्रास कर रहा है ॥६॥ नाग के समान लम्बी भुजाओं वाले वे दोनों गोप-पुत्र अपने देह को धूल धूसरित किये हुए हाथी के बच्चों के समान इधर उधर विचरने लगे ॥७॥

क्वचिद्भस्मप्रदीप्ताङ्गौ करीषप्रोक्षितौ क्वचित् ।
तौ तत्र पर्यधावेतां कुमाराविव पावकी ॥८
क्वचिज्जानुभिरुद्‍घृष्टैः सर्पमाणौ विरेजतुः ।
क्रीडन्तौ वत्सशालासु शकृद्दिग्धाङ्गमूर्द्धजौ ॥९
शुशुभाते श्रिया जुष्टावानन्दजननौ पितुः ।
जनं च विप्रकुर्वाणौ विहसन्तौ क्वचित्क्वचित् ॥१०
तौ तत्र कौतूहलिनौ मूर्द्धजव्याकुलेक्षणौ ।
रेजतुश्चन्द्रवदनौ दारकौ सुकुमारकौ ॥११

अतिप्रसक्तौ तौ दृष्ट्वा सर्वत्रजविचारिणौ ।
नाशक्तौ वारयितुं नन्दगोप सुदुर्दमौ ॥१२
ततो यशोदा सक्रुद्धा कृष्णं कमललोचनम् ।
आनाय्य शकटीमूले भर्त्सयन्ती पुन पुन ॥१३
दाम्ना चैवोदरे बद्ध्वा प्रत्यबन्धदुलूखले ।
यदि शक्नोषि गच्छेति समुक्त्वा कर्म साऽकरोत् ॥१४

वे दोनो बालक स्वामि कार्तिकेय के समान अत्यन्त सुन्दर थे । वे अपने देह मे कभी भस्म, कभी उपलो का चूरा और कभी गोबर लपेट हुए सब स्थानो पर घुटनो के बल चलते थे ॥८ ६॥ उन्हे देखकर नन्द अत्यन्त आनन्दित थे, वे दोनों बालक अन्याय व्यक्तियो को चिढाते और हँसते हुए इधर-उधर घूमते थे ॥१०॥ वे अत्यन्त सुकुमार तथा चचल नेत्र वाले दोनो बालक इतने हठी हो गये थे कि नन्द उनको अधिक वश मे न रख सके ॥११ १२॥ एक दिन अत्यन्त क्रोधित हुई यशोदा कमलनयन श्रीकृष्ण को पकड कर छकडे के पास ले गई और उनकी कटि में रस्सी बाँध कर उन्हे उलूखल से बाँध दिया और यह कहकर कि ताकत हो तो इससे छूटकर भाग जा वह अपने कार्यं मे लग गई ॥१३ १४॥

व्यग्रायां तु यशोदायां निर्ज्जगाम ततोऽङ्गणात् ।
शिशुलीला तत कुर्वन्कृष्णो विस्मापयन्व्रजम् ॥१५
साऽङ्गणान्निःसृत कृष्ण कर्षमाण उलूखलम् ।
यमलाभ्यां प्रवृद्धाभ्यामर्जुनाभ्यां चरन्वने ।
मध्यान्निश्चक्राम तयो कर्षमाण उलूखलम् ॥१६
ततस्य कर्षतो बद्ध तिर्यग्गतमुलूखलम् ।
लग्न ताभ्यां समूलाभ्यामर्जुनाभ्यां चकर्ष च ॥१७
तावर्जुनौ कृष्यमाणौ तेन बालेन रहसा ।
समूलविटपौ भग्नौ स तु मध्ये जहास वै ॥१८
निदर्शनार्थं गोपानां दिव्य स्वबलमास्थित ।
तद्दाम तस्य बालस्य प्रभावादभवद्दृढम् ॥१९

यमुनातीरमार्गस्था गोप्यस्तं ददृशु: शिशुम् ।
क्रन्दन्त्यो विस्मयन्त्यश्च यशोदा ययुरङ्गना ॥२०
तास्तु सम्भ्रान्तवदना यशोदामूचुरगना: ।
एह्यागच्छ यशोदे त्वं स म्भ्रमात्किं विलम्बसे ॥२१

इधर माता अपने कार्य में लगी उधर बाल-क्रीड़ा करते हुए इन्द्र
उलूखल से बँधे हुए धीरे-धीरे रेंग कर आँगन के बाहर निकले और इस
विस्मित करते हुए यमलार्जुन वृक्षों के मध्य जा पहुँचे ॥१५-१६॥ वहाँ उलूख
टेढ़ा होकर वृक्षों में फँस गया, तब वह उसे जोर लगाकर खींचने लगे ॥१
इस प्रकार खींचने से दोनों वृक्ष समूल उखड़ कर पृथिवी पर गिर गये और इ
उनके मध्य स्थित होकर हँसने लगे ॥१८॥ व्रज गोपों पर अपना प्रत
प्रदर्शित करने के लिए ही, उन्होंने यह लीला की थी, यशोदा के द्वारा ब
गयी वह साधारण रस्सी भी उनके प्रभाव से अत्यन्त दृढ़ हो गयी थी ॥१
यमुना किनारे के मार्ग से जाने वाली गोपियों ने उनकी यह लीला देखी त
अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करती हुई यशोदाजी के पास गईं ॥२०॥ वहाँ जाकर
बोली—हे व्रजरानी ! विलम्ब मत करो, शीघ्रता से चलो, अरे तुम वि
क्यों कर रही हो ? ॥२१॥

यौ तावर्जुनवृक्षौ तु व्रजे सत्योपयाचनौ ।
पुत्रस्योपरि तावेतौ पतितौ ते महीरुहौ ॥२२
दृढेन दाम्ना तत्रैव बद्धो वत्स इवोदरे ।
जहास वृक्षयोर्मध्ये तव पुत्र: स बालक: ॥२३
उत्तिष्ठ गच्छ दुर्मेधे मूढे पण्डितमानिनि ।
पुत्रमानय जीवन्तं मुक्तं मृत्युमुखादिव ॥ ४
स भीता सहसोत्थाय हाहाकार प्रकुर्वती ।
त देशमगमद्यत्र पातितौ तावुभौ द्रुमौ ॥२५
सा ददर्श तयोर्मध्ये द्रुमयोरात्मजं शिशुम् ।
दाम्ना निबद्धमुदरे कर्षमाणमुलूखलम् ॥२६

सा गोपी गोपवृद्धश्च समुवाच व्रजस्तदा ।
पर्यागच्छन्त ते द्रष्टुं गोपेषु महदद्भुतम् ।२७
जजल्पुस्ते यथाकाम गोपा वनविचारिण ।
केनेमौ पातितौ वृक्षौ घोषस्यायतनोपमौ ।।२८
विना वात विना वर्षं विद्युत्प्रपतन विना ।
विना हस्तिकृत दोष केनेमौ पातितौ द्रुमौ ।।२९

जिन यमलार्जुन वृक्षों की पूजा हम अपनी कामना पूर्ति के लिये करती थीं, वे वृक्ष तुम्हारे बालक पर गिरे हुए धरती पर पड़े हैं ।।२२।। और देखो ! वह बालक दृढ रस्सी से बँधा हुआ उनके बीच में खड़ा हुआ हँस रहा है ।।२३।। तुम अपने को अत्यन्त बुद्धिमती मानती हो, परन्तु तुम्हारे जैसी मतिहीना कौन होगी ? बालक मृत्यु के मुख से बचा है, शीघ्रतापूर्वक वहाँ जाकर अपने बालक को ले आओ ।।२४।। यह सुनते ही यशोदा अत्यन्त व्याकुल होकर दौड़ पड़ी और शीघ्र ही घटनास्थल पर जा पहुँची ।।२५।। उन्होंने वहाँ देखा कि दोनों वृक्ष धरती पर गिरे पड़े हैं और वहाँ उनके बीच से उलूखल को खींचते हुए कृष्ण हँस रहे हैं और वह रस्सी अब भी उनकी कमर से बँधी हुई है ।।२६।। इस घटना का समाचार समूचे व्रज में शीघ्रता से फैल गया और सभी व्रजवासी इस कौतूहल उत्पन्न करने वाली घटना को देखने के लिए वहाँ आ गये ।।२७।। परस्पर में वे सब गोप कहने लगे—अहो ! ग्राम के समान विशाल यह वृक्ष गिर पड़े, इस समय वायु, वर्षा, बिजली या हाथियों का भी कोई उपद्रव नहीं, तब यह कैसे गिरे ? ।।२८-२९।।

अहो बत न शोभेता विमूलावर्जुनाविमौ ।
भूमौ निपतितौ वृक्षौ वितोयौ जलदाविव ।
यदीमौ घोषरचितौ घोषकल्याणकारिणौ ।।३०
नन्दगोप प्रसन्नौ ते द्रुमावेव गतावपि ।
यच्च ते दारको मुक्तो विपुलाभ्यामपि क्षितौ ।।३१
औत्पातिकमिद घोषे तृतीय वर्त्तते त्विह ।
पूतनाया विनाशश्च द्रुमयो शकटस्य च ।।३२

अस्मिन्स्थाने च वासोऽयं घोषस्यास्य न युज्यते ।
उत्पाता ह्यत्र दृश्यन्ते कथयन्तो न शोभनम् ॥३३
नन्दगोपस्तु सहसा मुक्त्वा कृष्णमुलूखलात् ।
निवेश्य चाङ्के सुचिरं मृतं पुनरिवागतम् ॥३४
नातृप्यत्प्रेक्षमाणो वै कृष्णं कमललोचनम् ।
ततो यशोदां गर्हन्वै नन्दगोपो विवेश ह ।
स च गोपजनः सर्वो व्रजमेव जगाम ह ॥३५
स च तेनैव नाम्ना तु कृष्णो वै दामबन्धनात् ।
गोष्ठे दामोदर इति गोपीभिः परिगीयते ॥३६
एतदाश्चर्यभूतं हि बालस्यासीद्विचेष्टितम् ।
कृष्णस्य भरतश्रेष्ठ घोषे निवसतस्तदा ॥३७

जल विहीन मेघ जैसे शोभा-रहित हो जाता है, वैसे ही यह समूल उखड़कर शोभा हीन हो गये हैं, व्रज-वासियों द्वारा लगाये हुए यह वृक्ष व्रज-बालाओं के लिये अत्यन्त उपकारी थे ॥३०॥ हे गोप श्रेष्ठ नन्द ! इस दशा को प्राप्त होकर भी यह वृक्ष आप पर अत्यन्त प्रसन्न प्रतीत होते हैं, इसीलिए इन्होंने आपके बालक को कोई हानि नहीं पहुँचाई है ॥३१॥ छकड़े का टूटना और पूतना का मरना यह दो उत्पात पहिले ही हो चुके थे, अब इन वृक्षों का गिरना तीसरा उत्पात हुआ समझो ॥३२॥ अब हमारा यहाँ रहना ठीक नहीं है, क्योंकि बारम्बार ऐसे उत्पातों का होना शुभ-सूचक कदापि नहीं है ॥३३॥ इसी समय नन्द शीघ्रता पूर्वक दौड़े और वे कृष्ण को उलूखल से खोलकर इस प्रकार दुलारने लगे जैसे लोभी मनुष्य का खोया हुआ धन मिल गया हो ॥३४॥ फिर वे अपने पद्मनयन बालक के मुख को टकटकी लगाकर देखने लगे और फिर यशोदा पर क्रोध करते हुए अपने घर गये तथा अन्यान्य उपस्थित गोपगण भी अपने-अपने घर चले गये ॥३५॥ भगवान् कृष्ण के उदर में दाम (रस्सी) के बँधने से गोपियों ने उन्हें दामोदर नाम दिया ॥३६॥ वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! जब श्रीकृष्ण व्रज में रहते थे, तब यह उनकी बाल-लीला विषयक एक अत्यन्त विस्मयजनक घटना हुई थी ॥३७॥

॥ श्रीकृष्ण बाल लीला ॥

एव तौ बाल्यमुत्तीर्णौ कृष्णसङ्कर्षणावुभौ ।
तस्मिन्नेव व्रजस्थाने सप्तवर्षौ बभूवतु ॥१
नीलपीताम्बरधरौ पीतश्वेतानुलेपनौ ।
बभूवतुर्वत्सपालौ काकपक्षधरावुभौ ॥२
पर्णवाद्य श्रुतिसुख वादयन्तौ वराननौ ।
शुशुभाते वनगतौ त्रिशीर्षाविव पन्नगौ ॥३
मयूराङ्गदकर्णौ तु पल्लवापीडधारिणौ ।
वनमालाकुलस्कन्धौ द्रुमपोताविवोद्गतौ ॥४
अरविन्दकृतापीडौ रज्जुयज्ञोपवीतिनौ ।
सशिक्यतुम्बकरकौ गोपवेणुप्रवादकौ ॥५
क्वचिद्धसन्तावन्योन्य क्रीडमानौ क्वचित्क्वचित् ।
पर्णशय्यासु ससुप्तौ क्वचिन्निद्रान्तरेक्षणौ ॥६
एव वत्सान्पालयन्तौ शोभयन्तौ महावनम् ।
चञ्चूर्यन्तौ रमन्तौ स्म किशोराविव चञ्चलौ ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार कृष्ण और सङ्कर्षण दोनों शैशवावस्था को पार करके सात वर्ष की अवस्था के हो गये ॥१॥ सङ्कर्षण नीले वस्त्र और कृष्ण पीले वस्त्र धारण करके श्वेत चदन लगाकर वे दोनों शिखाधारी बालक बछड़ों के पालक हो गये ॥२॥ दोनों बालक पर्णवाद्य को सुनने में मधुर ध्वनि करते हुए वनों में विचरण करते हुए तीन सिर के सर्प के समान सुन्दर प्रतीत होते थे ॥३॥ उनके कानों में मोरपखों का कुण्डल, मस्तक पर पल्लव युक्त कमलपुष्प का मुकुट, कंठ में वनमाल, कंधे पर रस्सी का जनेऊ, हाथ में तुम्बी और छींका लिये हुए रहते तथा वंशी बजाया करते थे ॥४-५॥ वे कभी परस्पर हास-परिहास करते और कभी पत्तों का बिछौना बनाकर उस पर शयन करते थे ॥६॥ इस प्रकार वे दोनों भाई वनों में गायों को चराते और विविध क्रीडा करते हुए चचल बछेड़ों के समान शोभा पाते थे ॥७॥

अथ दामोदर श्रीमान्सङ्कर्षणमुवाच ह ।
आर्य नास्मिन्वने शक्यं गोपालैः सह क्रीडितुम् ॥८
अवगीर्नमिदं सर्वमावाभ्यां भुक्तकाननम् ।
प्रक्षीणतृणकाष्ठं च गोपैर्मथितपादपम् ॥९
घनीभूतानि यान्यासन्काननानि वनानि च ।
तान्याकाशनिकाशानि दृश्यन्तेऽद्य यथासुखम् ॥१०
गोवाटेष्वपि ये वृक्षाः परिवृत्तार्गलेषु च ।
सर्वे गोष्ठाग्निषु गताः क्षयमक्षयवर्चसः ॥११
सन्निकृष्टानि यान्यासन्काष्ठानि च तृणानि च ।
तानि दूरावकृष्टासु मार्गितव्यानि भूमिषु ॥१२
अरण्यमिदमल्पोदमल्पकक्षं निराश्रयम् ।
अन्वेषितव्यविश्रामं दारुणं विरलद्रुमम् ॥१३
अकर्मण्येषु वृक्षेषु स्थितविप्रं स्थितद्विजम् ।
सवासस्यास्य महतो जनेनोत्सादितद्रुमम् ॥१४
निरानन्दं निरास्वादं निष्प्रयोजनमारुतम् ।
निर्विहङ्गमिदं शून्यं निर्व्यञ्जनमिवाशनम् ॥१५

एक दिन कृष्ण ने अपने भाई सकर्षण से कहा—हे आर्य ! अब इस वन मे गोप बालकों के साथ खेलना उचित नही है ॥८॥ क्योंकि हम इस वन का भले प्रकार उपभोग कर चुके हैं, अब यहाँ घास भी नही रही और काष्ठ तथा वृक्ष भी थोडे ही रह गए हैं क्योंकि गोपों ने वृक्षों को काट डाला है ॥९॥ पहिले यह वन वृक्षों से इतना परिपूर्ण था कि और कुछ भी दिखाई नहीं देता था, परन्तु अब उन वृक्षों के कट जाने अथवा पत्र विहीन हो जाने पर सरलता से दूर तक देखा जा सकता है ॥१०॥ गोशाला और उसकी प्राचीर पर स्थित वृक्ष, व्रज की अग्नि मे दग्ध होकर प्रभाहीन हो गए हैं ॥११॥ जो घास अथवा काष्ठ पहले व्रज के समीप था, अब वह बहुत दूर है तथा यत्नपूर्वक उसकी खोज करनी होती है ॥१२॥ इस वन मे घास, जल और विश्राम स्थल मिलना अब कठिन हो गया है, वृक्ष बहुत दूर दूर पर रह गये हैं तथा अब

रोज न करेंगे तो भविष्य में हमें खेलने और बैठ कर विश्राम करने को भी स्थान न मिलेगा ॥१३॥ यहाँ के सभी वृक्ष अब बेकार हो चुके हैं, इसीलिये वनवासी पक्षियों ने इन्हें त्याग दिया है। यहाँ के निवासियों ने वृक्षों को काट डाला है, इसलिए इस वन में अब वायु के वह सुखद झोंके उपलब्ध नहीं होते। पक्षियों के चले जाने से यह वन शाकादि से हीन भोजन के समान निरानन्द हो गया है ॥१४-१५॥

विक्रीयमाणैः काष्ठैश्च शाकैश्च वनमुद्भवैः ।
उच्छिन्नमचयतृणैर्घोषोऽयं नगरायते ॥१६
शैलानां भूषणं घोषो घोषाणां भूषणं वनम् ।
वनानां भूषणं गावस्ताश्चास्माकं परमा गतिः ॥१७
तस्मादन्यद्वनं याम प्रत्यग्रयवसेन्धनम् ।
इच्छन्त्यनुपभुक्तानि गावो भोक्तुं तृणानि च ॥१८
तस्माद्वनं नवतृणं गच्छन्तु धनिनो व्रजाः ।
न द्वारबन्धावरणा न गृहक्षेत्रिणस्तथा ।
प्रशस्ता वै व्रजा लोके यथा वै चक्रचारिणः ॥१९
धवृक्षमूलेषु तेष्वेव जातक्षाररसायनम् ।
न तृणं भुञ्जते गावो नापि तत्पयसे हितम् ॥२०
स्थलीप्रायासु रम्यासु नवासु वनराजिषु ।
चराम सहिता गोभिः क्षिप्रं सवाह्यतां व्रजः ॥२१

वन में उत्पन्न शाकों और काष्ठों के विक्रय होने के कारण काष्ठ और घास यहाँ नहीं रही, इसलिये यह व्रज अब गाँव न रह कर नगर जैसा हो गया है ॥१६॥ पर्वतों की शोभा ग्राम हैं, ग्रामों की शोभा वन तथा वनों की शोभा गौएँ हैं, यही हमारे लिये परमगति हैं ॥१७॥ इसलिये इस वन को छोड़ कर ऐसे वहाँ चलना चाहिये जहाँ तृण और काष्ठ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो सके, क्योंकि गौएँ नवीन तृण को चरना चाहती हैं ॥१८॥ इसलिये धनिक व्रजवासियों को नवीन तृणादि से परिपूर्ण वन में चलना चाहिये, क्योंकि व्रजवासियों के लिये यह भी कोई निश्चित गृह, क्षेत्र अथवा द्वार आदि का बन्धन नहीं है। वे तो

अथ दामोदरः श्रीमान्सङ्कर्षणमुवाच ह ।
आर्य नास्मिन्वने शक्यं गोपालैः सह क्रीडितुम् ॥८
अवगीतमिदं सर्वमावाभ्यां भुक्तकाननम् ।
प्रक्षीणतृणकाष्ठं च गोपैर्मथितपादपम् ॥९
घनीभूतानि यान्यासन्काननानि वनानि च ।
तान्याकाशनिकाशानि दृश्यन्तेऽद्य यथासुखम् ॥१०
गोवाटेष्वपि ये वृक्षाः परिवृत्तार्गलेषु च ।
सर्वे गोष्ठाग्निषु गताः क्षयमक्षयवर्चस ॥११
सन्निकृष्टानि यान्यासन्काष्ठानि च तृणानि च ।
तानि दूरावकृष्टासु मार्गितव्यानि भूमिषु ॥१२
अरण्यमिदमल्पोदमल्पकक्षं निराश्रयम् ।
अन्वेषितव्यविश्रामं दारुणं विरलद्रुमम् ॥१३
अकर्मण्येषु वृक्षेषु स्थितविप्रं स्थितद्विजम् ।
सवासस्यास्य महतो जनेनोत्सादितद्रुमम् ॥१४
निरानन्दं निरास्वादं निष्प्रयोजनमारुतम् ।
निर्विहङ्गमिदं शून्यं निर्व्यञ्जनमिवाशनम् ॥१५

एक दिन कृष्ण ने अपने भाई सकर्षण से कहा—हे आर्य ! अब इस वन मे गोप बालको के साथ खेलना उचित नही है ॥८॥ क्योकि हम इस वन का भले प्रकार उपभोग कर चुके हैं, अब यहाँ घास भी नही रही और काष्ठ तथा वृक्ष भी थोडे ही रह गए हैं, क्योकि गोपो ने वृक्षो को काट डाला है ॥९॥ पहिले यह वन वृक्षो से इतना परिपूर्ण था कि और कुछ भी दिखाई नही देता था, परन्तु अब उन वृक्षों के कट जाने अथवा पत्र-विहीन हो जाने पर सरलता से दूर तक देखा जा सकता है ॥१०॥ गोशाला और उसकी प्राचीर पर स्थित वृक्ष, व्रज की अग्नि से दग्ध होकर प्रभाहीन हो गए हैं ॥११॥ जो घास अथवा काष्ठ पहले व्रज के समीप था, अब वह बहुत दूर है तथा यत्नपूर्वक उसकी खोज करनी होती है ॥१२॥ इस वन मे घास, जल और विश्राम स्थल मिलना अब कठिन हो गया है, वृक्ष बहुत दूर दूर पर रह गये हैं, यदि अब

*भोज न करेंगे तो भविष्य मे हमें खेलने और बैठ कर विश्राम करने को भी स्थान न मिलेगा ॥१३॥ यहाँ के सभी वृक्ष अब बेकार हो चुके हैं, इसीलिये वनवासी पक्षियों ने इन्हें त्याग दिया है। यहाँ के निवासियों ने वृक्षों को काट डाला है, इसलिए इस वन में अब वायु के वह सुखद झोंके उत्पन्न नहीं होते। पक्षियों के चले जाने से यह वन शाकादि से हीन भोजन के समान निरानन्द हो गया है ॥१४-१५।

विक्रीयमाणै काष्ठैश्च शाकैश्च वनसम्भवैः।
उच्छिन्नसञ्चयतृणघोषोऽयं नगरायते ॥१६
शैलानां भूषणं घोषो घोषाणां भूषणं वनम्।
वनानां भूषणं गावस्ताश्चास्माकं परमा गतिः ॥१७
तस्मादन्यद्वनं याम प्रत्यग्रयवसेन्धनम्।
इच्छन्त्यनुपभुक्तानि गावो भोक्तुं तृणानि च ॥१८
तस्माद्वनं नवतृणं गच्छन्तु धनिनो व्रजाः।
न द्वारबन्धावरणा न गृहक्षेत्रिणस्तथा।
प्रशस्ता वै व्रजा लोके यथा वै चक्रचारिणः ॥१९
वृक्षमूलेषु तेष्वेव जातक्षाररसायनम्।
न तृणं भुज्यते गावो नापि तत्पयसे हितम् ॥२०
स्थलीप्रायासु रथ्यासु नवासु वनराजिषु।
चरान् सहितो गोभिः क्षिप्रं सयाह्यतां व्रज ॥२१

वन में उत्पन्न शाकों और काष्ठों के विक्रय होने के कारण काष्ठ और घास यहाँ नहीं रहीं, इसलिये यह व्रज अब गाँव न रह कर नगर जैसा हो गया है ॥१६॥ पर्वतों की शोभा ग्राम हैं, ग्रामों की शोभा वन तथा वनों की शोभा गौएँ हैं, वही हमारे लिये परमगति हैं ॥१७॥ इसलिये इस वन को छोड कर ऐसे वहाँ चलना चाहिये जहाँ तृण और काष्ठ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो सके, क्योंकि गौएँ नवीन तृण को चरना चाहती हैं ॥१८॥ इसलिये धनिक व्रजवासियों को नवीन तृणादि से परिपूर्ण वन में चलना चाहिये, क्योंकि व्रजवासियों के लिये यहाँ भी कोई निश्चित गृह, क्षेत्र अथवा द्वार आदि का बन्धन नहीं है। वे तो

हंस सारस आदि पक्षियों के समान जहाँ कहीं भी जाकर रहने लगें, वही स्थान व्रज बन जाता है ॥१९॥ यहाँ की घासों में गोबर और मल मूत्रादि के मिश्रित हो जाने से एक प्रकार का क्षार उत्पन्न हो गया है, इसीलिए गौवें इस घास को नहीं चरतीं और जो चर लेती हैं उनका दूध हितकारी नहीं होता ॥२०॥ इस लिये हमें नवीन तृण युक्त समतल वन्य प्रदेश में अपनी गौओं के सहित चल देना चाहिये, जहाँ तक सम्भव हो इस स्थान को त्यागकर हम यहाँ से कहीं अन्यत्र चल दें ॥२१॥

श्रूयते हि वनं रम्यं पर्याप्त तृणसंस्तरम् ।
नाम्ना वृन्दावनं नाम स्वादुवृक्षफलोदकम् ॥२२
अझिल्लिकण्टकवनं सर्वैर्वनगुणैर्युतम् ।
कदम्बपादपप्राय यमुनातीरसंश्रितम् ॥२३
स्निग्धशीतानिलवनं सर्वर्तुनिलयं शुभम् ।
गोपीनां सुखसंचारं चारुचित्रवनान्तरम् ॥२४
तत्र गोवर्द्धनो नाम नातिदूरे गिरिर्महान् ।
भ्राजते दीर्घशिखरो नन्दनस्येव मन्दरः ॥२५
मध्ये चास्य महाशाखोन्यग्रोधो योजनोच्छ्रितः ।
भाण्डीरो नाम शुशुभे नीलमेघ इवाम्बरे ॥२६
मध्येन चास्य कालिन्दी सीमन्तमिव कुर्वती ।
प्रयाता नन्दनस्येव नलिनी सरिता वरा ॥२७
तत्र गोवर्द्धनं चैव भाण्डीरं च वनस्पतिम् ।
कालिन्दीं च नदीं रम्या द्रक्ष्यावश्चरत सुखम् ॥२८

सुना है कि यमुना के तीर पर ही वृन्दावन नाम का एक वन है जो श्रेष्ठ तृणों, सुस्वादु फलों और मधुर जलों की बहुतायत है ॥२२॥ वह वन कदम्ब-वृक्षों से परिपूर्ण है, वहाँ झिल्लियों और काँटों के दर्शन तक नहीं होते तथा उस वन में श्रेष्ठ वन के सभी गुण हैं ॥२३॥ वहाँ ठंडा वायु चलता है सभी ऋतु एक साथ रहती हैं, वहाँ गोपिकाएँ अत्यन्त आनन्द से विहार करती हैं ॥२४॥ उसके निकटवर्ती नन्दन-वन में मन्दर पर्वत के समान

शिखर वाला गोवर्धन नामक पर्वत विद्यमान है ॥२५॥ उस पर्वत के ऊपर नील मेघ के समान सघन तथा एक योजन विस्तार वाला भाण्डीर नाम का एक वट वृक्ष स्थित है ॥२६॥ जैसे इन्द्र के नन्दन कानन में मन्दाकिनी बहती है, वैसे ही उस पर्वत के सीमन्त की भाँति यमुनाजी प्रवाहित हैं ॥२७॥ वहाँ विचरण करते हुए हम दोनों ही गिरि गोवर्धन, भाण्डीर वृक्ष और परम रमणीय यमुना को देखते हुए आनन्दित होंगे ॥२८॥

तत्रायं कल्पता घोषस्त्यजताम्निर्गुणं वनम् ।
सन्नासयावो भद्रं ते किञ्चिदुत्पाद्य कारणम् ॥२९
एवं कथयतस्तस्य वासुदेवस्य धीमतः ।
प्रादुर्बभूवुः शतशो रक्तमांसवसाशनाः ॥३०
घोराश्चिन्तयतस्तस्य स्वतनूरुहजास्तदा ।
विनिष्पेतुर्भयकराः सर्वशः शतशो वृकाः ॥३१
निष्पतन्ति स्म बहवो व्रजस्योत्सादनाय वै ।
वृकान्निष्पतितान्दृष्ट्वा गोषु वत्सेष्वथो नृषु ॥३२
गोपीषु च यथाकामं व्रजे त्रासोऽभवन्महान् ।
ते वृकाः पञ्चबद्धाश्च दशबद्धास्तथा परे ॥३३
त्रिंशद्विंशतिबद्धाश्च शतबद्धास्तथा परे ।
निश्चेरुस्तस्य गात्रेभ्यः श्रीवत्सकृतलक्षणाः ॥३४
कृष्णस्य कृष्णवदना गोपानां भयवर्धनाः ।
भक्षयद्भिश्च तैर्वत्सांस्त्रासयद्भिश्च गोव्रजान् ॥३५
निशि बालान्हरद्भिश्च वृकैरुत्सादितं व्रजम् ।
न वने शक्यते गन्तुं न गाश्चापि रक्षितुम् ॥३६
न वनात्किंचिदाहर्तुं न च वा तरितुं नदीम् ।
त्रस्ता ह्युद्विग्नमनसोऽगतास्तस्मिन्वनेऽवसन् ॥३७
एवं वृकैरुदीर्णैस्तु व्याघ्रतुल्यपराक्रमैः ।
व्रजो निस्पन्दचेष्टस्य एकस्थानचरः कृतः ॥३८

इसलिये हे भैया ! हमें इस वन को त्याग कर वृन्दावन में निवास करना

उचित है, इसलिये यहाँ कोई विशेष भय उपस्थित करके ब्रजवासियों को डर देना चाहिये'॥२६॥ भगवान् कृष्ण के इतना कहते ही उनके देह से सहस हजारों भीषण आकार वाले भेड़िये उत्पन्न हो गये ॥३०-३१॥ व सब भेड़िये व्रजवासी गोपों, गौओं, बछड़ों गोपियों आदि पर आक्रमण करके उन्हें पीड़ित करने लगे, इससे सम्पूर्ण व्रज मण्डल आतंकित हो उठा। वे भेड़िया पाँच, दस पचास आदि के समूहों मे घूमते फिरते थे। भगवान् कृष्ण के देह से उत्पन्न हु उन काले मुख वाले भेड़ियों ने बहुत से बछड़ों को मार डाला और रात्रि में गोप बालकों को उठाकर ले जाने लगे। इसलिये उन भेड़ियों का आतं इतना बढ गया कि कोई भी व्यक्ति वन से कुछ लाने, गाय चराने या यमुन किनारे जाने का साहस नहीं कर पाता था। उन भेड़ियों के भय से सभी व्र वासी त्रस्त हो गये थे और कोई भी बाहर नहीं निकलना चाहता था ॥३२ ३७ उन सिंह के समान पराक्रमी भेड़ियों के भय से बचने के लिये सब व्रजवा एकत्रित होकर एक स्थान पर रहने लगे थे ॥३८॥

॥ श्रीकृष्ण का वृन्दावन-गमन ॥

एव वृकाश्च तान्दृष्ट्वा वर्धमानान्दुरासदान् ।
सस्त्रीपुमान्स घोषो वै समस्तोऽमन्त्रयत्तदा ॥१
स्थानेनेह न न कार्यं व्रजामोऽन्यन्महद्वनम् ।
यच्छिव च सुखोष्य च गवा चैव सुखावहम् ॥२
अद्यैव किं चिरेण स्म व्रजाम सह गोधनैः ।
यावद्वृकैर्वध घोरे न नः सर्वो व्रजो व्रजेत् ॥३
एषा,धूम्रारुणाङ्गाना'दंष्ट्रिणा नखकर्षिणाम ।
वृकाणा कृष्णवक्त्राणा बिभीमो निशि गर्जताम् ॥४
मम पुत्रो मम भ्राता मम वत्सोऽथ गौर्मम ।
वृकैर्व्यापादिता ह्येव क्रन्दन्ति स्म गृहे गृहे ॥५
तासा रुदितशब्देन गवा हुमारवेण च ।
व्रजस्योत्थापन चक्रुर्घोषवृद्धा समागता ॥६

तेषा मतमथाज्ञाय गन्तु वृन्दावन प्रति ।
व्रजस्य विनिवेशाय गवा चैव हिताय च ॥७
वृन्दावननिवासाय ताञ्ज्ञात्वा कृतनिश्चयान् ।
नन्दगोपो बृहद्वाक्य बृहस्पतिरिवाददे ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! जब वे भेडिये अत्यत उद्दण्ड हो गये तब सब व्रजवासियो ने एकत्रित होकर परस्पर मत्रणा की और बोले कि अब हमे इस स्थान से क्या काय है ? हम यहाँ से किसी अन्य वन मे चल देना चाहिये, जो कि सुखपूवक निवास के योग्य तथा गौओ के लिये भी सुखदायी हो ॥१-२॥ अब विलम्ब से क्या लाभ है ? हम अपनी गौओ और बछडो के सहित आज ही यहा से चल द जिससे उन भयानक भेडियो द्वारा होने वाले सवनाश से बचा जा सके ॥३॥ यह पील देह वाले कृष्णमुखी एव नखधारी भेडिये रात के समय घोर गजना करते हुए घूमते हैं जिनसे हम बडा डर लगता है ॥४॥ प्रत्येक घर के व्रजवासी प्रतिदिन प्रात काल रुदन करते दिखाई देते हैं कोई कहता है कि मेरे भाई पुत्र बछडा अथवा गाय को भेडियो ने मार डाला है ॥५॥ इस प्रकार व्रजनारियो के रुदन और गौओ के क्रन्दन से व्यथित हुए वृद्ध पुरुषो ने उस व्रज का छोड कर चलने का दृढ विचार किया ॥६॥ उन वृद्ध गोपों के विचार तथा व्रज त्याग कर वृन्दावन गमन के निश्चय को सुन कर बुद्धिमान नन्द ने उनसे कहा ॥७-८॥

अद्यैव निश्चयप्राप्तिर्यदि गन्तव्यमेव न ।
शीघ्रमाज्ञाप्यता घोष सज्जीभवत मा चिरम् ॥९
ततोऽवघुष्यत तदा घोषे तत्प्राकृतैर्जनै ।
शीघ्र गाव प्रकाल्यन्ता भाण्ड समभिरोप्यताम् ॥१०
वत्सयूथानि काल्यन्ता पूर्यंता शकटानि च ।
वृन्दावनमित स्थानान्निवेशाय च गम्यताम् ॥११
तच्छ्रुत्वा नन्दगोपस्य वचन साधु भाषितम् ।
उदतिष्ठद्व्रज सर्व शीघ्र गमनलालस ॥१२
प्रयाह्युत्तिष्ठ गच्छाम किं शेषे साधु योजय ।
उत्तिष्ठति व्रजे तस्मिन्नासीत्कोलाहलो महान् ॥१३

उत्तिष्ठमान शुशुभे शकटीशाकटस्तु सः ।
व्याघ्रघोपमहाघोषो घोष· सागरघोपवान् ॥१४
गोपीना गर्गरीभिश्च मूर्ध्नि चोत्क्षिप्तैर्घटैः ।
निष्पपात व्रजात्पङ्क्तिस्तारापङ्क्तिरिवाम्बरात् ॥१५

हे गोपगण ! यदि आपने इस स्थान को त्याग कर वृन्दावन चलने का निश्चय ही कर लिया है तो अब विलम्ब न करके सभी व्रजवासियो को शीघ्र तैयार होने की आज्ञा दीजिये ॥८॥ इसके अनुसार नन्द ने व्रज भर में घोषणा कराई कि सब गोओ को इकट्ठी कर लो और गृहस्थ के सब सामान बर्तन-वस्त्रादि बैल गाडियों पर लाद दो ॥१०॥ छकडों तथा बछडो को एकत्र करके यहाँ से वृन्दावन चलने को तैयार हो जाओ । नंद की यह बात सुन कर शीघ्र ही चलने के लिये उत्सुक समस्त व्रज उसी समय उठ चला ॥११-१२॥ उस समय वे परस्पर बोले—चलो, जल्दी यहाँ से निकल चलें, तुम अभी तक क्यो सो रहे हो, उठो, अपनी बैल गाडी को जोतो, इस प्रकार की बातचीत से एक प्रकार का कोलाहल-सा होने लगा ॥१३॥ उस कोलाहल के साथ एक साथ गर्जन, सिंह-गर्जन या विद्युत गर्जन जैसा घोर शब्द हुआ, जिससे सम्पूर्ण व्रज मण्डल गूँज उठा और गोप-गोपी व्याकुल हो गये । जब गोपियाएँ सिर पर घडे और बगल मे गगरी दबाये पंक्ति बद्ध होकर व्रज से चली तब ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे आकाश की तारिकायें पृथिवी पर उतर पडी हों ॥१४-१५॥

नीलपीतारुणैस्तासां वस्त्रैरग्रस्तनोच्छ्रितैः ।
शक्रचापायते पङ्क्तिर्गोपीना मार्गगामिनी ॥१६
दामनी दामभारैश्च कैश्चित्स्कन्धावलम्बिभिः ।
गोपा मार्गगता भान्ति सावरोहा इव द्रुमाः ॥१७
स व्रजो व्रजना भाति शकटौघेन भास्वता ।
घोरैः पवनविक्षिप्तैर्निष्पतद्भिरिवार्णवः ॥१८
क्षणेन तद्व्रजस्थानमीरणं समपद्यत ।
द्रव्यावयवनिर्धूतं कीर्णं वायसमण्डलैः ॥१९

तत क्रमेण घोष स प्राप्तो वृन्दावनं वनम् ।
निवेश विपुलं चक्रे गवा चैव हिताय च ॥२०
शकटावर्त्तपर्यन्त चन्द्रार्द्धाकारसंस्थितम् ।
मध्ये योजनविस्तीर्णं तावद्द्विगुणमायतम् ॥२१
कण्टकीभि. प्रवृद्धाभिस्तथा कण्टकितद्रुमै ।
निखातोच्छ्रितशाखाग्रैरभिगुप्त समन्ततः ॥२२

उनकी चोलियाँ नीले, पीले या लाल रंग की थीं, इससे उनके पक्ति बद्ध होकर चलने से इन्द्र धनुष के उदित होने जैसी शोभा होने लगी ॥१६॥ पथ-गामी गौओं के कन्धों पर जो रस्सियाँ लटकी हुई थीं, वे वटवृक्ष की जटाओं जैसी प्रतीत होने लगी ॥१७॥ व्रज से चमचमाते हुए रथों के समूह ऐसे लगने लगे जैसे अनेकों नावें वायु के झोंके के साथ समुद्र में उड़ रही हों ॥१८॥ उन गोपों के व्रज से चल देने पर वह भूमि मरुभूमि जैसी प्रतीत होती थी, वहाँ के घरों में पड़े हुए अन्नकणों और कूड़े आदि पर कौए मँडराने लगे थे ॥१६॥ वहाँ से चलकर गोपों का यह समूह वृन्दावन जा पहुँचा और वहाँ उन सबने पहिले गौओं के लिये अनेक गोशालाओं का निर्माण किया ॥२०॥ सभी छकड़े अर्द्ध-चन्द्राकार घेरे के रूप में खड़े किये गये। वह स्थान एक योजन लम्बा और एक योजन चौड़ा था ॥२१॥ जिसे ऊँचे-ऊँचे काँटेदार वृक्ष लगाकर चारों ओर से घेर दिया तथा छतनार की शाखाओं ने उस वृन्दावन को सब ओर से सुरक्षित किया ॥२२॥

मन्थैरारोप्यमाणैश्च मन्थवन्धानुकर्षणैः ।
अद्भिः प्रक्षाल्यमानाभिर्गर्गरीभि. समन्तत ॥२३
कीलैरारोप्यमाणैश्च दामनीपाशपाशितै. ।
स्तम्भनीभिर्धृताभिश्च शकटैः परिवर्त्तितै. ॥२४
नियोगपाशैरासक्तैर्गर्गरीस्तम्भमूर्द्धसु ।
छादनार्थं प्रकीर्णैश्च कटकैस्तृणसंकटैः ॥२५
शाखा विटङ्कैर्वृक्षाणां क्रियमाणैरितस्ततः ।
शोध्यमानैर्गवां स्थानैः स्थाप्यमानैरुलूखलैः ॥२६

प्राङ्मुखे सिच्यमानश्च सदोप्यद्भिश्च पावनै ।
सवस्त्रचर्मास्तरणे पर्यङ्कैश्चावरोपितै ॥८७
तोयमुत्तारयन्तीभि प्रेक्षन्तीभिश्च तद्वनम् ।
[illegible] ॥८८

पूर्वक काटना आरम्भ किया ॥२६॥ इस प्रकार स्वादिष्ट जल और उत्तम फल मूल से युक्त वृन्दावन के उस उपनिवेश की शोभा अनीमित होगई ॥३०॥ पक्षियों के कलरव से युक्त नन्दन कानन के समान सुरम्य वृन्दावन में पहुँच कर गौएँ इच्छित दूध देने लगी ॥३१॥ गौओं का शुभ चाहने वाले भगवान् व्रज-वन में विचरण करते समय ही वृन्दावन में रहने का निश्चय कर चुके थे ॥३२॥ यह नितान्त सूखी तथा रूखी ग्रीष्म ऋतु में वहाँ आये थे, परन्तु उनके वहाँ पहुँचते ही जैसे देव ने अमृत-वर्षा आरम्भ कर दी हो, जिससे तृण बढ़ने लग गये थे ॥३३॥ इस पर भी जहाँ स्वयं मधुसूदन श्रीकृष्ण लोकहित के लिये विराजमान हो, उस स्थान पर मनुष्यों, गौओं और बछड़ों को किस प्रकार कोई कष्ट हो सकता था ? ॥३४॥ उस वृन्दावन में सभी गौएँ, गोप तथा सकर्षण आदि सब श्रीकृष्ण के साथ आनन्द सहित निवास करने लगे ॥३५॥

॥ कालिय नाग दमन ॥

सोपसृत्य नदीतीरं बद्ध्वा परिकरं दृढम् ।
आरोहच्चपलः कृष्णः कदंबशिखरं मुदा ॥१
कृष्णः कदंबशिखरात्लम्बमानो घनाकृतिः ।
ह्रदमध्येऽकरोच्छब्दं निपतन्नम्बुजेक्षणः ॥२
कृष्णेन तस्य पतता क्षुभितो यमुनाह्रदः ।
सुप्राभिद्यत वेगेन भिद्यमान इवांबुदः ॥३
तेन शब्देन महता ग्र सर्पस्य भवनं महत् ।
उदतिष्ठज्जलात्सर्पो रोषपर्याकुलेक्षणः ॥४
स चोरगपतिः क्रुद्धो मेघराशिसमप्रभः ।
ततो रक्तान्तनयनः कालियः समदृश्यत ॥५
पञ्चास्यः पावकोच्छ्वासस्वलज्जिह्वोऽनलाननः ।
पृथुभिः पञ्चभिर्घोरैः शिरोभिः परिवारितः ॥६
पूरयित्वा ह्रदं सर्वं भोगेनानलवर्चसा ।
स्फुरन्निव च रोषेण ज्वलन्निव च तेजसा ॥७

क्रोधेन तज्जलं तस्य सर्वं शृतमिवाभवत् ।
प्रतिस्रोताश्च भीतेव जगाम यमुना नदी ॥८

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! फिर श्रीकृष्ण ने दह के पास जाकर अपनी कमर को कसा और कदम्ब वृक्ष पर चढ गये ॥१॥ फिर उस कदम्ब के ऊपर से दह मे कूद पडे और उच्च स्वर करने लगे ॥ २॥ इस प्रकार कूदने से उस दह में क्षोभ उठा और वह चारो ओर जल फेंकने लगा ॥ ३ ॥ उनके कूदने का शब्द जब कालिय नाग के स्थान तक पहुँचा तब सम्पूर्ण दह काप उठा और वह नाग लाल लाल नेत्र किये हुए जल से बाहर आया ॥ ४ ५ ॥ उसके भीषण पाँच मुखो से ज्वालाए निकल रही थी और वह अपनी जिह्वा को लपलपाता था ॥६॥ क्रोध के कारण उसका देह फूल गया और तेज के बहुत बढने से अग्नि के समान दिखाई देने लगा । सम्पूर्ण जल उसके क्रोध से खलबला उठा और उसके भय से यमुना धारा भी विपरीत दिशा मे बहने लगी ॥७ ८॥

तस्य क्रोधाग्निपूर्णेभ्यो वक्त्रेभ्योऽभूच्च मारुत ।
दृष्ट्वा कृष्ण ह्रदगतं क्रीडन्तं शिशुलीलया ॥६
सधूमा पन्नगेन्द्रस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिष ।
सृजता तेन रोषाग्नि समीपे तीरजा द्रुमा ॥१०
क्षणेन भस्मसान्नीता युगान्तप्रतिमेन वै ।
तस्य पुत्राश्च दाराश्च भृत्याश्चान्ये महोरगा ॥११
वमन्त पावक घोरं वक्त्रेभ्यो विषसम्भवम् ।
सधूम पन्नगेन्द्रास्ते निपेतुरमितौजस ॥१२
प्रवेशितश्च तै सर्प स कृष्णो भोगबन्धनम् ।
निर्यत्नचरणाकारस्तस्थौ गिरिरिवाचल ॥१३
अदशन्दशनैस्तीक्ष्णै विषोत्पीडजलाविलै ।
ते कृष्ण सर्पपतयो न ममार च वीर्यवान् ॥१४

एक बालक के समान उस दह में क्रीडा करते हुए श्रीकृष्ण को देख उसके मुख से उष्ण श्वास और धूमयुक्त ज्वालाएँ तीव्रता से निकलने ।

सके क्रोध से किनारे के सब वृक्ष भस्म हो गये। उनके पुत्र, स्त्री, सेवकादि भी तीर सर्प थे। वे भी अपने मुख से धुँए सहित अग्नि उगल रहे थे ॥८-१२॥ इस प्रकार अनुचरो सहित आकर कालियनाग ने श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण देह को अपने से लपेट कर जकड लिया, तब भगवान् हरि पर्वत के समान स्थिर एवं अचल खड़े रहे ॥१३॥ फिर वह महासर्प उन्हें सब ओर से काटने लगे, परन्तु तो भी भगवान् का बाल-बाँका भी न हो सका ॥१४॥

एतस्मिन्नन्तरे भीता गोपाला सर्व एव ते ।
क्रन्दमाना व्रजं जग्मुर्बाष्पगद्गदया गिरा ॥१५
एष मोहं गतः कृष्णो मग्नो हि कालिये ह्रदे ।
भक्ष्यते सर्पराजेन तदागच्छत मा चिरम् ॥१६
नन्दगोपाय वै क्षिप्रं सबलाय निवेद्यताम् ।
एष ते कृष्यते कृष्ण सर्पेणेति महाह्रदे ॥१७
नन्दगोपस्तु तच्छ्रुत्वा वज्रपातोपमं वचः ।
आर्त्तः स्खलितविक्रान्तस्तं जगाम ह्रदोत्तमम् ॥१८
सबालयुवतीवृद्धः स च संकर्षणो युवा ।
आक्रीडं पन्नगेन्द्रस्य जलस्थं समुपागमम् ॥१९
नन्दगोपमुखा गोपास्ते सर्वे साश्रुलोचना ।
हाहाकारं प्रकुर्वन्तस्तस्थुस्तीरे ह्रदस्य वै ॥२०

यह देख कर कृष्ण-सखा गोप-बालक भयपूर्वक अश्रुपात करते हुए व्रज मे गये और गद्गद् स्वर में गोपों से बोले—कृष्ण कालीदह में गिर कर अचेत हो गया है, कालियनाग उसे डस रहा है, अब आप सब तुरन्त वहाँ चलें और बलराम को भी इसकी सूचना दे दें ॥१५-१७॥ नन्दजी ने जब वज्र गिरने के समान इस समाचार को सुना तब वे अत्यन्त घोर-सतप्त होते हुए गिरते-पड़ते दह की ओर दौड पड़े ॥१८॥ फिर बलराम जी के सहित सब गोप-गोपी, बालक, वृद्ध कालीदह पर जा पहुँचे ॥१९॥ नन्दादि सभी व्रजवासी नेत्रों से आँसुओं की [illegible] करते हुए किनारे पर ही खड़े रहे ॥२०॥

एकभावशरीरज्ञ एकदेहो द्विधा कृत ।
सङ्कर्षणस्तु सक्रुद्धो बभाषे कृष्णमव्ययम् ॥२१
कृष्ण कृष्ण महाबाहो गोपालान्दवर्द्धन ।
दम्यतामेष वै क्षिप्र सर्पराजो विषायुध ॥२२
इमे नो बान्धवास्तात त्वा मत्वा मानुष विभो ।
परिदेवन्ति करुण सर्वे मानुषबुद्धय ॥२३
तच्छ्रुत्वा रौहिणेयस्य वाक्य सज्ञासमीरितम् ।
विक्रीड या स्फोटयद्बाहु भित्त्वा तन्नागबन्धनम् ॥२४
तस्य पद्भ्यामथाक्रम्य भोगराशि जलोत्थितम् ।
शिरस्तु कृष्णो जग्राह स्वहस्तेनावनाम्य च ॥२५
तस्यारुरोह सहसा मध्यम तन्महच्छिर ।
सोऽस्य मूर्ध्नि स्थित कृष्णो ननर्त रुचिराङ्गद ॥२६
मृद्यमान स कृष्णेन श्रान्तमूर्द्धा भुजगम ।
आस्यै सरुधिरोद्गारै कातरो वाक्यमब्रवीत् ॥२७
अविज्ञानान्मया कृष्ण रोषोऽय सप्रदर्शित ।
दमितोऽह हतविषो वशगस्ते वरानन ॥२८

तभी एक भाव और एक देह के ही भिन्न स्वरूप बलराम जी ने क्रोध पूर्वक श्रीकृष्ण से कहा—हे कृष्ण ! हे महाबाहो ! इस विष रूप शस्त्र वाले नागराज को शीघ्र ही नष्ट कर डालो ॥२१ २२॥ क्योकि यह मनुष्य बुद्धि वाले ब्रजवासी तुम्हें साधारण मनुष्य जान कर करुणापूर्वक रुदन कर रहे हैं ॥२३॥ बलराम जी की बात सुन कर भगवान् कृष्ण झटका देकर नागपाश से निकल आए ॥२४॥ फिर जल से बाहर निकले हुए कालिय के शिर पर उन्होने एक लात मारी और उसके शिर को नीचा करके उस पर चढ कर नृत्य करने लगे ॥२५ २६॥ इस प्रकार मस्तक पर नाचते हुए उसका मर्दन करने के कारण कालिय नाग सतप्त होकर मुख से रक्त डालता हुआ आर्त्त स्वर मे कहने लगा—हे कृष्ण मैं आपको जान नही सका था, इसलिए क्रोध किया था, अब आपके द्वारा दमन किया जाने पर मैं विष रहित होकर आपकी शरण में हूँ ॥२७-२८॥

ऊचु. सर्वे च संप्रीता नन्दगोपं वनेचरा. ।
धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि यस्य ते पुत्र ईदृशः ॥३७
अद्यप्रभृति गोपाना गवा गोष्ठस्य चानघ ।
आपत्सु शरण कृष्ण. प्रभुश्चायतलोचनः ॥३८
एव वै विस्मिता. सर्वे स्तुवन्ति कृष्णमव्ययम् ।
जग्मुर्गोपगणा घोप देवाश्चैत्ररथ यथा ॥३९

इस प्रकार कालियनाग का दमन करके श्रीकृष्ण किनारे पर आये
सब गोपो ने उन्हें घेर कर उनकी स्तुति की और परिक्रमा करने लगे ॥३
तब हर्ष से विस्मित हुए गोपराज नद से कहने लगे—हे गोपराज ! तुम्हारा
इतना महान् है, इसलिये तुम कृत्य कृत्य हो ॥३७॥ अब गोपो, गौओ तथा
सब व्रजवासियो को जो सकट उपस्थित होगा, उससे विशाल नेत्र वाले
हमे मुक्त करेंगे ॥ ३८ ॥ फिर वे सभी व्रजवासी भगवान् कृष्ण की
करते हुए व्रज मे इस प्रकार पहुँचे, जिस प्रकार देवगण चैत्ररथ वन को प्र
करते हैं ॥३९॥

॥ धेनुकासुर-वध ॥

दमिते सर्पराजे तु कृष्णे तु यमुनाह्रदे ।
समेव चेरतुर्देश सहितौ रामकेशवौ ॥१
आजग्मतुस्तौ सहितौ गोधनै. सहगामिनौ ।
गिरिं गोवर्द्धन रम्य वसुदेवसुतावुभौ ॥२
गोवर्द्धनस्योत्तरतो यमुनातीरमाश्रितम् ।
ददृशाते च तौ वीरौ रम्य तालवन महत् ॥३
तौ तालपर्णप्रतते रम्ये तालवने रतौ ।
चेरतु. परमप्रीतौ वृषपोताविवोद्धतौ ॥४
स तु देश. सदा स्नि
दभप्रायस्थलीभूतः सु

तालैस्तैर्विपुलस्कन्धैरुच्छ्रितैः श्यामपर्वभिः ।
फलाग्रशाखाभिर्भाति नागहस्तैरिवोच्छ्रितैः ॥६
तत्र दामोदरो वाक्यमुवाच वदतां वरः ।
अहो तालफलैः पक्वैर्वासितेयं वनस्थली ॥७

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! कालीदह में उस सर्पराज का दमन हो जाने पर कृष्ण-बलराम दोनों ही आनन्दपूर्वक विचरने लगे ॥१॥ एक दिन वे गौओं को चराते हुए अत्यन्त रमणीक गिरि गोवर्धन पर जा पहुँचे ॥२॥ तब गोवर्धन के उत्तरीय यमुना किनारे पर उन्हें अत्यन्त रमणीक सरोवर दिखाई दिया ॥३॥ उद्धत गोवत्स के समान अत्यन्त सुन्दर वे दोनों भाई ताल-पत्रों से आवृत्त उस तालवन में विचरण करने लगे ॥४॥ वह स्थान समतल, स्वच्छ और कुशाओं से युक्त था, वहाँ की काली मिट्टी थी और कंकड़-पत्थर का कहीं नाम नहीं था ॥५॥ काली गाँठों वाले अत्यन्त ऊँचे तालवृक्ष हाथियों की सूँड जैसे लम्बे थे और उन पर ताल फल लद रहे थे ॥६॥ वाक् चतुर श्रीकृष्ण ने बलराम जी से कहा—इन पके हुए फलों की सुगन्ध सम्पूर्ण वन में फैल रही है ॥७॥

स्वादून्यार्य सुगन्धीनि श्यामानि रसवन्ति च ।
पक्वतालानि सहितौ पातयावो लघुक्रमौ ॥८
यद्येषामीदृशो गन्धो माधुर्यघ्राणतर्पणः ।
रसेनामृतकल्पेन भवितव्यं च मे मतिः ॥९
ामोदरवचः श्रुत्वा रौहिणेयो हसन्निव ।
ातयन्पक्वतालानि चालयामास तांस्तरून् ॥१०
ास्तु तालवनं नृणामसेव्यं दुरतिक्रमम् ।
िर्माणभूतमिरिणं पुरुषादालयोपमम् ॥११
ारुणो धेनुको नाम दैत्यो गर्दभरूपवान् ।
ारयूथेन महता वृतः समनुसेवते ॥१२
ा तु तालवनं घोरं गर्दभः परिरक्षति ।
ृपक्षिश्वापदगणान् त्रासयानः सुदुर्मतिः ॥१३

तालशब्द स त श्रुत्वा सघुष्ट फलपातनात् ।
नामर्षयत्स सकृद्धस्तालस्वनमिव द्विप ॥१४

जब इनकी सुगन्ध से ही नासिका तृप्त हो रही है तो यह भी उ समान अत्यन्त स्वादिष्ठ होंगे। इसलिये हम इन अत्यन्त स्वादिष्ट सुगन्धित सुरम्य फलो को वृक्षों से झडा लें ॥८ ६॥ श्रीकृष्ण की बात सुन कर मुस्कराते हुए बलराम जी ने उन वृक्षो को हिला हिला कर बहुत-से पके हुए ताल फल पृथिवी पर गिरा लिये ॥१०॥ उस वन मे मनुष्यो का तो जाना भी संभव नहीं

सा भूर्गर्दभदेहैश्च तालैः पक्वैश्च पातितैः ।
वभासे छन्नजलदा द्यौरिवाव्यक्तशारदी ॥२२

जिधर से फलों के गिरने की ध्वनि हुई थी, वह उधर ही अत्यन्त वेग-पूर्वक दौड़ा । उसकी रोमावली खड़ी हो गयी और नेत्र स्तब्ध हो गये, वह अपने खुरों से पृथिवी को कुरेदता हुआ बारम्बार चीत्कार कर रहा था ॥१५॥ उसने यमराज के समान मुख फैला रखा था और वह पूँछ उठाये हुए वहीं जा पहुँचा जहाँ बलराम जी तालवृक्ष के नीचे खड़े थे । वहाँ पहुँचते ही वह उन्हें दाँतों से काटने लगा ॥१६-१७॥ फिर उसने बलराम जी पर दुलत्ती झाड़ने के लिये जैसे ही पैर उठाये, उन्होंने उसके पैरों को पकड़ कर घुमाया और तालवृक्ष के ऊपर दे मारा ॥१८-१९॥ जिससे उरू, कटि, ग्रीवा, पीठ आदि भग्न हो गये, उसका मुख विकृत हो गया और वह अनेकों तालफलों के सहित धराशायी हो गया ॥२०॥ जब धेनुकासुर मर कर चेष्टाहीन हो गया, तब उसके आक्रमणकारी साथियों की भी बलराम जी ने उसी के समान गति बनाई ॥२१॥ मरे हुए गधों और झड़े हुए फलों से वह स्थान मेघमय शरत्कालीन आकाश जैसा प्रतीत होने लगा ॥२२॥

॥ प्रलम्बासुर-वध ॥

अथ तौ जातहर्षौ तु वसुदेवसुतावुभौ ।
तत्तालवनमुत्सृज्य भूयो भाण्डीरमागतौ ॥१
चारयन्तौ विवृद्धानि गोधनानि शुभानि च ।
स्फीतसस्यप्ररूढानि वीक्षमाणौ वनानि च ॥२
क्ष्वेडयन्तौ प्रगायन्तौ प्रचिन्वन्तौ च पादपान् ।
नामभिर्व्याहरन्तौ च सवत्सा गाः परंतपौ ॥३
नियोगपाशैरासक्तैः स्कन्धाभ्यां शुभलक्षणौ ।
वनमालाऽऽकुलोरस्कौ बालशृङ्गाविवर्षभौ ॥४
सुवर्णाञ्जनचूर्णाभावन्योन्यसदृशाम्बरौ ।
महेन्द्रायुधसंयुक्तौ शुक्लकृष्णाविवाम्बुदौ ॥५
कुशाग्रकुसुमानां च कर्णपूरौ मनोरमौ ।
वनमार्गेषु कुर्वाणौ वन्यवेषधरावुभौ ॥६

गोवर्द्धनस्यानुचरौ वने सानुचरौ तु तौ ।
चेरतुर्लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिरपराजितौ ॥७

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! फिर कृष्ण-बलराम प्रसन्न होकर उस वन से भाण्डीर वन मे जा पहुँचे ॥१॥ वहाँ वे गायों को चराते, वन की शोभा देखते, हाथ झटकते, गीत गाते, पुष्प चुनते और कभी गौओ और बछड़ों का नाम ले-लेकर पुकारते थे ॥२-३॥ उनके हृदय पर वनमालाएँ पड़ी थीं और कन्धो पर छींके रखे हुए थे, इसलिए वे सींग उठते हुए नये बछड़ों के समान लग रहे थे ॥४॥ उनमे से एक पीताम्बर धारण किये और दूसरा नीलाम्बर धारण किये था, उन दोनों की देह पर वे वस्त्र अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होते थे। उस समय वे काले और श्वेत वर्ण के मेघो के समान तथा कुश-पुष्पों के आभूषण धारण किये हुए वनवासी-वेश मे सुशोभित थे ॥५-६॥ सभी ग्वाल-बालों को साथ लिये हुए वे दोनों भाई इस प्रकार क्रीडा करते हुए समय व्यतीत करने लगे ॥७॥

तयो रमयतोरेवं तल्लिप्सुरसुरोत्तमः ।
प्रलम्बो ह्यागमत्तत्र च्छिद्रान्वेषी तयोस्तदा ॥८
गोपालवेषमास्थाय वन्यपुष्पविभूषित. ।
लोभयान. स तौ वीरौ हास्यैः क्रीडनकैस्तथा ॥८
सोऽवगाहत नि शकस्तेश मध्यममानुष. ।
मानुष वपुरास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥१०
प्रक्रीडिताश्च ते सर्वे सह तेनामरारिणा ।
गोपालवपुष गोपा मन्यमानाः स्वबान्धवम् ॥११
सतु च्छिद्रान्तरप्रेप्सुः प्रलम्बो गोपतां गतः ।
दृष्टि प्रणिदधे कृष्णे रौहिणेये च दारुणाम् ॥१२
अविषह्यं ततो मत्वा कृष्णमद्भुतविक्रमम् ।
रौहिणेयवधे यत्नमकरोद्दानवोत्तमः ॥१३
हरिणाक्रीडितं नाम बालक्रीडनकं ततः ।
प्रक्रीडितास्तु ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पतन् ॥१४

तभी दैत्य-श्रेष्ठ प्रलम्ब वन-पुष्प धारण किये गोप-वेश में उनके पास
[आ]या और अनेक प्रकार के हास-परिहास युक्त कौतुकों से उन्हें हर्षित करने
[ल]गा ॥८-९॥ इस प्रकार वह शीघ्र ही उन ग्वाल-बालों में मिल गया, क्योंकि
[गो]प-बालकों ने उसे भी अपने जैसे वेश में देखकर ग्वाला ही समझा था ॥१०-
[१]१॥ उधर दैत्य श्रीकृष्ण-बलराम पर दृष्टि जमाये हुए अवसर की प्रतीक्षा
[क]रने लगा, परन्तु कृष्ण को अपने सामर्थ्य से बाहर देख कर उसने बलराम को
[ह]ी मारने की इच्छा की ॥१२-१३॥ फिर हरिणाक्रीड नामक खेल करते हुए
[दो]-दो ग्वालबाल एक साथ कूदे हुए ॥१४॥

कृष्ण श्रीदामसहित पुप्लुवे गोजमुना ।
सकर्षणस्तु प्लुतवान्प्रलम्बेन सहानघ ॥१५
गोपालास्त्वपरे द्वन्द्वं गोपालैरपरैः सह ।
प्रद्रुता लंघयन्तो वै तेऽन्योन्य लघुविक्रमाः ॥१६
श्रीदाममजयत्कृष्ण. प्रलम्ब रोहिणीसुतः ।
गोपालैं कृष्णपक्षीयैर्गोपालास्त्वपरे जिताः ॥१७
ते वाहयन्तस्त्वन्योन्य महर्षात्सहसा द्रुताः ।
भाण्डीरस्कन्धमुद्दिश्य मर्यादां पुनरागमन् ॥१८
सकर्षण तु स्कन्धेन शीघ्रमुत्क्षिप्य दानव. ।
द्रुत जगाम विमुख सचन्द्र इव तोयदः ॥१९
स भारममहंस्तस्य रौहिणेयस्य धीमत. ।
ववृधे सुमहाकाय. शक्राक्रान्त इवाम्बुदः ॥२०
स भाण्डीरवटप्रख्य दग्धाञ्जनगिरिप्रभम् ।
स्व वपुर्दर्शयामास प्रलम्बो दानवोत्तम. ॥२१
पञ्चस्तबकयुक्तेन मुकुटेनार्कवर्चसा ।
दीप्यमाननानो दैत्य: सूर्याक्रान्त इवाम्बुदः ॥२२
महाननो महाग्रीवः सुमहानन्तकोपम ।
रौद्रः शकटचक्राक्षो नमयंश्चरणैं महीम् ॥२३

उसमें कृष्ण श्रीदामा के साथ बलराम प्रलम्ब के साथ और अन्याय

दानव अपनी अपनी जोट बना कर एक दूसरे को हराने की इच्छा से अग्रसर हुए ।।१५-१६।। इसमें कृष्ण ने सुदामा को, बलराम ने प्रलम्ब का और दूसरों ने अपने विपक्षियों को हरा दिया ।।१७।। फिर वे एक के क्रम से लदे हुए चलकर उस विशाल वटवृक्ष के नीचे आ गये ।।१८।। तब प्रलम्ब अपने कंधे पर बलराम को चढ़ाये हुए द्रुतगति से चन्द्रमा युक्त बादल के समान विपरीत दिशा में जाने लगा ।।१९।। फिर बलराम जी के भार को सहने में असमर्थ होकर उसने अपने शरीर को बढ़ाया ।।२०।। तब उसका शरीर भाण्डीर वट और नीलगिरि पर्वत के समान बहुत विस्तृत हो गया ।।२१।। अब उसके सिर पर सूर्य के समान तेजोमय मुकुट विशाल मुख, लम्बी-चौड़ी ग्रीवा और गाड़ी के पहिये के समान विशाल नेत्र दिखाई देने लगे जिनके कारण वह साक्षात् यमराज जैसा भयंकर हो गया तथा उसके चलने से पृथिवी नीचे को धसकने लगी ।।२२ २३।।

स सदिग्धमिवात्मान मेने सकर्पणस्तदा ।
दैत्यस्कन्धगत श्रीमान्कृष्ण चेदमुवाच ह ।।२४
ह्रियेऽह कृष्ण दैत्येन पवतोदग्रवर्ष्मणा ।
प्रदर्शयित्वा महती माया मानुपरूपिणीम् ।।२५
कथमस्य मया कार्यं शासन दुष्टचेतस ।
प्रलम्बस्य प्रवृद्धस्य दर्पाद्द्विगुणवर्चस ।।२६
तमाह सस्मित कृ ण साम्ना हर्षाकुलेन च ।
अभिज्ञो रौहिणेयस्य वृत्तास्य च बलस्य च ।।२७
अहोऽय मानुपो भावो व्यक्तमेवानुपाल्यते ।
यस्त्व जगन्मय देव गुह्याद्गुह्यतर गत ।।२८
स्मर नारायणात्मान लोकाना त्व विपर्यये ।
अवगच्छात्मनाऽत्मान समुद्राणा समागमे ।।२९

यह देख कर उसके कंधे पर बैठे हुए बलराम जी ने श्रीकृष्ण से कहा— हे कृष्ण ! यह पर्वत के समान दैत्य मनुष्य रूप मे आकर मुझे लिये जा रहा है ।।२४-२५।। इसका शरीर भी दर्प से द्विगुणित हो गया है, अब इसे किस प्रकार दण्ड दूँ ? ।।२६।। श्रीकृष्ण उनके पराक्रम को भली प्रकार जानते थे, इसलिये

ोंने मन्द मुसकान के सहित कहा—हे आर्य ! आप यह मानव-भाव क्यो ाात कर रहे हैं ? यथार्थ मे तो आप जगदीश्वर और विश्वमय सूक्ष्म से भी ा परमात्मा हैं ॥२७-२८॥ प्रलयकाल के उपस्थित होने पर आप समुद्र में ा हैं, अपने उसी नारायण रूप की याद करिये ॥२६॥

पुरातनाना देवाना ब्रह्मण सलिलस्य च ।
आत्मवृत्तप्रभावाणा सस्मराद्य च वै पुन. ॥३०
यथाऽहमपि लोकाना तथा त्व तत्त्व मे मतम् ।
उभावेकशरीरौ स्वौ जगदर्थे द्विधा कृतौ ॥३१
लोकाना शाश्वतो देवस्त्व हि शेष सनातन ।
आवयोर्देहमात्रेण द्विधेद धार्यते जगत् ॥३२
अह य स भवानेव यस्त्व सोऽह सनातन ।
द्वावेव विहितौ ह्यावामेव देहौ महाबलौ ॥३३
दशास्से मूढवत्त्व किं प्राणेन जहि दानवम् ।
मूध्नि देवरिपु देव वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥३४

सभी देवगण, ब्रह्माजी तथा जलादि पदार्थ आपके ही रूप हैं, इस बात ा मत भूलिये ॥३०॥ ससारी मनुष्यों के लिये मैं और आप एक ही हैं, हम नों भिन्न नहीं हैं विश्व का कल्याण करने के लिये ही हमने दो शरीर धारण ये हैं ॥३१॥ आप सभी लोकों के समान देव शेष हैं और हमने एक ही देह दो भाग करके इस विश्व को धारण किया हुआ है ॥३२॥ जो आप हैं, वही हूँ, हम दोनों एक शरीर के ही दो अग हैं ॥३३॥ ऐसा स्मरण करके आप ज्ञी वज्र के समान मुष्टिका के प्रहार से इस पापी का मस्तक तोड दीजिये ॥३४॥

संस्मारितस्तु कृष्णेन रौहिणेय पुरातनम् ।
बलेनापूर्यत तदा त्रैलोक्यान्तरचारिणा ॥३५
तत प्रलम्ब दुर्वृत्त बुबुधे स महाभुज ।
मुष्टिना वज्रकल्पेत मूर्ध्नि चैन समाहनत् ॥३६
तस्योत्तमाङ्ग स्वे काये विवपाल विवेश ह ।
जानुभ्या चाहत शेते गतासुर्दानवोत्तम ॥३७

जानुभ्यां विप्रकीर्णस्य तस्य रूपमभूत्तदा ।
प्रलम्बस्याम्बरस्थस्य मेघस्येव विदीर्यत ।।३८
सन्निहत्य प्रलम्बं तु सह य बलमास्मन ।
पर्यष्वजत वै कृष्ण रौहिणेय प्रतापवान् ।।३६
त तु कृष्णश्च गोपाश्च दिवस्थाश्च दिवौकस ।
तष्टुवुर्निहते दैत्ये जयाशीर्भिर्महाबलम् ।।४०
बलेनाय हतो दैत्यो बालेनाक्लिष्टकर्मणा ।
विवदन्त्यशरीरिण्यो वाच सुरसमीरिता ।।४१
बलदेवेति नामास्य देवैरुक्त दिवि स्थितै ।
बल तु बलदेवस्य तदा भुवि जना विदु ।
प्रलम्बे निहते दैत्ये देवैरपि दुरासदे ।।४२

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! श्रीकृष्ण द्वारा स्मरण कराये जाने पर बलराम जी की देह मे महान् बल वृद्धि हो गई ।।३५।। फिर बलराम जी ने प्रलम्ब के सिर पर अपनी वज्र के समान कठोर मुष्टिका से प्रहार किया ।।३६।। मुक्का लगते ही उसका मस्तक शरीर के भीतर घुस गया और उनकी लात के प्रहार से उसका जीवन समाप्त हो गया ।।३७।। उस समय पृथिवी पर लेटा हुआ वह दैत्य आकाशस्थ मेघ जैसा सुशोभित हो रहा था ।।३८।। इस प्रकार प्रलम्ब को मार कर प्रतापी बलराम जी श्रीकृष्ण के पास आये । उस समय श्रीकृष्ण ने उनका आलिंगन किया और सभी गोप तथा आकाश मे स्थित देवता उनकी जय बोलते हुए स्तुति करने लगे ।।३६ ४०।। असाधारणकर्मा बलरामजी ने दैत्यों को मार डाला इस प्रकार की चर्चा देवगण परस्पर कर रहे थे ।।४१।। देवताओं द्वारा न मारा जा सकने वाला वह दैत्य बलराम जी के द्वारा मारा गया था इसीलिये देवताओं ने उनको 'बलदेव' नाम से प्रसिद्ध किया और तभी से सभी संसारीजन उनके बल और प्रभाव को जान गये ।।४२।।

।। गोपो द्वारा इन्द्रोत्सव कथन ।।

ततो प्रवृत्तयोरेव कृष्णस्य च बलस्य च ।
वने विचरतार्मासौ व्यतियातौ स्म वार्षिकौ ।।१

व्रजमाजग्मतुस्तौ तु व्रजे शुश्रुवतुस्तदा ।
प्राप्त शक्रमह वीरौ गोपाश्चोत्सवलालसान् ॥२
कौतूहलादिद वाक्य कृष्ण प्रोवाच तत्र तान् ।
कोऽय शक्रमहो नाम येन वो हर्ष आगत ॥३
तत्र वृद्धतमस्त्वेको गोपो वाक्यमुवाच ह ।
श्रूयता तात शक्रस्य यदर्थं ध्वज इज्यते ॥४
देवानामीश्वर शक्रो मेघाना चारिसूदन ।
तस्य चाय मख कृष्णलोकनाथस्य शाश्वत ॥५
तेन सचोदिता मेघास्तस्य चायुधभूषिता ।
तस्यैवाज्ञाकरा सस्य जनयन्ति नवाम्बुभि ॥६

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार वन मे विचरण करते ए कृष्ण बलराम के वर्षाकालीन दो मास व्यतीत हो गये ॥१॥ फिर उन्होंने ज मे आकर सभी गोपो को इन्द्र पूजन महोत्सव की तैयारी करते हुए देखा ॥२॥ तब श्रीकृष्ण ने उनसे पूछा—आप जिस इन्द्र पूजन के लिये इतने त्साहित हो रहे हैं—वह इन्द्र पूजन कैसा है ? ॥३॥ यह सुनकर एक वृद्ध ोप ने कहा—इन्द्र-पूजन का विधान किसलिये है यह बात तुम्हें बताता हूँ नो ॥४॥ इन्द्र सभी देवताओ और मेघो के अधिपति हैं, उन्ही के पूजन के लिये यह उत्सव हो रहा है ॥५॥ उन्हीं की प्रेरणा से मेघ जल वृष्टि करते हुए ान्न को बढाते हैं ॥६॥

मेघस्य पयसो दाता पुरुहूत पुरदर ।
सप्रहृष्टस्य भगवान्प्रीणयत्यखिल जगत् ॥७
तेन सम्पादित सस्य वयमन्ये च मानवा ।
महोत्सव प्रयुञ्जानास्तर्पयामश्च देवता ॥८
मण्डयतीव देवेन्द्रो विश्वमेव नभो घनै ।
क्वचिच्छीकरमुक्ताभ कुरुते गगन घनै ॥९
एवमेतत्पयो दुग्ध गोभि सूर्यस्य वारिद ।
पर्जन्य सर्वभूताना भवाय भुवि वर्षति ॥१०

यस्मात्प्रावृडियं कृष्ण शक्रस्य भुवि भाविनी ।
तस्मात्प्रावृषि राजानः सर्वे शक्रं मुदा युताः ।
महैः सुरेशमर्चन्ति वयमन्ये च मानवाः ॥११

वे मेघ इन्द्र के आज्ञाकारी होकर उन्ही से जल प्राप्त करते हैं। जब इन्द्र प्रसन्न हो जाते हैं तब वे सब ब्रह्माण्ड को तृप्त करते हैं ॥७॥ उन्ही की कृपा से अन्न उपजता है और हम सभी देहधारी उसी के द्वारा जीवन धारण करते हैं, इसी लिये इस महोत्सव द्वारा हम उन्हे प्रसन्न किया करते हैं ॥८॥ उन्ही इन्द्र के प्रभाव से आकाश मण्डल मेघो से आच्छादित होकर जलरूपी दुग्ध से पृथिवी को सम्पन्न करता है ॥६-१०॥ इन्द्र द्वारा वृष्टि करने के कारण ही सब राजागण आनन्दपूर्वक इन्द्रोत्सव मनाते हैं, हम भी उसी परम्परा के कारण इसका आयोजन कर रहे हैं ॥११॥

॥ श्रीकृष्ण का गोवर्धनोत्सव ॥

गोपवृद्धस्य वचनं श्रुत्वा शक्रपरिग्रहे ।
प्रभावज्ञोऽपि शक्रस्य वाक्यं दामोदरोऽब्रवीत् ॥१
वयं वनचरा गोपाः सदा गोधनजीविनः ।
गावोऽस्मद्दैवतं विद्धि गिरयश्च वनानि च ॥२
कर्षकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम् ।
गावोऽस्माकं परा वृत्तिरेतत्त्रैविद्यमुच्यते ॥३
विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवतं परम् ।
सैव पूज्यार्चनीया च सैव तस्योपकारिणी ।
योऽन्यस्य फलमश्नानः करोत्यन्यस्य सत्क्रियाम् ॥४
द्वावनर्थौ स लभते प्रेत्य चेह च मानवः ।
कृष्यन्ता प्रथिता सीमा सीमान्तं प्रथितं वनम् ॥५
वनान्ता गिरयः सर्वे सा चास्माकं गतिर्ध्रुवा ।
श्रूयन्ते गिरयश्चापि वनेऽस्मिन्कामरूपिणः ॥
प्रविश्य तास्तास्तनवो रमन्ते स्वेषु सानुषु ॥६

भूत्वा केसरिण सिंहा व्याघ्राश्च नखिना वरा ।
वनानि स्वानि रक्षन्ति त्रासयन्तो वनच्छिद ॥७
यदा चैषा विकुर्वन्ति ते वनालयजीविन ।
घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तान्पौरुषादेन कर्मणा ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् इन्द्र के प्रभाव को श्रीकृष्ण भी भले प्रकार जानते थे, परन्तु उस वृद्ध की बात सुनकर उन्होंने कहा—हमारी जीविका तो गोधन से चलती है, इसलिये हमारे देवता भी पर्वत, वन और गौएं ही हैं ॥१२॥ कृषकों की जीविका खेतों से और वैश्यों की जीविका व्यापार से है वैसे ही हमारी जीविका का साधन गोधन है। विद्या-साधक का विद्या ही आराध्य है और वह उसी का पूजन करता है। अथवा जो लोग किसी एक देवता के द्वारा जीविका प्राप्त करके अन्य देवता का पूजन करते हैं, उन्हें इहलोक और परलोक दोनों में ही सुख नहीं मिलता। कृषि की सीमा खेत है, खेत की सीमा वन और वन की सीमा पर्वत है, इसलिये पर्वत ही हमारी गति है। ये पर्वत ही इच्छानुसार विविध रूपों को धारण कर कन्दराओं में विचरते रहते हैं ॥३६॥ ये कभी सिंह और कभी व्याघ्र का रूप धारण कर वनों को नष्ट करने वाले जीवों को डराते हुए वनों की रक्षा करते हैं ॥७॥ वनों में विघ्न उपस्थित करने वाले दुराचारियों को राक्षस के समान क्रूर बन कर समाप्त कर देते हैं ॥८॥

मन्त्रयज्ञपरा विप्रा सीतायज्ञाश्च कर्षका ।
गिरियज्ञास्तथा गोपा इज्योऽस्माभिर्गिरिर्वने ॥९
तन्मह्य रोचते गोपा गिरियज्ञ प्रवर्त्तताम् ।
कर्म कृत्वा सुखस्थाने पादपेष्वथ वा गिरौ ॥१०
तत्र हत्वा पशून्मेध्यान्वितत्यायतने शुभे ।
सर्वघोपस्य सदोह क्रियता कि विचार्यते ॥११
त शरत्कुसुमापीडा परिवार्य प्रदक्षिणम् ।
गावो गिरिवर सर्वास्ततो यान्तु पुनर्व्रजम् ॥१२
प्राप्ता किलेय हि गवा स्वादुतोयतृणा गण ।
शरत्प्रमुदिता रम्या गतमेघजलाशया ॥१३

प्रियकं पुष्पितैर्गौर श्याम वाणासनं क्वचित् ।
कठोरतृणमाभ नि निर्मयूररुत वनम् ॥१४
विजला विमला व्योम्नि विवलाका विविद्युत ।
विवर्द्धन्ते जलधरा विदन्ता इव कुञ्जरा ॥१५
पटुना मेघनादेन नवतोयानुकर्षिणा ।
पर्णोत्करघना सर्वे प्रसाद यान्ति पादपा ॥१६
सितवर्णाम्बुदोष्णीष हसचामरवीजितम् ।
पूर्णचन्द्रामलच्छत्र साभिषेकमिवाम्बरम् ॥१७

ब्राह्मण म त्रयज्ञ और कृषक हल के अग्रभाग से कृषि यज्ञ करते हैं तथा हम गोपो को गिरियज्ञ का विधान है, इसलिये हमे वही करना चाहिये ॥९ मेरे मत मे तो गिरियज्ञ का आयोजन कर पवित्र बलि आदि के द्वारा पर्व का पूजन करिये व्यर्थ समय व्यतीत नही करना चाहिये कहिये आपका क विचार है ! ॥१० ११॥ शरद् ऋतु के पुष्पो की माला से सुशोभित गौओं, द्वारा गिरिराज की परिक्रमा करके उन्हें वनों मे चरने के लिये छोड दीजिये ॥१२॥ *अब शरद् ऋतु आगई है जल, तृण आदि स्वादिष्ट होगये,* आकाश स्वच्छ होगया और धरती का जल सूखने लगा है ॥१३॥ वनस्थली भी कद म्बादि पुष्प गुच्छो से परिपूर्ण हैं घास परिपक्व होगई हैं और वनो में मोरं की बोली सुनाई नही देती है ॥१४॥ जल, वज्र और बिजली से विहीन मे बिना दाँत के हाथी के समान आकाश मे घूम रहे हैं ॥१५॥ नवीन जल शोषण करने वाले वृक्ष पत्तो से लद कर फूल उठे है और ऐसा लगता है आकाश बादलो का मुकुट, हसो का चँवर तथा स्वच्छ च द्रमा का छत्र धार करके राज सिंहासन पर बैठा हो ॥१६-१७॥

नून सिदशभूयिष्ठ मेघकालसुखोषितम् ।
पतत्त्रिकेतन देव बोधयन्ति दिवौकस ॥१८
शरद्येव सुसस्याया प्राप्ताया प्रावृष क्षये ।
नीलचन्द्रार्कवर्णैश्च रचित बहुभिर्द्विजं ॥१९

फलैः प्रवालैश्च घनमिन्द्रचापघनोपमम् ।
भवनाकारविटप लतापरममण्डितम् ॥२०
विशालमूलावनत पवनाभोगमण्डितम् ।
अर्चयामो गिरिं देव गाश्चैव सविशेषत ॥२१
सावतंसविषाणैश्च बर्हापीडैश्च दर्शितैः ।
घण्टाभिश्च प्रलम्बाभि पुष्पैः शारदिकैस्तथा ॥२२
शिवाय गाव पूज्यन्ता गिरियज्ञ प्रवर्त्यताम् ।
पूज्यता त्रिदशैः शक्रो गिरिरस्माभिरिज्यताम् ॥२३
कारयिष्यामि गोयज्ञ बलादपि न सशय ।
यद्यस्ति मयि व प्रीतिर्यदि वा सुहृदो वयम् ॥२४
गावा हि पूज्या सतत सर्वेषा नात्र सशय ।
यदि साम्ना भवेत्प्रीतिर्भवता वैभवाय च ।
एतन्मम वचस्तथ्य क्रियतामविचारितम् ॥२५

वर्षाकाल में सोये हुए भगवान् विष्णु को सब देवता एकत्रित होकर इसी समय जगाते हैं ॥१८॥ वर्षा समाप्त होकर शरद् ऋतु आगई है, खेतों में अन्न परिपक्व होगये हैं, विविध वर्ण के पक्षियों और पुष्पों से सुशोभित पर्वत इन्द्र धनुष युक्त बादल जैसे दिखाई दे रहे हैं। पर्वत पर वृक्षों की शाखें घर के समान विस्तृत होकर नीचे तक झुक गई हैं, इसलिये हमें गौओं को सजा कर इन पर्वत देवता का पूजन करना ही उचित है ॥१६-४१॥ अब आप गौओं का सर्वांग में विभूषित कर, कठ में घटा आदि धारण करा कर गिरिराज का पूजन आरम्भ करें। देवता अपने इन्द्र को पूजें और हम इस पर्वत का पूजन करें ॥१६-२३॥ यदि आप मुझ पर स्नेह करते और मुझे अपना शुभ चिन्तक मानते हैं तो मेरे आग्रह से आपको यह गोयज्ञ करना होगा ॥२४॥ गौएं सदा ही सब की पूजनीय हैं, यदि आपके मन में कोई सशय न हो तो लोक हित के लिये इस यज्ञ को आरंभ कीजिये ॥२५॥

॥ गोपों द्वारा गोवर्धन पूजन ॥

दामोदरवचः श्रुत्वा हृष्टास्ते गोपुजीविनः ।
तद्वागमृतमश्नाना प्रत्यूचुरविशङ्कया ॥१
तवैषा बाल महती गोपाना हर्षवर्द्धिनी ।
प्रीणयत्येव नः सर्वान्बुद्धिर्वृद्धिकरी नृणाम् ॥२
त्वं गतिस्त्वं रतिश्चैव त्वं वेत्ता त्वं परायणम् ।
भयेष्वभयदस्त्वं नस्त्वमेव सुहृदां सुहृत् ॥३
त्वत्कृते कृष्ण घोषोऽयं क्षेमी मुदितगोकुलः ।
कृत्स्नो वसति शान्तारिर्यथा स्वर्गं गतस्तथा ॥४
जन्मप्रभृति कर्मैतद्दैवैरसुकरं भुवि ।
बोद्धव्याच्चाभिमानाच्च विस्मितानि मनांसि नः ॥५
बलेन च परार्ध्येन यशसा विक्रमेण च ।
उत्तमस्त्वं च मर्त्येषु देवेष्विव पुरंदरः ॥६
प्रतापेन च तीक्ष्णेन दीप्त्या पूर्णतयाऽपि च ।
उत्तमस्त्वं च मर्त्येषु देवेष्विव दिवाकरः ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर गोपगण ने पुलकित और निःशङ्क चित्त से कहा ॥१॥ हे वत्स ! तुम्हारे वचन से ह[म] अत्यन्त आनन्दित हुए हैं, तुम्हारे अनुसार चलने पर हमारी वृद्धि ही होगी ॥२॥ तुम हमारी गति, भक्ति, मति, धर्म और शुभाशुभ के ज्ञाता, अभयदाता तथ[ा] उपकारी सुहृद हो ॥३॥ तुम्हारे ही प्रताप से यह गोपव्रज और व्रज स्वर्ग[ीय] सुखों को भोग रहा है । तुम्हारे दुष्कर कार्यों, असीमित बल, स्वच्छ कीर्ति औ[र] विशिष्ट पराक्रम को देख-देख कर हमे आश्चर्य होता है ॥४ ५॥ देवताओं [में] इन्द्र के श्रेष्ठ होने के समान ही तुम अपने पराक्रम, यश और विवेक से स[ब] मनुष्यों में श्रेष्ठ हो ॥६॥ जैसे दीप्ति, पूर्णता और प्रताप में सूर्य सब से श्रे[ष्ठ] माने जाते हैं, वैसे ही मनुष्यों में तुम सर्वश्रेष्ठ हो ॥७॥

त्वयाऽभिहितं वाक्यं गिरियज्ञं प्रति प्रभो ।
एतल्लङ्घयितुं शक्तो वेलामिव महोदधिः ॥८

स्थित: शक्रमहस्ताव श्रीमान्गिरिमहस्त्वयम् ।
त्वत्प्रणीतोऽद्य गोपानां गवां हेतो प्रवर्त्यताम् ॥६
भोजनान्युपकल्प्यन्तां पयस: पेशलानि च ।
कुम्भाश्च विनिवेश्यन्तामुदपानेषु शोभना: ॥१०
पूर्यन्तां पयसा नद्यो द्रोण्यश्च विपुलायता: ।
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च तत्सर्वमुपनीयताम् ॥११
आनन्दजननो घोषो महान्मुदितगोकुल: ।
तूर्यप्रणादघोषैश्च वृषभाणां च गर्जितै: ॥१२
हम्भारवैश्च वत्सानां गोपाना हर्षवर्द्धन: ।
दध्नो ह्रदो घृतावर्त्त: पय कुल्यासमाकुल: ॥१३
संप्रावर्त्तत यज्ञोऽस्य गिरेर्गोभि: समाकुल: ॥१४

हे प्रभो ! तुम्हारा आदेश कभी भी उल्लघन करने योग्य नहीं रहा तो मे गिरियज्ञ के तुम्हारे अनुरोध को कौन स्वीकार न करेगा ? ॥८॥ इसलिये, न्द्र महोत्सव न करने और गोप तथा गौओं के कल्याणार्थ तुमने जिस गिरियज्ञ करने का निर्देश किया है, वही अब आरंभ होगा ॥९॥ दूध से भोजन तैयार रके पीने का श्रेष्ठ जल कलशों मे भर कर रखा जाय ॥१०॥ कल्पित नदियों ो दूध से परिपूर्ण करके सब प्रकार के भक्ष्य, भोज्य और पेय पदार्थ एकत्र किये जांय ॥११॥ ऐसा करने से गोपो और गौओं मे आनन्द छा जायगा और तुरही तथा बैलो के गर्जन और बछड़ों के निनाद से व्रजभूमि हर्षित हो उठेगी । दही के सरोवर, घृत के कुए और दूध की कृत्रिम नदियां भर कर अन्नादि का रु पर्वत बनाया जाय। हे राजन् ! इसके अनुसार सब सामान एकत्र होगया और गिरियज्ञ का आरंभ हुआ। कुछ देर में ही वहाँ गोप, गोपियां और गौओं ा विशाल समाज दिखाई देने लगा ॥१२-१३-१४॥

तुष्टगोपसमाकीर्णो गोपनारीमनोहर: ।
भक्ष्याणां राशयस्तत्र शतशश्चोपकल्पिता: ।
गन्धमाल्यैश्च विविधैर्धूपैरुच्चावचैस्तथा ॥१५

अथाधिभृतपर्यन्ते सम्प्राप्ते यज्ञसविधौ ।
यज्ञ गिरे स्थितौ सौम्ये चक्रुर्गोपा द्विजैः सह ॥१६
यजनान्ते तदन्नं तु पत्पयो दधि चोत्तमम् ।
बुभुजे मायया कृष्णो गिरिर्भूत्वा समश्नुते ॥१७
तर्पिताश्चापि विप्राग्र्यास्तुष्टाः सपूर्णमानसाः ।
उत्तस्थुः प्रीतमनसः स्वस्ति वाच्य यथासुखम् ॥१८
भुक्त्वा चावभृथे कृष्णः पयः पीत्वा च कामतः ।
सतृप्तोऽस्मीति दिव्येन रूपेण प्रजहास वै ॥१९
स गोपाः पर्वताकारं दिव्यस्रगनुलेपनम् ।
गिरिमूर्ध्नि स्थितं दृष्ट्वा कृष्णं जग्मुः प्रधानतः ॥२०
भगवानपि तेनैव रूपेणाच्छादितः प्रभुः ।
सहितैः प्रणतो गोपैर्ववन्दात्मानमात्मना ॥२१

यज्ञ स्थल के पास ही अग्नि स्थाली, चरुस्थाली विविध प्रकार के भक्ष्य सुगंधित द्रव्य पुष्पमाला और धूप आदि सामग्री एकत्र कर रख दी गई ॥१५॥ फिर शुभ मुहूर्त्त मे गिरियज्ञ आरंभ किया गया ॥१६॥ जब यज्ञ कार्य सम्पन्न होगया तब श्रीकृष्ण ने अपनी माया से गोवर्धन रूप धारण किया और सभी अर्पित सामग्री का भोग लगाने लगे ॥१७॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने भोजन से तृप्त होकर स्वस्ति वाचन किया और गोवधन रूप धारी कृष्ण भी इच्छानुसार भोजन करके दिव्य हँसी हँसने लगे ॥१८ १९॥ गिरिराज रूप धारी कृष्ण को गोपों ने प्रणाम किया तथा कृष्ण रूप से उन्होंने भी अपने गिरि रूप को प्रणाम किया ॥२० २१॥

तुमूर्चुर्विस्मता गोपा देवं गिरिवरं स्थितम् ।
भगवस्त्वद्वशे युक्ता दासाः किं कुर्मः किंकराः ॥२२
स उवाच ततो गोपान्गिरिप्रभवया गिरा ।
अद्यप्रभृति चज्योऽहं गोपु यद्यस्ति वा दया ॥२३
अहं व प्रथमो देवः सवकामकरः शुभः ।
मम प्रभावाच्च गवामयुतान्येव भोक्ष्यथ ॥२४

शिवश्च वो भविष्यामि मद्भक्ताना वनेवने ।
रस्ये च सह युष्माभिर्यथा दिविगतस्तथा ॥२५
ये चेमे प्रथिता गोपा नन्दगोपपुरोगमा ।
एपा प्रीत प्रयच्छामि गोपाना विपुल धनम् ॥२६
पर्याप्नुवन्तु क्षिप्र मा गावो वत्ससमाकुला ।
एव मम परा प्रीतिर्भविष्यति न सशय ॥२७

उस समय विस्मित हुए गोपो ने पवन पर विराजमान देव से निवेदन किया—हे भगवन् ! हम आपके आज्ञाकारी सेवक हैं, हम अब क्या करें सो आज्ञा करिये ? ॥२२॥ तब पर्वत रूपधारी भगवान् बोले—हे गोपो ! यदि तुम अपनी गौओं के प्रति दया रखते हो तो आज से मेरा ही पूजन करना ॥२३॥ क्योंकि मैं ही तुम्हारे मनोरथो को पूर्ण करने वाला हूँ, मेरी ही कृपा से तुम सैकड़ो गौओं वाले होकर वनो मे विचरोगे ॥२४॥ मैं ही तुम्हारा सब प्रकार से हित करूँगा और स्वर्ग के समान ही यहाँ भी तुम्हारे साथ निवास करता हुआ सब गोपो को बहुत सा धन दूँगा ॥२५-२६॥ अब शीघ्र ही मेरे सामने सभी सवत्सा गौएँ लाई जायँ, जिन्हें देख कर मुझे अत्यन्त आनन्द होगा ॥२७॥

ततो नीराजनार्थं हि वृन्दशो गोकुलानि तम् ।
परिवव्रुर्गिरिवर सवृपाणि समन्तत ॥२८
ता गाव प्रद्रुता हृष्टा सापीडस्तवकाङ्गदा ।
सस्रजापीडशृङ्गाग्रा शतशोऽथ सहस्रश ॥२९
अनुजग्मुश्च गोपाला कालयन्तो धनानि च ।
भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गा रक्तपीतसिताम्बरा ॥३०
मयूरचित्राङ्गदिनो भुजे प्रहरणावृते ।
मयूरपत्रवृताना केशबन्धै सुयोजितै ॥३१
वभ्राजुरधिक गोपा समवाये तदाऽद्भुते ।
अन्ये वृपानारुरुहुर्नृत्यन्ति स्म ... रे मुदा ॥३२
गोपालास्त्वपरे गाश्च जगृहुर्वेगगामिन ।
तस्मिन्पर्यायनिर्वृत्ते गवा नीराजनोत्सवे ॥३३

अन्तर्धानं जगामाशु तेन देहेन सोऽचल ।
कृष्णोऽपि गोपसहितो विवेश व्रजमेव ह ॥३४
गिरियज्ञप्रवृत्ते न तेनाश्चर्येण विस्मिता ।
गोपा सबालवृद्धा वै तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥३५

तदनन्तर भगवान् की प्रसन्नता के लिये बैलो सहित असंख्य गायें वहाँ आ गईं। उन्होने उस गिरि गोवर्धन को सब ओर से घेर लिया ॥२८॥ वे सैकड़ों हजार असंख्यक गोएँ वनमाला आदि से विभूषित हो रही थीं ॥२९॥ उन गौओं को वश में रखने के लिये गोपगण उनके पीछे-पीछे दौड़ते थे। वे गोप भी सुगंधित द्रव्यों और रंग बिरंगे वस्त्रो से सुसज्जित थे ॥३०॥ वे अपने हाथों मे मोर पंखों के आभूषण और शस्त्रास्त्र धारण किये हुए थे और उन्होंने अपने केशों में भी मोर पंख लगा रखे थे ॥३१॥ इस प्रकार असंख्य गोपो की उपस्थिति से वहाँ विचित्र शोभा हो रही थी। कुछ गोप बैलों पर चढ़ गये थे, कुछ नाच रहे और कुछ भागती हुई गौओ को रोक रहे थे। इस प्रकार गोवर्धन की परिक्रमा कार्य पूर्ण हो जाने पर गिरिराज की वह साक्षात् मूर्ति अन्तर्धान हो गई और फिर श्रीकृष्ण भी सब गोपो के साथ व्रज मे लौट आये ॥३२ ३३ ३४॥ गिरियज्ञ के उस अद्भुत समारोह स आश्चर्यचकित हुए सभी व्रजवासी भगवान् मधुसूदन की स्तुति करने लगे ॥३५॥

॥ श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण ॥

महे प्रतिहते शक्र सक्रोधस्त्रिदशेश्वर ।
संवर्त्तकं नाम गणं तोयदानामथाब्रवीत् ॥१
भो वलाहकमातङ्गा श्रूयतां मम भाषितम् ।
यदि वो मत्प्रियं कार्यं राजभक्तिपुरस्कृतम् ॥२
एते वृन्दावनगता दामोदरपरायणा ।
नन्दगोपादयो गोपा विद्विषन्ति ममोत्सवम् ॥३
आजीवो य परस्तेषां गोपत्वं च यतः स्मृतम् ।
ता गाव सप्तरात्रेण पीड्यन्तां वर्षमारुतै ॥४

एरावतगतश्चाहं स्वयमेवाम्बु दारुणम् ।
स्रक्ष्यामि वृष्टिं वातं च वज्राशनिसमप्रभम् ॥५
भवद्भिश्चण्डवर्षेण चरता मारुतेन च ।
हतास्ताः सव्रजा गावस्त्यक्ष्यन्ति भुवि जीवितम् ॥६
एवमाज्ञापयामास सर्वाञ्जलधरान्प्रभुः ।
प्रत्याहते वै कृष्णेन शासने पाकशासनः ॥७

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्ण द्वारा इन्द्र यज्ञ के रोक देने से कुपित हुए इन्द्र ने संवर्तकादि मुख्य मुख्य मेघों को अपने पास बुला कर कहा ॥१॥ हे मेघगण! यदि तुममें राजभक्ति हो और मेरी आज्ञा का पालन करने वाले हो तो मेरे वचन को सुनो ॥२॥ कृष्णभक्त गोपों ने वृन्दावन में जाकर मेरे यज्ञ को नहीं किया है ॥३॥ इसलिये उनके जीवन रूप गौओं को सात रात्रि तक जल और आँधी के वेग से महा संतप्त करो ॥४॥ मैं भी अपने ऐरावत पर चढ़ कर वहाँ आ रहा हूँ और उस गजभरी ल...पिणी वायु तथा वर्षा का भली प्रकार संचालन करूँगा ॥५॥ इस प्रकार वर्षा और वायु के प्रकोप से वे सवत्सा गौएँ विनाश को प्राप्त होंगी ॥६॥ कृष्ण द्वारा इन्द्र-यज्ञ न करने पर कुपित हुए देवराज ने यह आज्ञा दी ॥७॥

ततस्ते जलदाः कृष्णा घोरनादा भयावहाः ।
आकाशं छादयामासुः सर्वतः पर्वतोपमाः ॥८
विद्युत्सम्पातजननाः शक्रचापविभूषिताः ।
तिमिरावृतमाकाशं चक्रुस्ते जलदास्तदा ॥९
गजा इवान्ये संयुक्ताः केचिन्मकरवर्चसः ।
नागा इवान्ये गगने चेरुर्जलदपुङ्गवाः ॥१०
तेऽन्योऽन्यं वपुषा बद्धा नागयूथायुतोपमाः ।
दुर्दिनं विपुलं चक्रुश्छादयन्तो नभस्तलम् ॥११
नहस्तनागहस्ताभ्यां वेणूनां चैव सर्वतः ।
धाराभिस्तुल्यरूपाभिर्ववृषुस्ते बलाहकाः ॥१२

समुद्रं मेनिरे तं हि खमारूढं नृचक्षुषः ।
दुर्विगाह्यमपर्यन्तमगाधं दुर्दिनं महत् ॥१३
नैवापतन्वै खगमा दुद्रुवुर्मृगजातयः ।
पर्वताभेषु मेघेषु खे नदत्सु समन्ततः ॥१४

तभी वे पर्वताकार भीषण मेघ घोर गर्जन करते हुए आकाश में छा गये ॥८॥ तभी सहसा आकाश मे इन्द्र धनुष प्रकट हो गया, बिजली गिरने लगी और घोर अधकार छा गया ॥९॥ हाथियों के यूथ जैसे, मकराकृति वाले एवं सर्प की तरह लहराते हुए मेघ आकाश मे मँडराने लगे ॥१०॥ दस हजार हाथियों के झुण्ड के समान एक दूसरे से भिडे हुए मेघ भयकर रूप से बरसने लगे ॥११॥ वे मनुष्य के हाथ के समान हाथी की सूँड जैसी तथा बाँस जितनी मोटी जल-धाराओं को गिराने लगे ॥१२॥ उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा कि अगाध जल वाला महासागर ही आकाश पर पहुँच गया हो ॥१३॥ सब ओर भीषण गर्जन ही सुनाई पडने लगा, आकाश मे एक भी पक्षी दिखाई नही देता था और मृगों के समूह भयभीत होकर इधर-उधर भाग रहे थे ॥१४॥

नष्टसूर्येन्दुसदृशैर्मेघैर्नभसि दारुणे ।
अतिवृष्टेन लोकस्य विरूपमभवद्वपु ॥१५
मेघौघनिष्प्रभाकारमदृश्यग्रहतारकम् ।
चन्द्रसूर्यांशुरहितं ख बभूवातिनिष्प्रभम् ॥१६
वारिणा मेघमुक्तेन मुच्यमानेन चासकृत् ।
आवभौ सर्वतस्तत्र भूमिस्तोयमयी यथा ॥१७
विनेदुर्बर्हिणस्तत्र तोककल्परुता खगाः ॥
विवृद्धिं निम्नगा याताः प्लवगाः सप्लवं गताः ॥१८
गवा तत्कदन दृष्ट्वा दुर्दिनागमज महत् ।
गोपाश्चासन्ननिधनान्कृष्णः कोपं समादधे ॥१९
स चिन्तयित्वा संरब्धो दृष्टोपायो मयेति च ।
आत्मानमात्मना वाक्यमिद मूचे प्रियंवदः ॥२०

अद्याहमिममुत्पाट्य सकाननवनं गिरिम् ।
कल्पयेयं गवां स्थानं वर्षत्राणाय दुर्द्धरम् ॥२१

सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्रों के दर्शन भी नहीं थे, इस प्रकार भीषण वर्षा से सभी मलीन हो गये ॥१५॥ सूर्य, चन्द्रादि के लुप्त होने से आकाश मे अधकार छा गया ॥१६॥ निरन्तर मूसलाधार वृष्टि होने से पृथिवी सब ओर जलमयी दिखाई देने लगी ॥१७॥ नदियों मे बाढ आ गई, सरोवर उमड पडे और जल के वेग से नदी किनारे के वृक्ष उखड-उखड कर बह गये ॥१८॥ वर्षा के कारण गौओं और गोपो को नष्ट होते देख कर श्रीकृष्ण ने मन ही मन विचार किया कि 'वनों के सहित गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर इन सबको इसके नीचे शरण दी जाय' ॥१९-२०-२१॥

अय धृतो मया शैलः पृथ्वीगृहनिभोपमः ।
त्रास्यते सव्रजा गा वै मद्वश्यश्च भविष्यति ॥२२
एव सञ्चिन्तयित्वा तु कृष्णः सत्यपराक्रमः ।
बाह्वोर्बल दर्शयिष्यन्समीप तं महीधरम् ॥२३
दोर्भ्यामुत्पाटयामास कृष्णो गिरिरिवापरः ।
स धृतः सङ्गतो मेघैर्गिरिः सव्येन पाणिना ।
गृहभावं गतस्तत्र गृहाकारेण वर्चसा ॥२४
भूमेरुत्पाट्यमानस्य तस्य शैलस्य सानुषु ।
शिलाः प्रशिथिलाश्चेलुर्विनिष्पेतुश्च पादपाः ॥२५
शिखरैर्घूर्णमानैश्च सीदमानैश्च पादपैः ।
विधूतैश्चोच्छ्रितः शृङ्गैरगम खगमोऽभवत् ॥२६

इस विशाल पर्वत को दूसरी पृथिवी के समान उठा लेने से गौ, गोप, गोपियाँ, ग्वाल-बाल आदि सभी सुरक्षित होंगे और यह पर्वत भी मेरे आधीन हो जायगा ॥२२॥ हे राजन् ! ऐसा विचार स्थिर कर श्रीकृष्ण ने उस पर्वत को उखाड़ कर अपने बाँए हाथ पर धारण कर लिया, उस समय उसकी सभी गुफाएँ घर के रूप में हो गईं ॥२३-२४॥ पर्वत को उखाड़ने के समय उसकी शिलाओं से

बंधन शिथिल हो जाने के कारण उससे बड़ी-बड़ी शिलाएँ गिर कर पृथिवी पर छो लगी ॥२५॥ उसके सब शिखर गिरने लगे तब वह पर्वत श्रीकृष्ण के हाथ में स्थित होकर आकाशगामी पक्षी के समान दिखाई पड़ने लगा ॥२६॥

स मेघनिचयस्तस्थौ गिरिं तं परिवार्य ह ।
पुरं पुरस्कृत्य यथा स्फीतो जनपदो महान् ॥२७
निवेश्य तं करे शैलं तोलयित्वा च सस्मितम् ।
प्रोवाच गोप्ता गोपानां प्रजापतिरिव स्थितः ॥२८
एतद्देवैरसमाध्यं दिव्येन विधिना मया ।
कृतं गिरिगृहं गोपा निर्वातं शरणं गवाम् ॥२९
क्षिप्रं विशन्तु यूथानि गवामिह हि शान्तये ।
निर्वातेषु च देशेषु निवसन्तु यथासुखम् ।
यथाश्रेष्ठं यथायूथं यथासारं यथासुखम् ॥३०
विभज्यतामयं देशः कृतं वर्षनिवारणम् ।
शैलोत्पाटनभूरेषा महती निर्मिता मया ॥३१
पञ्चक्रोशप्रमाणेन क्रोशैकविस्तरो महान् ।
त्रैलोक्यमप्युत्सहते रक्षितुं किं पुनर्व्रजम् ॥३२
ततः किलकिलाशब्दो गवां हम्भारवैः सह ।
गोपानां तुमुलो जज्ञे मेघनादश्च बाह्यतः ॥३३

जिस प्रकार कोई नगर जनपद से घिरा होता है, उसी प्रकार वह पर्वत मेघों से घिरा हुआ था ॥२७॥ उस समय पर्वत को हाथ पर रखे हुए सर्व रक्षक श्रीकृष्ण ने मुस्करा कर गोपों से कहा—हे गोपो ! मैंने इस पर्वत को गौओं की रक्षा के लिये ही घर के समान बना दिया है । इस कार्य के करने में देवता भी समर्थ नहीं है ॥२८-२९॥ अब तुम शीघ्र ही सब के लिये यथा योग्य स्थान निर्दिष्ट करो इस पर्वत को उखाड़ कर मैंने कोस भर चौड़ा और पाँच कोस लम्बा स्थान बना दिया है । इसमें व्रज तो क्या तीनों लोकों की रक्षा भी निहित है ॥३०-३१-३२॥ भगवान् की बात सुन कर गोपों और गौओं ने हर्षध्वनि की जिसे सुन कर मेघ भी भीषण रूप से गर्जने लगे ॥३३॥

प्राविशन्त ततो गावो गोपैर्यूथप्रकल्पिताः ।
तस्य शैलस्य विपुलं प्रदरं गह्वरोदरम् ॥३४
कृष्णोऽपि मूले शैलस्य शैलस्तम्भ इवोच्छ्रितः ।
दधारैकेन हस्तेन शैलं प्रियमिवातिथिम् ॥३५
ततो व्रजस्य भाण्डानि युक्तानि शकटानि च ।
विविशुर्वर्षभीतानि तद्गृहं गिरिनिर्मितम् ॥३६
अतिदैवं तु कृष्णस्य दृष्ट्वा तत्कर्म वज्रभृत् ।
मिथ्याप्रतिज्ञो जलदान्वारयामास वै विभुः ॥३७
सप्तरात्रे तु निर्वृत्ते धरण्यां विगतोत्सवः ।
जगाम सवृतो मेघैर्वृत्रहा स्वर्गमुत्तमम् ॥३८
निवृत्ते सप्तरात्रे तु निष्प्रयत्ने शतक्रतौ ।
गताभ्रे विमले व्योम्नि दिवसे दीप्तभास्करे ॥३९
गावस्तेनैव मार्गेण परिजग्मुर्गतश्रमाः ।
स्वं च स्थानं ततो घोषः प्रत्ययात्पुनरेव सः ॥४०
कृष्णोऽपि तं गिरिश्रेष्ठं स्वस्थाने स्थावरात्मवान् ।
प्रीतो निवेशयामास शिवाय वरदो विभुः ॥४१

फिर उस पर्वत के नीचे गौओं के झुण्ड के झुण्ड खड़े कर दिये गये ॥३४॥ पाषाण निर्मित स्तम्भ के समान उन अत्यन्त ऊँचे आकार वाले भगवान् ने उस पर्वत को प्रिय अतिथि के समान ऊँचा उठा लिया ॥३५॥ उसी पर्वत के नीचे गौओं के बर्तनादि से लदे हुए छकड़े खड़े कर दिए गये ॥३६॥ जब इन्द्र की प्रतिज्ञा व्यर्थ हो गई और उसने कृष्ण के असम्भव कार्य को देखा तो मेघों को जल-वृष्टि से रोक दिया ॥३७॥ एक सप्ताह पूरा होने पर विफल मनोरथ हुए इन्द्र मेघों को साथ लेकर अपने लोक को गये ॥३८॥ मेघों के हटने से आकाश स्वच्छ हो गया और भगवान् भास्कर प्रकाशित होने लगे। गौओं का संकट दूर हुआ और वे पर्वत के नीचे से निकल आईं। जब गोपों ने देखा कि संकट टल गया है, तब वे अपने अपने स्थान पर जा पहुँचे ॥३९-४०॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर गोवर्धन पर्वत को फिर उसी स्थान पर स्थापित कर दिया ॥४१॥

।। श्रीकृष्ण का गोविन्द पद पर अभिषेक ।।

धृत गोवर्द्धन दृष्ट्वा परित्रात गोकुलम् ।
कृष्णस्य दर्शन शक्रो रोचयामास विस्मित ।।१
स निर्जलाम्बुदाकार मत्त मदजलोक्षितम् ।
आरुह्यैरावत नागमाजगाम महीतलम् ।।२
स ददर्शोपविष्ट वै गोवर्द्धनशिलातले ।
कृष्णमक्लिष्टकर्माण पुरुहूत पुरदर ।।३
स वीक्ष्य बाल महता तेजसा दीप्तमव्ययम् ।
गोपवेषधर विष्णु प्रीति लेभे पुरन्दर ।।४
त साम्बुजलदश्याम कृष्ण श्रीवत्सलक्षणम् ।
पर्याप्तनयन शक्र सर्वैर्नेत्रैरुदैक्षत ।।५
दृष्ट्वा चन श्रिया जुष्ट मर्त्यलोकेऽमरोपमम् ।
सू।विष्ट शिलापृष्ठे शक्र स व्रीडितोऽभवत् ।।६
तस्योपविष्टस्य मुख पक्षाभ्या पक्षिपुङ्गव ।
अन्तर्द्धान गतश्छाया चकारोरगभोजन ।।७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण और व्रज रक्षण होने के काम से विस्मित हुए इन्द्र ने उनके दर्शन करने की इच्छा की ।।१।। फिर वे अपने मत्त ऐरावत गज पर आरूढ होकर पृथिवी लोक में आ पहुँचे ।।२।। वहाँ जाकर उन्होंने देखा गोप बालक के वेश में अत्यन्त तेजस्वी श्रीकृष्ण गिरि गोवर्धन के एक निर्जन प्रदेश में विराजमान हैं ।।३।। उन अत्यन्त तेजस्वी ग्वाल बालक रूप वाले श्रीकृष्ण को देखकर इन्द्र को बड़ा आनन्द हुआ ।।४।। जलयुक्त मेघ के समान श्याम और हृदय पर श्रीवत्स चिह्न धारण किये श्रीकृष्ण के उन्होंने अपने सहस्र नेत्रों से दर्शन किये ।।५।। पृथिवी के एक शिला-खण्ड पर विराजमान उन अत्यन्त शोभा सम्पन्न को देखकर इन्द्र अत्यन्त लज्जित हो उठे ।।६।। उन समय अदृश्य भाव से गरुड़ ने अपने दोनों पंख फैला-कर श्रीकृष्ण के मस्तक पर छाया की हुई थी ।।७।।

स विविक्ते वनगतं लोकवृत्तान्ततत्परम् ।
उपतस्थे गजं हित्वा कृष्णं बलनिषूदनः ।।८
स समीपगतस्तस्य दिव्यस्रगनुलेपनः ।
रराज देवराजो वै वज्रपूर्णकरः प्रभुः ।।९
किरीटेनार्कतुल्येन विद्युद्द्योतकारिणा ।
कुण्डलाभ्यां स दिव्याभ्यां सततं शोभिताननः ।।१०
पञ्चस्तबकलम्बेन हारेणोरसि भूषितः ।
सहस्रपत्रकान्तेन देहभूषणकारिणा ।
ईक्षमाणः सहस्रेण नेत्राणां कामरूपिणाम् ।।११
त्रिदशज्ञापनार्थेन मेघनिर्घोषकारिणा ।
अथ दिव्येन मधुरं व्याजहार स्वरेण तम् ।।१२
कृष्ण कृष्ण महाबाहो ज्ञातीनां नन्दिवर्द्धन ।
अनिर्दिष्टं कृतं कर्म त्वया प्रीतिमता गवाम् ।।१३
मयोत्सृष्टेषु मेघेषु युगान्तावर्तकारिषु ।
यत्त्वया रक्षिता गावस्तेनास्मि परितोषितः ।।१४

लोक-कल्याण में लगे हुए भगवान् को एकान्त में बैठे देखकर वनमाल धारण किये, अनुलेपन लगाये, हाथ में वज्र ग्रहण किये, शीश पर विद्युत का मुकुट पहिने, कानों में कुण्डल और हृदय पर हार से विभूषित हुए इन्द्र ने भगवान् के पास जाकर अत्यन्त मधुर वाणी में उनसे कहा ।।८-१२।। हे कृष्ण ! हे महाबाहो ! हे स्वबान्धवों के आनन्दवर्धक घनश्याम ! जब मेरे आदेश पर मेघों ने जल प्रलय की, तब तुमने असाधारण कार्य कर दिखाया, जिसके कारण मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ ।।१३-१४।।

स्वायंभुवेन योगेन यश्चायं पर्वतोत्तमः ।
धृतो वेश्मवदाकाशे को ह्येतेन न विस्मयेत् ।।१५
प्रतिषिद्धे मम महे मयेयं रुषितेन वै ।
अतिवृष्टिः कृता कृष्ण गवां वै साप्तरात्रिकी ।।१६

सा त्वया प्रतिषिद्धेय मेघवृष्टिर्दुरासदा ।
देवैः सदानवगणैर्दुर्निवार्या मयि स्थिते ॥१७
अहो मे सुप्रिय कृष्ण यत्त्व मानुषदेहवान् ।
समग्र वैष्णव तेजो विनिगूंहसि रोषित ॥१८
साधित देवताना हि मन्येऽह कार्यमव्ययम् ।
त्वयि मानुष्यमापन्ने युक्ते चैव स्वतेजसा ॥१९
सेत्स्यत सर्वकार्यार्थो न क्विचित्परिहास्यते ।
देवाना यद्भवान्नेता सव कार्यपुरोगम ॥२०

अपने स्वय उत्पन्न किये हुए योग से पर्वत को उठाकर उसके नीचे घर बनाने के कार्य को देख किसे विस्मय न होगा ? ॥१५॥ जब तुमने मेरे पूजन का उत्सव रुकवा दिया, तब मैंने ही क्रोध करके सात रात्रि तक यह घोर वृष्टि की है ॥१६। कोई भी देवता या दानव इस वृष्टि को रोकने में समर्थ नहीं था, परन्तु तुमने मानव देह के गुण पर रोष करके भी अपनी पूर्णता का प्रकाश नहीं किया इसम मेरा अत्य त हित साधन हुआ है ॥१७ १८॥ अब मैं समझता हूँ कि तुम मनुष्य रूप में ऐसे शक्ति सम्पन्न हो तो देवकार्य होने म कोई बाधा नही है, क्योंक तुम ही देवताओं के पथ प्रदशक और नेता हो ॥१९ २०॥

एव क्षान्तमना कृष्ण स्वेन सौम्येन तेजसा ।
ब्रह्मण शृणु मे वाक्य गवा च गजविक्रम ॥२१
आह त्वा भगवान्ब्रह्मा गावश्चावाङ्गता दिवि ।
कर्मभिस्तोषिता दिव्यैस्तव सरक्षणादिभि ॥२२
भवता रक्षिता गावो गोलोकश्च महानयम् ।
यदय पुङ्गवं सार्द्धं वर्द्धाम प्रसवैस्तथा ॥२३
कर्षुकान्पुङ्गवैर्वाह्यं मेध्येन हविषा सुरान् ।
श्रिय शक्रप्रवृत्तेन तर्पयिष्याम कामगा ॥२४
तदस्माक गुरुस्त्व हि प्राणदश्च महाबल ।
अद्यप्रभृति नो राजा त्वमिन्द्रो वै भव प्रभो ॥२५

तस्मात्त्वं काञ्चनैः पूर्णैर्दिव्यस्य पयसो घटैः ।
एभिरद्याभिषिञ्चस्व मया हस्तावनामितैः ॥२६
अहं किलेन्द्रो देवानां त्वं गवामिन्द्रतां गतः ।
गोविन्द इति लोकास्त्वां स्तोष्यन्ति भुवि शाश्वतम् ॥२७

हे कृष्ण ! तुम अपने मन को समायुक्त करके ब्रह्माजी और गौओं के वचन को मुझसे सुनो ॥२१॥ उनका कहना है कि तुम्हारे इन गो-रक्षण आदि कार्यों को देखकर हमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई है ॥२२॥ तुमने अपने प्रभाव से गौओं की और गोलोक की भी रक्षा की है, अब हम गौएँ अपनी कुल वृद्धि करने में भय-रहित होंगी ॥२३॥ अब बैलों के कार्यों से कृषकों को, पवित्र आज्याहुतियों से देवताओं को और प्राणदाता होने के कारण आज से हमारे इन्द्र हो जाओ ॥२५॥ हे कृष्ण ! दिव्य जल से परिपूर्ण कलश मेरे साथ है, इसलिये तुम इसी समय से इन्द्र पद पर स्थित प्रतिष्ठित हो जाओ ॥२६॥ मैं देवताओं का इन्द्र हूँ और तुम गौओं के इन्द्र हो, इसलिये आज से तुम्हारी 'गोविन्द' नाम से प्रसिद्धि होगी ॥२७॥

ततः शक्रस्तु तान्गृह्य घटान्दिव्यपयोधरान् ।
अभिषेकेण गोविन्दं योजयामास योगवित् ॥२८
दृष्ट्वा तमभिषिक्तं तु गावस्ताः सह यूथपैः ।
स्तनैः प्रस्रवयुक्तैश्च सिषिचुः कृष्णमव्ययम् ॥२९
मेघाश्च दिवि युक्ताभिः सामृताभिः समन्ततः ।
सिषिचुस्तोयधाराभिरभिषिच्य तमव्ययम् ॥३०
वनस्पतीनां सर्वेषां सुस्रावेन्दुनिभं पयः ।
ववर्षुः पुष्पवर्षं च नेदुस्तूर्याणि चाम्बरे ॥३१
अभिषिक्तं तु तं गोभिः शक्रो गोविन्दमव्ययम् ।
दिव्यमाल्याम्बरधरं देवदेवोऽब्रवीदिदम् ॥३२
एष ते प्रथमः कृष्ण नियोगो गोषु यः कृतः ।
श्रूयतामपरं कृष्ण ममागमनकारणम् ॥३३

फिर देवराज इन्द्र ने मन्दाकिनी के जल से भरे हुए कलश को उठाकर

श्रीकृष्ण का गोविन्द पद पर अभिषेक किया ॥२८॥ उस समय स्वर्ग की गौओं ने उन पर दुग्ध-धारों की वर्षा की ॥२९॥ सब ओर से एकत्रित हुए मेघों और वनस्पतियों ने चन्द्रमा की किरणों के समान स्वच्छ अमृतमय जल की वृष्टि की और तब देवता पुष्प बरसाने और बाजों से सुमधुर घोष करने लगे ॥३०-३१॥ उस समय सम्पूर्ण पृथिवी स्वर्ग के समान अमृत रस से तृप्त हो गई थी, क्योंकि श्रीकृष्ण का अभिषेक हो रहा था। इस प्रकार मन्दाकिनी के जल से अभिषिक्त हुए गोविन्द से देवराज इन्द्र ने कहा—हे गोविन्द ! तुमने गौओं के प्रति अपना जो कर्त्तव्य पालन किया है, उसका मैं अनुमोदन करता हूँ। अब मैं आपसे उस कार्य को भी कहता हूँ, जिसके लिये यहाँ आया हूँ ॥३२ ३३॥

क्षिप्र प्रसाध्यता कस केशी च तुरगाधम ।
अरिष्टश्च मदाविष्टो राजराज्य तत कुरु ॥३४
पितृष्वसरि जातस्ते ममाशोऽहमिव स्थित ।
स ते रक्ष्यश्च मान्यश्च सख्ये च विनियुज्यताम् ॥३५
त्वया ह्यनुगृहीत सन्तव वृत्तानुवर्तक ।
त्वद्वशे वर्त्तमानश्च प्राप्स्यते विपुल यश ॥३६
भारतस्य च वशस्य स वरिष्ठो धनुर्धर ।
भविष्यत्यनुरूपश्च त्वदृते न च रस्यते ॥३७
अर्जुन विद्धि मा कृष्ण मा चैवात्मनमात्मना ।
आत्मा तेऽह यथा शश्वत्तथैव तव सोऽर्जुन ॥३८
शक्रस्य वचन श्रुत्वा कृष्णो गोविन्दता गत ।
प्रीतेन मनसा युक्त प्रतिवाक्य जगाद ह ॥३९
प्रीतोऽस्मि दर्शनादेव तव शक्र शचीपते ।
यत्त्वयाऽभिहित चेद न किंचित्परिहास्यते ॥४०

तुम्हे कस, केशी और अरिष्ट को शीघ्र ही मारना है, फिर तुम सुख पूर्वक राज्य करना ॥ ३४ ॥ तुम्हारी बुआ कुन्ती ने मेरे अंश से अर्जुन नामक जो पुत्र प्राप्त किया है, तुम उसके साथ मित्रता रखना और और उसके रक्षक बने रहना। वह तुम्हारी सहायता से

शैशव में महान् यश को प्राप्त करेगा ॥३५-३६॥ भरतवंश में उसके जैसा महान् धनुर्धारी अन्य कोई नहीं होगा और तुम्हें छोड़कर वह एक क्षण को भी नहीं रह सकेगा ॥३७॥ हे कृष्ण ! तुम अर्जुन को मुझे ही समझना। जिस प्रकार मैं तुम्हारी आत्मा हूँ, उसी प्रकार अर्जुन भी है ॥३८॥ हे राजन् ! गोविन्द पद पर अभिषिक्त हुए श्रीकृष्ण को इन्द्र की बात सुनकर बड़ा हर्ष हुआ और वे कहने लगे—हे इन्द्र ! आपके दर्शन करके मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ हूँ। आपने जो कहा है, मैं उसे यथासम्भव पूर्ण करूँगा ॥३९-४०॥

जानामि भवतो भावं जानाम्यर्जुनसंभवम्।
जाने पितृष्वसारं च पाण्डोर्दयां महात्मनः ॥४१
युधिष्ठिरं च जानामि कुमारं धर्मनिर्मितम्।
भीमसेनं च जानामि वायोः संतानजं सुतम् ॥४२
अश्विभ्यां साधु जानामि सृष्टं पुत्रद्वयं शुभम्।
नकुलं सहदेवं च माद्रीकुक्षिगतावुभौ ॥४३
कानीनं चापि जानामि सवितुः प्रथमं सुतम्।
पितृष्वसरि पुत्रं वै प्रसूतं सूततां गतम् ॥४४
धार्तराष्ट्राश्च मे सर्वे विदिता युद्धकांक्षिणः।
पाण्डोरुपरमं चैव शापाशनिनिपातजम् ॥४५
तद्गच्छ त्रिदिवं शक्र सुखाय त्रिदिवौकसाम्।
नार्जुनस्य रिपुः कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥४६
अर्जुनार्थे च तान्सर्वान्पाण्डवानक्षतान्युधि।
कुन्त्या निर्यातयिष्यामि निवृत्ते भारते मृधे ॥४७
यच्च वक्ष्यति मां शक्र तनूजस्तव सोऽर्जुनः।
भृत्यवत्तत्करिष्यामि तव स्नेहेन यन्त्रितः ॥४८
सत्यसन्धस्य तच्छ्रुत्वा प्रियं प्रीतस्य भाषितम्।
कृष्णस्य साक्षात्त्रिदिवं जगाम त्रिदशेश्वरः ॥४९

मैं इस बात को जानता हूँ कि मेरी बुआ कुन्ती पाण्डु को ब्याही गई थीं, उनके आपके द्वारा अर्जुन हुआ ॥४१॥ धर्म के द्वारा युधिष्ठिर, पवन के

द्वारा भीम और अश्विनीकुमारों के द्वारा उनकी सहपत्नी माद्री से नकुल-सह
हुए हैं ॥४२-४३॥ कुन्ती का कानीन पुत्र कर्ण था, जो अब सूतपुत्र हो ग
॥४४॥ शाप के कारण महात्मा पाण्डु को तटस्थ बैठना पड़ा । उधर धृतरा
पुत्र दुर्योधन आदि युद्ध करना चाहते हैं ॥४५॥ इसलिये हे इन्द्र ! अब स्वर्ग
जाकर देवताओं का पालन करिये, जब तक मैं पृथिवी पर रहूँगा, तब त
अर्जुन को कोई भी तिरस्कृत न कर सकेगा ॥४६॥ सब पाण्डव भी अर्जुन
लिये ही रणभूमि में अक्षत देह से टिकने वाले होंगे । जब महाभारत युद्ध समा
हो जायगा तब मैं अर्जुन को कुन्ती को सौंप दूँगा ॥४७॥ आपके पुत्र अर्जु
की प्रत्येक इच्छा को मैं सदा सेवक समान पूर्ण करने के प्रयत्न में रहूँगा ॥४८
सत्य-प्रतिज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण के इन प्रकार मधुर वचनों को सुनकर देवरा
इन्द्र स्वधाम को पधारे ॥४९॥

॥ भगवान द्वारा अरिष्टासुर-वध ॥

प्रदोषार्द्धे कदाचित्तु कृष्णे रतिपरायणे ।
त्रासयन्समदो गोष्ठमरिष्टः प्रत्यदृश्यत ॥१
निर्वाणागारमेघाभस्तीक्ष्णशृङ्गोऽर्कलोचनः ।
क्षुरतीक्ष्णाग्रचरण. कालः काल इवापरः ॥२
लोलिहानः स निष्पेषं जिह्वयोष्ठौ पुनः पुन. ।
गर्वितो विद्धलाङ्गूलः कठिनस्कन्धबन्धन. ॥३
ककुदोदग्रनिर्माण प्रमाणाद्दुरतिक्रम. ।
शकृन्मूत्रोपलिप्ताङ्गो गवामुद्वेजनो भृशम् ॥४
शृङ्गप्रहरणो रौद्रः प्रहरन्गोषु दुर्मद. ।
गोष्ठेषु न रतिं लेभे विना युद्धेन गोवृष ॥५
मत्यचित्त्वयं पातास्य स वृषः केशवाग्रतः ।
आजगाम बलोदग्रो वैवस्वतवशे स्थित. ॥६
स तत्र गास्तु प्रसभं बाधमानो मदोत्कटः ।
चचार निर्भयं गोष्ठं निर्वत्सशिशुपुङ्गवम् ॥७
एतस्मिन्नेव काले तु गावः कृष्णसमीपगाः ।
आगमयामास दुष्टात्मा वैवस्वतवशे स्थितः ॥८

सेन्द्राशनिरिवाम्भोदो नर्दमानो महासुरः ।
तालशब्देन तं कृष्णः सिंहनादैश्च मोहयन् ॥९

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! एक दिन गो-धूलि के समय जब श्रीकृष्ण क्रीडा-रत थे, तब गौओं को भयभीत करता हुआ भयकर अरिष्टासुर ज मे आया ॥१॥ उसके देह का वर्ण बुझे हुए अङ्गार के समान काला था, सो सींगें अत्यन्त तीक्ष्ण, नेत्र सूर्य के समान लाल, सामने के पाँव छुरे के समान , ककुद अत्यन्त ऊँचा और पूँछ दर्प से घूमती हुई थी । उसका सम्पूर्ण देह गोबर में सना था । उसने आघात करके ही अनेक घरों के छप्पर आदि गिरा दिये थे । उसे देखते ही सब गौएँ भय के कारण काँपने लगी थी ॥२-४॥ सींग उसने गौओं, बछड़ों और बैलों को मार-मार कर गोष्ठ सूने कर दिये तब बची हुई गौएँ श्रीकृष्ण की शरण में गईं । तब वह दैत्य भगवान् से अभय कृष्ण उन गौओं को डराता हुआ घोर गर्जन करने लगा और धीरे-धीरे कृष्ण की ओर चला । उन्होंने ताली बजाते हुए सिंहनाद किया, जिससे वह मोहित हो गया ॥५-९॥

स कुक्षौ वृषभो दृष्टिं प्रणिधाय धृताननः ।
कृष्णस्य निधनाकांक्षी तूर्णमभ्युत्पपात ह ॥१०
तमापतन्तं प्रमुखे प्रतिजग्राह दुर्द्धरम् ।
कृष्णः कृष्णाञ्जननिभो वृषं प्रतिवृषोपमः ॥११
स ससक्तस्तु कृष्णो वै वृषेणेव महावृषः ।
मुमोच वक्त्रजं फेनं नस्तश्चाप सशब्दवत् ॥१२
तावन्योन्यावरुद्धाङ्गौ युद्धे कृष्णवृषावुभौ ।
रेजतुर्मेघसमये ससक्ताविव तोयदौ ॥१३
तस्य दर्पं बलं हत्वा कृत्वा शृंगान्तरे पदम् ।
आपीडयदरिष्टस्य कण्ठं क्लिन्नमिवाम्बरम् ॥१४
शृंगं चास्य पुनः सव्यमुत्पाट्य यमदण्डवत् ।
तेनैव प्राहरद्वक्त्रे स ममार भृशं हतः ॥१५

स भिन्नशृंगो भग्नास्यो भग्नस्कन्धश्च दानवः ।
पपात रुधिरोद्गारी साम्बुधारी इवाम्बुदः ॥१६
गोविन्देन हतं दृष्ट्वा दृप्तं वृषभदानवम् ।
साधु साध्विति भूतानि तत्कर्मास्याभितुष्टुवु ॥१७
स चोपेन्द्रो वृषं हत्वा कान्तचन्द्रे निशामुखे ।
अरविन्दाभनयनः पुनरेव ररास ह ॥१८
तेऽपि गोवृत्तयः सर्वे कृष्णं कमललोचनम् ।
उपासाचिरे हृष्टाः सर्वे शक्रमिवामराः ॥१९

तब श्रीकृष्ण का वध करने की कामना करता हुआ वह दैत्य जोर से उन पर झपटा, परन्तु उन्होंने उसके मुख का अगला भाग पकड़ लिया जिससे उसकी नासिका और मुख से स्राव होने लगा ॥१०-११-१२॥ फिर एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे, उस समय प्रतीत होता था कि दो बादल आपस में टकरा गये हैं ॥१३॥ इस प्रकार कुछ समय में ही उसके बल को नष्ट करके भगवान् ने उसके सींगों में अपना चरण फँसा कर गीले वस्त्र की तरह निचोड़ डाला ॥१४॥ फिर उन्होंने उसका दाँया सींग उखाड़ कर उसी से उसे मारा तब वह सींग, मुख और कन्धा आदि के क्षत-विक्षत होने पर मुख से रक्त वमन करता हुआ पृथिवी पर गिरकर समाप्त हो गया ॥१५-१६॥ उसे मृत्यु को प्राप्त हुआ देखकर सभी ब्रजवासी भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा करने लगे ॥१७॥ उस समय सायंकाल व्यतीत होकर चन्द्रोदय हो गया था। तब वे पद्मलोचन भगवान् वन में जाकर रास क्रीड़ा करने लगे ॥१८॥ इस प्रकार उन सब गोपों ने देवताओं द्वारा इन्द्र का स्तव करने के समान ही श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥१९॥

॥ श्रीकृष्ण को लाने को अक्रूर का प्रस्थान ॥

कृष्णं व्रजगतं श्रुत्वा वर्धमानमिवानलम् ।
उद्वेगमगमत्कंसः शङ्कमानस्ततो भयम् ॥१
पूतनायां हतायां च कालिये च पराजिते ।
धेनुके प्रलयं नीते प्रलम्बे च निपातिते ॥२

धृते गोवर्धने शैले विफले शक्रशासने ।
गोषु त्रातासु च तथा स्पृहणीयेन कर्मणा ॥३
ककुद्मिनि हतेऽरिष्टे गोपेषु मुदितेषु च ।
दृश्यमाने विनाशे च सन्निकृष्टे महाभये ॥४
कर्षणे वृक्षयोश्चैव बाल्येनाबालकर्मणा ।
अचिन्त्य कर्म तच्छ्रुत्वा वर्द्धमानेषु शत्रुषु ॥५
प्राप्तारिष्टमिवात्मानं मेने स मथुरेश्वर ।
विमनेन्द्रियभूतात्मा गतासुप्रतिमो बभौ ॥६

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! श्रीकृष्ण की विजय और उत्कर्ष सुनकर कंस को बड़ी व्याकुलता हुई ॥१॥ पूतना का वध, कालियनाग का दमन प्रलम्ब का संहार, धेनुक की मृत्यु, गिरि गोवर्धन धारण, इन्द्र की विफलता, गोरक्षा, यमलार्जुन वृक्षों का पतन और वृषभ रूपी अरिष्टासुर का हनन आदि को सुनकर मथुरेश कंस ने अपनी मृत्यु को निकट जानकर अपनी सुध गँवा दी और वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया ॥२-६॥

ततो ज्ञातीन्समानाय्य पितरं चोग्रशासनं ।
निशि स्तिमितमूकायां मथुरायां जनाधिप ॥७
वसुदेवं च देवाभं कङ्कं चाहूय यादवम् ।
सत्यकं दारुकं चैव कङ्कावरजमेव च ॥८
भोजं वैतरणं चैव विकद्रुं च महाबलम् ।
भयसख्यं च धर्मज्ञं विपृथुं च पृथुश्रियम् ॥९
बभ्रुं दानपतिं चैव कृतवर्माणमेव च ।
भूरितेजसमक्षोभ्यं भूरिश्रवसमेव च ॥१०
एतान्स यादवान्सर्वानाभाष्य शृणुतेति च ।
उग्रसेनसुतो राजा प्रोवाच मथुरेश्वर ॥११
भवन्तः सर्वकार्यज्ञा वेदेषु परिनिष्ठिताः ।
न्यायवृत्तान्तकुशलास्त्रिवर्गस्य प्रवर्तकाः ॥१२

वराङ्गानां च वर्तारो लोकस्य विबुधोपमाः ।
सरिव्रतास्तो महावृत्ते निष्कम्पा इव पर्वताः ॥१३
अदम्भवृत्तयः सर्वे सर्वे गुरुकुलोषिताः ।
राजमन्त्रधराः सर्वे सर्वे धनुषि पारगाः ॥१४

रात्रि का समय था, मथुरा की जनता सो रही थी, ऐसे में कंस बाप पिता, मधुपति, वसुदेव, कंक, सत्यक, दारुक, वैतरण, भीम, विकद्रु, मयेरव, विपृथु, अक्रूर, कृतवर्मा और अत्यन्त तेजस्वी भूरिश्रवा आदि को अपने पास बुला कर उनसे कहने लगा ॥७-११॥ आप सभी कार्य कुशल, वेदों में पारगत, सत्य का आचरण करने वाले तथा धर्म, अर्थ, काम रूपी त्रिवर्ग के प्रवर्तक हैं ॥१२॥ आप सर्वत्र अपने कर्त्तव्यों को देवताओं की तरह निभाते रहे और पर्वतों के समान अविचल रूप से सदाचरण रत रहे हैं ॥१३॥ आपने अभिमान-रहित हो कर गुरुकुल-वास किया है तथा आप मन्त्रणा-कुशल और धनुविद्या के विशेषज्ञ हैं ॥१४॥

एव भवत्सु युक्तेषु मम चित्तानुवर्तिषु ।
वर्द्धमानो ममानर्थो भवद्भिः किमुपेक्षितः ॥१५
एष कृष्ण इति ख्यातो नन्दगोपसुतो व्रजे ।
वर्द्धमान इवाम्भोधो मूलं न परिकृन्तति ॥१६
अनमात्यस्य शून्यस्य चारान्धस्य ममैव तु ।
कारणान्नन्दगोपस्य स सुतो गोपितो गृहे ॥१७
उपेक्षित इव व्याधिः पूर्यमाण इवाम्बुदः ।
नन्दमेघ इवोष्णान्ते स दुरात्मा विवर्द्धते ॥१८
प्रबन्धः कर्मणामेव तस्य गोव्रजवासिनः ।
सन्निकृष्टं भयं चैव केशिनो मम च ध्रुवम् ॥१९
भूतपूर्वश्च मे मृत्युः स नूनं पूर्वदैहिकः ।
युद्धाकाङ्क्षी च स यथा तिष्ठतीह ममाग्रतः ॥२०
नव च गोपत्वमशुभं मानुष्यं मृत्युदुर्बलम् ।
बक च देवप्रभावेण क्रीडितव्यं व्रजे मया ॥२१

-अहो नीचेन वपुषा च्छादयित्वाऽऽत्मनो वपुः ।
तोऽप्येष रमते देव- श्मशानस्य इवानलः ॥२२

इस प्रकार के आप जैसे मेरे अनुवर्तियों के रहते हुए भी मेरा शत्रु वृद्धि होता जा रहा है, फिर आप उसकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ? ॥१५॥ वैरी नन्द गोप का पुत्र समुद्र के समान दिनोदिन वृद्धि को प्राप्त होता मेरे मूल को ही नष्ट करने में लगा है ॥१६॥ मैं मन्त्रियों से और गुप्तचरों रहित हूँ इस प्रकार मेरी ही असावधानी से वसुदेव ने अपने उस पुत्र को नन्द-गोप के घर में भेज दिया था ॥१७॥ वह दुरात्मा कृष्ण बिना चिकित्सा के रोग, क्षुब्ध समुद्र और ग्रीष्मकाल की समाप्ति पर गर्जना करने वाले बादलों के समान ही बढ़ता जा रहा है ॥१८। उस गोप-बालक के कार्यों को देख-देख कर मुझे अपने और केशी के लिये भय उपस्थित हुआ दिखाई पड़ रहा है ॥१९॥ अब वह मेरे साथ युद्ध करने में तत्पर है तो वह अवश्य ही मेरे पहिले जन्म का काल ही होगा ॥२०॥ यदि यह बात न होती तो वह इस नाशवान मनुष्य देह को धारण करके साधारण गोप ही क्यों बनता ? और क्यों वह मेरे व्रज में देव-भाव से क्रीड़ा करता ? इसलिये मैं समझता हूँ कि श्मशान में जैसे अग्नि छिपी रहती है, वैसे ही कोई देवता अपने यथार्थ स्वरूप को छिपा कर छद्मवेश में विचरण कर रहा है ? ॥२१-२२॥

तदेव नूनं विष्णुर्वा शक्रो वा मरुतां पतिः ।
मत्साधनेच्छया प्राप्तो नारदो मां प्रयुक्तवान् ॥२३
अत्र मे शङ्कते बुद्धिर्वसुदेवं प्रति ध्रुवा ।
अस्य बुद्धिविशेषेण वयं कातरतां गताः ॥२४
अहं हि खट्वाङ्गवने नारदेन समागतः ।
द्वितीयं स हि मां विप्रः पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥२५
यस्त्वया हि कृतो यत्नः कंस गर्भकृते महान् ।
वसुदेवेन ते रात्रौ तत्कर्म विफलीकृतम् ॥२६
दारिका या त्वया रात्रौ शिलायां कंस पातिता ।
तां यशोदासुतां विद्धि कृष्णं च वसुदेवजम् ॥२७

वाच्यश्च नन्दगोपो वै करमादाय वार्षिकम् ।
शीघ्रमागच्छ नगरं गोपैः सह समन्वितः ॥३५
कृष्णसंकर्षणौ चैव वसुदेवसुतावुभौ ।
द्रष्टुमिच्छति वै कंसः सभृत्यः सपुरोहितः ॥३६

इस प्रकार नारद जी ने उस कृष्ण के अत्यन्त पराक्रम का वर्णन करते हुए यह भी कहा था बलराम के अतिरिक्त कृष्ण भी वसुदेव का ही पुत्र है ॥३०॥ वह वसुदेव तुम्हारा स्वाभाविक बाधव होते हुए भी तुम्हारा काल होगा। जिस प्रकार कौआ जिसके सिर पर बैठता है, उसके नेत्रों को निकाल लेता है, इसी प्रकार यह वसुदेव मेरे ही अन्न से पालित होकर मेरे ही सपरिवार मूलोच्छेदन में तत्पर है ॥३१-३२। हे दानपते ! हे अक्रूर ! अब तुम्ही उठो और कृष्ण बलराम के सहित नन्दादि कर दाता गोपों को शीघ्र ही यहाँ लिवा लाओ ॥३४॥ नन्द से कहना कि वार्षिक कर लेकर अन्यान्य गोपगण के सहित शीघ्र ही मथुरा चला आवे ॥३५॥ क्योंकि महाराज कंस अपने सेवकों और पुरोहितों के सहित वसुदेव के दोनों पुत्रों को देखने की इच्छा कर रहे हैं ॥३६॥

एतौ युद्धविदौ रङ्गे कालनिर्माणयोधिनौ ।
दृढौ च कृतिनौ चैव शृणोमि व्यायतोद्यमौ ॥३७
अस्माकमपि मल्लौ द्वौ सज्जौ युद्धकृतोत्सवौ ।
ताभ्यां सह नियोत्स्येते तौ युद्धकुशलावुभौ ॥३८
द्रष्टव्यौ च मयाऽवश्यं बालौ तावमरोपमौ ।
पितृष्वसुः सुतौ मुख्यौ व्रजवासौ वनेचरौ ॥३९
वक्तव्यं च व्रजे तस्मिन्समीपे व्रजवासिनाम् ।
राजा धनुर्मखं नाम कारयिष्यति वै सुखी ॥४०
सन्निकृष्टे वने ते तु निवसन्तु यथासुखम् ।
जनस्यामन्त्रितस्यार्थे यथा स्यात्सर्वमव्ययम् ॥४१
पयसः सर्पिषश्चैव दध्नो दध्युत्तरस्य च ।
यथाकामप्रदानाय सोऽद्य्राभिः प्रयताय च ॥४२

रात्रौ व्यावर्तितावेतौ गर्भौ तव वधाय वै ।
वसुदेवेन सधाय मित्ररूपेण शत्रुणा ॥२८
सा तु कन्या यशोदाया विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ।
हत्वा शुम्भनिशुम्भौ द्वौ दानवौ नगचारिणौ ॥२९

इससे जान पड़ता है कि नारद जी का कथन सत्य है, वही मेरा पूर्व शत्रु विष्णु या इन्द्र मुझे मारने के लिये भूतल पर अवतरित हुआ है ॥२३॥ इस विषय मे मैं वसुदेव के प्रति अत्यन्त शकावान् हूँ, इसी ने किसी प्रकार की धूर्तता का प्रयोग करके मुझे इस सकट मे डाल दिया है ॥२४॥ एक दिन इस बाग वन मे नारद जी ने मुझे बताया था कि तुम देवकी की सतानो को नष्ट करने का जो उपाय करते थे, उसे एक रात्रि मे वसुदेव ने विफल कर दिया ॥२५-२६॥ उस रात्रि मे तुमने जिस कन्या को पछाड़ा था वह यशोदा की है वसुदेव का पुत्र तो कृष्ण है ॥२७॥ तुम्हारे मित्र बने हुए वसुदेव ने ही परस्पर में षड्यन्त्र करके तुम्हारी हत्या के लिये दोनो गर्भों को परिवर्तित कर दिया था ॥२८॥ यशोदा की उस कन्या ने भी शुम्भ निशुम्भ की हत्या कर डाली और इस समय भी वह प्रमथ गणो के साथ विन्ध्याचल पर रह रही है ॥२९॥

अत्र मे नारद प्राह सुमहत्कर्मकारणम् ।
द्वितीयो वसुदेवाद्वै वासुदेवो भविष्यति ॥३०
स हि ते सहजो मृत्युर्बान्धवश्च भविष्यति ।
स एव वासुदेवो वै वसुदेवसुतो बली ॥३१
बान्धवो धर्मतो मह्य हृदयेनान्तको रिपु ।
यथा हि वायसो मूर्ध्नि पद्भ्या यस्यावतिष्ठति ॥३२
नेत्रे तुदति तस्यैव वक्त्रेणामिषगृद्धिना ।
वसुदेवस्तथैवाय सपुत्रज्ञातिबान्धव ।
छिनत्ति मम मूलानि भुङ्क्ते च मम पार्श्वत ॥३३
गच्छ दानपते क्षिप्त ताविहानयितु व्रजात् ।
नन्दगोप च गोराश्च करदान्मम शासनात् ॥३४

वाच्यश्च नन्दगोपो वै करमादाय वार्षिकम् ।
शीघ्रमागच्छ नगरं गोपैः सह समन्वितः ॥३५
कृष्णसङ्कर्षणौ चैव वसुदेवसुतावुभौ ।
द्रष्टुमिच्छति वै कंसः सभृत्यः सपुरोहितः ॥३६

इस प्रकार नारद जी ने उस कृष्ण के अत्यन्त पराक्रम का वर्णन करते हुए यह भी कहा था बलराम के अतिरिक्त कृष्ण भी वसुदेव का ही पुत्र है ॥३०॥ वह वसुदेव तुम्हारा स्वाभाविक बान्धव होते हुए भी तुम्हारा काल होगा। इस प्रकार कौआ जिसके सिर पर बैठता है, उसके नेत्रों को निकाल लेता है, उसी प्रकार यह वसुदेव मेरे ही अन्न से पालित होकर मेरे ही सपरिवार मूलोच्छेदन में तत्पर है ॥३१-३२॥ हे दानपते ! हे अक्रूर ! अब तुम्हीं उठो और कृष्ण-बलराम के सहित नन्दादि कर दाता गोपों को शीघ्र ही यहाँ लिवा लाओ ॥३४॥ नन्द से कहना कि वार्षिक कर लेकर अन्यान्य गोपगण के सहित शीघ्र ही मथुरा चला आवे ॥३५॥ क्योंकि महाराज कंस अपने सेवकों और पुरोहितों के सहित वसुदेव के दोनों पुत्रों को देखने की इच्छा कर रहे हैं ॥३६॥

एतौ युद्धविदौ रङ्गे कालनिर्माणयोधिनौ ।
दृढौ च कृतिनौ चैव शृणोमि व्यायतोद्यमौ ॥३७
अस्माकमपि मल्लौ द्वौ सज्जौ युद्धकृतोत्सवौ ।
ताभ्यां सह नियोत्स्येते तौ युद्धकुशलावुभौ ॥३८
द्रष्टव्यौ च मयाऽवश्य बालौ तावमरोपमौ ।
पितृष्वसुः सुतौ मुख्यौ व्रजवासौ वनेचरौ ॥३९
वक्तव्यं च व्रजे तस्मिन्समीपे व्रजवासिनाम् ।
राजा धनुर्मखं नाम कारयिष्यति वै सुखी ॥४०
सन्निकृष्टे वने ते तु निवसन्तु यथासुखम् ।
जनस्यामन्त्रितस्यार्थे यथा स्यात्सर्वमव्ययम् ॥४१
पयसः सर्पिषश्चैव दध्नो दध्युत्तरस्य च ।
यथावायप्रदानाय भोज्यादिश्रयणाय च ॥४२

अक्रूर गच्छ शीघ्रं त्वं तावानय ममाज्ञया ।
संकर्षणं च कृष्णं च द्रष्टुं कौतूहलं हि मे ॥४३

सुना है कि वे दोनों बालक युद्ध क्रीडा में अत्यन्त चतुर, दृढ़ शरीर के तथा अत्यन्त कौतुक करने वाले हैं ॥३७॥ मेरे यहाँ भी दो मल्ल अत्यन्त निपुण हैं, जब वे बालक यहाँ आजायेंगे तब मैं अपने मल्लों से उनकी कुश्ती कराऊंगा ॥३८॥ मैं उन देवताओं के समान सुन्दर बालकों को अपनी चचेरी बहिन के पुत्र होने के कारण भी देखने के लिये उत्सुक हूँ ॥३९॥ उन गोपों से यह भी कहना कि राजा ने धनुर्यज्ञ का आयोजन किया है ॥४०॥ वे यहाँ आकर नगर के निकटवर्ती वन में ठहरें और यज्ञ में आये हुए अतिथियों को किसी वस्तु की कमी न पड़ जाय, इसकी देख रेख भी उन्हें करनी है। इसलिये सभी पदार्थों को लेकर वे शीघ्र ही यहाँ उपस्थित हों ॥४१-४२॥ हे अक्रूर ! तुम शीघ्रता पूर्वक जाकर इन बालकों को यहाँ ले आओ, क्योंकि मुझे उन्हें देखने का अत्यन्त कुतूहल हो रहा है ॥४३॥

तयोरागमने प्रीतिः परमा मत्कृता भवेत् ।
दृष्ट्वा तु तौ महावीर्यौ तद्विधास्यामि यद्धितम् ॥४४
शासनं यदि वा श्रुत्वा मम तौ परिभाषितम् ।
नागच्छेतां यथाकालं निग्राह्यावपि तौ मम ॥४५
सान्त्वमेव तु बालेषु प्रधानं प्रथमो नयः ।
मधुरेणैव तौ मन्दौ स्वयमेवानयाशु वै ॥४६
अक्रूर कुरु मे प्रीतिमेतां परमदुर्लभाम् ।
यदि वा नोपजप्तोऽसि वसुदेवेन सुव्रत ॥४७
तथा कर्त्तव्यमेतद्धि यथा तावागमिष्यतः ।
एवमाक्षिप्यमाणोऽपि वसुदेवो वसूपमः ॥४८
सागराकारमात्मानं निष्प्रकम्पमधारयत् ।
वाग्दुष्टसंताड्यमानस्तु धर्षेणादीर्घदर्शिना ।
क्षमां मनसि संधाय नोत्तरं प्रत्यभाषत ॥४९

ये तु तं ददृशुस्तत्र क्षिप्यमाणमनेकधा ।
धिग्धिगित्यसकृत्त वै शनैरूचुरवाङ्मुखाः ॥५०
अक्रूरस्तु महातेजा जानन्दिव्येन चक्षुषा ।
जल दृष्ट्वेव तृषितः प्रीतिमानभूत् ॥५१
तस्मिन्नेव मुहूर्ते तु मथुरायाः स निर्ययौ ।
प्रीतिमान्पुण्डरीकाक्षं द्रष्टुं दानपतिः स्वयम् ॥५२

उनके आने से मुझे परम हर्ष होगा और तब मैं उन दोनो के प्रति जैसा उचित समझूँगा, वैसा ही करूँगा ॥४४॥ यदि मेरी आज्ञा पाकर भी यहाँ न आये तो उन्हें दण्डित किया जायगा ॥४५॥ वैसे बालकों को सामनीति से ही समझाना चाहिये, इसलिये मधुर वचनों से फुसला कर उन्हें ले आओ ॥४६॥ यदि तुम वसुदेव के पक्ष में न होगये हो तो मेरे इस प्रिय कार्य को शीघ्र ही सम्पन्न करो ॥४७॥ जिस उपाय से वे यहाँ आजायें, वही तुम्हें करना है । कंस के ऐसे आक्षेप युक्त वचनों को सुन कर भी वसुदेव मौन रहे ॥४८-४९॥ परन्तु, वहाँ उपस्थित व्यक्तियों ने कंस को इस प्रकार विक्षिप्तता पूर्वक प्रलाप करता देख कर सिर झुका लिया और अस्फुट शब्दों में कंस की निन्दा करने लगे ॥५०॥ दिव्य द्रष्टा अक्रूर भविष्य को जान कर अत्यन्त हर्षित हुए और जैसे प्यासा जीव जल को देख कर उतावला हो उठता है, वैसे ही व्रज को प्रस्थान करने के लिये उतावले हो गये ॥५१॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन की अभिलाषा करते हुए दानपति अक्रूर ने उसी समय व्रज के लिये प्रस्थान किया ॥५२॥

॥ श्रीकृष्ण द्वारा केशी-वध ॥

अक्रूरोऽपि यथाऽऽज्ञप्तः कृष्णदर्शनलालसः ।
जगाम रथमुख्येन मनसा तुल्यगामिना ॥१
कृष्णस्यापि निमित्तानि शुभान्यङ्गगतानि वै ।
पितृतुल्येन शंसन्ति बान्धवेन समागमम् ॥२
प्रागेव च नरेन्द्रेण माथुरेणोग्रसेनिना ।
केशिनः प्रेषितो दूतो वधायोपेन्द्रकारणात् ॥३

स च दूतवच श्रुत्वा केशी क्लेशकरो नृणाम् ।
वृन्दावनगतो गोपान्बाधते स्म दुरासद ॥४
तेन दुष्टप्रचारेण दूषित तद्वन महत् ।
न नृभिर्गोधनैर्वाऽपि सेव्यते वनवृत्तिभि ॥५
नि सपाल कृत पन्थास्तेन तद्विषयाश्रय ।
मदाच्चलितवृत्तेन नृमासान्यश्नता भृशम् ॥६

श्री वैशम्पायन जी ने कहा—इधर भगवान् कृष्ण के दर्शन की उत्कट करते हुए अक्रूर जी मन के समान द्रुतगामी रथ पर चढ कर चले ॥१॥ उन पिता के समान बाधव के मिलने की सम्भावना से श्रीकृष्ण को सभी शुभ लक्ष दिखाई दिये ॥२॥ उनसे पहिले ही मथुरापति कस ने श्रीकृष्ण को मारने आज्ञा देने के लिये अपने दूत को केशी दैत्य के पास भेजा ॥३॥ राजा की आ सुन कर केशी दैत्य शीघ्र ही वृन्दावन आकर गोपो और सब व्रजवासियों विविध प्रकार से सताने लगा ॥४॥ उस दुष्ट ने समस्त वन को नष्ट कर दि जिससे मनुष्यो और गौओ ने वहाँ जाना-आना छोड दिया । वह गर्वोन्मत्त प मनुष्य का मास खाता फिरता था । ५-६॥

नृशब्दानुसर क्रुद्ध स कदाचिद्वनागमे ।
जगाम घोषसवास चोदित कालधर्मणा ॥७
त दृष्ट्वा दुद्रुवुर्गोपा स्त्रियश्च शिशुभि सह ।
क्रन्दमाना जगन्नाथ कृष्ण नाथमुपाश्रिता ॥८
तासा रुदितशब्देन गोपाना क्रन्दितेन च ।
दत्त्वाऽभय तु कृष्णो वै केशिन सोऽभिदुद्रुवे ॥९
केशी चाप्युन्नतग्रीव प्रकाशदशनेक्षण ।
हेषमाणो जवोदग्रो गोविन्दाभिमुखो ययौ ॥१०
तमापतन्त सप्रेक्ष्य केशिन हयदानवम् ।
प्रत्युज्जगाम गोविन्दस्तोयद शशिन यथा ॥११
स ससक्तस्तु कृष्णेन केशी तुरगसत्तम ।
पूर्वाभ्या चरणाभ्या वै कृष्ण वक्षस्यताडयत् ॥१२

पुनः पुन. म च वली प्राहिणोत्पार्श्वत. खुरान् ।
कृष्णस्य दानवो घोरं प्रहारममितौजसः ॥१३
वक्त्रेण चास्य घोरेण तीक्ष्णदंष्ट्रायुधेन वै ।
अदशद्बाहुशिखरं कृष्णस्य रुषितो हय. ॥१४

काल की प्रेरणा से वह मनुष्यों के शब्द को सुनता हुआ उसी के लक्ष्य र ब्रज में जा पहुँचा ॥७॥ उसे देखते ही रोती-चीखती हुई गोपियाँ अपने-अपने ालकों को लेकर शीघ्रतापूर्वक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के शरणदाता श्रीहरि की शरण ं गईं ।८॥ गोपियों का क्रन्दन और गोपों की चीत्कार सुन कर भगवान् ने न्हें अभय प्रदान किया और केशी की ओर अग्रसर हुए ॥९॥ उसने भी जैसे ही न्हें अपनी ओर आता हुआ देखा, वैसे ही वह नेत्र फाड़े हुए घोर नाद करता ुआ उनकी ओर शीघ्रता से झपटा ॥१०॥ श्रीकृष्ण ने उसे अपनी ओर आता ख कर मेघ के चन्द्रमा के पास तेजी से जाने के समान छलांग लगाई और ुरन्त उनके सामने जा पहुँचे ॥११॥ जैसे ही दोनों का सामना हुआ, वैसे ही शी ने अपने अगले पाँव उठा कर श्रीकृष्ण के हृदय पर आघात किया । फिर ह उनके पार्श्व में बारम्बार प्रहार करने लगा और अवसर पाकर अपने तीक्ष्ण ाँतों से उनके हाथ को काट खाया ॥१२-१३-१४॥

उरस्तस्योरसा हन्तुमियेष बलवान्हय. ।
वेगेन वासुदेवस्य क्रोधाद्द्विगुणविक्रमः ॥१५
तस्योरिक्त्वस्य बलवान्कृष्णोऽप्यमितविक्रमः ।
बाहुमाभोगिनं कृत्वा मुखे क्रुद्धः समादधत् ॥१६
स तं बाहुमसक्तो वै खादितुं भेत्तुमेव च ।
दशनैर्मूलनिर्मुक्तैः सफेनं रुधिरं वमन् ॥१७
विपाटिताभ्यामोष्ठाभ्यां कटाभ्यां विदलीकृत. ।
अक्षिणी विवृते चक्रे विस्तृते मुक्तबन्धने ॥१८
निरस्तहनुराविष्ट शोणिताक्तविलोचन. ।
उत्कर्णो नष्टचेतस्तु स केशी चक्रवद्भ्रमन् ॥१९

उत्पतन्नसकृत्पादै शकृन्मूत्र समुत्सृजन् ।
खिन्नाङ्गरोमा श्रान्तस्तु निर्यत्नचरणोऽभवत् ॥२०

उस समय अत्यन्त रोष के कारण उसका बल बहुत बढ गया और उसने श्रीकृष्ण का हृदय विदीर्ण करने की इच्छा की ॥१५॥ तब महाप्रतापी भगवान् ने अपनी भुजा उसके मुख मे घुसा दी, जिसे न तो वह चबा सका। और न विदीर्ण कर सका। उल्टे उसी के दांत मसूड़े तक घिर गये और मुख से फेन मिश्रित रक्त प्रवाहित होने लगा ॥१६ १७॥ उसके ओष्ठ फट गये, कटि विदीर्ण हो गई और उसके नेत्र विकृत हो गये ॥१८॥ ठोडी फट गई, नेत्र लोहितमय हो गया, चेतना नष्ट हो गई और अग-अग तड़पने लगे ॥१९॥ फिर उठने की चेष्टा करके भी उठने मे सफल न हुआ, मल मूत्र निकलने से लिप्त हो गया, रोमावलि शिथिल हो गई, पसीने से लथ पथ होकर नितान्त क्लान्त हो गया और उसके पाँवों का हिलना डुलना भी बन्द हो गया ॥२०॥

व्यादितास्यो महारौद्र साऽसुर कृष्णबाहुना ।
निपपात यथा कृत्तो नागो हि द्विदलीकृत ॥२१
बाहुना कृत्तदेहस्य केशिनो रूपमाबभौ ।
पशोरिव महाघोर निहतस्य पिनाकिना ॥२२
द्विपादपृष्ठपुच्छार्द्धे श्रवणैकाक्षिनासिके ।
केशिनस्तद्द्विधाभूते द्वे चार्द्धे रेजतु क्षितौ ॥२३
केशिदन्तक्षतस्यापि कृष्णस्य शुशुभे भुज ।
वृद्धस्ताल इवारण्ये गजेन्द्रदशनाङ्कित ॥२४
स हत्वा केशिन युद्धे कल्पयित्वा च भागश ।
कृष्ण पद्मपलाशाक्षो हसस्तत्रैव तस्थिवान् ॥२५
स हत केशिन दृष्ट्वा गोपा गोपस्त्रियस्तथा ।
बभूवुर्मुदिता सर्वे हतविघ्ना हतक्लमा ॥२६
दामोदर तु श्रीमन्त यथास्थान यथावय ।
अभ्यनन्दन्प्रियैर्वाक्यै पूजयन्त पुन पुन ॥२७

।। अक्रूर द्वारा नाग लोक-वर्णन ।।

स नन्दगोपस्य गृहं प्रविष्टः सहकेशवः ।
गोपवृद्धान्समानीय प्रोवाच मितदक्षिणः ।।१
कृष्णं चैवाब्रवीत्प्रीत्या रौहिणेयेन सगतम् ।
श्वः पुरीं मथुरां तात गमिष्यामः सुखाय वै ।।२
यास्यन्ति च प्रजाः सर्वे गोपालाः सपरिग्रहाः ।
कंसाज्ञया समुचितं करमादाय वार्षिकम् ।।३
समृद्धस्तत्र कंसस्य भविष्यति धनुर्महः ।
तद्द्रक्ष्यथ समृद्धं च स्वजनैश्च समेष्यथ ।।४
पितरं वसुदेवं च सततं दुःखभाजनम् ।
दीनं पुत्रवधश्रान्तं युवामद्य समेष्यथ ।।५
सततं पीड्यमानं च कंसेनाशुभबुद्धिना ।
दशान्ते शोषितं वृद्धं दुःखैः शिथिलतां गतम् ।।६
कंसस्य भयसंत्रस्तं भवद्भ्यां च विनाकृतम् ।
दह्यमानं दिवा रात्रौ सोत्कण्ठेनान्तरात्मना ।।७
तां च द्रक्ष्यसि गोविन्द पुनैरमृदितस्तनीम् ।
देवकीं देवसकाशां सीदन्तीं विहतप्रभाम् ।।८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! गोपों और श्रीकृष्ण के साथ अक्रूरजी नन्दजी के घर पहुँचे और श्रीकृष्ण बलराम से प्रीतिपूर्वक बोले—हम कल मथुरा चलेंगे, वहाँ अत्यन्त आनन्द रहेगा। कंस की आज्ञा से सभी गोपजन उपहार सहित वार्षिक कर ले-लेकर हमारे साथ ही वहाँ पहुँचेंगे ।।१-३।। वहाँ धनुर्यज्ञ महोत्सव होगा, इस बहाने से तुम अपने अन्य बान्धवों से मिल लोगे ।।४।। वहीं तुम्हें तुम्हारे अत्यन्त दुःखित हृदय पिता वसुदेवजी भी मिल जायेंगे ।।५।। दुष्ट कंस उन्हें निरन्तर दुःख देता है, इससे वे और भी संतप्त होते हुए नितान्त दुर्बल हो गये हैं ।।६।। वे कंस के भय से सदा भीत रहते और तुम्हें न देखने से और भी चिन्ता ग्रस्त रहते हैं ।।७।। तुम्हारी देव-नारियों जैसी अत्यन्त सुकुमारी माता

होगया ॥१॥ पथिकों को उनके बांधवों के मिलन का सन्देश देते हुए पक्षिगण जब अपने निवास के लिये जाने लगे तभी दानपति अक्रूर व्रज में पहुँच गए ॥२॥ और वहाँ कृष्ण, बलराम और नन्द गोप के विषय मे उन्होने जानकारी प्राप्त की ॥३॥ उस समय उनका मुख खिला हुआ था और नेत्र अश्रुओं से परिपूर्ण थे ॥३॥ नन्द के घर मे जाकर उन्होने देखा कि गौओं के दोहन-स्थान पर बछड़ो के मध्य मे श्रीकृष्ण स्थित है। उन्हे देखते ही अत्यन्त आनंदित होते हुए अक्रूर ने उनसे कहा ॥४-५-६॥

एहि केशव तातेति प्रव्याहरत धर्मवित् ॥
उत्तानशायिनं दृष्ट्वा पुनर्दृष्ट्वा श्रिया वृतम् ॥७
अव्यक्तयौवनं कृष्णमक्रूर प्रशशंस ह ।
अयं स पुण्डरीकाक्षः सिंहशार्दूलविक्रमः ॥८
सम्पूर्णजलमेघाभः पर्वतप्रवराकृतिः ।
मृधेष्वधर्षणीयेन सश्रीवत्सेन वक्षसा ।
द्विषन्निधनदक्षाभ्यां भुजाभ्यां साधु भूषितः ॥९
मूर्तिमान्सरहस्यात्मा जगतोऽग्र्यस्य भाजनम् ।
गोपवेषधरो विष्णुरुदग्रायतनूरुहः ॥१०
किरीटलाञ्छनेनापि शिरसा छत्रवर्चसा ।
कुण्डलोत्तमयोग्याभ्यां श्रवणाभ्यां विभूषितः ॥११

हे केशव ! यहाँ आओ। फिर उन वट के पत्तो पर शयन करने वाले, अखिल ब्रह्माण्ड के सौन्दर्याश्रय एवं युवावस्था को प्राप्त होते हुए भगवान् को देख कर विचार करने लगे कि यही साक्षात् विष्णु है, इनका बल सिंह के समान, वर्ण सजल मेघ जैसा और आकार अत्यन्त ऊँचे पर्वत के तुल्य है तथा इन्हीं के वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न प्रतिष्ठित है और यह वैरियों को मारने में अद्वितीय है ॥७-८-९॥ जिन्हें अव्यय पुरुष कहा जाता है, यह वही हैं, सम्पूर्ण त्रैलोक्य इन्हीं का पूजन किया करता है। यही शीश पर मुकुट और श्वेत छत्र एवं कानों में श्रेष्ठ कुण्डल धारण किये रहते हैं ॥१०-११॥

।। अक्रूर द्वारा नाग लोक-वर्णन ।।

स नन्दगोपस्य गृहं प्रविष्टः सहकेशवः ।
गोपवृद्धान्समानीय प्रोवाच मितदक्षिण. ।।१
कृष्णं चैवाब्रवीत्प्रीत्या रौहिणेयेन सगतम् ।
श्वः पुरीं मथुरा तात गमिष्याम. सुखाय वै ।।२
यास्यन्ति च प्रजा. सर्वे गोपाला सपरिग्रहा. ।
कंसाज्ञया समुचितं करमादाय वार्षिकम् ।।३
समृद्धस्तत्र कसस्य भविष्यति धनुर्महः ।
तद्द्रक्ष्यथ समृद्धं च स्वजनंश्च समेष्यथ ।।४
पितरं वसुदेवं च सततं दुःखभाजनम् ।
दीनं पुत्रवधश्रान्तं युवामद्य समेष्यथ ।।५
सततं पीड्यमानं च कंसेनाशुभबुद्धिना ।
दशान्ते शोषितं वृद्धं दुःखं. शिथिलतां गतम् ।।६
कसस्य भयसन्त्रस्तं भवद्भ्यां च विनाकृतम् ।
दह्यमानं दिवा रात्रौ सोत्कण्ठेनान्तरात्मना ।।७
तां च द्रक्ष्यसि गोविन्द पुनेरमृदितस्तनीम् ।
देवकीं देवसकाशां सीदन्तीं विहतप्रभाम् ।।८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! गोपा और श्रीकृष्ण के साथ अक्रूरजी नन्दजी के घर पहुँचे और श्रीकृष्ण बलराम से प्रीतिपूर्वक बोले—हम कल मथुरा चलेंगे, वहाँ अत्यन्त आनन्द रहेगा। कस की आज्ञा से सभी गोपजन उपहार सहित वार्षिक कर ले-लेकर हमारे साथ ही वहाँ पहुँचेंगे ।।१-३।। वहाँ धनुर्यज्ञ महोत्सव होगा, इस बहाने से तुम अपने अन्य बान्धवों से मिल लोग ।।४।। वहीं तुम्हें तुम्हारे अत्यन्त दुःखित हृदय पिता वसुदेवजी भी मिल जायेंगे ।।५।। दुष्ट कंस उन्हें निरन्तर दुःख देता है, इससे वे और भी सतप्त होते हुए नितान्त दुर्बल हो गये हैं ।।६।। वे कस के भय से सदा भीत रहते और तुम्हें न देखने से और भी चिन्ता ग्रस्त रहते हैं ।।७।। तुम्हारी देव-नारियों जैसी अत्यन्त सुकुमारी माता

देवकी अपने किसी बालक को आज तक दूध न पिला सकी, इससे वह दा
हृदया अत्यन्त कान्तिहीन प्रतीत होती है ॥८॥

पुत्रशोकेन शुष्यन्ती त्वद्दर्शनपरायणाम् ।
वियोगशोकसतप्ता विवत्सामिव सौरभीम् ॥९
उपप्लुतेक्षणा दीना नित्य मलिनवाससम् ।
स्वर्भानुवदनग्रस्ता शशाकस्य प्रभामिव ॥१०
त्वद्दर्शनपरा नित्यं तवागमनकांक्षिणीम् ।
त्वत्प्रवृत्तेन शोकेन सीदन्ती वै तपस्विनीम् ॥११
कृष्ण सुविदितार्थो वै तमाहामितविक्रमम् ।
बाढमित्येव तेजस्वी न च क्रोधवश गत ॥१२
ते च गोपा समागम्य नन्दगोपपुरोगमा ।
अक्रूरवचन श्रुत्वा चेलु कसस्य शासनात् ॥१३
गमनाय च ते सज्जा बभूवुर्व्रजवासिन ।
सज्ज चोपायन कृत्वा गोपवृद्धा प्रतस्थिरे ॥१४
कर चानडुह सर्पिर्महिषाश्चोपनायकान् ।
यथासार यथायूथमुपानीय पयो घृतम् ॥१५
त सज्जयित्वा कसस्य कर चोपायनानि च ।
ते सर्वे गोपपतयो गमनायोपतस्थिरे ॥१६

वह तुम्हारे वियोग-दुःख में सदा अश्रुपात करती रहती है और बछ
के वियोग वाली गौ के समान पीड़ित है ॥९॥ उसके वस्त्र सदा मैले रहते
और राहु से ग्रसी हुई चाँदनी के समान सब प्रकार से मलीन रहती है ॥१०॥
वह तपस्विनी तुम्हारे शोक में क्षीण होती हुई तुम्हें देखने को लालायित है और
तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करती रहती है ॥११॥ वैशम्पायनजी ने कहा—
राजन्! अक्रूर की बातों को सब प्रकार समझकर भगवान् श्रीकृष्ण ने उन
अनुमोदन किया ॥१२॥ नन्दादि सभी गोपों ने अक्रूर के मुख से महाराज क
की आज्ञा सुनकर ही मथुरा चलने का विचार किया ॥१३॥ व तुरत ही

दही, घृत, महिष, बैल आदि के सहित वार्षिक कर लेकर मथुरा चलने को उद्यत हुए ॥१४-१५-१६॥

अक्रूरस्य कथाभिश्च सह कृष्णेन जाग्रतः ।
रौहिणेयतृतीयस्य सा निशा व्यत्यवर्तत ॥१७
ततः प्रभाते विमले पक्षिव्याहारसकुले ।
नैशाकरे रश्मिजाले क्षणदाक्षयसहृते ॥१८
नभस्यरुणयन्तीर्णे पर्यस्ते ज्योतिषां गणे ।
प्रत्यूषपवनासारैः क्लेदिते धरणीतले ॥१९
क्षीणाकारासु तारासु सुप्तनिष्प्रतिमासु च ।
नैशमन्तर्दधे रूपमुद्गच्छति दिवाकरे ॥२०
शीतांशुः शान्तकिरणो निष्प्रभः समपद्यत ।
एको नाशयते रूपमेको वर्द्धयते वपुः ॥२१
गोभिः समवकीर्णासु व्रजनिर्याणभूमिषु ।
मन्थानावर्तपूर्णेषु गर्गरेषु नदत्सु च ॥२२
दामभिर्दम्यमानेषु वत्सेषु तरुणेषु च ।
गोपैरापूर्यमाणासु घोषरथ्यासु सर्वशः ॥२३
तत्रैव गुरुकं भाण्डं शकटारोपितं महत् ।
त्वरिताः पृष्ठतः कृत्वा जग्मुः स्यन्दनराहनाः ॥२४
कृष्णोऽथ रौहिणेयश्च स चैवामितदक्षिणः ।
त्रयो रथगता जग्मुस्त्रिलोकपतयो यथा ॥२५
अथाह कृष्णमक्रूरो यमुनातीरमाश्रितः ।
स्यन्दनं चात्र रक्षस्व यत्नं च कुरु वाजिषु ॥२६
हयेभ्यो यवसं दत्त्वा हयभाण्डे रथे तथा ।
प्रगाढं यत्नमास्थाय क्षणं तात प्रतीक्ष्यताम् ॥२७
यमुनाया ह्रदे ह्यस्मिन्स्तोष्यामि भुजगेश्वरम् ।
दिव्यैर्भागवतैर्मन्त्रैः सर्वलोकप्रभुं यतः ॥२८

आस्तामा॰ समुदीक्षन्तौ भवन्तौ सगतावुभौ ।
निष्कृष्टो भुजगेन्द्रस्य यावदस्मि ह्रदोत्तमात् ।।२६

उधर कृष्ण, बलराम और अक्रूर तीनो ही ने विविध वार्तालाप करते हुए रात्रि-जागरण किया ।।१७।। जब प्रात.काल हो गया तब पक्षियों की कलरव ध्वनि आरम्भ हुई और चन्द्रमा की किरणें प्रभाहीन होगईं ।।१८।। आकाश में अरुणोदय की लाली छा गयी, तारागण छिप गये और शीत समीर प्रवाहित होने लगा ।।१६।। कुछ नक्षत्र छिप गये और कुछ निष्प्रभ हो गये, चन्द्रमा ने अपनी चाँदनी समेटी और सूर्य किरणें विस्तृत हो उठी ।।२०-२१।। व्रज के इधर उधर जाकर गौएँ चरने लगी और मथानी का शब्द सुनाई पड़ने लगा ।।२२।। युवावस्था वाले बछड़े खूँटो से बाँध दिये गये और व्रज के सब मार्गों पर गोपगण चलते हुए दिखाई पड़ने लगे ।।२३।। उस समय भारी बर्तनो में विविध सामग्री भर कर और उन्हें शकटो पर लाद कर गोपगण मथुरा की ओर चल दिये ।।२४।। बलराम, कृष्ण अक्रूर के रथ पर लोकपालो के समान आरूढ होकर चले ।।२५।। तब यमुना के किनारे पहुँच कर अक्रूर ने कहा— तुम यहाँ रह कर रथ और घोड़ों की रक्षा करो, घोड़ो को घास डाल देना और उनके आभूषणों को भी देखते रहना ।।२६-२७।। क्योंकि मैं यमुना जल में जाकर सर्पेश्वर के भगवान् का पूजन करूँगा ।।२८।। इसलिये जब तक मैं यहाँ लौटकर आऊँ तब तक तुम यहाँ रह कर मेरी प्रतीक्षा करना ।।२६।।

तमाह कृष्णः संहृष्टो गच्छ धर्मिष्ठ मा चिरम् ।
आवां खलु न शक्तौ स्वस्त्वया हीनावुपासितुम् ।।३०
स ह्रदे यमुनायास्तु ममज्जामितदक्षिणः ।
रसातले स ददृशे नागलोकमिमं यथा ।।३१
तस्य मध्ये सहस्रास्य हेमतालोच्छ्रितध्वजम् ।
लाङ्गलासक्तहस्ताग्र मुसलोपाश्रितोदरम् ।।३२
असिताम्बरसंवीत पाण्डुरं पाण्डुराननम् ।
कुण्डलैकधरं मत्त सुप्तमम्बुरुहेक्षणम् ।।३३

भोगोत्कगसने शुभ्रे स्वेन देहेन कल्पिते ।
स्वाहीनं स्वस्तिकाम्या च वराहाभ्या महीधरम् ॥३४
किंचित्सव्यापवृत्तेन मौलिना हेमचूलिना ।
जातरूपमयैः पद्मैर्मालयाऽऽच्छन्नवक्षसम् ॥३५
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गं दीर्घबाहुमरिंदमम् ।
पद्मनाभ सिताभ्राभं भामिज्वलिततेजसम् ॥३६
ददर्श भोगिना नाथ स्थितमेकार्णवेश्वरम् ।
पज्यमानं द्विजिह्वेन्द्रैर्वासुकिप्रमुखैः प्रभुम् ॥३७

अक्रूर की बात सुनकर भगवान् कृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—अच्छा, आप जाइये, परन्तु अधिक विलम्ब न करना ॥३०॥ तब अक्रूर ने यमुना तट पर जाकर जल में स्नान किया । उन्होंने देखा कि वे नागलोक में पहुँच गये हैं ॥३१॥ वहाँ हजार मस्तक वाले उन्नत ध्वजा युक्त, हल-मूसल धारण किये हुए, नीलाम्बर ओढ़े, एक कुण्डल से सुशोभित, पाण्डुर वर्ण वाले, मद से मत्त, अधखिले कमल जैसे नेत्र वाले, स्वस्तिक चिह्न धारी अनन्त भगवान् अपने मस्तक पर सम्पूर्ण पृथिवी को धारण किये हुए एक उज्ज्वल आसन पर प्रतिष्ठित थे ॥३२-३३-३४॥ उनका मुकुट बाईं ओर को कुछ-कुछ झुका था तथा उनके वक्षःस्थल पर सोने के कमल की माला सुशोभित थी ॥३५॥ उनके शरीर पर रक्त चन्दन लगा था, उनकी विशाल भुजाएँ, कमल के समान नाभि और जल रहित मेघ के समान अत्यन्त शुभ्र देह कान्ति थी ॥३६॥ वासुकि महा सर्प उन एकार्णवेश्वर भगवान् का निरन्तर पूजन कर रहे थे ॥३७॥

कम्बलाश्वतरौ नागौ तौ चामरकरावुभौ ।
अवीजयेतां तं देवं धर्मासनगतं प्रभुम् ॥३८
तस्याभ्याशगतो भाति वासुकिः पन्नगेश्वरः ।
वृतोऽन्यैः सचिवैः सर्वैः कर्कोटकपुरःसरैः ॥३९
तं घटैः काञ्चनैर्दिव्यैः पङ्कजच्छन्नमस्तकैः ।
राजानं स्नापयामासुः स्नातमेकार्णवाम्बुभिः ॥४०

तस्योरसङ्गे घनश्याम श्रीवत्साच्छादितोरसम् ।
पीताम्बरधर विष्णु सूपविष्ट ददर्श ह ॥४१
अपर चैव सोमेन तुल्यसहनन प्रभुम् ।
सकर्षणमिवासीन त दिव्य विष्टर विना ॥४२
स कृष्ण तत्र सहसा व्याहर्तुमुपचक्रमे ।
तस्य सस्तम्भयामास वाक्य कृष्ण स्वतेजसा ॥४३
सोऽनुभूय भुजगाना त भागवतमव्ययम् ।
उदतिष्ठत्पुनस्तोयाद्विस्मितोऽमितदक्षिण ॥४४
स तौ रथस्थावासीनौ तत्रैव बलकेशवौ ।
निरीक्षमाणावन्योन्य ददर्शाद्भुतरूपिणौ ॥४५

कम्बल और अश्वतर दो नाग-बन्धु उन पर चवर डुला रहे थे। वासुकी और कर्कोटक आदि नाग-सचिव उनके चारो ओर बैठे थे ॥३९॥ समुद्र के जल से भरे हुए और पद्म पुष्प से सजे हुए स्वर्ण घट से उन भगवान् का अभिषेक हुआ ॥४०॥ तदनन्तर अक्रूर ने देखा कि उन भग... निकट ही पीताम्बर धारी, मेघ-वर्ण, श्रीवत्स से अलंकृत श्रीकृष्ण के समान हे एक अन्य पुरुष विराजमान है ॥४१-४२॥ उस देखते ही अक्रूर उनसे कुछ पूछ को उद्यत हुए तभी उनकी वाक्शक्ति स्तंभित हो गई ॥४३॥ तब अक्रूर श्रीहरि को ही नागराज अनन्त समझा और आश्चर्य चकित मन से यमुना से निकल ॥४४॥ तब उन्होंने रथ की ओर दृष्टि डाल कर देखा तो व बलराम और कृष्ण को रथ पर बैठे रह कर एक-दूसरे की ओर देखे पाया ॥४५॥

अथामज्जत्पुनस्तत्र तदाऽक्रूर कुतूहलात् ।
ददृशे यत्र देवोऽसौ नीलवासा सितानन: ॥४६
तथैवासीनमुत्सङ्गे सहस्रास्यधरस्य वै ।
ददर्श कृष्णमक्रूर. पूज्यमान तदा प्रभुम् ॥४७
भूयस्च सहसोत्थाय स मन्त्र मनसा जपन् ।
रथ तत्रैव मार्गेण जगामामितदक्षिण ॥४८

तमाह केशवो दृष्टः स्थितमक्रूरमागतम् ।
कीदृश नागलोकस्य वृत्त भागवते ह्रदे ॥४६

चिर च भवता कालो व्याक्षेपेण विलम्बितः ।
मन्ये दृष्ट त्वयाऽऽश्चर्यं हृदय,ते यथा चलम् ॥५०

प्रत्युवाच स तं कृष्णमाश्चर्यं भवता विना ।
किं भविष्यति लोकेपु स्थावरेपु चरेपु च ॥५१

तन्नाश्चर्यं मय्या दृष्टं कृष्ण यद्‌भुवि दुर्लभम् ।
तदिहापि यथा तत्र पश्यामि च रमामि च ॥५२

सगतश्चापि लोकानामाश्चर्येणेह रूपिणा ।
अत· परतर कृष्ण नाश्चर्यं द्रष्टुमुत्सहे ॥५३

तदा गच्छ गमिष्यामः कंसराजपुरीं प्रभो ।
यावन्नास्त व्रजत्येपस्तमोहर्ता दिवाकरः ॥५४

इससे उनका विस्मय और भी बढ़ गया और उन्होने जल में पुनः गोता या तो जल मे जहाँ सहस्र मस्तक वाले अनन्त भगवान् विराजमान थे, वहाँ अब श्रीकृष्ण को ही विराजमान देखा ॥४६-४७॥ तब वे पुन. जल से निकले मन्त्र-जप करते हुए रथ के पास आगये ॥४८॥ उन्हें देख कर श्रीकृष्ण ने —यमुना-जल मे आपने ऐसा क्या देखा है जिससे आपके हृदय की चपलता बता रही है कि आपने कोई आश्चर्यजनक घटना देखी है ? फिर आपको विलम्ब भी बहुत हो गया ॥४६-५०॥ इस पर अक्रूर ने कहा—हे वत्स ! विश्व मे तुम्हारे अतिरिक्त कोई अन्य आश्चर्य है ही नही ॥५१॥ वहाँ जिस श्चर्यमयी घटना को मैंने वहाँ देखा था, उसे मैं इस समय भी यहाँ देख रहा ५२॥ मैं उस वि मयजनक वस्तु को मूर्त्त रूप मे देख कर इतना तन्मय हो या कि अब उससे अधिक किसी भी आश्चर्य को देखने की मुझे इच्छा हीं रही है ॥ ५३ ॥ अच्छा अब हमको चलना चाहिये, क्योंकि सूर्य के हुए ही हमें मथुरापुरी मे पहुँच जाना है ॥५४॥

।। श्रीकृष्ण द्वारा कंस के धनुष का टूटना ।।

ते तु युङ्क्त्वा रथवरं सर्वं एवामितौजसः ।
कृष्णेन सहिता. प्रायंस्तथा सङ्कर्षणेन च ।।१
आसेदुस्ते पुरीं रम्यां मथुरां कंसपालिताम् ।
विविशुस्ते पुरी रम्या काले रक्तदिवाकरे ।।२
तौ तु स्वभवनं वीरौ कृष्णसङ्कर्षणावुभौ ।
प्रवेशितौ बुद्धिमता ह्यक्रूरेणार्कवर्चसौ ।।३
तावाह वरवर्णाभौ भीतो दानपतिस्तदा ।
त्यक्तव्या तात गमने वसुदेवगृहे स्पृहा ।।४
युवयोर्हि कृते वृद्धः कंसेन स निरस्यते ।
भर्त्स्यते च दिवा रात्रौ नेह स्थातव्यमित्यपि ।।५
तद् युवाभ्यां हि कर्तव्यं पितुरस्य सुखमुत्तमम् ।
यथा सुखमवाप्नोति तद्वै कार्यं हितान्वितम् ।।६
तमुवाच ततः कृष्णो यास्यावावामतर्कितौ ।
प्रेक्षन्तौ मथुरां वीर राजमार्गं च धार्मिकम् ।
तस्यैव तु गृहं साधो गच्छावो यदि मन्यसे ।।७

वैशम्पायन जी ने कहा—फिर रथ को जोड़ कर अक्रूर बलर के सहित उस पर बैठ कर वहां से चले और सूर्यास्त होते-होते कंस द्वारा मथुरापुरी में जा पहुंचे ।।१-२।। सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी उन दोनों भा को साथ लिये हुए अक्रूर अपने घर में घुसे ।।३।। वहां उन दोनों को बातें कर उन्होंने कहा—अभी अपने पिता वसुदेव जी के यहां मत जाओ, क्योंकि तुम्हारे लिये ही कंस की ताड़ना सहन कर रहे हैं, इसलिये तुम्हारा वहां उचित नहीं होगा ।।४-५।। इसलिये, उनको सुख की प्राप्ति हो, वैसा कार्य यह सुन कर श्रीकृष्ण बोले कि यदि आपकी अनुज्ञा हो तो हम राजमार्गों के मथुरानगरी को देखते हुए महाराज कंस के भवन में ही चले जायें ।।६-७

अनुशिष्टौ च तौ वीरौ प्रस्थितौ प्रेक्षकावुभौ
आम्नानाभ्यामिवोत्पन्नौ कुञ्जरौ मदरक्षिणौ ।८

तौ तु मार्गगतं दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम् ।
अयाचेतां ततस्तौ तु वासांसि रुचिराणि वै ॥९
रजकः स तु तौ प्राह युवां कस्य वनेचरौ ।
राजवासांसि यौ मोह्याद्याचेतां निर्भयावुभौ ॥१०
अहं कंसस्य वासांसि नानादेशोद्भवानि वै ।
कामरागाणि शतशो रञ्जयामि विशेषतः ॥११
युवां कस्य वने जातौ मृगैः सह विवर्द्धितौ ।
जातरागाविदं दृष्ट्वा रक्तमाच्छादनं बहु ॥१२
अहो वा जीवितं त्यक्तं यौ भवन्ताविहागतौ ।
मूर्खौ प्राकृतविज्ञानौ वासो याचितुमिच्छथः ॥१३
तस्मै चुकोप वै कृष्णो रजकायालमेधसे ।
प्राप्तारिष्टाय मूर्खाय सृजते वाङ्मयं विषम् ॥१४
तलेनाशनिकल्पेन स तं मूर्द्धन्यताडयत् ।
स गतासुः पपातोर्व्यां रजको व्यस्तमस्तकः ॥१५

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! जैसे खभे से बँधा हुआ युद्धेच्छुक
[हा]थी बन्धन से छूटता है, वैसे ही कृष्ण और बलराम अक्रूर से आज्ञा लेकर नगरी
[क]ो देखने की इच्छा से चल दिये ॥८॥ फिर कुछ ही दूर जाने पर उन्हें एक
[व]स्त्र धोने वाला दिखाई दिया, जिससे उन्होंने सुन्दर वस्त्रों की माँग की ॥९॥
[उ]नके द्वारा वस्त्र माँगे जाने पर धोबी बोला कि तुम जबरन वनचर प्रतीत
[हो]ते हो, जो मूर्खता से राजा के वस्त्रों को माँगने हुए भी नहीं डर रहे हो ॥१०॥
[ना]ना देशों में निर्मित हुए विभिन्न प्रकार के वस्त्रों को महाराज कंस की रुचि
[के] अनुसार रँगना ही मेरा कार्य है ॥११॥ तुम वन में उत्पन्न होकर मृगों के
[सा]थ खेलते हुए ही वृद्धि को प्राप्त हुए हो, इसीलिये इन रंग-बिरंगे वस्त्रों को
[दे]ख कर इन पर मोहित हो गये हो ॥१२॥ तुम इतने मूर्ख और अज्ञानी हो कि
[रा]जा के वस्त्रों को माँग कर तुमने अपने जीवन को क्षीण बना दिया है ॥१३॥
[इ]स न्यून बुद्धि वाले धोबी ने कालवश ही भगवान् कृष्ण के प्रति ऐसे विषमय
[व]चन कहे, जिससे रुष्ट होकर उन्होंने एक थप्पड़ उसके सिर पर मारा। इस

प्रहार से उसका मस्तक विदीर्ण हो गया और प्राण-रहित होकर पृथिवी पर गिरा ॥१४-१५॥

त हृत परिदेवन्त्यो भार्यास्तस्य विचुक्रुशु ।
त्वरित मुक्तकेश्यश्च जग्मु कसनिवेशनम् ॥१६
तावप्युभौ सुवसनौ जग्मतुर्माल्यकारणात् ।
वीथी माल्यापणाना वै गन्धाघ्रातौ द्विपाविव ॥१७
गुणको नाम तत्रासीन्माल्यवृत्ति प्रियवद ।
प्रभूतमाल्यापणवॉल्लक्ष्मीवान्प्रियदर्शन ॥१८
त कृष्ण श्लक्ष्णया वाचा माल्यार्थमभिसृष्टया ।
देहीत्युवाच तत्काले मालाकारमकातरम् ॥१९
ताभ्या प्रीतो ददौ माल्य प्रभूत माल्यजीवन ।
भवतो स्वमिद चेति प्रोवाच प्रियदर्शनौ ॥२०
प्रीत सुमनसा कृष्णो गुणकाय वर ददौ ।
श्रीस्त्वा मत्समया सौम्य धनौघैरभिपत्स्यते ॥२१

इस प्रकार जब वह रजक मर गया, तब उसकी स्त्रियाँ करुण क्रोत क्रन्दन करती हुई महाराज कंस के भवन में गईं ॥१६॥ उधर श्रीकृष्ण-बलराम अपनी रुचि के अनुसार उन सुन्दर वस्त्रों को पहिन कर जहाँ माली रहते थे वहाँ एक सुगंधित माला की इच्छा से गये ॥ १७ ॥ वहाँ गुणक नामक सौभाग्यशाली माली निवास करता था ॥१८॥ उसके पास जाकर उन्होंने मधुर स्वर में माला देने के लिए कहा। माली ने कहा कि यह माला आपके लिए ही बनाई गई हैं, जो अच्छी लगे ले लीजिये। यह कह कर उसने मालाएँ उनके हाथ में दे दी ॥१९-२०॥ तब भगवान् ने प्रसन्न होते हुए उससे कहा—हे सौम्य ! तुम्हारे यहाँ धन सदैव भरा रहेगा और लक्ष्मी तुम पर कभी त्याग न करेगी ॥२१॥

स लब्ध्वा वरमव्यग्रो माल्यवृत्तिरधोमुख ।
कृष्णस्य पतितो मूर्ध्ना प्रतिजग्राह त वरम् ॥२२

यक्षाविमाविति तदा स मेने माल्यजीवकः ।
स भृश भयसंविग्नो नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥२३
वसुदेवसुतौ तौ च राजमार्गगतावुभौ ।
कुब्जा ददृशतुर्यु यः सानुलेपनभाजनाम् ॥२४
तामाह कृष्ण. कुब्जेति कस्येदमनुलेपनम् ।
नयस्यम्बुजपत्राक्षि क्षिप्रमाख्यातुमर्हसि ॥२५
सस्मिता समुन्नीभूत्वा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षणम् ।
कृष्ण जलदगम्भीर विद्युत्कुटिलगामिनी ॥२६
राज्ञः स्नानगृहं यामि तद्गृहाणानुलेपनम् ।
स्थिताऽस्म्यागच्छ भद्रं ते हृदयस्यासि मे प्रियः ॥२७
कुतश्चागम्यते सौम्य यस्मा त्व नावबुध्यसे ।
महाराजस्य दयिता नियुक्तामनुलेपने ॥२८

वरदान प्राप्त कर माली ने सिर झुका कर और उनके चरणों में पड़
र प्रणाम किया, परन्तु उसने उन दोनों को यक्ष समझ कर भय के कारण उन्हें
ई उत्तर नहीं दिया ॥२२-२३॥ तदनन्तर वे दोनों वसुदेव-पुत्र उसी राजमार्ग
आगे चले तो उन्हे एक कुबड़ी दिखाई दी, जिसके हाथ में चन्दन से परिपूर्ण
क बर्तन था ॥२४॥ उससे श्रीकृष्ण ने कहा—हे पद्मपत्राक्षि ! यह अनुलेपन
सके लिये ले जा रही हो ? ॥२५॥ इस पर विद्युत् के समान कुटिल गति
ली कुब्जा ने मुस्करा कर जलधर के समान गंभीर श्रीकृष्ण से कहा—यह
नुलेपन राजा कंस के स्नानागार में लिये जा रही हूँ, परन्तु तुम्हें देख कर मेरा
र तुम्हारी ओर आकर्षित हो उठा है, इसलिये तुम्हें जितना चन्दन चाहिये,
उना इसमें से ग्रहण करलो ॥२७॥ मैं महाराज के लिये श्रेष्ठ अनुलेपन बनाने
कार्य पर नियुक्त हूँ, मेरा चन्दन उन्हें बहुत प्रिय है, तुम मुझे नहीं जान पाये
बताओ कि कहाँ से चले आते हो ? ॥२८॥

तामुवाच हसन्नी तु कृष्णः कुब्जामवस्थिताम् ।
आवयोर्गात्रसदृशं दीयतामनुलेपनम् ॥२९

वय हि देशातिथयो मल्ला प्राप्ता वरानने ।
द्रष्टु धनुर्महं दिव्य राष्ट्रं चैव महर्द्धिमत् ॥३०
प्रत्युवाचाथ सा कृष्ण प्रियोऽसि मम दर्शने ।
राजार्हमिदमव्यग्र तद्गृहाणानुलेपनम् ॥३१
तावुभावनुलिप्ताङ्गौ चारुगात्रौ विरेजतु ।
तीर्थगो पङ्कदिग्धाङ्गौ यमुनाया यथा वृषौ ॥३२
ता च कुब्जा स्थगोर्मध्ये द्वयङ्गुलेनाग्रपाणिना ।
शनै सपीडयामास कृष्णो लीलाविधानवित् ॥३३
सा च मग्न स्थगु मत्वा स्वायताङ्गी शुचिस्मिता ।
जहासोच्चै स्तनतटा ऋजुयष्टिर्लता यथा ॥३४
प्रणयाच्चापि कृष्ण सा बभाषे मस्तक शिनी ।
क्व यास्यसि मया रुद्ध कान्त तिष्ठ गृहाण माम् ॥३५

तब श्रीकृष्ण बोले कि तुम हमारे प्रयोग के योग्य ही अनुलेपन हमें दो । हम यहाँ प्रथम बार आने वाले मल्ल है और राजा कस के इस वैभवशाली राज्य और धनुयज्ञ को देखने के निमित्त ही यहाँ आये हैं ॥२६ ३०॥ श्रीकृष्ण की बात सुन कर कुबडी ने कहा—तुम्हे देख कर मेरा देह हर्षित हो रहा है, इसलिए राजा के योग्य इस चदन को मैं तुम्हे दे रही हूँ ॥३१॥ तब दोनों भाइयो ने चदन लेकर अपने देह पर लगाया और कीच म सने हुए बैलों के समान शोभा पाने लगे ॥३२॥ तब देह विज्ञान को जानने वाले भगवान् ने अपनी दो अँगुलियो से कुब्जा के कूबड को दबा दिया जिससे उसका कूबड नष्ट हो गया और वह सीधी फैलने वाली लता के समान सुडौल अग वाली होकर उच्च स्वर से हास्य करती हुई श्रीकृष्ण का मार्ग रोक कर बोली—अब किधर जाते हैं ? हे कान्त ! अब तो मुझे ग्रहण कर लीजिये ॥३३-३५॥

तौ जातहासावन्योन्य सतलाक्षेपमव्ययौ ।
वीक्षमाणौ प्रहसितौ कुब्जाया श्रुतिविस्तरौ ॥३६
कृष्णस्तु कुब्जा कामार्तां सस्मित विससर्ज ह ।
नतस्नौ कुब्जया मुक्तौ प्रविष्टौ राजससदम् ॥३७

तावुभौ व्रजसवृद्धौ गोपवेषविभूषितौ ।
गूढचेष्टाननौ भूत्वा प्रविष्टौ नृपवेश्म तत् ॥३८
धनु शाला गतौ तत्र वालावपरितर्कितौ ।
हिमवद्वनसभूतौ सिंहाविव मदोत्कटौ ॥३९
दिदृक्षन्तौ महत्तत्र धनुरायागभूषितम् ।
पप्रच्छतुश्च तौ वीरावायुधागारिकं तदा ॥४०
भो कंसधनुषा पाल श्रूयतामावयोर्वच ।
कतरत्तद्धनु सौम्य महोऽस्य यस्य वर्तते । ४१
आयोगभूतं कंसस्य दर्शयस्व यदीच्छसि ।
स तयोर्दर्शयामास तद्धनु स्तम्भसन्निभम् ॥४२

उसके वचन सुन कर दोनों भाइयों को बड़ा आनन्द मिला और वे ताली बजा कर उसे देखने और उसकी प्रशंसा करने लगे ॥३६ । इसके पश्चात् उन्होंने हँस कर कुब्जा को विदा किया और स्वयं वहाँ से चल कर राजभवन में घुसे ॥३७ । वहाँ पहुँच कर वे दोनों भाई गोपवेष में ही जहाँ धनुष-यज्ञ होने को था, उस यज्ञशाला में धनुष को देखने की इच्छा से गये और वहाँ जाकर यज्ञशाला के रक्षक से पूछने लगे कि हे महाराज कंस के धनुषपाल ! जिस धनुष के लिये इस महोत्सव का आयोजन किया गया है, वह धनुष कौन-सा है ? ॥३७-४१॥ यदि आपको किसी प्रकार की आपत्ति न हो तो उस प्रसिद्ध धनुष के दर्शन हमें भी करा दीजिये । इस पर धनुष रक्षक ने वह खम्भे के समान मोटा धनुष उन्हें दिखला दिया । ४२॥

अनारोप्यमसभेद्य देवैरपि सवासवै ।
तद्गृहीत्वा तदा कृष्णस्तोलयामास वीर्यवान् ॥४३
दोर्भ्यां कमलपत्राक्ष प्रद्युम्नान्तेतरात्मना ।
तोलयित्वा यथाकामं तद्धनुर्दैत्यपूजितम् ॥४४
आरोपयामास तदा नामयामास चासकृत् ।
आनम्यमान क्रमेण प्रकर्षाद्दूरगोपमम ॥४५

द्विधाभूतममूमध्ये धनुरायोगभूषितम् ।
भङ्क्त्वा तु तद्धनु श्रेष्ठ कृष्णस्त्वरितविक्रमः ।
निश्चक्राम महावेग स च सकर्षणो युवा ॥४६
धनुषो भञ्जनादेन वायुनिर्घोषकारिणा ।
चचालान्त पुर सर्वं दिशश्चैव पुपूरिरे ॥४७
निर्गत्य त्वायुधागाराज्जग्मतुर्गोपसन्निधौ ।
वेगेनायुधपालस्तु गच्छन्त्र भ्रान्तमानस ।४८
समीप नृपतेर्गत्वा काकोच्छासोऽभ्यमापत ।
श्रूयता मम विज्ञाप्यमाश्चर्यं धनुषो गृहे ॥४९

उस धनुप को झुका कर उस पर प्रत्यचा चढाने म इन्द्रादि देवता भी समर्थ नही थे, परन्तु पद्मलोचन भगवान् श्रीकृष्ण ने हर्षित होकर उस सर्प के समान धनुप को उठा कर उस पर प्रत्यचा चढा दी और उसे बारम्बार खींचने लगे ॥४३-४५॥ परन्तु जैसे ही उस धनुप को किंचित् जोर लगा कर खींचा वैसे ही वह बीच मे से दो टूक हो गया । तब श्रीकृष्ण तत्काल ही अपने भाई बलराम जी के सहित यज्ञशाला से बाहर निकल आये ॥४६॥ उस धनुष के टूटने का जो भीपण शब्द हुआ, दसो दिशाएँ कम्पित हो उठी तथा राजा का सम्पूर्ण अन्त पुर थर्रा गया ॥४७॥ बलराम और कृष्ण वहाँ मे चल कर नन्दादि गोपो के पास पहुँचे । इधर धनुप रक्षक भयभीत होता हुआ कस के पास जाकर बोला कि हे महाराज ! अभी कुछ देर पहिले ही यज्ञशाला मे एक विस्मित करने वाली घटना हुई है, उसे सुनिये ॥४८-४९॥

निर्वृत्तमस्मिन्काले यज्जगत सभ्रमोपमम् ।
नरौ कस्याप्यसदृशौ शिखावितमूर्द्धजौ ॥५०
नीलपीताम्बरधरौ पीतश्वेतानुलेपनौ ।
तावन्त पुरमज्ञातौ प्रविष्टौ कामवेषिणौ ।
देवपुत्रोपमौ वीरौ बालाविव हुताशनौ ॥५१
स्थितौ धनुर्गृह सौम्यौ सहसा खादिवागतौ ।
मया दृष्टौ परिव्यक्त रुचिरच्छादनस्रजौ ॥५२

तयोरेकस्तु पद्माक्षः श्याम- पीताम्बरस्रजः ।
जग्राह तद्धनुरत्न दुर्ग्राह्य दैवतैरपि ॥५३
तच्च बालो महच्चाप बलाद्यन्त्रमिवायसम् ।
आरोपयित्वा वेगेन नामयामास लीलया ॥५४
आकृष्यमाण तत्तेन विवाण बाहुशालिना ।
मुष्टिदेशे विकूजित्वा द्विधाभूतमभज्यत ॥५५
ततः प्रज्वलिता भूमिर्नैव भाति च भास्करः ।
धनुषो भङ्गनादेन भ्रमतीव नभस्तलम् ॥५६

नीले और पीले वस्त्रों को धारण किये हुए, श्वेत तथा पीला चन्दन ाये, सिर पर लम्बी चुटिया रखे देवताओं के समान दो बालक न जाने किस ार यज्ञशाला मे घुस गये ॥५०-५१॥ उस समय यही लगता था कि वे स्वर्ग सीधे ही यज्ञशाला में आ गये हो । उनकी देह पर दिव्य वस्त्र तथा कठ में ्य मालाएँ सुशोभित थी ॥५२॥ उन दोनो मे से जो एक बालक श्याम वर्ण , पीताम्बरधारी और कमल दल जैसे नेत्र वाला था, उसने देवताओं के द्वारा न उठाये जाने योग्य उस भीषण धनुष को उठा कर लीलापूर्वक ही उस पर ्चा चढा दी ॥५३-५४॥ फिर उस बाण को चढाकर उसने वैसे ही खींच : देखा तभी वह धनुष भीषण शब्द करता हुआ टूट गया ॥५५॥ उस समय ्वी कम्पायमान हो उठी, आकाश घूमने लगा और सूर्य का प्रकाश भी क्षीण गया ॥५६॥

तदद्भुत महद्दृष्ट्वा विस्मयं परम गतः ।
भयाद्भयद शत्रूणा तदिहाख्यातुमागत. ।
न जानामि महाराज कौ तावमितविक्रमौ ॥५७
एकः कैलाससकाश एकोऽञ्जनगिरिप्रभः ।
स तु तच्चापरत्न व भङ्क्त्वा स्तम्भमिव द्विपः ॥५८
निष्पपातामितगति- सानुगोऽमितविक्रमः ।
अगमत्त द्विधा कृत्वा न जाने कोऽप्यसौ नृप ॥५९

श्रुत्वैव धनुषो भङ्ग कंसो विदितविस्तर ।
विसृज्यायुधपाल वै प्रविवेश गृहोत्तमम् ।।६०

इस विचित्र घटना से मुझे अत्यंत विस्मय हुआ है, मैं नहीं जानता कि वे ऐसे अद्भुत पराक्रम वाले कौन थे यही सब निवदन करने के लिये मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ।।५७।। उनमें से एक तो कैलाश के समान उज्ज्वल और दूसरा अंजन के समान काला था । हे महाराज ! जैसे हाथी किसी खम्भे को चीर कर चला जाय, वैसे ही वह श्याम वर्ण वाला बालक धनुष तोड़ कर अपने साथी के साथ न जाने कहाँ गया ।।५८-५९।। धनुष रक्षक से धनुष के टूटने का समाचार सुनकर कंस उसे जाने को कह कर अपने श्रेष्ठ भवन में प्रविष्ट हो गया ।।६०।

।। कुवलियापीड का वध ।।

तस्मिन्नहनि निवृत्ते द्वितीये समुपस्थिते ।
आपूर्यत महारंग पौरैर्युद्धदिदृक्षुभि ।।१
सचित्राष्टास्रिचरणा सार्गलद्वारवेदिका ।
सगवाक्षार्द्धचन्द्राश्च सुतल्पोत्तमभूषिता ।।२
प्राङ्मुखैश्चारुनिर्मुक्तैर्माल्यदशामावतंसितै ।
अलंकृतैर्विराजद्भि शारदैरिव तोयदै ।।३
मञ्चागारै सुनिर्युक्तैर्युद्धाय सुविभूषितै ।
समाजवाट शुशुभे समेघौघ इवार्णव ।।४
स्वकर्मद्रव्ययुक्ताभि पताकाभिर्निरन्तरम् ।
श्रेणीना च गणाना च मञ्चा भान्त्यचलोपमा ।।५
अन्त पुरचराणा च प्रेक्षागाराण्यनेकश ।
रेजु काचनचित्राणि रत्नज्वालाकुलानि च ।।६
तानि रत्नोपक्लृप्तानि सशानुप्रग्रहाणि च ।
रेजुर्जवनिकाक्षेपै सपक्षा इव ध नगा ।।७
तत्र चामरहारैश्च भूषणाना च सिञ्जितै ।
मणीना च विचित्राणा विचित्राश्चेरुरर्चिष ।।८

श्री वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! प्रातःकाल महोत्सव देखने के लिये सम्पूर्ण रंगभूमि दर्शकों से परिपूर्ण हो गई ॥१॥ सभा मंच विभिन्न चित्रों, स्तम्भों, वेदियों, अर्द्ध चन्द्र के आकार वाले झरोखों आदि के द्वारा सजे मंचों से युक्त सागर के समान प्रतीत होता था। माला आदि से अलंकृत और सूक्ष्म वस्त्रों से सुशोभित रानियों और श्रेष्ठ पहलवानों से परिपूर्ण रंगशाला शरदकाल के स्वच्छ आकाश जैसी लग रही थी ॥२-४॥ शिल्पकार द्वारा अंकित पताकाओं से सुशोभित रंग मंच पर्वत के समान प्रतीत होता था ॥५॥ अन्तःपुरवासिनी महिलाओं के लिये बनाये गये रत्नमय पताकाओं वाले स्थानों पर ... पड़े होने से वे आकाश में उड़ते हुए पंखधारी पर्वतों जैसे लगते थे ॥६॥ उन ... में चँवर, हार और विभिन्न आभूषणों के हिलने की ध्वनि और उज्ज्वल ... सुशोभित थी ॥७-८॥

सौवर्णाः पानकुम्भाश्च पानभूम्यश्च शोभिताः ।
फलावदशपूर्णाश्च चाग्रेयं पानयोजिताः ॥९
अन्ये च मञ्चा बहवः काष्ठसञ्चयवन्धनाः ।
रेजुः प्रस्तरणास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०
उत्तमागारिकाश्चैव सूक्ष्मजालावलोकिनः ।
स्त्रीणां प्रेक्षागृहा भान्ति राजहंसा इवाम्बरे ॥११
प्राङ्मुखश्चारुनिर्युक्तो मेरुश्रृङ्गसमप्रभः ।
रुक्मपक्षनिभस्तम्भश्चित्रनिर्योगशोभितः ॥१२
प्रेक्षागारः स कंसस्य प्रचकाशेऽधिकं श्रिया ।
शोभितो माल्यदामैश्च निवासकृतलक्षणः ॥१३
तस्मिन्नानाजनाकीर्णे जनौघप्रतिनादिते ।
समाजवाटे सस्तब्धे कम्पमानार्णवप्रभे ॥१४

मदिरा, जल और फलों के रसों से परिपूर्ण पात्र सब ओर रखे थे ॥९॥ ...कड़ों हजार पाषाण और काष्ठयुक्त मंच थे, जिनकी गणना करना अस... ॥१०॥ बने हुए सभा भवन के ऊपरी भाग में स्त्रियों के देखने के लिये, ... में हंस-समूहों के समान, झरोखों से युक्त कक्ष बने हुए थे ॥११॥ उन

सभी मचो के बीच मे जो कस का मच था, वह सूक्ष्म वस्त्रो, स्वर्ण स्तम्भो और अनेक प्रकार की मालाओ से सज कर पूर्व दिशा को प्रकाशित कर रहा ॥१२-१३॥ इस प्रकार असख्य जन-समूह के कोलाहल के कारण वह रंगशाला क्षुभित समुद्र के समान प्रतीत हो रहा था ॥१४॥

राजा कुवलयापीड समाजद्वारि कुञ्जरः ।
तिष्ठत्विति समाज्ञाप्य प्रेक्षागारमुपाययौ ॥१५
स शुक्ले वाससी बिभ्रच्छ्वेतव्यजनचामरः ।
शुशुभे श्वेतमुकुटः श्वेताभ्र इव चन्द्रमा. ॥१६
तस्य सिंहासनस्थस्य सुखासीनस्य धीमतः ।
रूपमप्रतिमं दृष्ट्वा पौराः प्रोचुर्जयाशिषः ॥१७
तत प्रविविशुर्मल्ला रंगमावलिताम्बराः ।
तिस्रश्च भागशः कक्षाः प्राविशन्बलशालिन. ॥१८
ततस्तूर्यनिनादेन क्ष्वेडितास्फोटितेन च ।
वसुदेवसुतौ हृष्टौ रंगद्वारमुपस्थितौ ॥१९
वल्गन्तौ बद्धमवीतौ सुरचन्दनभूषितौ ।
ऊर्ध्वापीडौ स्रगापीडौ बाहुशस्त्रकृतौ यमौ ।
आस्फोटयन्तावन्योऽन्यं बाहू चैवार्गलोपमौ ॥२०
तावापतन्तौ त्वरितौ प्रतिषिद्धौ वराननौ ।
तेन मत्तेन नागेन चोद्यमानेन वै भृशम् ॥२१
स मत्तहस्ती दुष्टात्मा कृत्वा कुण्डलिनं करम् ।
चकार चोदितो यत्नं निहन्तुं बलकेशवौ ॥२२

तभी राजा कस ने कुवलियापीड हाथी को रंगशाला के द्वार पर नियुक्त किया और स्वय अपने मंच में आया ॥१५॥ उस समय उसने श्वेत वस्त्र धारण कर रखे थे और वह श्वेत मुकुट, श्वेत चँवर और श्वेत ही पंखों से युक्त होने के कारण, उज्ज्वल मेघो मे उदित हुए चन्द्रमा के समान लग रहा था ॥१६॥ जब वह अपने सिंहासन पर विराजमान हो गया तब सभी पुरजन उसकी जय बोलते हुए आशीर्वाद देने लगे ॥१७॥ फिर स्वर्ण जटित वस्त्रों को पहिने हुए वीर म

तीन कक्षों को पार करके रंगशाला में आ गये ॥१८॥ उस समय तुरही आदि बाजे बजने लगे और मल्लों का ताल ठोकने का शब्द सुनायी पड़ने लगा। तभी वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण-बलराम भी हर्षित होते हुए रंगशाला के द्वार पर आ गये ॥१९॥ उस समय वे सुन्दर वस्त्रों को धारण किये और सुगन्धित अनुलेपन लगाये हुए थे। उनके सिर पर मुकुट, कंठ में हार और हाथों में शस्त्र थे और अर्गल के समान अपनी भुजाओं से ताल ठोकते थे ॥२०॥ उनके द्वार पर आते ही महावत ने हाथी को प्रेरित किया तब उसने उन दोनों भाइयों को आगे बढ़ने से रोका और मारने के लिये उद्यत हुआ ॥२१-२२॥

तत प्रहसितः कृष्णस्त्रास्यमानो गजेन वै ।
कंसस्य तन्मतं चैव जगर्हे स दुरात्मनः ॥२३
त्वरते खलु कं सोऽद्य गन्तुं वैवस्वतक्षयम् ।
यो मामनेन नागेन प्रधर्षयितुमिच्छति ॥२४
सन्निकृष्टे ततो नागे गर्जमाने यथा घने ।
सहसोत्पत्य गोविन्दश्चक्रे तालस्वनं प्रभुः ॥२५
क्ष्वेडितास्फोटितरवे कृत्वा नागस्य चाग्रतः ।
करं ससीकरं तस्य प्रतिजग्राह वक्षसा ॥२६
विषाणान्तरगो भूत्वा पुनश्चरणमध्यगः ।
बबाधे त गजं कृष्णः पवनस्तोयदं यथा ॥२७
सहस्ताग्राद्विनिष्क्रान्तो विषाणाग्राच्च दन्तिनः ।
विमुक्तः पादमध्याच्च कृष्णो द्विपमपोथयत् ॥२८

यह देखकर श्रीकृष्ण ने हँसते हुए सोचा कि यह पापी कंस अपने हाथी के द्वारा ही हमें मरवा देना चाहता है, तो अब उसका भी अंतिम समय आ ही गया समझो ॥२३-२४॥ इस प्रकार विचार करते हुए कृष्ण के निकट आते हुए हाथी ने मेघ के समान गर्जना की, तब कृष्ण ने उसके आक्रमण से बचकर ताल ठोकी ॥२५॥ फिर उन्होंने सिंहनाद कर ताली बजाई और उसके सामने जाकर सूँड पकड़ ली ॥२६॥ उसके पश्चात् उसके दाँतों और पाँवों के बीच में जाकर उन्होंने हाथी को इस प्रकार पीड़ित किया, जैसे वायु के द्वारा बादल पीड़ित होते

है ॥२७॥ इस प्रकार वे कभी उसकी सूँड पकड़ते, कभी दाँत को पीड़ित करते और कभी उसके पाँवो मे घुस कर प्रहार करते ॥२८॥

सोऽतिकायस्तु संमूढो हन्तुं कृष्णमशक्नुवन् ।
गज. स्वेष्वेव गात्रेषु मथ्यमानो ररास ह ॥२९
पपात भूमौ जानुभ्या दशनाभ्या तुतोद च ।
मद सुस्राव रोषाच्च घर्मापाये यथा घन. ॥३०
कृष्णस्तु तेन नागेन क्रीडित्वा शिशुलीलया ।
निधनाय मतिं चक्रे कंसद्विष्टेन चेतसा ॥३१
स तस्य प्रमुखे पाद कृत्वा कुम्भान्तरम् ।
दोर्भ्यां विषाणमुत्पाट्य तेनैव प्राहरत्तदा ॥३२
स तेन वज्रकल्पेन स्वेन दन्तेन कुञ्जरः ।
हन्यमान. शकृन्मूत्र मुमोचार्त्तो ररास ह ॥३३
कृष्णजर्जरितागस्य कुञ्जरस्यार्तचेतस ।
कटाभ्यामति सुस्राव वेगवद्भूरि शोणितम् ॥३४
लागूल चास्य वेगेन निश्चकर्ष हलायुध ।
शैलपृष्ठार्धसंलीनं वैनतेय इवोरगम् ॥३५

यह देखकर वह हाथी अपने ही शरीर की पीड़ा से व्याकुल होता हुआ चिघाडने लगा और कृष्ण को मारने की आशा को छोड बैठा ॥२९॥ तब वह घुटनो के बल बैठ कर पृथिवी को दाँतों से कुरेदने लगा, उस समय उसके मुख से मद निकलने लगा, जैसे वर्षा में मेघो से जल निकलता है ॥३०॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण ने उस हाथी के साथ कुछ समय तक क्रीडा की और फिर कंस के वैर को स्मरण कर उसे मारने को तत्पर हुए ॥३१॥ तब उन्होने अपना एक चरण उसके मस्तक पर और दूसरा मुख पर रख कर बलपूर्वक दोनों दाँत उखाड़ लिये और उन्ही दाँतो से उसे मारने लगे ॥३२॥ वज्र के समान अपने ही कठोर दाँतो के आघात से व्याकुल हुआ वह हाथी चीखता हुआ मल-मूत्र छोड़ने लगा ॥३३॥ भगवान् कृष्ण के द्वारा घायल हुए उस हाथी के देह से धारा प्रवाह रुधिर

[दे]ने लगा ॥३४॥ तभी गरुड़ द्वारा सर्प को खींचने के समान बलरामजी उसको [पूँछ] पकड़ कर पृथिवी पर घसीटने लगे ॥३५॥

तेनैव गजदन्तेन कृष्णो हत्वा तु दन्तिनम् ।
जघानैकप्रहारेण गजारोहणमुल्वणम् ॥३६
आर्तनाद महत्कृत्वा विदन्तो दन्तिना वरः ।
पपात स महामात्रो वज्रभिन्न इवाचलः ॥३७
ततस्तो तोरणाङ्गानि प्रगृह्य रणकर्कशौ ।
गजस्य पादरक्षाश्च जघ्नतु पुरुषर्षभौ ॥३८
ताश्च हत्वा विविशतुर्मध्यं रङ्गस्य तावुभौ ।
नासत्यावश्विनौ स्वर्गादवतीर्णाविवेच्छया ॥३९
वृष्ण्यन्धकाश्च भोजाश्च ददृशुर्वनमालिनौ ।
क्ष्वेडितोत्कृष्टनादेन वाह्वोरास्फोटितेन च
सिंहनादैश्च तालैश्च हर्षयामासतुर्जनम् ॥४०
तौ दृष्ट्वा भोजराजस्तु विषसाद वृथामतिः ।
पौराणामनुरागं च हर्षं चालक्ष्य भारत ॥४१
तं हत्वा पुण्डरीकाक्षो नदन्तं दन्तिना वरम् ।
अवतीर्णोऽर्णवाकारं समाजं सहपूर्वजः ॥४२

इस प्रकार हाथी को उसी के दाँत से अर्द्धमृत करके भगवान् ने उसके [महाव]त का भी वध कर दिया ॥३६॥ इन्द्र के वज्र से छिन्न-भिन्न पर्वत के समान ही दन्तविहीन कुवलयापीड अपने महावत के सहित चीत्कार करता [हुआ] मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥३७॥ तदनन्तर कृष्ण-बलराम ने तोरण-खण्डों से उस हाथी के समस्त रक्षकों को भी मार डाला ॥३८॥ फिर वे दोनों रंग-[भूमि]के भीतर प्रविष्ट हुए, उस समय वे ऐसे प्रतीत होते थे जैसे दोनों अश्विनी-[कुमा]र ही पृथिवी पर आ गये हों ॥३९॥ सभी यादवों ने रंगशाला में आये हुए वनमालाधारी दोनों बालकों के दर्शन किये और उनके सिंहनाद, करतल-[ध्वनि] तथा ताल ठोकने के शब्द से सबको आनन्द हुआ ॥४०॥ परन्तु उन बालकों [के प्र]ति नागरिकों की ऐसी सहानुभूति देखकर राजा कंस को अत्यन्त दुःख हुआ

॥४१॥ इस प्रकार अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ श्रीकृष्ण उस हाथी को म
समुद्र के समान उमड़ती हुई भीड़ वाले उस सभा भवन में पहुँच गये ॥४

॥ श्रीकृष्ण द्वारा कंस का वध ॥

प्रविशन्तं तु वेगेन मारुतावल्गिताम्बरम् ।
पूर्वजं पुरतः कृत्वा कृष्णं कमललोचनम् ॥१
गजदन्तकृतोल्लेखं सुभुजं देवकीसुतम् ।
युद्धसमर्दयोगेन मदेन रुधिरेण च ॥२
वल्गमानं यथा सिंहं व्यूहमानं यथा घनम् ।
बाहुशब्दप्रहारेण चालयन्तं वसुंधराम् ॥३
औग्रसेनिः समालोक्य दन्तिदन्तोद्यतायुधम् ।
कृष्णं भृशायस्तमुखः सरोषं समुदैक्षत ॥४
भुजासक्तेन शुशुभे गजदन्तेन केशवः ।
चन्द्रार्धबिम्बसंसक्तो यथैकशिखरो गिरिः ॥५
वल्गमाने तु गोविन्दे स रङ्गो रङ्गसागरः ।
जनौघप्रतिनादेन पूर्यमाण इवाबभौ ॥६
ततः क्रोधाभिताम्राक्षः कंसः परमरोषनः ।
चाणूरमादिशत्तत्र कृष्णस्य समराय तम् ॥७

अकेले कृष्ण ही सिंहनाद करते हुए फिर रहे थे, तो भी समस्त जन-समूह ही ...हिल करता-सा प्रतीत हो रहा था ॥६॥ तब क्रोध से रक्त नयन किए हुए ... ने महाबल और पराक्रम युक्त तथा छल कुशल चाणूर को कृष्ण से और ... आकार वाले मुष्टिक को बलराम से मल्ल युद्ध करने की आज्ञा दी ॥७-८॥

कंसेनापि समाज्ञप्तश्चाणूरः पूर्वमेव तु ।
योद्धव्यं सह कृष्णेन त्वया यत्नवतेति वै ॥९
स रोषेण तु चाणूरः कषायीकृतलोचनः ।
अभ्यावर्तत युद्धार्थमपां पूर्णो यथा घनः ॥१०
अवघुष्टे समाजे तु निःशब्दस्तिमिते जने ।
यादवाः सहितास्तत्र इदं वचनमब्रुवन् ॥११
बाहुयुद्धमिदं रंगे सप्राश्निकमकातरम् ।
क्रियाबलसमाज्ञातमशस्त्रं निर्मितं पुरा ॥१२
अद्भिश्चातिश्रमो नित्यं विनेयः कान्तदर्शिभिः ।
करीषेण च मल्लस्य सततं सत्क्रिया स्मृता ॥१३
स्थितो भूमिगतेनैव यो यथा मार्गतः स्थितः ।
संयुज्यतश्च पर्यायः प्राश्निकैः समुदाहृत. ॥१४
बालो वा यदि वा वृद्धो मध्यो वाऽपि कृशोऽपि वा ।
बलस्थो वा स्थितो रंगे ज्ञेयः कक्षान्तरेण वै ॥१५

पहिले से ही कृष्ण का वध करने विषयक आदेश को पाये हुए चाणूर ने ...धानी से युद्ध करने की, राजाज्ञा को सुनते ही रोषपूर्वक जलयुक्त मेघ के ...न वेग से आगे बढ़ कर कृष्ण को चुनौती दी ॥१०॥ परन्तु, कंस की आज्ञा ...कर सम्पूर्ण जन-समूह के स्तब्ध हो जाने पर सभी यादवों ने एक साथ ...—इस सभा में सभी के सामने किसी प्रकार का शस्त्र बल प्रयोग किये बिना ...केवल मल्ल-कौशल से बाहु युद्ध करने की बात है ॥११-१२॥ कुश्ती लड़ने ...से की थकान मिटाने के लिये बीच-बीच में जल और देह में उपलों का बुरादा ...ने की भी व्यवस्था है ॥१३॥ युद्ध के सही रूप में संचालन और निर्णय की ... हुआ बैठे हुओं की, खड़ा हुआ खड़े हुओं की, बालक-बालकों की,

बीच का बीच वाला की, निर्बल निर्बलो की, बली बलवानों की और वृद्ध की देख-भाल करेगा ॥१४-१५॥

वलतश्च क्रियातश्च बाहुयुद्धविशारदै ।
निपातानन्तर किञ्चिन्न कर्त्तव्य विजानता ॥१६
तदिद प्रस्तुत रगे युद्ध कृष्णान्ध्रमल्लयो ।
बाल कृष्णो महानन्ध्र कथ न स्याद्विचारणा ॥१७
ततः किलकिलाशब्द समाजे समवर्तत ।
प्रावल्गत च गोविन्दो वाक्य चेदमुवाच ह ॥१८
अह बालो महानन्ध्रो वपुषा पर्वतोपम ।
युद्ध ममानेन सह रोचते बाहुशालिना ॥१९
युद्धव्यतिक्रम कश्चिन्न भविष्यति मत्कृत ।
न ह्यह बाहुयोधाना दूषयिष्यामि यन्मतम् ॥२०

बल और कौशल का प्रदर्शन ही इसका प्रधान उद्देश्य है, इसम होकर पृथिवी पर गिरे मल्ल पर प्रहार नहीं किया जायगा ॥१६॥ कृष्ण चाणूर का जो युद्ध उपस्थित हुआ है, उसमे कृष्ण बालक और चाणूर देह वाला मल्ल है, इसलिये हम इस विषय म विचारपूर्वक कार्य करना ॥१७॥ इस प्रकार उस सभा मे अत्यन्त कोलाहल मचने लगा, तभी वहाँ हुए श्रीकृष्ण ने उच्च स्वर से कहा—यद्यपि मैं बालक और चाणूर पर्व मल्ल है, फिर भी मैंने इसके साथ युद्ध करना स्वीकार किया है ॥१८ मल्ल युद्ध के किसी भी नियम को नहीं तोड़ूँगा और मेरे द्वारा बाहु सिद्धान्त की किंचित् भी उपेक्षा नहीं होगी ॥२०॥

एव सजल्पतामेव ताभ्या युद्ध सुदारुणम् ।
उभाभ्याममवद्घोर वारणाभ्या यथा वने ॥२१
कृतप्रतिकृतैश्चित्रैर्बाहुभिश्च सघट्टनै ।
सन्निपातावधूतैश्च प्रमाथोन्मथनैस्तथा ॥२२
तावुभावपि सक्रिद्धौ यथा शैलमयौ तथा ।
क्षेपणैर्मुष्टिभिश्चैव वराहोद्धूतनिस्वनै ॥२

कीलवज्रनिपातैश्च प्रसृष्टाभिस्तथैव च ।
शलाकनखपातैः पादोद्धूतैश्च दारुणैः २४
जानुभिश्चाश्मनिर्घोषैः शिरोभिश्चावघट्टितः ।
तद्युद्धमभवद्घोरमशस्त्रं बाहुतेजसा ॥२५
बाहुप्राणेन शूराणां समाजोत्सवसन्निधौ ।
सरज्यत जनः सर्वः सोत्कृष्टनिनदोत्थितः ॥२६
साधुवादांश्च मञ्चेषु घोषयन्त्यपरे जना. ।
ततः प्रस्विन्नवदनः कृष्णे प्रणिहितेक्षणः ।
न्यवारयत तूर्याणि कंसः सव्येन पाणिना ॥२७
प्रतिषिद्धेषु तूर्येषु मृदङ्गादिषु तेषु वै ।
खे सगतान्यवाद्यन्त देवतूर्याण्यनेकशः ॥२८
युद्ध्यमाने हृषीकेशे पुण्डरीकनिभेक्षणे ।
स्वयमेव प्रवाद्यन्ते तूर्यघोषास्तुसर्वशः ॥२९

इस प्रकार की वार्ता के पश्चात् जैसे वन के मध्य दो हाथी भिड जाते हैं, वैसे ही कृष्ण और चाणूर के मध्य भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ ॥२१॥ परस्पर प्रहार और बचाव करते हुए कभी कोई नीचे गिरता कभी कोई मुक्का मारता, कभी छाती भिडा कर लडता, कभी पाँवो के बीच में पीडित करता और कभी कोई जोर से चीत्कार कर उठता ॥२२-२३॥ कभी कोई जानु प्रदेश को और कभी कोई पेट को पीडित करता, कभी कोई ललकारता और कभी कोई दूर फैंक देता ॥२४॥ यद्यपि उस समय शस्त्र का प्रयोग नहीं होरहा था, फिर भी ताल ठोकने का नाद वज्रपात जैसा प्रतीत होता था ॥२५॥ उन दोनो के इस प्रकार के कौशल को देखने के लिये दर्शक गण उठ-उठ कर खडे होते और उनके भुजबल को देख कर प्रसन्नता व्यक्त करते थे ॥२६॥ मचों पर बैठे हुए दर्शक उन दोनो की प्रशंसा कर रहे थे, उसी समय कंस ने कृष्ण की ओर देख कर बाजे वालो को बाजे बन्द कर देने का संकेत किया ॥२७॥ जब रंगशाला में बाजो का बजना बन्द होगया, तब आकाश में सब ओर स्थित हुए देवता दिव्य बाजे बजाने लगे ॥२८-२९॥

अन्तर्धानगता देवा विमानैं कामरूपिभि ।
चेरुर्विद्याधरैं सार्द्धं कृष्णस्य जयकाङ्क्षिण ॥३०
जयस्व कृष्ण चाणूर दानव मल्लरूपिणम् ।
इति सप्तर्षय सर्वे ऊचुश्चैव नभोगता ॥३१
चाणूरेण चिर काल क्रीडित्वा देवकीसुत ।
बलमाहारयामास कसस्याभावदर्शिवान् ॥३२
ततश्चचाल वसुधा मचाश्चैव जुघूर्णिरे ।
मुकुटाच्चापि कसस्य पपात मणिरुत्तम ॥३३
दोर्भ्यामानम्य कृष्णस्तु चाणूर शीर्णजीवितम् ।
प्राहरन्मुष्टिना मूर्ध्नि वक्षस्याहत्य जानुना ॥३४
नि सृते साश्रु रुधिरे तस्य नेत्रे सबन्धने ।
तापनीये यथा घण्टे कक्षोपरि विलम्बिते ॥३५

स्वेच्छानुसार रूप को धारण करने वाले देवगण श्रीकृष्ण की जीत की कामना करते हुए अप्रकट भाव से विचरण करने लगे ॥३०॥ उसी समय सप्तर्षियो ने श्रीकृष्ण से कहा—हे कृष्ण ! अब इस मल्ल रूप धारी चाणूर नाम दैत्य को परास्त करो ॥३१॥ तब श्रीकृष्ण ने बहुत देर से बाल क्रीडा करने के उपरान्त अपने यथार्थ बल को प्रकट करके चाणूर का बल क्षीण कर दिया ॥३२॥ उस समय पृथिवी काँप उठी, रगभूमि के सभी मच हिलने लगे और कस के सिर पर स्थित हुए मुकुट का एक मणि उसमे से निकल पड़ा ॥३३॥ तभी श्रीकृष्ण ने चाणूर को अपनी भुजाओ से नीचे की ओर झुका कर उसके हृदय को घुटनो से मर्दित किया और मस्तक पर कठोर मुक्का मारा ॥३४॥ इस प्रहार से तोरण पर लटके हुए स्वर्णिम घन्टो के समान उसके अश्रुओं और रुधिर स भरे हुए दोनो नेत्र बाहर निकल आय ॥३५॥

पपात स तु रगस्य मध्ये निसृतलोचन ।
चाणूरो विगतप्राणो जीवितान्ते महीतले ॥३६
देहेन तस्य मल्लस्य चाणूरस्य गतायुष ।
सन्निरुद्धो महारग स शैलेनेव लक्ष्यते ॥३७

रौहिणेयो हते तस्मिंश्चाणूरे बलदर्पिते ।
जग्राह मुष्टिकं रंगे कृष्णस्तोशलकं पुनः ॥३८
सन्निपाते तु तौ मल्लौ प्रथमे क्रोधमूर्च्छितौ ।
समेयातां रामकृष्णौ कालस्य वशवर्तिनौ ॥३९
निर्घातावनतौ भूत्वा रंगमध्ये ववल्गतुः ।
कृष्णस्तोशलमुद्यम्य गिरिशृंगोपमं बली ।
भ्रामयित्वा शतगुणं निष्पिपेष महीतले ॥४०
तस्य कृष्णाभिपन्नस्य पीडितस्य बलीयसः ।
मुखाद्रुधिरमत्यर्थमुज्जगाम मुमूर्षतः ॥४१
सकर्षणस्तु सुचिरं योधयित्वा महाबलः ।
अन्ध्रमल्लं महामल्लो मंडलानि व्यदर्शयत् ॥४२

ऐसा होने पर चाणूर के प्राण उड़ गये और उसके पर्वताकार मृतदेह
[से अ]खाड़ा भर गया ।।३६-३७।। इस प्रकार चाणूर मर गया बलराम मुष्टिक
[से भि]ड़े हुए थे और कृष्ण भी तोशल से युद्ध करने लगे ।।३८।। काल के वश
[में प]ड़े हुए वे दोनों मल्ल अत्यन्त उत्साह प्रदर्शित करते हुए ताल ठोंक कर
[पैतरे] बदलते थे ।।३९।। फिर श्रीकृष्ण ने पर्वत शिखर के महान आकार वाले
[तोश]ल के पैर पकड़ कर उसे सौ बार घुमा कर जोर से पृथिवी पर दे मारा
[।।४]०।। इस प्रकार कृष्ण द्वारा दे मारने पर तोशल अपने मुख से रुधिर-वमन
[कर]ने लगा ।।४१।। मुष्टिक के साथ युद्ध करते हुए बलरामजी ने भी बहुत देर
[तक] उसके साथ बाल-क्रीड़ा की ।।४२।।

मुष्टिनैकेन तेजस्वी साशनिस्तनयित्नुना ।
शिरस्यभ्यहनद्वीरो वज्रेणेव महागिरिम् ॥४३
स निष्पतितमस्तिष्को विस्रस्तनयनो महान् ।
पपात निहतस्तेन ततो नादो महानभूत् ॥४४
अन्ध्रतोशलकौ हत्वा कृष्णसंकर्षणावुभौ ।
क्रोधसंरक्तनयनौ रंगमध्ये ववल्गतुः ॥४५

समाजवाटो निर्मल्त: सोऽभवद्भीमदर्शन. ।
अन्धे तदा महामल्ले मुष्टिके च निपातिते ॥४६
ये च सप्रेक्षका गोपा नन्दगोपपुरोगमा: ।
भयक्षोभितसर्वांगा: सर्वे तत्रावतस्थिरे ॥४७
हर्षज वारि नेत्राभ्या वर्षमाणा प्रवेपती ।
प्रस्रवोत्पीडिता कृष्णं देवकी समुदैक्षत ॥४८
कृष्णदर्शनजातेन बाष्पेणाकुलितेक्षणा ।
वसुदेवो जरा त्यक्त्वा स्नेहेन तरुणायते ॥४६

फिर जैसे वज्र के प्रहार से पर्वत विदीर्ण हो जाता है, वैसे ही उ
घूँसे का भीषण प्रहार का मुष्टिक का मस्तक चूर-चूर कर दिया ॥४३॥
उसका मस्तिष्क बाहर निकल पड़ा, ग्रीवा एक ओर को लुढ़क गई,
निकल आई और वह एक भीषण धमाके के शब्द के साथ मर कर पृ
पर गिर गया ॥४४॥ इस प्रकार कृष्ण बलराम तोशल और मुष्टिक क
करके उसी रंगशाला मे घूमने लगे ॥४५॥ महामल्ल मुष्टिक और तोशल
मृत्यु होने पर सब पहलवान भाग गये और वह अखाड़ा भयंकर प्रतीत
लगा ॥४६॥ नन्दादि सब गोप उस मल्ल युद्ध को देख कर भयभीत हुए
के अवलम्बन पूर्वक अपने-अपने स्थान पर बैठे रहे ॥४७॥ उस समय देवकी
नेत्रो से आँसुओ की धारा निकलने लगी और वह कम्पित देह से कृष्ण को नि
रने लगी ॥४८॥ वसुदेव की भी आँखें भर आई और उस समय वे
वृद्धावस्था मे भी तरुणाई का अनुभव करने लगे ॥४६॥

वारमुख्यश्च ता: सर्वा: कृष्णस्य मुखपंकजम् ।
पपुर्हि नेत्रभ्रमरैर्निमेषान्तरगामिभि: ॥५०
कंसस्याथ मुखे स्वेदो भ्रूभेदान्तरगोचर: ।
अभवद्रोषनिर्यास: कृष्णसदर्शनेरित: ५१
केशवायसधूमेन रोषनिश्वासवायुना ।
दीप्तमन्तर्गत तस्य हृदयं मानसाग्निना ॥५२

क्षिप्ते पितरि चुक्रोध नन्दगोपे च केशवः ।
ज्ञातीना च व्यथा दृष्ट्वा विसञ्ज्ञां चैव देवकीम् ।।६१
स सिंह इव वेगेन केशवो जातविक्रमः ।
आरुरुक्षुर्महाबाहुः कंसनाशार्थमच्युतः ।।६२
रङ्गमध्यादुत्पपात कृष्णः कंसासनान्तिकम् ।
असज्जद्वायुनाक्षिप्तो यथा खस्थो घनाघनः ।।६३

मेरे अनिष्टचिंतक नंद गोप को पकड़ कर इसके पाँवों में लोहे की जंजीरें कस दो ।।५७।। यह दुर्वृत्ति वाला वसुदेव भी मेरे अहित की कामना करता है, इसलिये इसे भी पकड़ कर दण्डित करो ।।५८।। कृष्ण के अनुयायी जो भी गोपगण हैं, उन सभी के गवादि धन और रत्नादि सम्पत्ति को छीन लो ।।५९।। महीप अपने सेवकों को इस प्रकार आज्ञा दे ही रहा था, तभी श्रीकृष्ण [illegible] आई दोनों नेत्रों से कंस की ओर देखते हुए उसे घूरा ।।६०।। उन्होंने जब [illegible] प्रकार पिता वसुदेवजी तथा नन्द गोप को तिरस्कृत, बांधवों को व्यथित और [illegible] देवकी को निश्चेष्ट होते हुए देखा तो वे अत्यन्त क्रोध में भर गये ।।६१।। तब वे महाबाहु और सिंह के समान पराक्रमी कृष्ण कंस को मारने के लिये उतावले हो गये ।।६२।। जैसे वायु की प्रेरणा से मेघ वेग पूर्वक चलता है, वैसे ही वेग से उछलते हुए श्रीकृष्ण कंस के पास जा पहुँचे ।। ६३ ।।

ददृशुर्न हि त सर्वे रङ्गमध्यादवप्लुतम् ।
केवल कंसपार्श्वस्थं ददृशुः पुरवासिनः ।।६४
सोऽपि त्रस्तस्तथाऽऽयस्तः परीतः कालधर्मणा ।
आकाशादिव गोविन्दं मेने तत्रागतं प्रभुम् ।।६५
स कृष्णेनायतं कृत्वा बाहुं परिघसन्निभम् ।
मूर्द्धजेषु परामृष्टः कंसो वै रङ्गसंसदि ।।६६
मुकुटश्चापतत्तस्य काञ्चनो वज्रभूषितः ।
शिरसस्तस्य कृष्णेन परामृष्टस्य पाणिना ।।६७

स हस्तग्रस्तकेशश्च कंसो निर्यत्नतां गतः ।
तथैव च विसमूढो वैक्लव्यं समपद्यत ॥६८
निगृहीतश्च केशेषु गतासुरिव निःश्वसन् ।
न शशाक मुखं द्रष्टुं कंसः कृष्णस्य वै तदा ॥६९
विकुण्डलाभ्यां कर्णाभ्यां छिन्नहारेण वक्षसा ।
प्रलम्बाभ्यां च बाहुभ्यां गात्रैर्विसृतभूषणैः ॥७०
स्रंशितेनोत्तरीयेण सहसावलितानन' ।
चेष्टमानः समाक्षिप्तः कंसः कार्ष्णेन तेजसा ॥७१
चकर्ष च महारंगे मञ्चान्निष्क्रम्य केशवः ।
केशेषु तं बलाद्गृह्य कंसं क्लेशार्हतां गतम् ॥७२
कृष्यमाणः स कृष्णेन भोजराजो महाद्युतिः ।
समाजवाटे परिखां देहकृष्टां चकार ह ॥७३
समाजवाटे क्रीडित्वा विकृष्य च गतायुषम् ।
कृष्णो विसर्जयामास कंसदेहमदूरतः ॥७४

दर्शकों ने उन्हें वहाँ जाते हुए तो नहीं देखा, परन्तु जब वे कंस के पास जा पहुँचे तभी उन्हे देख सके ॥६४॥ कंस ने भी उस समय व्याकुल और शंकित हृदय से श्रीकृष्ण को विष्णु के ही साक्षात् रूप में आना समझा ॥६५॥ फिर श्रीकृष्ण ने परिघ के समान अपने बाहुओं को फैला कर तुरन्त ही कंस के केश पकड़ कर उसे खींच लिया ॥६६॥ इस प्रकार खींचे जाने से उसके मस्तक का हीरों का मुकुट पृथिवी पर जा गिरा ॥६७॥ केशमात्र खिंचने पर ही मरणासन्न हुआ कंस चेष्टा-रहित, विमूढ और विह्वल होकर दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगा। उस समय कृष्ण के मुख की ओर देखने में भी वह असमर्थ रहा ॥६८-६९॥ उसके कानों से कुण्डल उतर गये, हृदय का हार टूट गया और सभी आभूषण शरीर से गिर गये तथा दोनों भुजाएँ भी पृथिवी की ओर लटक पड़ीं ॥७०॥ तभी श्रीकृष्ण ने उसके कंठ में उत्तरीय डाल कर उसे मंच से खींच लिया और पृथिवी पर पटक कर घसीटने लगे ॥७१-७२॥ इस प्रकार देह के घसीटे जाने से पृथिवी पर खाई जैसी रेखा बन गई ॥७३॥ श्रीकृष्ण ने इस

प्रकार लीलापूर्वक ही कंस को मार कर उसके देह को वहीं पटक दि
॥ ७४ ॥

॥उग्रसेन अभिषेक वर्णन ॥

उग्रसेनस्तु कृष्णस्य समीपं दुःखितो ययौ ।
पुत्रशोकाभिसतप्तो विषपीत इव श्वसन् ॥१
स ददर्श गृहे कृष्णं यादवैः परिवारितम् ।
पश्चानुतापादध्यायन्त कंसस्य निधनाविलम् ॥२
स कृष्णं पुण्डरीकाक्षमुवाच यदुससदि ।
वाष्पसंदिग्धया वाचा दीनया सज्जमानया ॥३
पुत्रो निर्यातितः क्रोधान्नीतो याम्यां दिशं रिपुः ।
स्वधर्माधिगता कीर्तिर्नाम विश्रावितं भुवि ॥४
स्थापितं सत्सु माहात्म्यं शङ्किता रिपवः कृताः ।
स्थापितो यादवो वंशो गर्विताः सुहृदः कृताः ॥५
सामन्तेषु नरेन्द्रेषु प्रतापस्ते प्रकाशितः ।
मित्राणि त्वां भजिष्यन्ति सश्रयिष्यन्ति पार्थिवाः ॥६
प्रकृतयाऽनुयास्यन्ति स्तोष्यन्ति त्वां द्विजातयः ।
सधिविग्रहमुख्यास्त्वां प्रणमिष्यन्ति मन्त्रिणः ॥७

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! पुत्र शोक से सन्तप्त हुए उग्रसेनजी विषपान किये हुए के समान लड़खड़ाते और दीर्घ श्वास छोड़ते हुए श्रीकृष्ण के पास पहुँचे ॥१॥ वहाँ जाकर उन्होंने श्रीकृष्ण को यादवों से घिरे हुए और कंस की मृत्यु पर पश्चात्ताप प्रकट करते हुए देखा ॥ २ ॥ उस समय उग्रसेन जी ने [illegible] कण्ठ, करुण स्वर और कातर वाणी से श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहा—हे वत्स ! तुमने मेरे पुत्र को मारकर अपना क्रोध उतार लिया और और असाधारण यश पाकर अपने को विख्यात कर लिया है ॥३-४॥ साधु समाज में अब तुम प्रतिष्ठित होंगे और शत्रु भी तुमसे भयभीत रहेंगे । तुमने अपने इस कार्य से यदुकुल को बचा लिया है, इससे तुम्हारे बंधुओं को गर्व भी होगा ॥५॥ सब राजाओं को तुम्हारे पराक्रम का ज्ञान हो गया और और सभी बंधुजन तब

गण तुम्हारे वश मे हो जायेंगे ॥६॥ प्रजाजन तुम्हारे आज्ञावर्ती और ब्राह्मण
ग हेंगे। मधि और कलहविषयक मंत्रणाओं के ज्ञाता अमात्यगण तुम्हें
क झुकाएँगे ॥७॥

हस्त्यश्वरथसपूर्णं पदातिगणसंकुलम् ।
प्रतिगृह्णाण कृष्णेद कंसस्य वलमव्ययम् ॥८
धन धान्य च यत्किञ्चिद्रत्नान्याच्छादनानि च ।
प्रतीच्छन्तु नियुक्ता वै त्वदीयाः कृष्ण पुरुषाः ॥९
स्त्रियो हिरण्य यानानि यदन्यद्वसु किंचन ।
एव हि विहिते योगे पर्याप्ते कृष्ण विग्रहे ॥१०
प्रतिष्ठितायां मेदिन्या यदूना शत्रुसूदनः ।
त्व गतिश्चागतिश्चैव यदूना यदुनन्दन ॥११
शृणुष्व वदतां वीर कृपणानामिदं वचः ।
अस्य त्वाकोपदग्धस्य कंसस्याशुभकर्मणः ॥१२
तव प्रसादाद्गोविन्द प्रेतकार्यं क्रियेत ह ।
तस्य कृत्वा नरेन्द्रस्य विपन्नस्यौर्ध्वदेहिकम् ॥१३
सस्नुषोऽहं सभार्यश्च चरिष्यामि मृगैः सह ।
प्रेतसत्कारमात्रेण कृते वान्धवकर्मणि ॥१४
आनृण्य लौकिक कृष्ण गताः किल भवन्ति हि ।
तस्याग्नि पश्चिम कृत्वा चितिस्थाने विधानत. ।
तोयप्रदानमात्रेण कसस्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥१५

अब कस की इस हाथी, घोडे, रथ, पैदल आदि से सम्पन्न सम्पूर्ण सेना अपना अधिकार करिये। तुम्हारे द्वारा नियुक्त अधिकारी धन, धान्य स्वर्ण वाहन आदि सभी की उचित व्यवस्था करें क्योंकि यह अवसर अब आ है ॥८-१०॥ हे शत्रुसूदन ! अब तुम्ही यदुवंश की गति और कुगति हो, कि यादवों के राज्य पर अब तुम्हारा ही अधिकार है ॥ ११ ॥ परन्तु अभी कार्य शेष है—तुम्हारी क्रोधाग्नि मे दग्ध हुए पापी कस का और्ध्वदैहिक र होना उचित है। ऐसा होने के पश्चात् मैं अपने वधू-बाँधवो और भार्याओं

आदि के साथ मृगो से आवृत वन मे निवास करूँगा। क्योकि बधुजनों कर्म की समाप्ति पर ही, लौकिक ऋण छूटता है। इसलिये कंस का दाह करके और उसे जलाञ्जलि देकर ही मैं अपने को ऋण से मुक्त हुआ समझूँ ॥१२-१५॥

एतत्ते कृष्ण विज्ञाप्यं स्नेहोऽत्र मयि युज्यताम् ।
प्राप्नोति सुगतिं तत्र कृपणः पश्चिमां क्रियाम् ॥१६
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णः परमविस्मितः ।
प्रत्युवाचोग्रसेनं वै सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥१७
कालयुक्तमिदं तात तवैतद्यत्प्रभाषितम् ।
सदृशं राजशार्दूल वृत्तस्य च कुलस्य च ॥१८
यत्त्वमेवंविधो नृपे गतेऽर्थे दुरतिक्रमे ।
प्राप्स्यते नृपसत्कारं कंसः प्रेतगतोऽपि सन् ॥१९
कुले महति ते जन्म वेदान्विदितवानसि ।
कथं न ज्ञायते तात नियतिर्दुरतिक्रमा ॥२०
स्थावराणां च भूतानां जङ्गमानां च पार्थिव ।
पूर्वजन्मकृतं कर्म कालेन परिपच्यते ॥२१

हे वत्स ! अब आप मुझ पर कृपा करके इसकी उचित व्यवस्था क आपकी कृपा होने पर ही कंस की सद्गति हो सकेगी ॥१६॥ यह सुनकर वान् श्रीकृष्ण को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और वे सान्त्वनापूर्ण शब्दों में उग्र बोले—हे तात ! आपका कहना समयानुकूल है, जिस श्रेष्ठ वंश में आप हुए हैं और जैसा उदार आपका चरित्र रहा है, वैसे ही आपकी वाणी भी मृदु है ॥१७-१८॥ जब आपने इस प्रकार कहा है तो परलोकवासी होने कंस को राज-सम्मान मिलेगा ॥१९॥ आप अत्यंत श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न इसलिए आपके लिये तो कुछ भी रहस्य नहीं है, फिर भी आप विधाता के से अनजान क्यों हैं ? ॥२०॥ समय की प्राप्ति पर संसार में सम्पूर्ण को अपने पूर्व जन्मों में किये हुए कर्मों का फल अवश्य भोगना होता है।

अ तवन्तोऽर्थवन्तश्च दातारः प्रियदर्शनाः ।
ब्रह्मण्या नयसंपन्ना दीनानुग्रहकारिणः ॥२२
लोकपालसमास्तात महेन्द्रसमविक्रमाः ।
क्षितिपालाः कृतान्तेन नीयन्ते नृपसत्तम ॥२३
धार्मिकाः सर्वभावज्ञाः प्रजापालनतत्पराः ।
क्षत्रधर्मपरा दान्ताः कालेन निधनं गताः ॥२४
स्वयमात्सकृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
प्राप्ते काले तु तत्कर्म दृश्यते सर्वदेहिनाम् ॥२५
कालस्तु बलवान्राजन्दुर्विज्ञेया हि सा गतिः ।
परावरविशेषज्ञा या यान्ति समदर्शिनः ॥२६
गतिः कालस्य सा येन सर्वं कालस्य गोचरम् ।
ब्रवीमि यदहं तात तदनुष्ठीयतां वचः ॥२७
न हि राज्येन मे कार्यं नाप्यहं नृप काङ्क्षितः ।
न चापि राज्यलुब्धेन मया कंसो निपातितः ॥२८

विद्वान्, धनिक, रूप-सम्पन्न, दानशील, ब्रह्मवादी, नीतिज्ञ, दयावन्त लोकपालों और इन्द्र के समान महान् पराक्रम वाले राजगण भी काल के मुख से निकल नहीं पाते ॥२२-२३॥ सैकड़ों ही धर्मकर्मा, सर्वज्ञाता, प्रजा के लन में तत्पर, युद्ध विशारद और उदारचेता भूपाल काल के हाथों पड़ कर लोकों में चले गये ॥२३॥ शुभकर्मा, पापकर्मा कैसा भी हो, उसे कालान्तर अपने कर्म का फल अवश्य भोगना होगा ॥२५॥ काल की गति किसी प्रकार नी नहीं जाती, इससे काल ही बलवान् है । केवल मोक्ष तत्त्व के ज्ञाता, ज्ञानी, दर्शी और सिद्ध पुरुष ही काल की महिमा को जानते हैं । अब मैं जो कहता आप उसके अनुसार कीजिये ॥२६-२७॥ राज्य की मुझे किंचित् भी इच्छा है और न मैंने राज्य के लोभ से कंस को मारा ही है ॥२८॥

किं तु लोकहितार्थाय कीर्त्यर्थं च सुतस्तव ।
व्यङ्गभूतः कुलस्यास्य सानुजो विनिपातितः ॥२९

अहं स एव गोमध्ये गोपैः सह वनेचरः ।
प्रीतिमान्विचरिष्यामि कामचारी यथा गजः ॥३०
एतावच्छतशोऽप्येव सत्येनैतद्ब्रवीमि ते ।
न मे कार्यं नृपत्वेन विज्ञाप्यं क्रियतामिदम् ॥३१
भवान्राजाऽस्तु मान्यो मे यदूनामग्रणी प्रभुः ।
विजयायाभिषिच्यस्व स्वराज्ये नृपसत्तम ॥३२
यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि वा नास्ति ते व्यथा ।
मया निसृष्टं राज्यं स्वं चिराय प्रतिगृह्यताम् ॥३३
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नोत्तरं प्रत्यभाषत ।
व्रीडिताधोमुखं तं तु राजानं यदुसंसदि ॥३४
अभिषेकेण गोविन्दो योजयामास धर्मवित् ।
स बद्धमुकुटः श्रीमानुग्रसेनो महाद्युतिः ।
चकार सह कृष्णेन कंसस्य निधनक्रियाम् ॥३५

मैंने तो लोक-कल्याण के ही अनुयायियों के सहित कंस का वध किया है ॥२९॥ मैं तो अब पुनः उसी वन में जाकर गौओं और गोपों के साथ मत्त हाथी की तरह विचरण करना चाहता हूँ ॥३०॥ हे महाराज ! मैं सत्य की सैकड़ों बार सौगंध खाकर निवेदन करता हूँ कि मैं राजा नहीं होना चाहता इसलिये आप मेरे कहने के अनुसार कार्य कीजिये ॥३१॥ आप यदुवंशियों में श्रेष्ठ और पूजनीय हैं, यदि आप मेरी इच्छा को रखना चाहें और आपके मन में किसी प्रकार की व्यथा न हो तो निःसंकोच भाव से आप इसे स्वीकार कर राज्यपद पर स्वयं अभिषिक्त हो जायें। इस प्रकार आप आनंद पूर्वक चिरकाल तक राज्य शासन करें ॥३२ ३३॥ राजा उग्रसेन जी ने श्रीकृष्ण की बात का लज्जावश कोई उत्तर नहीं दिया और वे नीचा मुख करके वहीं बैठ गये ॥३४॥ तब धर्मविज्ञ श्री गोविन्द ने उसी समय उग्रसेन जी का राज्यपद पर अभिषेक किया और फिर वह राजा उग्रसेन श्रीकृष्ण के साथ जाकर कंस का मृतक संस्कार करने के कार्य में लग गये ॥३५॥

तं सर्वे यादवा मुख्या राजानं कृष्णशासनात् ।
अनुजग्मुः पुरीमार्गे देवा इव शतक्रतुम् ॥३६
रजन्यां तु निवृत्तायां ततः सूर्ये विराजिते ।
पश्चिमं कंससत्कारं चक्रुस्ते यदुपुङ्गवाः ॥३७
शिबिकायामथारोप्य कंसदेहं यथाक्रमम् ।
नैष्ठिकेन विधानेन चक्रुस्ते कंससत्क्रियाम् ॥३८
स नीतो यमुनातीरमुत्तमं नृपतेः सुतः ।
सत्कृतश्च यथान्याय नैधनेन चिताग्निना ॥३९
तथैव भ्रातरं चास्य सुनामानं महाभुजम् ।
संस्कारं लम्भयामासुः सहकृष्णेन यादवाः ॥४०
ताभ्यां ते सलिलं चक्रुर्वृष्ण्यन्धकपुरोगमाः ।
अक्षयं चास्तु प्रेतेभ्यो भाषमाणाः पुनः पुनः ॥४१
हिरण्यस्य सुवर्णस्य दश कोटीस्तथा हरिः ।
गावो रत्नानि वासांसि ग्रामान्नागरमस्ततान् ॥४२
ददौ कंसं समुद्दिश्य ब्राह्मणेभ्यो नृपोत्तमः ।
अक्षयं चापि विप्रेभ्यो भाषमाणाः पुनः पुनः ॥४३
तयोस्ते सलिलं दत्त्वा यादवा दीनमानसाः ।
पुरस्कृत्योग्रसेनं वै विविशुर्मथुरां पुरीम् ॥४४

जैसे इन्द्र की आज्ञा के अनुवर्ती सब देवगण हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण की के अनुवर्ती हुए सब यादव महाराज उग्रसेन के पीछे चले ॥३६॥ रात्रि तीत होने तथा प्रातःकाल का प्रकाश फैलने पर सब यादव कंस के संस्कार-में लग गये ॥३७॥ उन्होंने कंस और उसके भाई के शवों को पालकी में और यमुना-तट पर ले जाकर शास्त्र-विधि से चिता बना कर उनका दाह-सम्पन्न किया ॥३८-४०॥ फिर वृष्णि और अंधक वंशीय सब यादवों ने आत्माओं को स्वर्ग मिले' कहते हुए बारंबार जलाञ्जलि दी ॥४१॥ फिर श्रीकृष्ण करोड़ स्वर्ण मुद्रा, गौएँ, रत्न, वस्त्र और ग्रामादि का ब्राह्मणों को दान और जलाञ्जलि देने के पश्चात् उदास चित्त हुए सभी यादव महाराज को आगे करके मथुरा नगरी में लौट आये ॥४२-४४॥

॥ मथुरा पर जरासन्ध की चढाई ॥

स कृष्णस्तत्र सहितो रौहिणेयेन सगत ।
मथुरा यादवाकीर्णां पुरी ता सुखमावसत् ॥१
प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया विभु ।
चचार मथुरा प्रीत सवनाकरभूषणाम् ॥२
कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा राजगृहेश्वर ।
शुश्राव निहत कस दुहितृभ्या महीपति ॥३
ततो नातिचिरात्कालाज्जरासध प्रतापवान् ।
आजगाम षडङ्गेन बलेन महता वृत ॥४
जिघासुर्हि यदून्क्रुद्ध कसस्यापचितिं स्मरन् ।
अस्ति प्राप्तिश्च नाम्ना ते मागधस्य सुते नृप ॥५
जरासन्धस्य कल्याण्यौ पीनश्रोणिपयोधरे ।
उभे कसस्य ते भार्ये प्रादाद्‌बार्हद्रथो नृप ॥६
स ताभ्या मुमुदे राजा बद्ध्वा पितरमाहुकम् ।
समाश्रित्य जरासन्धमनादृत्य च यादवान् ।
शूरसेनेश्वरो राजा यथा ते बहुश श्रुत ॥७
नातिकार्यार्थाढ्यर्थमुग्रसेनहिते रत ।
वसुदेवोऽभवन्नित्य कसो न ममृषे च तम् ॥८
रामकृष्णौ समाश्रित्य हते कसे दुरात्मनि ।
उग्रसेनोऽभवद्राजा भोजवृष्ण्यन्धकैर्वृत्त ॥९
दुहितृभ्या जरासन्ध प्रियाभ्या बलवान्नृप ।
नोदितो वीरपत्नीभ्यामुपायान्मथुरा तत ॥१०

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन्! महाबली कृष्ण-बलराम रा और यादवों से युक्त होकर वनो और खानो वाली मथुरापुरी म रहते हुए आ पूर्वक विहार करने लगे ॥१-२॥ कुछ कालोपरान्त जरासन्ध की पुत्रियों ने अपने पति के मरने का समाचार दिया, जिससे उसे अत्यन्त दुःख हुआ ॥ फिर वह प्रतापी राजा जरासन्ध अपनी छः अंगों से सम्पन्न विशाल सेना

ार कर शीघ्र ही उसके साथ चल दिया ॥४॥ उसने क्रोध मे भरकर सभी
ादवो का सहार करने का निश्चय कर लिया था, क्योकि उसकी अस्ति-प्राप्ति
ा की दोनो सुन्दर पुत्रियाँ कस के साथ विवाही गई थी और विवाह के बाद
ासध की सहायता से कस ने अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बना लिया था
र यादवो का तिरस्कार करता हुआ सुखपूर्वक विहार करता था ॥५ ७॥ अपने
ति-बधुओ का पक्ष लेने वाले वसुदेव जी उग्रसेन के हित मे सदा तत्पर रहते
और कस उनको इस बात से भी रुष्ट था ॥८॥ फिर कृष्ण बलराम के द्वारा
ा और उसके राज्य का अन्त हुआ तथा वृष्णि, अधक और भोजवशी यादवो
घिरे हुए उग्रसेन पुन राज्यपद पर अभिषिक्त हुए ॥९॥ उसके बाद जरासध
कन्याओ ने उसे कस की मृत्यु का समाचार दिया, जिसे सुनकर उसने यादवो
नष्ट करने का विचार स्थिर किया और अपनी पुत्रियो के आग्रह पर उसने
रा पर चढाई कर दी ॥१०॥

॥ जरासन्ध का पलायन ॥

ततो युद्धानि वृष्णीना बभूवु सुमहान्त्यथ ।
मागधस्य महामात्यैर्नृ पैश्चैवानुयायिभि ॥१
रुक्मिणा वासुदेवस्य भीष्मकेणाहुकस्य च ।
क्रथस्य वसुदेवेन कैशिकस्य तु बभ्रुणा ॥२
गदेन चेदिराजस्य दन्तवक्त्रस्य शकुना ।
तथान्यैर्वृष्णिवीराणा नृपाणा च महात्मनाम् ॥३
युद्धमासीद्धि सैन्याना सैनिकैर्भरतर्षभ ।
अहानि पञ्च चैक च षट् सप्ताष्टौ च दारुणम् ॥४
गजैर्गजा हयैरश्वा पदाताश्च पदातिभि ।
रथैं रथा विमिश्राश्च योधा युयुधिरे नृप ॥५
जरासन्धस्य नृपते रामेणासीत्समागम ।
महेन्द्रस्येव वृत्रेण दारुणो रोमहर्षण ॥६
अवेक्ष्य रुक्मिणी कृष्णो रुक्मिण न व्यपोथयत् ।
ज्वलनार्काशुसकाशानाशीविषविषोपमान् ॥७

वारयामास कृष्णो वै शरास्तस्य तु शिक्षया।
इत्येषा सुमहानासीद्‌बलौघाना परिक्षय' ॥८

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! फिर जरासंध के पक्ष के राजा और यादवों में घोर युद्ध होने लगा ॥१॥ रुक्मी से श्रीकृष्ण, भीष्मक से उग्रसेन, क्रथ से वसुदेव, बभ्रु से कौशिक, चेदिराज से गद, शंकु से दन्तवक्र और अन्य वीर अपने विपक्षियों से भिड़े हुए थे। इस प्रकार दोनों पक्षों में सत्ताईस दिन तक घोर युद्ध चलता रहा ॥२-४॥ उस युद्ध में गजों से गज, अश्वों से अश्व, रथों से रथ और पैदलों से पैदल भिड़े हुए थे। वृत्रासुर और इन्द्र के मध्य हुए भयंकर युद्ध के समान ही जरासंध और बलराम के मध्य अत्यन्त घोर युद्ध हो रहा था ॥५-६॥ श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के सम्बन्ध को जानते हुए रुक्मी का वध नहीं किया, किन्तु अपने कौशल से ही अग्नि और सर्पों के समान दुर्धर्ष रुक्मी के बाणों को विफल कर रहे थे, इससे उनकी अन्य सेना का नाश होने लगा ॥७-८॥

उभयो सेनयो राजन्मांसशोणितकर्दम ।
कबन्धानि समुत्तस्थु सुबहूनि समन्तत ॥९
तस्मिन्विमर्दे योधाना सख्यावृत्तिकराणि च ।
रथी रामो जरासंध शरं राशीविषोपमं ॥१०
आवृण्वन्नभ्ययाद्वीरस्त च राजा स मागध ।
अभ्यवर्तत वेगेन स्यन्दनेनाशुगामिना ॥११
अन्योन्य विविधैरस्त्रैं विद् वा विद्ध्वा विनेदनु ।
तौ क्षीणशस्त्रौ विरथौ हताश्वौ हतसारथी ।
गदे गृहीत्वा विक्रान्तावन्योन्यमभिधावताम् ॥१२
कम्पयन्तौ भुव वीरौ तावुद्यतगदावुभौ ।
ददर्शाते महात्मानौ गिरी सशिखराविव ॥१३
व्युपारमन्त युद्धानि पश्यता तौ महाभुजौ ।
सरब्धावभिधावन्तौ गदायुद्धेषु विश्रुतौ ॥१४

दोनों पक्ष के भीषण संहार से युद्ध क्षेत्र में रक्त मांस की कीच हो गई और सब तरफ असंख्य शव दिखाई देने लगे। जरासंध पर अपने भीषण बाण

वर्षा करते हुए बलरामजी आगे बढ़े तब अपने वेगवन्त रथ पर चढ़ा हुआ जरासन्ध भी तेजी से उनकी ओर दौड़ा ॥६-१०-११॥ सामना होने पर दोनों ही अपने-अपने शस्त्रों से एक दूसरे को बींधने लगे। युद्ध करते-करते जब दोनों के ही शस्त्र समाप्त हो गये और रथ, घोड़े तथा सारथी आदि में से भी कोई न रहा, तब गदा-युद्ध करने लगे ॥१२॥ उन दोनों को देख कर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे दो पर्वत ही साक्षात् खड़े होकर परस्पर युद्ध कर रहे हैं तथा पृथिवी भी उस युद्ध की भीषणता से कांप उठी ॥१३॥ वे दोनों गदा-युद्ध विशारद अब सब के सामने केवल गदाओं से ही युद्ध कर रहे थे ॥१४॥

उभौ तौ परमाचार्यौ लोके ख्यातौ महाबलौ।
मत्ताविव गजौ युद्धे तावन्योन्यमयुध्यताम् ॥१५
ततो देवा सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षय.।
समन्ततश्चाप्सरसः समाजग्मुः सहस्रशः ॥१६
तद्देवयक्षगन्धर्वमहर्षिभिरलङ्कृतम्।
शुशुभेऽभ्यधिक राजन्गण ज्योतिर्गणैरिव ॥१७
अभिदुद्राव रामं तु जरासन्धो महाबलः।
सव्य मण्डलमाश्रित्य बलदेवस्तु दक्षिणम् ॥१८
प्रहरन्तौ ततोऽन्योन्य गदायुद्धविशारदौ।
दन्ताभ्यामिव मातङ्गौ नादयन्तौ दिशो दश ॥१९
गदानिपातो रामस्य शुश्रुवेऽशनिनि.स्वन.।
जरासन्धस्य चरणे पर्वतस्येव दीर्यत. ॥२०
न स्म कम्पयते रामं जरासन्धकरच्युता।
गदा गदाभृतां श्रेष्ठ विन्ध्य गिरिमिवानिलः ॥२१

जैसे दो मदमत्त हाथी परस्पर लड़ते हैं, वैसे ही उन दोनों में घमासान संग्राम चल रहा था ॥१५॥ उस समय देवता, यक्ष, गंधर्व, सिद्ध, महर्षि आदि ने भी वहाँ उपस्थित होकर बलराम और जरासन्धादि के युद्ध को देखा था ॥१६॥ युद्ध-भूमि में इधर से उधर दौड़ते हुए वे आकाश में चमकते हुए नक्षत्रों के समान

लगते थे ॥१७॥ बलराम जी दाहिनी ओर रह कर परस्पर प्रहार कर रहे थे ॥१८॥ वे दोनो ही बडे-बडे दांतो वाले भीमकाय हाथियो जैसे लग रहे थे जिनकी गदाओ के भिडने से जो शब्द हो रहा था, उससे दसो दिशाएँ गूँज उठती थी ॥१९॥ जैसे कैसा भी भीषण पवन विन्ध्याचल पर्वत को विचलित करने में समर्थ नही हो सकता, वैसे ही जरासन्ध की गदा के भीषण प्रहारो से भी बलराम जी विचलित नही हो सके ॥२०-२१॥

रामस्य तु गदावेगं वीर्यात्स मगधेश्वरः।
सेहे धैर्येण महता शिक्षया च व्यपोहयत् ॥२२
एव तौ तत्र संग्रामे विचरन्तौ महाबलौ ।
मण्डलानि विचित्राणि विचेरतुररिन्दमौ ॥२३
व्यायच्छन्तौ चिरं काल परिश्रान्तौ च तस्यतु
समाश्वास्य मुहूर्तं तु पुनरन्योन्यमाहताम् । २४
एवं तौ योधमुख्यौ तु समं युयुधतुश्चिरम् ।
न च तौ युद्धवैमुख्यमुभावेव प्रजग्मतुः ॥२५
अथापश्यद्गदायुद्धे विशेष तस्य वीर्यवान् ।
रामः क्रुद्धो गदा त्यक्त्वा जग्राह मुसलोत्तमम् ॥२६
तमुद्यन्त तदा दृष्ट्वा मुसल घोरदर्शनम् ।
अमोघं बलदेवेन क्रुद्धेन तु महारणे ॥२७
ततोऽन्तरिक्षे वागासीत्सुस्वरा लोकसाक्षिणि ।
उवाच बलदेव त समुद्यतहलायुधम् ॥२८
न त्वया राम वध्योऽयमलं खेदेन मागधेः।
विहितोऽस्य मया मृत्युस्तस्मात्साधु व्युपारम ।
अचिरेणैव कालेन प्राणास्त्यक्ष्यति मागधः ॥२९

उधर जरासन्ध भी बलराम जी के प्रहारो को सहन करता हुआ, उनसे अपना बचाव करता रहा ॥२२॥ इस प्रकार वे दोनो ही महाबली विचित्र प्रकार का व्यूह बनाकर परस्पर मे पैंतरे बदलते हुए युद्ध कर रहे थे ॥२४॥ दोनों ही थकने पर विश्राम कर लेते और फिर उठ कर उसी प्रकार भिड़ जाते।

र बहुत समय तक युद्ध करके भी उनमें से कोई किसी को हराने में सफल
न हो सका ॥२८-२५॥ तब बलराम जी ने जरासंध को गदा-युद्ध में अधिक
र देखकर गदा छोड़कर मूसल ग्रहण कर लिया ॥ २६ ॥ यह देखकर उसी
य आकाशवाणी ने धीरे से कहा—हे बलराम ! जरासंध की मृत्यु तुम्हारे
। से नहीं है, इसलिए तुम अपने विशेष क्रोध का त्याग करो । इसकी मृत्यु
जो समय निश्चित हुआ है, उसी में इसका अन्त होगा । इसलिये तुम शान्ति
ण करो ॥२७-२६॥

जरासन्धस्तु तच्छ्रुत्वा विमना समपद्यत ।
न प्रजह्रे ततस्तस्मै पुनरेव हलायुध ॥३०
तौ व्युपारमता युद्धे वृष्णयस्ते च पार्थिवा. ।
असक्तमभवद्युद्धं तेषामेव सुदारुणम् ॥३१
दीर्घकाल महाराज निघ्नतामितरेतरम् ।
पराजिते त्वपक्रान्ते राजमन्धे महीपतौ ॥३२
अस्त याते दिनकरे नानुसस्रुस्तदा निशि ।
समानीय स्वकं सैन्यं लब्धलक्ष्या महाबलाः ॥३३
पुरी प्रविविशुर्हृष्टा केशवेनाभिपालिता. ।
खाच्च्युतान्यायुधान्येव तान्येवान्तर्दधुस्तदा ॥३४
जरासन्धोऽपि नृपतिर्विमना. स्वपुरी ययौ ।
राजानश्चानुगा येऽस्य स्वराष्ट्राण्येव ते ययु. ॥३५

आकाशवाणी सुनकर जरासंध को भी संताप हुआ और बलराम जी भी
र प्रहार करने से रुक गये ॥३०॥ इन दोनों पक्षों ने युद्ध समाप्त कर
और जरासंध भी विजय प्राप्त न करके वहाँ से लौट गया ॥ ३१-३२ ॥
समय सूर्य छिप गया और रात्रि का समय हो जाने के कारण किसी ने भी
सन्ध का पीछा नहीं किया और श्रीकृष्ण द्वारा सेनाओं को लेकर सभी हर्षित
हुए मधुरापुरी में लौट आये युद्ध के आरम्भ में आकाश से आये हुए सभी
यास्त्र अन्तर्धान हो गये ॥३३-३४॥ जरासन्ध अत्यन्त खिन्न होता हुआ अपने
को गया और उसके साथी राजागण भी अपने-अपने स्थान को चले गये ॥३५॥

जरासन्ध तु ते जित्वा मेनिरे नैव निर्जितम् ।
वृष्णय कुरुशार्दूल राजा ह्यतिबल स वै ॥३६
दश चाष्टौ च सग्रामाञ्जरासन्धस्य यादवा ।
ददुर्न चैन समरे हन्तु शेकुर्महाबला ॥३७
अक्षौहिण्यश्च तस्यासन्विशतिश्च महामते ।
जरासधस्य नृपतेस्तदर्थं या समागता ॥३८
अल्पत्वादभिभूतास्तु वृष्णयो भरतर्पभ ।
बार्हद्रथेन राजेन्द्र राजभि सहितेन वै ॥३९
भूय कृत्वोद्यम प्रायाद्यादवान्कृष्णपालितान् ।
जित्वा तु मागध सख्ये जरासध महीपतिम् ।
विहरन्ति स्म सुखिनो वृष्णिसिंहा महारथा ॥४०

महा पराक्रमी वृष्णियो ने जरासन्ध को हरा कर भी अपने को (विजयी) हुआ नही माना, क्योकि जरासन्ध का बल इस युद्ध मे प्रकट हो चुका था । इन यादवो को जरासन्ध से अठारह बार लडना पडा, फिर भी वे उसे (मारने) मे समर्थ नही हुए ॥३७॥ जरासन्ध की सहायता के लिये बीस अक्षौहिणी (सेना) युद्ध-भूमि मे आई थी ॥३८॥ यादवो की सेना को अल्प सख्यक देख कर (जरा)सन्ध ने वृष्णियो पर बारम्बार आक्रमण किया और प्रत्येक बार उसे पराजय का सामना करना पडा । इस प्रकार उसे रण मे हरा कर याद(व) निर्भय होकर मथुरा मे रहने लगे ॥४०॥

॥ श्रीकृष्ण द्वारा कालयवन-वध ॥

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महात्मन ।
चरित वासुदेवस्य यदु श्रेष्ठस्य धीमत ॥१
किमर्थं च परित्यज्य मथुरां मधुसूदन ।
मध्यदेशस्य ककुद धाम लक्ष्म्याश्च केवलम् ॥२
शृङ्ग पृथिव्या स्वालक्ष्य प्रभूतधनधान्यवत् ।
आर्याढ्यजनभूयिष्ठमधिष्ठानवरोत्तमम् ॥३

अयुद्धेनैव दाशार्हस्त्यक्तवान्द्विजसत्तम ।
स कालयवनश्चापि कृष्णे किं प्रत्यपद्यत ॥४
द्वारकां च समासाद्य वारिदुर्गां जनार्दनः ।
किं चकार महाबाहुर्महायोगी महातपाः ॥५
किंवीर्यः कालयवनः केन जातश्च वीर्यवान् ।
यमसह्यं समालक्ष्य व्यपयातो जनार्दनः ॥६

जनमेजय ने कहा—हे महात्मन् ! मैं यादवोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्र को विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ मध्यदेश में मथुरा नगरी अलंकार स्वरूप एवं अत्यन्त मनोहर थी, लक्ष्मीजी का वहाँ नित्य निवास था ॥ २ ॥ वह स्थान पृथिवी का शिखा स्वरूप था, वहाँ धन-धान्य की प्रचुरता थी, धनवानों का वह निवास स्थान था, इसीलिये उसकी गणना पृथिवी के सर्वोत्तम स्थानों में थी ॥ ३ ॥ ऐसा होने पर भी श्रीकृष्ण ने उस नगरी का त्याग क्यों किया ? कालयवन ने श्रीकृष्ण के साथ कैसा व्यवहार किया ? ॥ ४ ॥ चारों ओर से समुद्र से घिरी हुई द्वारावती नगरी में जाकर उन्होंने क्या कार्य किये ? ॥ ५ ॥ जिस कालयवन के असह्य पराक्रम से उन्हें भागना पड़ा, वह कालयवन किसका पुत्र और कितना बली था ? ॥ ६ ॥

वृष्णीनामन्धकानां च गुरुर्गार्ग्यो महामनाः ।
ब्रह्मचारी पुरा भूत्वा न स्म दारान्स विन्दति ॥७
तथा हि वर्तमानं तमूर्ध्वरेतसमव्ययम् ।
श्यालोऽभिशस्तवान्गार्ग्यमपुमानिति राजनि ॥८
सोऽभिशस्तस्तदा राजन्नगरे त्वजितंजये ।
अलिप्सस्तु स्त्रियं चैव तपस्तेपे सुदारुणम् ॥९
ततो द्वादशवर्षाणि सोऽयश्चूर्णञ्च भक्षयन् ।
आराधयन्महादेवमचिन्त्यं शूलपाणिनम् ॥१०
रुद्रस्तस्मै वरं प्रादात्समर्थं युधि निग्रहे ।
वृष्णीनामन्धकानां च सर्वतेजोमयं सुतम् ॥११

तत शुश्राव त राजा यवनाधिपतिर्वरम् ।
पुत्रप्रसवज दैवादपुत्र पुत्रकामिता ॥१२
स नृपस्तमुपानाय्य सान्त्वयित्वा द्विजोत्तमम् ।
त घोषमध्ये यवनो गोपस्त्रीपु समासृजत् ॥१३
गोपाली त्वप्सरास्तत्र गोपस्त्रीवेषधारिणी ।
धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्धरमच्युतम् ॥१४

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! वृष्णि और अधक वंशी यादवों के महर्षि गार्ग्य गुरु थे, उन्होने अपनी पत्नी के होते हुए भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया था ॥ ७ ॥ इस प्रकार वे ऊर्ध्वरेता होकर जीवन यापन करते थे तभी एक दिन उनके साले ने सभा मे उनको नपुसक कह कर हँसी उड़ाई थी ॥ ८ ॥ जिससे वे क्षोभ मे भर गये और पुत्र की अभिलाषा करके अग्नि तञ्जय नगर को गये, वहा उन्होने बारह वर्ष तक केवल लौहचूर्ण भक्षण पूर्वक भगवान् शकर की आराधना की ॥ ९-१० ॥ उनके घोर तप को देखकर शकर ने प्रसन्न होकर उन्हे वर दिया—हे मुने ! तुम्हे शीघ्र ही एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र की प्राप्ति होगी, जो रणक्षेत्र मे वृष्णियो और अधको पर विजय प्राप्त करेगा ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् जब यवनराज ने सुना कि महर्षि गार्ग्य ने शिवजी से पुत्र होने का वर प्राप्त किया है, तो उसने उन्हे बुलवाकर अनेक अनुनय-विनय के साथ ग्वाल-बस्ती म स्त्रियो के समीप ही ठहरा दिया ॥ १२-१३ ॥ वहाँ गोप-नारी के वश मे रहने वाली गोपाली नाम की एक अप्सरा ने उनसे गर्भ धारण किया ॥ १४ ॥

मानुष्या गार्ग्यभार्याया नियोगाच्छूलपाणिन ।
स कालयवनो नाम जज्ञे शूरो महाबलः ॥१५
अपुत्रस्याथ राज्ञस्तु ववृधेऽन्त पुरे शिशुः ।
तस्मिन्नुपरते राजन्स कालयवनो नृपः ॥१६
युद्धाभिकामो नृपति पर्यपृच्छद्द्विजोत्तमान् ।
वृष्ण्यन्धककुल तस्य नारदेन निवेदितम् ॥१७

ज्ञात्वा तु वरदानं तन्नारदान्मधुसूदनः ।
उपप्रैक्षत तेजस्वी वर्द्धन्तं यवनेषु तम् ॥१८
समृद्धो हि यदा राजा यवनानां महाबलः ।
तत एव नृपा म्लेच्छाः संश्रित्यानुययुस्तदा ॥१९
शकास्तुषारा दरदाः पारदाः शृङ्गलाः खशाः ।
पह्लवाः शतशश्चान्ये म्लेच्छा हैमवतास्तथा ॥२०
स तैः परिवृतो राजा दस्युभिः शलभैरिव ।
नानावेषायुधैर्भीमैर्मथुरामभ्यवर्तत ॥२१

भगवान् शंकर के वरदान स्वरूप उसके गर्भ से एक महाबली पुत्र की उत्पत्ति हुई, जिसका नाम कालयवन रखा ॥ १५ ॥ पुत्रहीन यवनराज के भवन में वह बालक दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त होता रहा और कुछ कालोपरान्त जब यवनराज की मृत्यु हुई, तब वही कालयवन राजपद पर अभिषिक्त हुआ ॥१६॥ इसके पश्चात् उसने युद्ध की कामना से ब्राह्मणों से प्रश्न किया कि मैं इस समय किस वंश के राजा से संग्राम करूँ ? इस पर नारदजी ने उसे वृष्णि और अन्धक वंशी यादवों की सब बात सुनायी ॥ १७ ॥ तथा नारदजी ने ही भगवान् श्रीकृष्ण के पास आकर कालयवन के जन्म लेने का वृत्तान्त कहा, इसलिये श्रीकृष्ण उस कालयवन की प्रतीक्षा करने लगे ॥ १८ ॥ जब कालयवन अत्यन्त पराक्रमी हो गया, तब शक, तुषार, दरद, पारद, शृङ्गल, खश, पह्लव आदि अनेक पर्वतीय राजा उसके आधीन हो गये ॥ १९-२० ॥ इसके पश्चात् वह कालयवन टिड्डी दल के समान असंख्य सेना लेकर मथुरा की ओर चल पड़ा ॥ २१ ॥

गजवाजिखरोष्ट्राणामयुतैरर्बुदैरपि ।
पृथिवीं कम्पयामास सैन्येन महता वृतः ॥२२
रेणुना सूर्यमार्गं तु समवच्छाद्य पार्थिवः ।
मूत्रेण शकृता चैव सैन्येन ससृजे नदीम् ॥२३
अश्वोष्ट्रशकृतां राशेर्निःसृतेति जनाधिप ।
ततोऽश्वशकृदित्येव नाम नद्या बभूव ह ॥२४

तत्सैन्यं महदायाद्वै श्रुत्वा वृष्ण्यन्धकाग्रणीः ।
वासुदेवः समाभाष्य ज्ञातीनिदमुवाच ह ॥२५
इद समुत्थित घोर वृष्ण्यन्धभव महत् ।
अवध्यश्चापि नः शत्रुर्वरदानात्पिनाकिनः ॥२६
सामादयोऽप्युपायाश्च विहितास्तस्य सर्वश. ।
मत्तो मदबलाभ्यां तु युद्धमेव चिकीर्षति ॥२७
एतावानिह वासश्च कथितो नारदेन मे ।
एतावति च वक्तव्यं सामैव परम मतम् ॥२८

उसके साथ के असख्य हाथी, घोड़े, गधे, ऊँट एव अन्यान्य भार वाहनों और सैन्य समूहो के भार से पृथिवी कम्पित हो उठी ॥ २२ ॥ सैनिकों आदि की पग-धूलि के उड़ने से सम्पूर्ण आकाश आच्छादित हो गया, अश्वादि के मल-मूत्र की नदी प्रवाहित होने लगी, जिस नदी की उत्पत्ति अश्व के मल से हुई थी, उसका नाम 'अश्वशकृत' हो गया ॥ २३-२४ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्ण ने ससैन्य कालयवन का आगमन सुना तो अपने जाति-बन्धुओ को बुला कर उन्होंने कहा कि अब हम लोगो पर घोर विपत्ति आ पडी है, क्योंकि यह कालयवन भगवान् शंकर के वरदान से हमारा न मारा जाने योग्य शत्रु है ॥ २५-२६ ॥ यह अपने बल और मद से उन्मत्त होकर अनेक उपायो का अवलम्बन करके यहाँ आ पहुँचा है और हमसे युद्ध करने की उसकी इच्छा है ॥ २७-२८ ॥

जरासन्धश्च नो राजा नित्यमेव न मृष्यते ।
तथाऽन्ये पृथिवीपाला वृष्णिचक्रप्रतापिताः ॥२९
केचित्कंसवधाच्चापि विरक्तास्तद्गता नृपाः ।
समाश्रित्य जरासन्धमस्मानिच्छन्ति बाधितुम् ॥३०
बहवो ज्ञातयश्चैव यदूना निहता नृपैः ।
वर्द्धितुं नैव शक्ष्याम पुरेऽस्मिन्निति केशवः ॥३१
अपयाने मतिं कृत्वा दूत तस्मै ससर्ज ह ।
ततः कुम्भे महासर्पं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ॥३२

घोरमाशीविषं कृष्णं कृष्ण. प्राक्षेपयत्तदा ।
ततस्तं मुद्रयित्वा तु स्वेन दूतेन हारयत् ॥३३
निदर्शनार्थं गोविन्दो भीषयामास तं नृपम् ।
स दूतः कालयवनं दर्शयामास तं घटम् ॥३४
कालसर्पोपमः कृष्ण इत्युक्त्वा भरतर्षभ ।
तत्कालं यवनो बुद्ध्वा त्रासनं यादवैः कृतम् ॥३५

देवर्षि नारद ने मुझे बताया था कि अब हमारे मथुरा में रहने की अवधि हो चुकी है। उधर जरासंध हमारा असाधारण शत्रु है ही तथा अन्यान्य वों में भी बहुत से राजागण हमारे प्रभाव को देख कर ईर्ष्या करते हैं, वे कंस के मरने से अब जरासन्ध के वशवर्ती हो गये हैं तथा जरासंध की रता प्राप्त करके वह हमें सताना चाहते हैं ॥ २६-३० ॥ उन राजाओं के ,हमारे बहुत-से बन्धु-बांधवों का संहार भी किया जा चुका है, इस दशा में हम इस नगरी में रहेंगे तो हमारा विनाश संभव नहीं है, इसलिये यहाँ से देना ही श्रेयस्कर होगा। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने मथुरा से पलायन का य करके एक सुदृढ़ घट में एक काला सर्प बन्द किया और अपने दूत के कालयवन के पास भेजा। दूत ने उस घड़े को काल यवन के सामने रखते हा कि कृष्ण इस काले नाग के समान भयंकर है। उस घड़े को देखते ही यवन ने समझ लिया कि यह मुझे डराने का उपक्रम है ॥ ३१-३५ ॥

पिपीलिकानां चण्डानां पूरयामास तं घटम् ।
स सर्पो बहुभिस्तीक्ष्णः सर्वतस्तैः पिपीलिकैः ॥३६
भक्ष्यमाण किलाङ्गेषु भस्मीभूतोऽभवत्तदा ।
तं मुद्रयित्वा तु घटं तथैव यवनाधिपः ।
प्रेषयामास कृष्णाय बाहुल्यमुपवर्णयन् ॥३७
वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा योगं विहतमात्मनः ।
उत्सृज्य मथुरामाशु द्वारकामभिजग्मिवान् ॥३८
वैरस्यान्तं विधित्सस्तु वासुदेवो महायशाः ।
निवेश्य द्वारकां राजन्वृष्णीनाश्वास्य चैव ह ॥३९

पदातिः पुरुषव्याघ्रो वाहुप्रहरणस्तदा ।
आजगाम महायोगी मथुरा मधुसूदनः ॥४०
तं दृष्ट्वा निर्ययौ हृष्टः स कालयवनो रुषा ।
प्रेक्षापूर्वं च कृष्णोऽपि निश्चकर्ष महाबलः ॥४१
अथान्वगच्छद्गोविन्दं जिघृक्षुर्यवनेश्वरः ।
न चैनमशकद्राजा ग्रहीतुं योगधर्मिणम् ॥४२

इसके पश्चात् कालयवन ने तीक्ष्ण दाँतो वाली भयकर चीटियाँ मंगवा उस घडे के मुख मे डलवा दी, तब उन चीटियो ने उस सर्प का भक्षण कर लि और तब उस घडे को बन्द करके कालयवन ने कृष्ण के पास भेज दि ॥ ३६--३७ ॥ उसे देख कर श्रीकृष्ण ने समझ लिया कि डराने का उप व्यर्थ हुआ और तब वह उसी समय मथुरा छोडकर द्वारका के लिये चल ॥ ३८ ॥ वहाँ उन्होने वृष्णियो की आवास-व्यवस्था करने का आश्वासन और स्वय पथिक का वेश धारण करके, शत्रु का नाश करने के विचार से ही मथुरा जा पहुँचे ॥ ३९--४० ॥ काल यवन ने जैसे ही उन्हें दे वैसे ही वह क्रोध पूर्वक युद्ध करने के लिये उनकी ओर झपटा, यह देख अत्यन्त बली श्रीकृष्ण वहाँ से भाग चले ॥ ४१ ॥ तब कालयवन भी पकडने के लिये पीछे-पीछे भागा, परन्तु उन्हे पकड़ने मे नितान्त अस रहा ॥ ४२ ॥

मान्धातुस्तु सुतो राजा मुचुकुन्दो महायशाः ।
पुरा देवासुरे युद्धे कृतकर्मा महाबलः ॥४३
वरेण छन्दितो देवैर्निद्रामेव गृहीतवान् ।
श्रान्तस्य तस्य वागेवं तदा प्रादुरभूत्किल ॥४४
प्रसुप्तं बोधयेद्यो मा त दहेयमह सुराः ।
चक्षुषा क्रोधदीप्तेन एवमाह पुनः पुनः ॥४५
एवमस्त्विति त शक्र उवाच त्रिदशैः सह ।
स सुरैरभ्यनुज्ञातो लोकं मानुषमागमत् ॥४६

स पर्वतगुहां काञ्चित्प्रविश्य श्रमकर्शितः ।
सुष्वाप कालमेतं वै यावत्कृष्णस्य दर्शनम् ॥४७
ततः सर्वं वासुदेवाय नारदेन निवेदितम् ।
वरदानं च देवेभ्यस्तेजस्तस्य च भूपतेः ॥४८
कृष्णोऽनुगम्यमानश्च तेन म्लेच्छेन शत्रुणा ।
तां गुहां मुचुकुन्दस्य प्रविवेश विनीतवत् ॥४९

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन्! प्राचीन काल की बात है कि महाराज मान्धाता के पुत्र मुचुकुन्द देवासुर संग्राम में विजयी हुए थे, तब देवताओं ने उनसे वर माँगने को कहा था। उस समय उन्होंने सुख पूर्वक सोते रहने का वर माँगा। अधिक थके हुए होने के कारण उनके मुख से निकला कि जो कोई मुझे सोते से जगाये, वह मेरे क्रोध से जलते हुए नेत्रों के द्वारा उसी समय भस्म हो जाय ॥ ४१—४५ ॥ इन्द्रादि देवताओं ने 'ऐसा ही होगा' कह कर उन्हें वर प्रदान किया, और उन्हें हिमालय पर्वत पर जाकर सोने का आदेश दिया, तदनुसार वे हिमालय की एक गुफा में जाकर सो गये और जब तक भगवान् श्रीकृष्ण से साक्षात्कार नहीं हुआ, तब तक आनन्द पूर्वक शयन करते रहे ॥ ४६—४७ ॥ उसी समय देवर्षि नारद भगवान् कृष्ण के पास आये और उन्होंने मुचुकुन्द को वर प्राप्ति का पूरा वृत्तान्त उनसे वर्णन किया ॥ ४८ ॥ यह सुनकर श्रीकृष्ण मुचुकुन्द की गुफा में घुस गये, उस समय भी कालयवन उनका पीछा कर रहा था ॥ ४९ ॥

शिरःस्थानं तु राजर्षेर्मुचुकुन्दस्य केशवः ।
अदर्शनपथं त्यक्त्वा तस्थौ बुद्धिमतां वरः ॥५०
अनुप्रविश्य यवनो ददर्श पृथिवीपतिम् ।
स तं सुप्तं कृतान्ताभमाससाद सुदुर्मतिः ॥५१
वासुदेवं तु तं मत्वा घट्टयामास पार्थिवम् ।
पादेनात्मविनाशाय शलभः पावकं यथा ॥५२
मुचुकुन्दस्तु राजर्षिः पादस्पर्शप्रबोधितः ।
निद्राच्छेदेन चुक्रोध पादस्पर्शेन तेन च ॥५३

सस्मृत्य स वरं शक्रादवैक्षत तमग्रतः ।
स दृष्टमात्र क्रोधेन सप्रजज्वाल सर्वशः ॥५४

ददाह पावकस्तं तु शुष्क वृक्षमिवाशनिः ।
क्षणेन कालयवन नेत्रतेजोविनिर्गतः ॥५५
त वासुदेव श्रीमन्त चिरगुप्तं नराधिपम् ।
कृतकार्योऽब्रवीद्धीमानिद वचनमुत्तमम् ॥५६

भगवान् श्रीकृष्ण मुचुकुन्द की दृष्टि को बचाते हुए धीरे-धीरे उ
सिरहाने की ओर जाकर खडे हो गए ॥ ५० ॥ उसी समय कालयवन भी
गुफा मे घुसा और उसने यम स्वरूप मुचुकुन्द को वहां सोते देखा ॥ ५१ ॥
समय, जैसे शलभ अपने आत्मोत्सर्ग के लिये अग्नि से संघर्ष करता है, वैसे
कालयवन ने सोते हुए मुचुकुन्द को कृष्ण समझ कर उसको लात मारी ॥ ५
लात के लगते ही मुचुकुन्द की नीद टूट गई जिससे वह अत्यन्त क्रोध में
गये ॥ ५३ ॥ उन्हे इन्द्र ने वर दिया था, इस बात का ध्यान आने पर मु
ने अपने दोनो नेत्र खोल दिये, जिनसे अग्नि की लपटें निकलने लगी ॥ ५
फिर जैसे सूखे वृक्ष को अग्नि भस्म कर देती है, वैसे ही मुचुकुन्द की नेत्र
ने कालयवन को देखते देखते ही भस्म कर डाला ॥ ५५ ॥ इसके पश्चात्
मनोरथ हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने बहुत समय से सोते हुए राजा मुचु
कहा ॥ ५६ ॥

राजश्चिरप्रसुप्तोऽसि कथितो नारदेन मे ।
कृत मे सुमहत्कार्यं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥५७
वासुदेवमुपालक्ष्य राजा ह्रस्व प्रमाणतः ।
परिष्कृत युगं मेने कालेन महता तदा ॥५८
उवाच राजा गोविन्दं को भवान्किमिहागतः ।
कश्च काल प्रसुप्तस्य यदि जानासि कथ्यताम् ॥५९
सोमवशोद्भवो राजा ययातिर्नाम नाहुषः ।
तस्य पुत्रो यदुर्ज्येष्ठश्चत्वारोऽन्ये यवीयसः ॥६०

यदुवंशात्समुत्पन्न वसुदेवात्मज विभो ।
वासुदेव विजानीहि नृपते त्वामिहागतम् ॥६१
त्रेतायुगे प्रसुप्तोऽसि विदितो मेऽसि नारदात् ।
इद कलियुग विद्धि किमन्यत्करवाणि ते ॥६२
मम शत्रुस्त्वया दग्धो देवदत्तवरो नृप ।
अवध्यो यो मया सख्ये भवेद्वर्षशतैरपि ॥६३

श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! महर्षि नारद से मुझे ज्ञात हुआ था कि आप यहाँ चिरकाल से शयन किये हुए हैं। इस समय आपके द्वारा मेरा बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न हुआ है, अब मैं जाता हूँ तुम्हारा कल्याण हो ॥ ५७ ॥ वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण की उस छोटी आकृति म देख कर सोचा कि मुझे सोते हुए, इतना समय हो गया कि युग ही परिवर्तित हो गया है ॥ ५८ ॥ ऐसा विचार कर उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा—आप कौन हैं ? यहाँ क्यों आये हैं ? यदि आपको ज्ञात हो तो मुझे बताने की कृपा करिये कि मुझे यहाँ सोते हुए कितना समय व्यतीत हो चुका है ? ॥ ५९ ॥ श्रीकृष्ण ने कहा—नहुष पुत्र राजर्षि मुचुकुन्द ! ययाति के पाँच पुत्र हुए थे—यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु, और पूरु, इनमे यदु सबसे बड़े थे ॥ ६० ॥ उसी यदुवंश मे उत्पन्न वसुदेव की मैं पुत्र हूँ, मेरा नाम वासुदेव है ॥ ६१ ॥ देवर्षि नारद ने मुझ से कहा कि आप त्रेता युग से यहाँ सो रहे हैं और अब कलियुग आगया है, बताइये, आपका कौन सा कार्य करूँ ? ॥ ६२ ॥ भगवान् शंकर के वरदान से मेरा शत्रु अवध्य था, मैं उसे सौ वर्ष में भी नही मार सकता था, आपने उसे भस्म करके हमारा बहुत बडा कार्य किया है ॥ ६३ ॥

इत्युक्त स तु कृष्णेन निर्जगाम गुहामुखात् ।
अन्वीयमान कृष्णेन कृतकार्येण धीमता ॥६४
ततो ददर्श पृथिवीमावृता ह्रस्वकैर्नरैः ।
स्वल्पोत्साहैरल्पबलैरल्पवीर्यपराक्रमैः ।
परेणाधिष्ठित चैव राज्य केवलमात्मन ॥६५

दक्षया ।
यदुवंशात्समुत्पन्नं वसुदेवात्तदुनन्दनम् ॥२
वासुदेव विजानीहि नृपते त्वाच्य द्विजोत्तमान् ।
त्रेतायुगे प्रसुप्तोऽसि विदितो ान्क्रियाम् ॥३
इदं कलियुगं विद्धि किमन्यत् ायूदनः ।
मम शत्रुस्त्वया दग्धो देवद ेपुर्यया ॥४
अवध्यो यो मया सख्ये भवेद्व िवसचवत् ।
। यदुपास्यति ॥५

श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! महान् मया ।
आप यहाँ चिरकाल से शयन किये हुए हैं रावती ॥६
बड़ा कार्य सम्पन्न हुआ है, अब मैं जाता यतनानि च ।
वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! भगवान् श्रीपुराणि च ॥७
कर सोचा कि मुझे सोते हुए, इतना समय
गया है ॥ ५८ ॥ ऐसा विचार कर उन्होंने इसके पश्चात् जब रात्रि व्यतीत
यहाँ क्यों आये हैं ? यदि आपको ज्ञात हो तो प्रातः कर्मों से निवृत्त होकर दुर्ग
यहाँ सोते हुए कितना समय व्यतीत हो चुका ये गये, उनके साथ उनके प्रमुख
नहुष पुत्र राजर्षि मुचुकुन्द ! ययाति के पाँच ी निर्णय हो गया तब शुभ दिन
नु, और पूरु, इनमें यदु सबसे बड़े थे ॥ ६० । वंक दुर्ग का निर्माण-कार्य प्रारम्भ
ी की मैं पुत्र हूँ, मेरा नाम वासुदेव है ॥ ६१ आदेश देते हैं, वैसे ही भगवान्
। कि आप त्रेता युग से यहाँ सो रहे हैं और अ हे यादवो ! इस स्वर्ग के समान
आपका कौन-सा कार्य करूँ ? ॥ ६२ ॥ म र नाम भी रख लिया है । यह
ह शत्रु अवध्य था, मैं उसे सौ वर्ष में भी नहीं मान रमणीय होगी ॥५-६॥
म करके हमारा बहुत बड़ा कार्य किया है ॥ ६ मार्ग आदि अमरावती में हैं,

इत्युक्तः स तु कृष्णेन निर्जगाम गुहामुः ।
अन्वीयमानः कृष्णेन कृतकार्येण धीमत
ततो ददर्श पृथिवीमावृता ह्रस्वकैर्नरैः स्वराः ।
स्वल्पोत्साहैरल्पबलैरल्पवीर्यपराक्रमैः गविः ॥८
परेणाधिष्ठितं चैव राज्यं केवलमात्मन

प्रेष्यन्तां शिल्पिमुख्यानां युक्तानां वेश्मकर्मसु ।
नियुज्यन्तां च देशेषु प्रेष्यकमकरा जनाः ॥१०
एवमुक्ते तु यदवो गृहसंग्रहतत्पराः ।
यथानिवेशं सहृष्टाश्चक्रुर्वास्तुपरिग्रहम् ॥११
पुर्याः क्षिप्रं निवेशार्थं चिन्तयामास माधवः ।
तस्य दैवोत्थिता बुद्धिर्विमला क्षिप्रकारिणी ॥१२
पुर्याः प्रियकरी सा वै यदूनामभिवर्द्धिनी ।
शिल्पिमुख्यस्तु देवानां प्रजापतिसुतः प्रभुः । १३
विश्वकर्मा स्वसामर्थ्यात्पुरीं संस्थापयिष्यति ।
मनसा समनुध्याय तस्यागमनकारणात् ।
त्रिदशाभिमुखः कृष्णो विविक्ते समपद्यत ॥१४

इस उपद्रव रहित नगरी मे आप सब भी देवताओ के ही समान अत्यन्त आनन्दपूर्वक रहेंगे । प्रथम अपने भवन स्थान निश्चित कर गली मार्ग तथा चौराहे युक्त राज मार्ग के दोनों ओर भवनो का निर्माण करने के लिये भूमि की नाप करावें ॥८ ९॥ गृह निर्माणार्थ चतुर शिल्पियो को बुलाने के लिये कुछ व्यक्तियों को विभिन्न स्थानो पर भेजा जाय ॥१०॥ भगवान् वासुदेव की बात सुन कर सभी यादव प्रसन्न हुए और गृह निर्माण कार्य मे तत्परता से लग गये ॥११॥ इधर भगवान् वासुदेव द्वारावती नगरी के शीघ्रतापूर्वक बसाये जाने पर विचार करने लगे तब ईश्वरेच्छा से उनके हृदय मे शीघ्रतापूर्वक कार्य होंने की बुद्धि उत्पन्न हुई । १२॥ उससे यादवों की उत्साह वृद्धि हुई और पुर निर्माण कार्य सम्पन्न हो गये । भगवान् ने सोचा कि देवताओ के शिल्पी प्रजापति के पुत्र विश्वकर्मा हैं यदि वे अपने हाथ मे इस कार्य को ले लें तो ठीक रहे ऐसा विचार करके वे विश्वकर्मा के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए स्वर्ग की ओर मुख करके बैठ गये ॥१३ १४॥

तस्मिन्नेव ततः काले शिल्पाचार्यो महामतिः ।
विश्वकर्मा सुरश्रेष्ठः कृष्णस्य प्रमुखे स्थितः ॥१५

शक्रेण प्रेषितः क्षिप्रं तव विष्णो धृतव्रत ।
किंकरः समनुप्राप्तः शाधि मा किं करोमि ते ॥१६
यथाऽसौ देवदेवो मे शंकरश्च यथाऽव्ययः ।
तथा त्वं देवमान्यो मे विशेषो नास्ति व. प्रभो ॥१७
त्रैलोक्यज्ञापिका वाचमुत्सृजस्व महाभुज ।
एषोऽस्मि परिहष्टार्थः किं करोमि प्रशाधि माम् ॥१८
श्रुत्वा विनीतं वचनं केशवो विश्वकर्मणः ।
प्रत्युवाच यदुश्रेष्ठः कंसारिरतुलं वचः ॥१९
श्रुतार्थो देवगुह्यस्य भवान्यत्र वयं स्थिताः ।
अवश्यं त्विह कर्तव्यं सदनं मे सुरोत्तम ॥२०
तदियं पूः प्रकाशार्थं निवेश्या मयि सुव्रत ।
मत्प्रभावानुरूपैश्च गृहैश्चेयं समन्ततः ॥२१

कुछ क्षणों मे ही शिल्पाचार्य विश्वकर्मा उनके समक्ष आ पहुँचे ॥१५॥ भगवान् वासुदेव से कहा—हे धृतव्रत ! हे विष्णो ! मुझे इन्द्र ने आपकी ा भेजा है, मैं आपका दास हूँ, जिस प्रकार सुरराज और शिवजी मेरे स्वामी ही आप भी मेरे प्रभु हैं, आप मे और उनमे कोई भेद नहीं है ॥१६-१७॥ ाकार आप तीनों लोको को आज्ञा देते हैं, उसी प्रकार मुझे भी आज्ञा कि मुझे आपका कौन-सा कार्य करना है ? ॥१८॥ हे राजन् ! विश्वकर्मा नो से प्रसन्न होते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—देवताओं का सब य आप भले प्रकार जानते हैं । मेरे लोक मे जिस प्रकार का मेरा स्थान भी आपको ज्ञात है, आपको वैसा ही स्थान मेरे लिये यहाँ भी बनाना है २०॥ इस पुरी की रचना करके आप अपनी महिमा दिखाइये, मेरे प्रभा- के अनुरूप ही नगर एवं भवनो का निर्माण होना चाहिये ॥२१॥

एवमुक्तस्ततः प्राह विश्वकर्मा मतीश्वरः ।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणं देवामित्रविनाशनम् ॥२३
सर्वमेतत्करिष्यामि यत्त्वयाऽभिहितं प्रभो ।
पुरी त्वियं जनस्यास्य न पर्याप्ता भविष्यति ॥२४

भविष्यति च विस्तीर्णा वृद्धिस्स्यास्तु शोभना ।
चत्वार: सागरा ह्यस्या विचरिष्यन्ति रूपिण: ।।२४
यदीच्छेत्सागर: किंचिदुत्स्रष्टुमपि तोयराट् ।
तत. स्वायतलक्षण्या पुरी स्यात्पुरुषोत्तम ।।२५
एवमुक्तस्तत कृष्ण· प्रागेव कृतनिश्चय: ।
सागर सरिता नाथमुवाच वदता वर: ।।२६
समुद्र दश च द्वे च योजनानि जलाशये ।
प्रतिसह्रियतामात्मा यद्यस्ति मयि मान्यता ।।२७
अवकाशे त्वया दत्ते पुरीयं मामकं बलम् ।
पर्याप्तविषया रम्या समग्र विसहिष्यति ।।२८

भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा सुनकर सुमति विश्वकर्मा ने उनके प्रति कहा—हे प्रभो ! मैं आपकी आज्ञानुसार ही करूँगा, परन्तु यह नगरी सब यादवों के निवास के लिये पर्याप्त नहीं होगी ।।२२-२३।। यदि समुद्र कुछ स्थान दे सके तो कार्य ठीक होगा, उस समय उसमे इतना स्थान हो जायगा कि चारों समुद्र भी साकार रूप से इसमे विचरण कर सकेंगे ।।२४-२५।। यह सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने नदियो के स्वामी समुद्र से स्थान देने के लिये अनुरोध किया—हे समुद्र ! मुझे बारह योजन विस्तार वाले स्थान की आवश्यकता है, तुम इतना स्थान दे सको तो मेरे नगर मे स्थान की कमी नहीं रहेगी और मेरी सेना आदि के लिये भी सुविधा हो जायगी, इसलिये तुम मेरी बात मान कर अपने स्थान से बारह योजन पीछे हट जाओ ।।२६-२८।।

ततः कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा नदनदीपतिः ।
स मारुतेन योगेन उत्ससर्ज जलाशयम् ।।२९
विश्वकर्मा ततः प्रीतः पुर्याः संलक्ष्य वास्तु तत् ।
गोविंदे चैव सम्मानं कृतवान्सागरस्तदा ।।३०
विश्वकर्मा ततः कृष्णमुवाच यदुनन्दनम् ।
अद्यप्रभृति गोविंद सर्वे समधिरोहत ।।३१

मनसा निर्मिता चेयं मया पूः प्रवरा विभो ।
अचिरेणैव कालेन गृहसम्बाधमालिनी ॥३२
भविष्यति पुरी रम्या सुद्वारा प्राग्र्यतोरणा ।
चयाटालककेयूरा पृथिव्या ककुदोपमा ॥३३
अन्त पुरं च कृष्णस्य परिचर्याक्षयं महत् ।
चकार तस्या पुर्या वै देशे त्रिदशपूजिते ॥३४
तत. स निर्मिता कान्ता पुरी द्वारवती तदा ।
मानसेन प्रयत्नेन वैष्णवी विश्वकर्मणा ॥३५

यह सुन कर नदी पति समुद्र वायु की सहायता से तुरन्त ही बारह योजन पीछे हट गया। यह देख कर विश्वकर्मा ने कहा—अब आप नगर प्रवेश का कार्य आरम्भ करें और मैं भी अपने मनोयोग सहित भवनादि से परिपूर्ण इस सुरम्य द्वारावती नगरी की रचना किये देता हूँ ॥२६-३०-३१॥ इसके द्वार, तोरण, अट्टालिकायें आदि सभी अत्यन्त उत्कृष्ट होंगे और पृथिवी पर स्थित हुई यह नगरी पर्वत शिखर के समान ऊँची प्रतीत होगी ॥३३॥ हे राजन् ! यह कह कर विश्वकर्मा ने मनोयोगपूर्वक उस नगरी की रचना आरम्भ की और भगवान् श्रीकृष्ण के लिये अत्यन्त विस्तृत अन्त.पुर और स्नानागार का निर्माण किया ॥३४॥ देखते-देखते ही विश्वकर्मा ने अपने मनोयोग से उस परम वैष्णवी द्वारावती नगरी की रचना कर डाली ॥३५॥

विधानविहितद्वारा प्रभूतवरशोभिता ।
परिखाचयसगुप्ता साट्टप्राकारतोरणा ॥३६
कान्तनारीनरगणा वणिग्भिरुपशोभिता ।
नानापण्यगणाकीर्णा खेचरीव च गा गता ॥३७
प्राकारेणार्कवर्णेन शातकौम्भेन संवृता ।
हिरण्यप्रतिवर्णैश्च गृहैर्गम्भीरनि.स्वनैः ॥३८
शुभ्रमेघप्रतीकाशैर्द्वारैः सौधैश्च शोभिता ।
क्वचित्क्वचिदुदग्राग्रैरुपावृतमहापथा ॥३९

तामावसत्पुरीं कृष्णः सर्वै यादवनन्दनाः ।
अभिप्रेतजनाकीर्णां सोमः खमिव भासयन् ।४०
विश्वकर्मा च तां कृत्वा पुरीं शक्रपुरीमिव ।
जगाम त्रिदिवं देवो गोविन्देनाभिपूजितः ॥४१

उसके द्वार, प्राचीर, परिखा आदि अत्यन्त शोभामान् बने थे। शीघ्र वह नगरी स्त्री, पुरुष, वणिक् तथा विभिन्न द्रव्यादि से परिपूर्ण हो गयी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि आकाश से कोई अप्सरा ही भूतल पर उतर कर खड़ी हुई है ।।३८-३७।। स्वर्णिम प्राचीरों, कोलाहल से परिपूर्ण भवनों, श्वेत के समान शुभ्र द्वारों, अट्टालिकाओं एवं अत्यन्त उन्नत प्रासादों की छाया युक्त राजमार्गों से उस नगरी की शोभावृद्धि अत्यन्त अधिक हो गई थी ।।३८-३९।। यादवों के आनन्द की वृद्धि करने वाले भगवान् आकाश में स्थित चन्द्रमा के समान द्वारावती नगरी को देदीप्यमान करने के लिए अत्यन्त आनन्दपूर्वक निवास करने लगे ।।४०।। नगरी की रचना के पश्चात् विश्वकर्मा भी भगवान् के द्वारा सम्मान को प्राप्त होकर अपने लोक को गये ।।४१।।

भूयश्च वुद्धिरभवत्कृष्णस्य विदितात्मनः ।
जनानिमान्धनौघैश्च तर्पयेयमहं यदि ।।४२
स वैश्रवणसंस्पृष्टं निधीनामुत्तमं निधिम् ।
शङ्खमाह्वयतोपेन्द्रो निशि स्वे भवने प्रभुः ।।४३
स शङ्खः केशवाह्वानं ज्ञात्वा हि निधिराट् स्वयम् ।
आजगाम समीपं वै तस्य द्वारावतीपतेः ।।४४
स शङ्खः प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयादवनिं नतः ।
कृष्णं विज्ञापयामास यथा वैश्रवणं तथा ।।४५
भगवन्किं मया कार्यं सुराणां वित्तरक्षिणा ।
नियोजय महाबाहो यत्कार्यं यदुनन्दन ।।४६
समुवाच हृषीकेशः शङ्खगुह्यकमुत्तमम् ।
जनाः कृशधना येऽस्मिंस्तान्धनेनाभिपूरय ।।४७

नेच्छाम्यनशितं द्रष्टुं कृशं मलिनमेव च ।
देहीति चैव याचन्तं नगर्यां निर्धनं नरम् ॥४८

फिर भगवान् ने द्वारका के नागरिकों को धन प्राप्त कराने के उद्देश्य से एक रात्रि मे कुबेर के अनुचर निधिपति शङ्ख को बुलाया ॥४२-४३॥ उनके द्वारा आह्वान किया जाते ही निधिपति उनके समक्ष आकर उपस्थित हो गये । उन्होंने सिर झुका कर भगवान् को प्रणाम किया और अत्यन्त आदरपूर्वक हाथ जोड़ कर उनसे बोले ॥४४-४५॥ हे प्रभो ! हे यदुनन्दन ! मैं देवगण का वित्त-रक्षक आपकी सेवा मे उपस्थित हूँ, मुझे क्या करना है, सो आदेश दीजिये ॥४६॥ तब उस यक्ष से श्रीकृष्ण ने कहा— हमारी द्वारावती नगरी में रहने वाले जिन व्यक्तियों के पास धन की कमी है, उन्हें धनवान् बना दो ॥ ४७ ॥ क्योंकि मैं अपनी इस नगरी मे किसी को बुभुक्षित, कृश, मलिन, निर्धन अथवा भिखारी को नही रहने दूँगा ॥४८॥

गृहीत्वा शासनं मूर्ध्ना निधिराट् केशवस्य ह ।
निधिनाज्ञापयामास द्वारवत्या गृहे गृहे ॥४६
धनौघैरभिवर्षध्वं चक्रुः सर्वं तथा च ते ।
नाधनो विद्यते तत्र क्षीणभाग्योऽपि वा नरः ॥५०
कृशो वा मलिनो वाऽपि द्वारवत्यां कथञ्चन ।
द्वारवत्यां पुरि पुंसां केशवस्य महात्मनः ॥५१
चकार वायोराह्वानं भूयश्च पुरुषोत्तमः ।
तत्रस्थ एव भगवान्यादवानां प्रियङ्करः ॥५२
प्राणयोनिस्तु भूतानामुपतस्थे गदाधरम् ।
एकमासीनमेकान्ते देवगुह्यधरं प्रभुम् ॥५३
किं मया देव कर्तव्यं सर्वगेनाशुगामिना ।
यथैव दूतो देवानां तथैवास्मि तवानघ ॥५४
तमुवाच ततः कृष्णो रहस्यं पुरुषो हरिः ।
मारुतं जगतः प्राणं रूपिणं समुपस्थितम् ॥५५

गच्छ मारुत देवेशमनुमान्य सहामरै ।
सभां सुधर्मामादाय देवेभ्यस्त्वमिहानय ॥५६

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् की आज्ञा प्राप्त करके उस यक्ष राज ने अपनी निधियों को बुला कर उन्हें आदेश दिया—हे निधियो ! तुम इस द्वारावती नगरी के प्रत्येक गृह में धन की वर्षा करो। यह सुन कर निधियों ने सभी घरों में धन की वर्षा करके उन्हें परिपूर्ण कर दिया। इसलिए द्वारावती में कोई भी घर धनहीन नहीं रहा, कृश, मलिन अथवा अभागा कोई भी व्यक्ति नहीं रह गया, सभी धनवान् हो गये थे। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने वायुदेवता को द्वारका वासियों के कल्याणार्थ आहूत किया ॥४६-५२॥ आह्वान करते ही वायु देवता एकान्त में बैठे हुए भगवान् वासुदेव की सेवा में उपस्थित होकर बोले—हे देव ! मैं देवताओं का दूत और आपका दास हूँ, मुझे आज्ञा दीजिये कि आपकी क्या सेवा करनी है ? ॥५३-५४॥ उस दिव्य देहधारी वायु से भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे वायो ! तुम स्वर्ग की देव-सभा में शीघ्रतापूर्वक जाओ और देवताओं से अनुमति लेकर उनकी सुधर्मा नाम की देव-सभा को लेकर यहाँ लौट आओ ॥५५-५६॥

संगृह्य वचनं तस्य कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ।
वायुरात्मोपमगतिर्जगाम त्रिदिवालयम् ॥५७
सोऽनुमान्य सुरान्सर्वान्कृष्णवाक्यं निवेद्य च ।
सभां सुधर्मामादाय पुनरायान्महीतलम् ॥५८
सुधर्माय सुधर्मां तां कृष्णायाक्लिष्टकारिणे ।
देवो देवसभां दत्त्वा वायुरन्तरधीयत ॥५९
द्वारवत्यास्तु सा मध्ये केशवेन निवेशिता ।
सुधर्मा यदुमुख्यानां देवानां त्रिदिवे यथा ॥६०
एवं दिव्यैश्च भोगैश्च जलजैश्चाव्ययो हरिः ।
द्रव्यैरलङ्करोति स्म पुरीं स्वां प्रमदामिव ॥६१
मर्यादाश्चैव सचक्रे श्रेणीश्च प्रकृतीस्तथा ।
बलाध्यक्षांश्च युक्तांश्च प्रकृतीशास्तथैव च ॥६२

भगवान् के वचन सुन कर वायुदेव अत्यन्त वेगपूर्वक वहाँ से चल कर स्वर्ग की देव-सभा में शीघ्र ही पहुँच गये ॥५७॥ वहाँ उन्होंने भगवान् का आदेश देवराजा को सुनाया और उनकी अनुमति से सुधर्मा नाम की देव-सभा को लेकर पुनः पृथिवी पर लौट आये और उसे भगवान् के समक्ष रख कर, उनकी आज्ञा से अपने लोक को गये ॥५८-५९॥ इसके पश्चात् द्वारकावासियों के कल्याणार्थ उन्होंने स्वर्ग के समान द्वारका नगरी के मध्य सुधर्मा को स्थापित किया ॥६०॥ इस प्रकार उन्होंने स्वर्गीय, पार्थिव, जलज सब प्रकार की विविध वस्तुओं को धीरे धीरे संचित किया और एक सुसज्जित सुन्दरी के समान द्वारावती को सजाया ॥६१॥ फिर श्रेणी विभाग, प्रकृति विभाग और शासन विभागों की पृथक् स्थापना की ॥६२॥

उग्रसेनं नरपतिं काश्यं चापि पुरोहितम् ।
सेनापतिमनाधृष्टिं विकद्रुं मन्त्रिपुङ्गवम् ॥६३
यादवानां कुलकरान्स्थविरान्दश तत्र वै ।
मतिमान्स्थापयामास सर्वकार्येष्वनन्तरान् ॥६४
रथेष्वतिरथो यन्ता दारुकः केशवस्य वै ।
योधमुख्यश्च योधानां प्रवरः सात्यकिः कृतः ॥६५
विधानमेवं कृत्वाऽथ कृष्णः पुर्यामनिन्दितः ।
मुमुदे यदुभिः सार्द्धं लोकस्रष्टा महीतले ॥६६
रैवतस्याथ कन्यां च रेवतीं शीलसम्मताम् ।
प्राप्तवान्बलदेवस्तु कृष्णस्यानुमते तदा ॥६७

महाराज उग्रसेन को राजा, काशी नरेश को पुरोहित, अनाधृष्टि को सेनापति, विकद्रु को मंत्री, वृद्ध और प्रमुख दस यादवों को सर्वाध्यक्ष, सुनिपुण और अतिरथ को सारथी एवं युद्धकुशल सात्यकि को सेनाध्यक्ष पद सौंपा गया ॥६३-६४-६५॥ इस प्रकार समुचित व्यवस्था करके भगवान् वासुदेव यादवों के सहित उस नगरी में आनन्दपूर्वक विहार करने लगे ॥६६॥ इसके कुछ कालान्तर श्रीकृष्ण की अनुमति से बलराम जी ने रैवत की पुत्री रेवती का पाणिग्रहण कर लिया ॥६७॥

॥ रुक्मिणी हरण ॥

एतस्मिन्नेव काले तु जरासंध प्रतापवान् ।
नृपानुद्योजयामास चेदिराजप्रियेप्सया ॥१
सुताया भीष्मकस्याथ रुक्मिण्या रुक्मभूषण ।
शिशुपालस्य नृपतेर्विवाहो भविता किल ॥२
दन्तवक्त्रस्य तनय सुवक्त्रममितौजसम् ।
सहस्राक्षसम युद्धे मायाशतविशारदम् ॥३
पौण्ड्रस्य वासुदेवस्य तथा पुत्र महाबलम् ।
सुदेव वीर्यसम्पन्न पृथगक्षौहिणीपतिम् ॥४
एकलव्यस्य पुत्र च वीर्यवन्त महाबलम् ।
पुत्र च पाण्ड्यराजस्य कलिङ्गाधिपतिं तथा ॥५
कृताप्रिय च कृष्णेन वेणुदारिं नराधिपम् ।
अंशुमन्त तथा क्राथ श्रुतधर्माणमेव च ॥६
निवृत्तशत्रु कालिङ्ग गान्धाराधिपतिं तथा ।
प्रगृह्य च महावीर्य कौशाम्ब्यधिपमेव च ॥७
भगदत्तो महासेन शल शाल्वो महाबल ।
भूरिश्रवा महासेन कुन्तिवीर्यश्च वीर्यवान् ।
स्वयवरार्थ सप्राप्ता भोजराजनिवेशने ॥८

वैशम्पायन जी ने कहा—हे भारत ! चेदिराज दमघोष का प्रिय करने की इच्छा से शिशुपाल के साथ भीष्मक पुत्री रुक्मिणी का विवाह होगा, ऐसी घोषणा प्रतापी जरासंध ने राज समाज के समक्ष कर दी ॥ १-२ ॥ फिर युद्ध विशारद और इन्द्र के समान पराक्रमशील सुवक्त्र, अत्यन्त बलशाली अक्षौहिणीपति पौण्ड्र पुत्र सुदेव, एकलव्य का बली पुत्र, पाण्ड्यराज का कलिंगाधिपति कृष्णारि वेणुदारि क्रथ पुत्र अंशुमान्, श्रुतधर्मा, विशाल सेना युक्त भगदत्त, शल, शाल्व, भूरिश्रवा और कुन्तिवीर्य आदि राजा का निमंत्रण पाकर और वे सब स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए भोजराज के नगर में आ गये ॥ ३-८ ॥

कस्मिन्देशे नृपो जज्ञे रुक्मी वेदविदां वरः ।
कस्यान्ववाये द्युतिमान्सम्भूतो द्विजसत्तम ॥६
राजर्षेर्यादवस्यासीद्विदर्भो नाम वै सुतः ।
विन्ध्यस्य दक्षिणे पार्श्वे विदर्भां न्यवेशयत् ॥१०
क्रथकैशिकमुख्यास्तु पुत्रास्तस्य महाबलाः ।
बभूवुर्वीर्यसम्पन्नाः पृथग्वंशकरा नृपाः ॥११
तस्यान्ववाये भीमस्य जज्ञिरे वृष्णयो नृपाः ।
क्रयस्य त्वंशुमान्वंशे भीष्मकः कैशिकस्य तु ॥१२
हिरण्यरोमेत्याहुर्यं दाक्षिणात्येश्वरं नृपाः ।
अगस्त्यगुप्तामाशां यः कुण्डिनस्थोऽन्वशान्नृपः ॥१३
रुक्मी तस्याभवत्पुत्रो रुक्मिणी च विशाम्पते ।
रुक्मी चास्त्राणि दिव्यानि द्रुमात्प्राप महाबलः ॥१४
जामदग्न्यात्तथा रामाद्ब्राह्ममस्त्रमवाप्तवान् ।
प्रास्पर्द्धत स कृष्णेन नित्यमद्भुतकर्मणा ॥१५

यह सुन कर राजा जनमेजय ने कहा—हे विप्र श्रेष्ठ ! वेद का ज्ञाता राजा रुक्मी किस वंश में और किस प्रदेश में उत्पन्न हुआ था ? ॥६॥ वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! राजर्षि यादव का विदर्भ नामक पुत्र लोक विख्यात था, जिसने विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में विदर्भा नाम की एक नगरी को बसाया ॥१०॥ क्रथ-कैशिक आदि उसके अनेक पुत्र हुए थे, उन सब का वंश सर्वथा पृथक् था ॥११॥ उसी वंश में भीम के द्वारा वृष्णिगण उत्पन्न हुए थे और क्रथ के वंश में भीष्मक की उत्पत्ति हुई थी ॥१२॥ वह भीष्मक ही हिरण्यरोमा नाम से प्रसिद्ध हुए तथा वह कुण्डिन नगर के राजा हुए और अगस्त्य द्वारा रक्षित दक्षिण के प्रदेशों पर राज्य करने लगे ॥१३॥ इन्हीं भीष्मक का पुत्र रुक्मी और पुत्री रुक्मिणी हुई। उस रुक्मी ने परम प्रतापी द्रुम से अनेक दिव्यास्त्र और परशुराम से ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया और अद्भुत विक्रम वाले भगवान् से वैर करने लगा ॥१४-१५॥

रुक्मिणी त्वभवद्राजन् रूपेणासदृशी भुवि ।
चक्रमे वासुदेवस्तां श्रवादेव महाद्युतिः ॥१६
स तया चाभिलषितः श्रवादेव जनार्दनः ।
तेजोवीर्यबलोपेतः स मे भर्ता भवेदिति ॥१७
तां ददौ न च कृष्णाय द्वेषाद्रुक्मी महाबलः ।
कंसस्य वधसंतापात्कृष्णायामिततेजसे ।
याचमानाय कंसस्य द्वेष्योऽयमिति चिन्तयन् ॥१८
चैद्यस्यार्थे सुनीथस्य जरासन्धस्तु भूमिपः ।
वरयामास तां राजं भीष्मकं भीमविक्रमम् ॥१९
चेदिराजस्य तु वसोरासीत्पुत्रो बृहद्रथः ।
मगधेषु पुरा येन निर्मितोऽसौ गिरिव्रजः ॥२०
तस्यान्ववाये जज्ञेऽसौ जरासंधो महाबलः ।
वसोरेव तदा वंशे दमघोषोऽपि चेदिराट् ॥२१

रुक्मिणी अद्वितीय सुन्दरी थी, यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृ
उसका पाणिग्रहण करने का विचार किया ॥ १६ ॥ रुक्मिणी ने भी श्री
को ही पति रूप में वरण करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी ॥ १७ ॥
कंस-वध के कारण तथा कृष्ण के प्रति स्वाभाविक विद्वेषी रुक्मी अपनी
का विवाह भगवान् वासुदेव के साथ करने के लिये किसी प्रकार सहमत
॥ १८ ॥ इसके पश्चात् अत्यन्त बली और पराक्रमी राजा जरासंध ने
भीष्मक से शिशुपाल के लिए रुक्मिणी की याचना की ॥ १९ ॥ उसका क
था कि चेदिराज वसु के जो बृहद्रथ नामक पुत्र था, उसी ने पूर्वकाल में
देश में गिरिव्रज नामक एक नगरी की रचना की थी ॥ २० ॥ राजा ज
की उत्पत्ति उसी वंश में हुई और चेदिराज दमघोष भी उसी वंश में उ
हुए ॥ २१ ॥

दमघोषस्य पुत्रास्तु पञ्च भीमपराक्रमाः ।
भगिन्यां वसुदेवस्य श्रुतश्रवसि जज्ञिरे ॥२२

शिशुपालो दशग्रीवो रैभ्योऽथोपदिशो बली ।
सर्वास्त्रकुशला वीरा वीर्यवन्तो महाबलाः ॥२३
ज्ञातेः समानवंशस्य सुनीथः प्रददौ सुतम् ।
जरासंधस्तु सुतवद्दर्शनं जुगोप च ॥२४
जरासंधं पुरस्कृत्य वृष्णिशत्रुं महाबलम् ।
कृतान्यागांसि चैद्येन वृष्णीनां चाप्रियैषिणा ॥२५
जामाता ह्यभवत्तस्य कंसस्तस्मिन्हते युधि ।
कृष्णार्थं वैरमभवज्जरासंधस्य वृष्णिभिः ॥२६
भीष्मकं वरयामास सुनीथार्थे च रुक्मिणीम् ।
तां ददौ भीष्मकश्चापि शिशुपालाय वीर्यवान् ॥२७

वसुदेवजी की बहन श्रुतश्रवा के गर्भ से दमघोष ने शिशुपाल, दशग्रीव, [रैभ्]य, उपदिश और बली इन पांच पुत्रों को उत्पन्न किया, जो कि सर्वशास्त्रों के [ज्ञाता] और अत्यन्त पराक्रमी हुए ॥ २२-२३ ॥ जरासंध और दमघोष दोनों के [एक] ही वंश में उत्पन्न होने के कारण दमघोष ने अपने ज्येष्ठ पुत्र शिशुपाल को [जरा]संध की सहायता के लिये उसे दे दिया था, इसलिये जरासंध उसे अपने [पुत्र] के समान ही पालने लगा था ॥ २४ ॥ इसीलिये वृष्णियों के शत्रु राजा [जरा]संध का प्रिय करने के लिये शिशुपाल ने वृष्णियों के बहुत से अप्रिय कार्य [कि]ये थे ॥ २५ ॥ परम बली, कंस राजा जरासंध का जमाई था, इसलिये कृष्ण [द्वार]ा कंस का वध होने के कारण जरासंध की प्रीति के निमित्त वृष्णियों से [उस]का वैर-भाव दृढ़ हो गया ॥२६॥ इसीलिए जरासंध ने राजा भीष्मक से [शिश]ुपाल के लिये रुक्मिणी की याचना की, जिसे भीष्मक ने भी स्वीकार कर [लि]या था ॥ २७ ॥

ततश्चैद्यमुपादाय जरासंधो नराधिपः ।
ययौ विदर्भान्सहितो दन्तवक्त्रेण धीमता ॥२८
अनुज्ञातश्च पौण्ड्रेण वासुदेवेन धीमता ।
अङ्गवङ्गकलिङ्गानामीश्वरः स महाबलः ॥२९
मानयिष्यंस्च तान्रुक्मी प्रत्युद्गम्य नराधिपान् ।
वरया पूजयोपेतास्तान्निनाय पुरीं प्रति ॥३०

पितृष्वसुः प्रियार्थं च रामकृष्णावुभावपि ।
प्रययुर्वृष्णयश्चान्ये रथैस्तत्र बलान्विताः ॥३१
क्रथकैशिकभर्ता तान्प्रतिगृह्य यथाविधि ।
पूजयामास पूजार्हान्विहिश्चैव न्यवेशयत् ॥३२
श्वो भाविनि विवाहे च रुक्मिणी निर्ययौ बहिः ।
चतुर्युजा रथेनेन्द्रे देवतायतने शुभे ॥३३
इन्द्राणीमर्चयिष्यन्ती कृतकौतुकमङ्गला ।
दीप्यमानेन वपुषा बलेन महताऽऽवृता ॥३४
तां ददर्श तदा कृष्णो लक्ष्मीं साक्षादिव स्थिताम् ।
रूपेणाग्र्येण संपन्नां देवतायतनान्तिके ॥३५

रामेण सह निश्चित्य केशवस्तु महाबलः ।
तत्प्रमाथेऽकरोद्बुद्धिं वृष्णिभिः प्रणिधाय च ॥३८
कृते तु देवताकार्ये निष्क्रामन्ती सुरालयात् ।
उन्मथ्य सहसा कृष्णः स्वं निनाय रथोत्तमम् ॥३९
वृक्षमुत्पाट्य रामोऽपि जघानापततः परान् ।
समनह्यन्त दाशार्हास्तदाज्ञप्ताश्च सर्वशः ॥४०
ते रथैर्विविधाकारैः समुच्छ्रितमहाध्वजैः ।
वाजिभिर्वारणैश्चैव परिवव्रुर्हलायुधम् ॥४१

रूप, सौभाग्य तथा यश में कोई भी स्त्री उनकी समानता करने में समर्थ नहीं है, श्वेत दुकूल धारिणी उन रुक्मिणीजी को देखकर श्रीकृष्ण के मन में उनके प्रति आशा जाग्रत हुई और उनका आवेश आज्याहुति प्राप्त अग्नि के समान प्रवृद्ध होने लगा ॥३६-३७॥ तब उन्होंने बलरामजी तथा अन्यान्य प्रमुख वृष्णियों से परामर्श करके रुक्मिणी का हरण करने का निश्चय किया और जब रुक्मिणी देव पूजन करके मन्दिर से बाहर निकली, तभी श्रीकृष्ण ने सहसा उन्हें पकड़कर अपने रथ पर चढ़ा दिया ॥३८-३९॥ उस समय जो पुरुष उन्हें रोकने के लिये आगे आये, वह बलराम द्वारा वृक्षों को उखाड़ कर उनसे प्रहार करने के कारण भाग गये। यह देखते ही विविध प्रकार के रथ, हाथी, घोड़े आदि पर सवार तथा पैदल वृष्णिगण उनकी रक्षा के लिये बलरामजी के चारों ओर एकत्र हो गये ॥४०-४१।

आदाय रुक्मिणीं कृष्णो जगामाशु पुरीं प्रति ।
रामे भारं समासज्य युयुधाने च वीर्यवान् ॥४२
अक्रूरे विपृथौ चैव गदे च कृतवर्मणि ।
चक्रदेवे सुदेवे च सारणे च महाबले ॥४३
निवृत्तशत्रौ विक्रान्ते भङ्गाकारे विदूरथे ।
उग्रसेनात्मजे कङ्के शतद्युम्ने च केशवः ॥४४
राजाधिदेवे मृदुरे प्रसेने चित्रके तथा ।
अतिदान्ते बृहद्दुर्गे श्वफल्के सत्यके पृथौ ॥४५

वृष्ण्यन्धकेषु चान्येषु मुख्येषु मधुसूदनः ।
गुरुमासज्य त भार ययौ द्वारवती प्रति ॥४६
दन्तवक्त्रो जरासध शिशुपालश्च वीर्यवान् ।
सन्नद्धा निर्ययु क्रुद्धा जिघासन्तो जनार्दनम् ॥४७
अङ्गवङ्गकलिङ्गैश्च सार्द्ध पौण्ड्रैश्च वीर्यवान् ।
निर्ययौ चेदिराजस्तु भ्रातृभिः स महारथः ॥४८
तान्प्रत्यगृह्णन्सरब्धा वृष्णिवीरा महारथा ।
सकर्षण पुरस्कृत्य वासव मरुतो यथा ॥४९

तब भगवान् श्रीकृष्ण ने बलराम, युयुधान, सात्यकि, अक्रूर, विपृथु, गद, कृतवर्मा, चक्रदेव, सुदेव, सारण, विदूरथ, उग्रसेन-पुत्र कक, वभ्रु, मृदुर, प्रसेन, चित्रक, अरिदान्त, वृहद्दुर्ग, श्वफल्क, सत्यक, पृथु तथा अन्यान्य वृष्णियो और अधको पर वहाँ का भार छोड़ा और स्वय रुक्मिणी को लेकर द्वारावती के लिए चल दिये ॥४२-४६॥ यह समाचार सुनते ही दन्तवक्र, शिशुपाल, जरासध आदि विपक्षी राजागण अत्यन्त क्रोधित हुए और कृष्ण का वध करने का विचार करते हुए उनके पीछे दौड़ पड़े ॥४७॥ चेदिराज दमघोष भी अपने महारथी भाइयो तथा अग, वग, कलिंग और पौण्ड्र आदि राजाओं को साथ लेकर युद्ध करने के लिये चल पड़ा ॥४८॥ यह देखकर बलरामजी के नेतृत्व म वृष्णिवश के महारथी शूरवीर युद्ध के लिये उन सब शत्रुओ के सामने आ पहुँचे ॥४९॥

आपतन्त हि वेगेन जरासध महाबलम् ।
षड्भिर्विव्याध नाराचैर्युयुधानो महामृधे ॥५०
अक्रूरो दन्तवक्त्र तु विव्याध नवभिः शरैः ।
न प्रत्याविद्ध्यत्तदाक्रूरो बाणैर्दशभिराशुगैः ॥५१
विपृथुः शिशुपाल तु शरैर्विव्याध सप्तभिः ।
अष्टभिः प्रत्यविद्ध्यत्त शिशुपालः प्रतापवान् ॥५२
गवेषणस्तु चैद्य च षड्भिर्विव्याध मार्गणैः ।
अतिदान्तस्तथाऽष्टाभिर्बृहद्दुर्गश्च पञ्चभिः ॥५३

प्रतिविव्याध तार्श्चं द्य पञ्चभि पञ्चभि शरै ।
जघानाश्वाश्च चतुरश्चतुर्भिर्विपृथा शरै ॥५४
बृहद्दुर्गस्य मल्लन शिरश्चिच्छेद चारिहा ।
गवेषणस्य सूत तु प्राहिणोद्यमसादनम् ॥५५
हताश्व तु रथ त्यक्त्वा विपृथुस्तु महाबल ।
आरुरोह रथ शीघ्र बृहद्दुर्गस्य वीर्यवान् ॥५६
विपृथो सारथिश्चापि गवेषणरथ द्रुतम् ।
आरुह्य जवनानश्वान्नियन्तुमुपचक्रम ॥५७

युयुधान और सात्यकि न जब जरासन्ध को अत्यन्त वेग पूर्वक अपनी
र बढ़ता देखा तो उस छ वाणो स बींध डाला ॥५०॥ तभी अक्रूर न दन्त-
क को नौ वाणो स और दन्तवक्र ने अक्रूर को दस वाणो स बींध दिया ॥५१॥
पृथु न शिशुपाल को सात वाण मारे और शिशुपाल न विपृथु पर आठ वाण
लाये ॥५२॥ इसक वाद गवषण न छ, अतिदन्त न आठ और बृहद् दुर्ग ने
च वाणो स शिशुपाल को बींधा ॥५३॥ तब कुपित होकर शिशुपाल न प्रत्यक
र पर पाच पाच वाण चलाकर प्रहार किया ॥५४॥ फिर उसन विपृथु क
र घोडो को मार डाला और एक भल्लास्त्र स बृहद्दुर्ग का शीश छेदन कर
या तथा गवेषण क सारथी को यमसदन भेज दिया ॥५५॥ अश्वो क मरन पर
पृथु, बृहद्दुर्ग के रथ पर आरूढ हुआ और विपृथु का सारथी भी गवषण
क रथ पर पहुच कर उस चलाने लगा ॥५६ ५७॥

ते क्रुद्धा शरवर्षेण तुतीय समवाकिरन् ।
नृत्यन्त रथमार्गेषु चापहस्ता कलाविन ॥५८
चक्रदेवो दन्तवक्त्र विभेदारसि पत्रिणा ।
पञ्चभिश्चैव विव्याध युधि मार्गणे ॥५९
त निसृष्टद्रुमेणाजौ वङ्गराजस्य कुञ्जरम् ।
जघान राम सक्रुद्धो वङ्गराज च सयुग ॥६०
■ हत्वा रथमारुह्य धनुरादाय वीर्यवान् ।
सकर्पणो जघानोग्रैर्नाराचै कैशिकान्बहून् ॥६१

षड्भिर्निहत्य कारूपान्महेष्वासान्स वीर्यवान् ।
शतं जघान सक्रुद्धो मागधानां महाबले ॥६२
निहत्य तान्महाबाहुर्जरासंधं ततोऽभ्ययात् ।
तमापतन्तं विव्याध नाराचैर्मागधस्त्रिभिः ॥६३

इसके पश्चात् धनुष-बाण ग्रहण किये और अत्यन्त कुपित हुए उन वी
ने शिशुपाल को चारो ओर से घेर लिया ॥५८॥ चक्रदेव ने एक बाण से ह
वक्र का हृदय और पाँच बाणो से पडरथ को बीध डाला ॥५९॥ इसी प्र
बलराम ने क्रोधपूर्वक एक वृक्ष उखाड कर उससे वगराज के हाथी को मा
और फिर वगराज का भी वध कर दिया ॥६०॥ इस प्रकार बलराम वगर
को मार कर रथारूढ हुए और अपने उग्र बाणो से उन्होने अनेकानेक मौल
देशीय वीरो का सहार किया ॥६१॥ अपने छः बाणो से कारूप धनुर्धारियों
वध किया और सौ बाणों से मगध देशीय अत्यन्त बली सैनिको को मार
फिर वह बलरामजी अत्यन्त पराक्रमी जरासध की ओर बढ़े, उस समय उ
अपनी ओर आता हुआ देख कर जरासध ने उन पर तीन बाण चलाये ॥६२-६३

तं विभेदाष्टभिः क्रुद्धो नाराचैर्मुसलायुधः ।
चिच्छेद चास्य भल्लेन ध्वजं हेमपरिष्कृतम् ॥६४
तद्युद्धमभवद्घोरं तेषां देवासुरोपमम् ।
सृजतां शरवर्षाणि निघ्नतामितरेतरम् ॥६५
गजैर्गजा हि सक्रुद्धाः सन्निपेतुः सहस्रशः ।
रथं रथाश्च सरब्धाः सादिनश्चापि सादिभिः ॥६६
पदातयः पदातीश्च शक्तिचर्मासिपाणयः ।
छिन्दन्तश्चोत्तमाङ्गानि विनेदुर्युधि ते पृथक् ॥६७
असीनां पात्यमानानां कवचेषु महास्वनः ।
शराणां पततां शब्दः पक्षिणामिव शुश्रुवे ॥६८
भेरीमृदङ्गमृदङ्गानां वेणूनां च मृधे ध्वनिम् ।
जुगूह घोषः शस्त्राणां ज्याघोषश्च महात्मनाम् ॥६९

इसमे कुपित हुए बलराम ने उस पर आठ बाणो से प्रहार किया और भल्लास्त्र से उनके रथ का ध्वज काट डाला ॥६४॥ तब उन दोनो अत्यन्त वीरो मे घोर युद्ध होने लगा, और वे दोनो ही यथाशक्ति एक दूसरे पर भीषण बाण-वर्षा करने लगे ॥६५॥ उस समय दोनों पक्ष के हाथियो से हाथी, घोडों से घोडे, रथो से रथ भिड रहे थे और भयानक मारकाट हो रही थी ॥६६॥ हाथो मे शक्ति, ढाल, तलवार आदि शस्त्रास्त्र धारी पैदल पैदलों का सिर काटते हुए घूम रहे थे ॥६७॥ कवचों पर चोट करती हुई तलवारो की झनझनाहट और गिरते हुए बाणो के शब्द सुनाई दे रहे थे ॥६८॥ युद्ध स्थल मे भेरी, शख और मृदग बज रहे थे, उनकी ध्वनि शस्त्रो और प्रत्यचाओं की ध्वनि मे विलीन हो रही थी ॥६९॥

॥ श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह ॥

कृष्णेन ह्रियमाणा ता रुक्मी श्रुत्वा तु रुक्मिणीम् ।
प्रतिज्ञामकरोत्क्रुद्धः समक्ष भीष्मकस्य ह ॥१
अहत्वा युधि गोविन्दमनानीय च रुक्मिणीम् ।
कुण्डिन न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्‌ब्रवीम्यहम् ॥२
आस्थाय स रथ वीरः समुद्‌ग्रायुधध्वजम् ।
जवेन प्रययौ क्रुद्धो बलेन महता वृत. ॥३
तमन्वयुर्नृ पास्तंव दक्षिणापथवर्तिन. ।
क्राथोऽशुमान्श्रुतर्वा च वेणुदारिश्च वीर्यवान् ॥४
भीष्मकस्य सुताश्चान्ये रथेन रथिना वराः ।
क्रथकैशिकमुख्याश्च सर्व एव महारथाः ॥५
ते गत्वा दूरमध्वान सरित नर्मदामनु ।
गोविन्द ददृशुः क्रुद्धा सहैव प्रियया स्थितम् ॥६
अवस्थाप्य च तत्सैन्य रुक्मी मदबलान्वित ।
चिकीर्षुर्द्वैरथ युद्धमभ्ययान्मधुसूदनम् ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! रुक्मिणी-हरण का वृत्तान्त सुनकर रुक्मी अत्यन्त कुपित हुआ और उसने अपने पिता भीष्मक के समक्ष प्रतिज्ञा की

कि युद्ध मे कृष्ण का वध किये बिना तथा रुक्मिणी को लौटाये बिना मैं कुण्डिन् पुर मे लौट कर नही आऊंगा। मेरा यह वचन सत्य समझिये ॥१-२॥ ऐसी प्रतिज्ञा करके वह शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित होकर ऊंची ध्वजा से युक्त रथ पर चढ़ कर अपनी विशाल सेना के सहित चल दिया ॥३॥ क्राथ, अशुमान, श्रुतर्वा और वेणुदारी आदि दक्षिण की ओर के राजागण, भीष्मक पुत्र गण तथा क्रथ कैशिक के प्रमुख महारथीगण उसके पीछे चले ॥४-५॥ बहुत दूर चलने पर नर्मदा नदी के तट पर अपनी प्रियतमा रुक्मिणी के साथ बैठे हुए भगवान् वासुदेव उन्हे दिखाई पडे ॥६॥ उन्हे दिखते ही रुक्मी का क्रोध भभक उठा और अपनी सेना को पीछे ही छोड कर सग्राम करने के लिये श्रीकृष्ण की ओर द्रुतगति से दौड पड़ा ॥७॥

स विव्याध चतु षष्टया गोविन्द निशितैः शरैः ।
त प्रत्यविध्यत्सप्तत्या वार्णयुधि जनार्दनः ॥८
पतमानस्य चिच्छेद ध्वज चास्य महाबल' ।
जहार च शिर कायात्सारथेस्तस्य वीर्यवान् ॥९
त कृच्छ्रगतमाज्ञाय परिवव्रुर्जनार्दनम् ।
दाक्षिणात्या जिघासन्तो राजान सर्व एव हि ॥१०
तमशुमान्महाबाहुर्विव्याध दशभि. शरै' ।
श्रुतर्वा पचभि क्रुद्धो वेणुदारिश्च सप्तभिः ॥११
ततोऽशुमन्त गोविन्दो बिभेदोरसि वीर्यवान् ।
निषसाद रथोपस्थे व्यथित. स नराधिपः ॥१२
श्रुतर्वणो जघानाश्वाश्चतुर्भिश्चतुर. शरै. ।
वेणुदारेर्ध्वज छित्त्वा भुज विव्याध दक्षिणम् ॥१३
तथैव च श्रुतर्वाण शरैर्विव्याध पञ्चभिः ।
शिश्रिये.स ध्वज शान्तो न्यपीदच्च व्यथान्वितः ॥१४

वहाँ पहुंच कर उसने श्रीकृष्ण पर चौंसठ बाणो को धनुष पर एक साथ चढ़ाकर वार किया, जिसके उत्तर मे श्रीकृष्ण ने सत्तर बाण एक साथ चलाये। ॥८॥ इसके साथ ही उसके रथ की ध्वजा काट दी और उसके सारथी का मस्तक

काट कर पृथिवी पर गिरा दिया ॥९॥ उसी समय दक्षिणापथ के राजा वहाँ पहुंचे और रुक्मी को संकटग्रस्त देखकर श्रीकृष्ण को मार डालने की इच्छा से उन्होंने घेर लिया ॥१०॥ तभी अंशुमान ने नौ, श्रुतर्वा ने पाँच और वेणुदारि ने सात बाणों से भगवान् श्रीकृष्ण पर प्रहार किये ॥११॥ तब उन्होंने अपने बाणों से अंशुमान् का हृदय चीर दिया, जिससे वह मूर्च्छित तथा धराशायी हो गया ॥१२॥ फिर चार बाणों से उन्होंने श्रुतर्वा के चारों घोड़े मार दिये और वेणुदारि की ध्वजा और उसका दक्षिण हस्त काट कर गिरा दिया ॥१३॥ फिर उन्होंने श्रुतर्वा पर पाँच बाणों से प्रहार किया, परन्तु अधिक थक जाने के कारण वे रथ की ध्वजा का सहारा लेकर लेट गये ॥१४॥

मुञ्चन्तः शरवर्षाणि वासुदेवं ततोऽभ्ययुः ।
क्रथकैशिकमुख्याश्च सर्व एव महारथाः ॥१५
बाणवर्षांश्च चिच्छेद तेषां युधि जनार्दनः ।
जघान त्वरया सख्ये पतमानश्च तान्छरान् ॥१६
पुनरन्यांश्चतुःषष्ट्या जघान निशितैः शरैः ।
क्रुद्धानापततो वीरानद्रवत्स महाबलः ॥१७
विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा रुक्मी क्रोधवशंगतः ।
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैर्विव्याधोरसि केशवम् ॥१८
सारथिं चास्य विव्याध सायकैर्निशितैस्त्रिभिः ।
आजघान शरेणास्य ध्वजं च नतपर्वणा ॥१९
केशवस्त्वरितं दृष्ट्वा क्रुद्धो विव्याध मार्गणैः ।
धनुश्चिच्छेद चाप्यस्य पतमानस्य रुक्मिणः ॥२०
अथान्यद्धनुरादाय रुक्मी कृष्णजिघांसया ।
प्रादुश्चकार चान्यानि दिव्यान्यस्त्राणि वीर्यवान् ॥२१

तभी क्रथ-कैशिक के वीर बाण वर्षा करते हुए तेजी से श्रीकृष्ण की ओर बढ़े, परन्तु उन्होंने उनकी उस बाण-वर्षा को अपने बाणों से विफल कर दिया ॥१५-१६॥ इसी समय अपनी ओर बढ़ते हुए अन्यान्य वीरों को श्रीकृष्ण ने चौंसठ बाणों के प्रहार से मार डाला ॥१७॥ यह देख कर रुक्मी की सेना

भाग खडी हुई तब रुक्मी ने श्रीकृष्ण की छाती पर अपने वाणो से प्रहार किया
॥१८॥ फिर उसने अपने तीक्ष्ण वाणो से कृष्ण के सारथी और ध्वजा पर
की ॥१९॥ उसका यह कार्य देख कर भगवान् ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक धनुष
साठ बाण चढाये और उनके प्रहार से उसके धनुष को काट दिया ॥२०॥
रुक्मी ने कृष्ण को मारने का विचार करके दूसरा धनुष ग्रहण किया और
पर अत्यन्त श्रेष्ठ बाणो का प्रयोग करने लगा ॥२१॥

अस्त्रैरस्त्राणि सवार्यं तस्य कृष्णो महाबलः ।
पुनश्चिच्छेद तच्चाप रथिना च त्रिभिः शरैः ॥२२
स छिन्नधन्वा विरथः खड्गमादाय चर्म च ।
उत्पात रथाद्वीरो गरुत्मानिव वीर्यवान् ॥२३
तस्याभिपततः खड्गं चिच्छेद युधि केशवः ।
नाराचैश्च त्रिभिः क्रुद्धो विभेदैनमथोरसि ॥२४
स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन् ।
विसंज्ञो मूर्च्छितो राजा वज्रेणेव महासुरः॥२५
ततश्च राज्ञः शरैः सर्वान्पुनर्विव्याध माधव. ।
रुक्मिणं पतितं दृष्ट्वा व्यद्रवन्त नराधिपाः ॥२६
विचेष्टमानं तं भूमौ भ्रातरं वीक्ष्य रुक्मिणी ।
पादयोर्न्यपतद्विष्णोर्भ्रातुर्जीवितकाङ्क्षिणी ॥२७
तामुत्थाप्य परिष्वज्य सान्त्वयामास केशवः ।
अभयं रुक्मिणे दत्त्वा प्रययौ स्वपुरीं ततः ॥२८

उसके अस्त्रों को भगवान् वासुदेव ने अपने अस्त्रो से काट दिया
फिर तीन बाण मार कर उसका धनुष और रथ तोड़ डाला ॥२२॥ इस
धनुष और रथ के नष्ट हो जाने पर हाथो मे ढाल तलवार ग्रहण करके
गरुड़ के समान वेग से रथ से कूद पड़ा ॥२३॥ उसे अत्यन्त वेग से अपनी
आते देख कर उन्होंने उसकी तलवार के दो टुकड़े कर दिये और तीन बाण
वक्षस्थल पर मारे ॥२४॥ जिससे वह महाबाहु रुक्मी मूर्च्छित होकर धरा
हो गया, उसके गिरने के शब्द से पृथिवी प्रतिध्वनित हो गई ॥२५॥ फिर

उसके पक्ष के अन्यान्य राजाओं पर भीषण बाण वर्षा की तथा रुक्मी को गिरा हुआ देखकर सभी राजा भागने लगे ॥२६॥ तब अपने भाई रुक्मी को युद्ध स्थल में छटपटाता हुआ देख कर रुक्मिणी व्याकुल होकर उसकी प्राण-रक्षा करने के लिये भगवान् के चरणों में गिर पड़ी ॥२७॥ तब उन्होंने रुक्मिणी को सान्त्वना देकर रुक्मी को अभयदान दिया और रुक्मिणी सहित द्वारावती की ओर चल पड़े ॥२८॥

वृष्णयोऽपि जरासंधं भङ्क्त्वा तांश्चैव पार्थिवान् ।
प्रययुर्द्वारकां हृष्टाः पुरस्कृत्य हलायुधम् ॥२९
प्रयाते पुण्डरीकाक्षे श्रुतर्वाऽभ्येत्य सगरे ।
रुक्मिणं रथमारोप्य प्रययौ स्वां पुरीं प्रति ॥३०
अनानीय स्वसारं तु रुक्मी मानमदान्वितः ।
हीनप्रतिज्ञो नैच्छत्स प्रवेष्टुं कुण्डिनं पुरम् ॥३१
विदर्भेषु निवासार्थं निर्ममेऽन्यत्पुरं महत् ।
तद्भोजकटमित्येव बभूव भुवि विश्रुतम् ॥ २
तत्रौजसा महातेजा दक्षिणां दिशमन्वगात् ।
भीष्मकः कुण्डिने चैव राजोवास महाभुजः ॥३३
द्वारकां चापि संप्राप्ते रामे वृष्णिबलान्विते ।
रुक्मिण्याः केशवः पाणिं जग्राह विधिवत्प्रभुः ॥३४
ततः सह तया रेमे प्रियया प्रीयमाणया ।
सीतयेव पुरा रामः पौलोम्येव पुरन्दरः ॥३५

इधर वीर यादवों ने जरासंध आदि राजाओं को पराजित किया और प्रसन्न मन से बलरामजी के सहित द्वारका को चल पड़े ॥२९॥ जब भगवान् चले गये तब श्रुतर्वा रण स्थल में गया और रुक्मी को रथ में लिटा कर अपने नगर को लौटा ले गया ॥३०॥ रुक्मी ने युद्ध में जाते समय रुक्मिणी के बिना कुण्डिनपुर में न लौटने की जो प्रतिज्ञा की थी, उसके विफल होने के कारण उसने कुण्डिनपुर लौटने की इच्छा नहीं की ॥३१॥ तब उसी समय विदर्भ में एक अन्य सुन्दर नगर भोजकट के नाम से बसाया गया ॥३२॥ अत्यन्त तेजस्वी

रुक्मी ने उसी भोजकट के दक्षिण भाग मे निवास किया और उसके पिता भीष्म कुण्डिनपुर मे ही रहते रहे ॥३३॥ उधर जब यादवो के सहित बलराम द्वारावती पहुँच गये, तब श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के साथ विधिपूर्वक विवाह कि ॥३४॥ इसके पश्चात् वे आनन्दपूर्वक रुक्मिणी के साथ रहते हुए राम-लीला इन्द्र-शची के समान विहार करने लगे ॥३५॥

सा हि तस्याभवज्ज्येष्ठा पत्नी कृष्णस्य भामिनी।
पतिव्रता गुणोपेता रूपशीलगुणान्विता ॥३६
तस्यामुत्पादयामास पुत्रान्दश महारथान्।
चारुदेष्णं सुदेष्णं च प्रद्युम्नं च महाबलम् ॥३७
सुषेणं चारुगुप्तं च चारुबाहुं च वीर्यवान्।
चारुविन्दं सुचारुं च भद्रचारुं तथैव च । ३८
चारुं च बलिनां श्रेष्ठं सुतां चारुमतीं तथा।
धर्मार्थकुशलास्ते तु कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥३९

पराव्यंवस्त्राभरणाः कामैः सर्वे सुखोचिताः ।
जज्ञिरे तासु पुत्राश्च तस्य वीराः सहस्रशः ॥४४
शास्त्रार्थकुशला सर्वे बलवन्तो महारथाः ।
यज्वानः पुण्यकर्माणो महाभागा महाबलाः ॥४५

रुक्मिणी जी के अतिरिक्त उन्होंने अन्य सात सर्व गुण सम्पन्न कन्याओं विवाह किया था, जो सूर्यपुत्री कालिन्दी, राजाधिदेव पुत्री मित्रविन्दा, योध्या नरेश नग्नजित की कन्या सत्या, जाम्बवान् पुत्री जाम्बवती, केकय श की पुत्री रोहिणी, मद्रराज की कन्या लक्ष्मणा, सत्राजित् की कन्या सत्य-मा और राजा शैब्य की पुत्री तन्वी थीं। इनके अतिरिक्त सोलह हजार अन्यान्य याओं के साथ भी उन्होंने विवाह किया और सब के साथ विहार-रत रहते : द्वारका में निवास करते थे ॥४१-४३॥ उनकी सब पत्नियाँ बहुमूल्य वस्त्रा-णों और इच्छित भोगों को प्राप्त करती हुई सदा तृप्त रहती थी, उनके गर्भ हजारों पुत्रों की उत्पत्ति हुई थी, जो सर्व शास्त्रज्ञ, बली, महारथी, याज्ञिक, कर्मों के अनुष्ठाता तथा असामान्य भाग्य से सम्पन्न थे ॥४४-४५॥

॥ रुक्मी-वध वृतान्त ॥

ततः काले व्यतीते तु रुक्मी महति वीर्यवान् ।
दुहितुः कारयामास स्वयंवरमरिन्दम ॥१
तत्राहूता पि राजानो राजपुत्राश्च रुक्मिणा ।
समाजग्मुर्महावीर्या नानादिग्भ्यः श्रियाऽन्विताः ॥२
तत्राजगाम प्रद्युम्नः कुमारैरपरैर्वृतः ।
सा हि तं चकमे कन्या स च तां शुभलोचनाम् ॥३
शुभाङ्गी नाम वैदर्भी कान्तिद्युतिसमन्विता ।
पृथिव्यामभवत्ख्याता रुक्मिणस्तनया तदा ॥४
उपविष्टेषु सर्वेषु पार्थिवेषु महात्मसु ।
वैदर्भी वरयामास प्रद्युम्नमरिसूदनम् ॥५

स हि सर्वास्त्रकुशल. सिंहसंहननो युवा ।
रूपेणाप्रतिमो लोके केशवस्यात्मजोऽभवत् ॥६
वयोरूपगणोपेता राजपुत्री च साऽभवत् ।
नारायणी चन्द्रसेना जातकामा च त प्रति ॥७

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! कुछ कालोपरान्त शत्रु का न
करने मे समर्थ रुक्मी ने अपनी कन्या का स्वयवर किया, जिसमे विविध देशों
महाराजो तथा राजकुमारो को आमन्त्रित किया गया, जो कि अपने-अपने सा
शृङ्गार सहित उस विदर्भ नगर मे एकत्रित हुए ॥१-२॥ अन्यान्य कुमारों
साथ लेकर श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न भी उसम सम्मिलित होने के लिये गं
रुक्मी की वह कन्या अत्यन्त रूप-लावण्यमयी तथा शुभाङ्गी नाम से प्रसिद्ध थ
प्रद्युम्न का शुभाङ्गी पर और शुभाङ्गी का मन प्रद्युम्न पर आसक्त था ॥३
जिस समय स्वयवर सभा म सभी राजा और राजकुमार उपस्थित थे, त
शुभागी ने राजकुमार प्रद्युम्न के कठ म वरमाला डाल दी ॥५॥ श्रीकृष्ण
प्रद्युम्न जिस प्रकार सर्वशास्त्रविद् तथा सिंह के समान सुदृढ अग वाले थे,
प्रकार राजकुमारी शुभागी भी अत्यन्त सौन्दर्यमयी तथा रूप, गुण और व
उनके समान थी । उस चन्द्रसेना के समान सुन्दरी शुभागी का प्रद्युम्न पर
अनुराग था ॥६ ७॥

वृत्ते स्वयवरे जग्मू राजान. स्वपुराणि ते ।
उपादाय च वैदर्भी प्रद्युम्नो द्वारका ययौ ॥८
रेमे सह तया वीरो दमयन्त्या नलो यथा ।
स तस्या जनयामास देवगर्भोपम सुतम् ॥९
अनिरुद्धमिति ख्यात कर्मणाऽप्रतिम भुवि ।
धनुर्वेदे च वेदे च नीतिशास्त्रे च पारगम् ॥१०
समवत्त्म यदा राजन्ननिरुद्धो वयोऽन्वित. ।
तदाऽस्य रुक्मिण. पौत्री श्रीमती रुक्मसन्निभाम् ।
पत्न्यर्थे वरयामास नाम्ना शुभ्रवतीति सा ॥११

अनिरुद्धं गुणैर्दातुं कृतबुद्धिर्नृपस्ततः ।
प्रीत्या हि रौक्मिणेयस्य रुक्मिण्याश्चाप्युपग्रहात् ॥१२
विस्पर्द्धन्नपि कृष्णेन वैरं त्यज्य महायशाः ।
ददामीत्यब्रवीद्राजा प्रीतिमाञ्जनमेजय ॥१३
केशवः सह रुक्मिण्या पुत्रैः सकर्षणेन च ।
अन्यैश्च वृष्णिभिः सार्द्धं विदर्भान्सबलो ययौ ॥१४

जब स्वयंवर का कर्म पूर्ण हो गया, तब सब राजा और राजकुमार अपने-अपने घरों को गये तथा प्रद्युम्न भी रुक्मी-सुता शुभांगी को साथ लेकर द्वारका पहुंचे ॥८॥ वहाँ नल-दमयंती के विहार के समान प्रद्युम्न और शुभांगी विहार करने लगे ॥९॥ कुछ काल व्यतीत होने पर शुभांगी के गर्भ से अत्यन्त सुन्दर और पराक्रमी अनिरुद्ध नामक एक पुत्र हुआ, वह वृद्धि को प्राप्त होता हुआ धनुर्विद्या, वेद विद्या और नीति शास्त्र का भी उत्कट विद्वान् हो गया ॥१०॥ उधर राजा रुक्मी के एक अत्यन्त सुन्दरी पौत्री रुक्मवती हुई, जब वह वयस्क हो गई, तब श्रीकृष्ण ने अपने पौत्र अनिरुद्ध के लिये उस कन्या को रुक्मी से मांगा, परन्तु रुक्मी का उनके प्रति वैर-भाव होने के कारण वह सहमत न था। तो भी प्रद्युम्न के उद्योग और रुक्मिणी के आग्रह से तथा अनिरुद्ध को गुणवान देख कर रुक्मी अपनी पौत्री देने को तैयार हो गया ॥११-१३॥ तब श्रीकृष्ण अपने भ्राता बलराम, अपने पुत्रों और वृष्णियों तथा सेनाओं के सहित रुक्मिणी को भी साथ लेकर विदर्भ नगर में जा पहुँचे ॥१४॥

संयुक्ता ज्ञातयश्चैव रुक्मिणः सुहृदश्च ये ।
आहूता रुक्मिणा तेऽपि तत्राजग्मुर्नराधिपाः ॥१५
शुभे तिथौ महाराज नक्षत्रे चाभिपूजिते ।
विवाहः सोऽनिरुद्धस्य बभूव परमोत्सवः ॥१६
पाणौ गृहीते वैदर्भ्यास्त्वनिरुद्धेन तत्र वै ।
वैदर्भयादवाना च बभूव परमोत्सवः ॥१७
रेमिरे वृष्णयस्तत्र पूज्यमाना यथामराः ।
अथाश्मकानामधिपो वेणुदारिरुदारधीः ॥१८

अक्षः श्रुतर्वा चाणूरः क्राथश्चैवांशुमानपि ।
जयत्सेन. कलिङ्गानामधिपश्च महाबलः ॥१९
पाण्ड्याश्च नृपति. श्रीमानृपीकाधिपतिस्तथा ।
एते समन्त्र्य राजानो दाक्षिणात्या महर्द्धयः ॥२०
अभिगम्याब्रुवन्सर्वे रुक्मिणं रहसि प्रभुम् ।
भवानक्षेपु कुशलो वय चापि रिरसवः ।
प्रियद्यूतश्च रामोऽसावक्षेप्वनिपुणोऽपि च ॥२१

इधर रुक्मी के निमन्त्रण पर उसके जाति-बधु तथा अन्यान्य राजागण भी उस उत्सव मे सम्मिलित होने के लिये वहाँ आये ॥१५॥ फिर शुभ तिथि, नक्षत्र एव लग्न मे अत्यन्त आनन्दपूर्वक रुक्मी की पौत्री और अनिरुद्ध का विवाह-सस्कार सम्पन्न हो गया ॥१६॥ इस प्रकार अनिरुद्ध और रुक्मवती का विवाह हो जाने पर विदर्भ वासियो और यादवो को अत्यन्त हर्ष हुआ ॥१७॥ यादवगण कन्यापक्ष की ओर से देवताओ के समान सत्कारित एव पूजित होकर अत्यन्त आनन्द मे भर गये । इसी अवसर पर राज वेणुदार, श्रुतर्वा, चाणूर, अशुमान, जयत्सेन, पाण्ड्य और ऋषीकाधिपति आदि सब राजाओ ने परस्पर मे मन्त्रणा करके रुक्मी के पास जाकर कहा—हे राजन् ! आप द्यूत-विद्या-विशारद हैं, हम द्यूत खेलना चाहते हैं, बलराम जी भी इसे बहुत पसद करते हैं, परन्तु वे द्यूत-क्रीड़ा में निपुण नही हैं ॥१८-२१॥

ते भवन्त पुरस्कृत्य जेतुमिच्छाम त वयम् ।
इत्युक्तो रोचयामास रुक्मी द्यूतं महारथः ॥२२
ते शुभां काञ्चनस्तम्भा कुसुमैर्भूषिताजिराम् ।
सभामाविविशुर्हृष्टाः सिक्ता चन्दनवारिणा ॥२३
तां प्रविश्य ततः सर्वे शुभ्रस्रगनुलेपनाः ।
सौवर्णेष्वासनेष्वासाचक्रिरे विजिगीपवः ॥२४
आहुतो बलदेवस्तु कितवैपक्षकोविदः ।
वाढमित्यब्रवीद्धृष्ट सह दीव्याम पण्यताम् ॥२५

निकृत्या विजिगीषन्तो दाक्षिणात्या नराधिपाः ।
मणिमुक्ताः सुवर्णं च तत्रानिन्युः सहस्रशः ॥२६
ततः प्रावर्तत द्यूतं तेषां रतिविनाशनम् ।
कलहस्यास्पदं घोरं दुर्मतीनां क्षयावहम् ॥२७
निष्काणां च सहस्राणि सुवर्णस्य दशादितः ।
रुक्मिणा सह सपाते बलदेवो ग्लहं ददौ ॥२८

इसीलिये हम उन्हें द्यूत-क्रीडा में आपकी सहायता से जीतना चाहते हैं । उन राजाओं की बात सुन कर महारथी रुक्मी ने जुआ खेलना स्वीकार कर लिया ॥२२॥ तब वे सब राजा शुभ्र मालाएँ और चन्दनादि से अलङ्कृत होकर स्वर्णमय स्तम्भों से विभूषित, पुष्पमालाओं से सुसज्जित और चन्दन के जल से सिंचित सभा-भवन में गये और विजय की इच्छा करते हुए प्रसन्न चित्त से स्वर्णमय आसनों पर जाकर बैठ गये ॥२३-२४॥ इसके पश्चात् बलराम जी को द्यूत-क्रीडा के लिये आमन्त्रित किया गया । तब बलराम ने उस सभा में पहुँच कर कहा कि मैं आपके साथ द्यूत-क्रीडा करने के लिये तैयार हूँ ॥२५॥ रुक्मीपक्ष के दक्षिणात्य राजाओं ने बलराम जी को परास्त करने के विचार से सहस्र सख्यक मणि, मुक्ता और स्वर्ण-मुद्रायें मँगवा कर वहाँ रख ली ॥२६॥ इसके पश्चात् प्रीति-भंग का मूल, कलह का भवन और मूर्खों का सर्वस्व विनाशक द्यूत कर्म प्रारम्भ हुआ ॥२७॥ सर्वप्रथम रुक्मी और बलराम में क्रीडा प्रारम्भ हुई, उस समय बलराम जी ने सहस्र निष्क और सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ दाँव पर लगाईं ॥२८॥

तं जिगाय ततो रुक्मी यतमानं महाबलम् ।
तावदेवापरं भूयो बलदेवं जिगाय सः ॥२९
असकृज्जीयमानस्तु रुक्मिणा केशवाग्रजः ।
सुवर्णकोटीर्जग्राह ग्लहं तस्य महात्मनः ॥३०
जितमित्येव हृष्टोऽथ तमाह्व तिरभाषत ।
श्लाघ्यमानश्च चिक्षेप प्रहसन्मुसलायुधम् ॥३१
अविद्यो दुर्जनः श्रीमान्हिरण्यममितं मया ।
अजेयो बलदेवोऽयमक्षद्यूते पराजितः ॥३२

खड्गमुद्यम्य तान्सर्वांस्त्रासयामास पार्थिवान् ।
स्तम्भं सभाया सौवर्णमुत्पाट्य बलिना वर. ।।४८
गजेन्द्र इव त स्तम्भ कर्षन्सकर्षणस्तत ।
निर्जगाम सभाद्वारात्त्रासयामास कैशिकान् ।।४९
रुक्मिण निकृतिप्रज्ञ स हत्वा यादवर्षभ ।
वित्रास्य विद्विष सर्वान्सिह क्षुद्रमृगानिव ।।५०
जगाम शिविर राम स्वयमेव जनवृत ।
न्यवेदयत्स कृष्णाय तत्र सर्वं यथाऽभवत् ।।५१

आकाशवाणी कहती रही—यद्यपि यह चुप हैं, फिर भी जीत इनकी हुई है, इसलिये दाँव की सभी स्वर्ण मुद्राओ पर इनका अधिकार है । सभी उपस्थित जन जानते हैं कि जीत इनकी ही हुई है, परन्तु सत्य बात कोई नही कहता, यह कितना अन्याय है ।।४४।। आकाशवाणी की यथार्थ बातें सुन कर बलराम जी क्रोध से भभक उठे और उन्होने एक स्वर्णमय तथा अत्यन्त भारी अष्टपाद उठा कर उस क्रूर, कपटी रुक्मी को मार डाला ।।४५-४६।। और उसी क्रोधावेश म उन्होने कलिंगराज जयत्सेन के दाँत तोड दिये तथा सिंह के समान भयकर गर्जना की ।।४७।। और हाथ मे खड्ग लेकर उन्होने सब उपस्थित राजाओ को भयभीत कर सभा के स्वर्ण स्तंभ को उखाड कर मत्त हाथी के समान उसे खींचने लगे तब कैशिक देशीय वीरो म हाहाकार मच गया ।। ४८-४९ ।। हे राजन् ! जैसे सिंह से क्षुद्र मृग भयभीत हो जाते हैं, वैसे ही बलराम जी द्वारा रुक्मी का वध होने से राजागण भयभीत हो गये और बलराम जी अपने शिविर को लौट आये तथा उन्होने श्रीकृष्ण को सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया ।।५०-५१।।

नोवाच स तदा कृष्ण किंचिद्राम महाद्युति ।
निगृह्य च तदात्मान कृच्छ्रादश्रूण्यवर्तयत् ।।५२
न हतो वासुदेवेन य पूर्वं परवीरहा ।
ज्येष्ठो भ्राताऽथ रुक्मिण्या रुक्मिणीस्नेहकारणात् ।।५३
स रामकरमुक्तेन निहतो द्यूतमण्डले।
अष्टापदेन हलवान्राजा वज्रधरोपम ।।५४

तस्मिन्हते महावीर्ये नृपतौ भीष्मकात्मजे ।
द्रुमभार्गवतुल्ये वै द्रुमभार्गवशिक्षिते ॥५५
कृतौ च युद्धकुशले नित्ययाजिनिपातिते ।
वृष्णयश्चान्धकाश्चैव सर्वे विमनसोऽभवन् ॥५६
रुक्मिणी च महाभागा विलपन्त्यार्तया गिरा ।
विलपन्ती तथा दृष्ट्वा सान्त्वयामास केशवः ॥५७
एतत्ते सर्वमाख्यातं रुक्मिणो निधनं यथा ।
वैरस्य च समुत्थानं वृष्णिभिर्भरतर्षभ ॥५८
वृष्णयोऽपि महाराज धनान्यादाय सर्वशः ।
रामकृष्णौ समाश्रित्य ययुर्द्वारवतीं प्रति ॥५९

यह सुन कर भगवान् कृष्ण चुप ही रह आये तथा अत्यन्त कठिनता से अपने आँसुओं को रोक सके ॥५२॥ वे सोचने लगे कि जिस रुक्मी को मैंने रुक्मिणी के परम स्नेह वश नहीं मारा, उसे द्यूत-क्रीडा के अवसर पर बलराम जी ने अष्टपाद प्रहार द्वारा मार डाला ॥५३-५४॥ हे राजन् ! उस समय, उस अत्यन्त पराक्रमी, युद्ध विशारद, नित्य यज्ञशाली भीष्मक पुत्र रुक्मी का वध होने से वृष्णियों और अन्धकों को अत्यन्त दुःख हुआ ॥५५ ५६॥ वैशम्पायन जी बोले—हे राजन् रुक्मी की मृत्यु का समाचार सुन कर महाभाग्यवती रुक्मिणी आर्त्त स्वर में रोने लगी, उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण ने सान्त्वना देकर शान्त किया ॥५७॥ इस प्रकार यह रुक्मी और यादवों के वैर तथा रुक्मी के मरण का वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुनाया है ॥५८॥ इसके पश्चात् कृष्ण बलराम दोनों भाई वहाँ से प्रचुर धन लेकर द्वारवती को चल दिए ॥५९॥

॥ पारिजात-हरण कथा ॥

प्रादुर्भावे मुनिश्रेष्ठ माथुरे चरितं शुभम् ।
शृण्वन्नैवाधिगच्छामि तृप्तिं कृष्णस्य धीमतः ॥१
द्वारकायां निवसतः कृतदारस्य षड्गुणम् ।
चरितं ब्रूहि कृष्णस्य सर्वं हि विदितं तव ॥२

जनमेजय कृष्णस्य कृतदारस्य भारत ।
निबोध चरितं चित्रं तस्यैव सदृशं प्रभो ॥३
प्राप्तदारो महातेजा वासुदेव प्रतापवान् ।
रुक्मिण्या सहितो देव्या ययौ रैवतकं नृप ॥४
उपवासो वसानं हि रुक्मिण्याः प्रतिपूजयन् ।
तर्पयिष्यंस्त्वयं विप्राञ्जगाम मधुसूदनः ॥५
कुमाराः प्रययुस्तत्र पुत्रभ्रातर एव च ।
प्रेपिता वासुदेवेन नारदस्याभ्यनुज्ञया ॥६
षोडश स्त्रीसहस्राणि जग्मुरेव च धीमत ।
श्रद्धया परमया राजन्विष्णोरेवोनुरूपया ॥७

जनमेजय ने कहा—हे मुनिवर ! अत्यन्त मेधावी श्रीकृष्ण के मथुरा लीलावृत्तों को सुन कर ही सन्तोष नहीं है, इसलिए आप कृपया उनके विवाह के पश्चात् द्वारका में हुई लीलाओं को विस्तारपूर्वक मुझे सुनाइये क्योंकि आप पूर्ण वृत्तान्त के ज्ञाता हैं ॥१-२॥ वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! विवाहोपरान्त उन्होंने जो कार्य किये, वह सब तुम्हारे प्रति कहता हूँ, श्रवण करो ॥३॥ अत्यन्त प्रतापी श्रीकृष्ण, विवाह के पश्चात् रुक्मिणी जी को साथ लेकर रैवतक पर्वत पर पधारे ॥४॥ उस समय रुक्मिणी जी अपने उपवास के पारायण के उपलक्ष में ब्राह्मणों की तृप्ति के लिये उस पर्वत पर गयी थी । नारद जी के कहने से श्रीकृष्ण ने अपने भाइयों और पुत्रों को पहिले ही उस स्थान पर भेज दिया था तथा उनकी अन्यान्य सोलह हजार रानियाँ भी वहाँ पहुँच चुकी ॥५-७॥

ततस्तत्र द्विजातीनां कामान्प्रादादधोक्षजः ।
अर्थिनां धर्मनित्यानां वन्दितामिष्टवादिनाम् ॥८
कल्याणनामगोत्राणां महता पुण्यकर्मणाम् ।
योनैः श्रौतैश्च माध्वैश्च युद्धानां कुरुनन्दन ॥९
तर्पयित्वा द्विजानकामैरिष्टैरिष्टः सतां गतिः ।
ज्ञातीन्सतर्पयामास यथार्हं भक्तवत्सलः ॥१०

उपवासावसानेऽथ भगवान्स विशेषतः ।
वहु मेने प्रिया भार्यां रुक्मिणी भीष्मकात्मजाम् ॥११
वसतस्तस्य कृष्णस्य सदारस्यामितौजसः ।
सहासीनस्य रुक्मिण्या नारदोऽभ्याययौ मुनिः ॥१२
आगतं चाप्रमेयात्मा मुनिमिन्द्रानुजस्तदा ।
शास्त्रदृष्टेन विधिना अर्चयामास केशवः ॥१३
सोऽर्चितो वासुदेवेन मुनिरच्र्यतमः सताम् ।
पारिजाततरोः पुष्पं ददौ कृष्णाय भारत ॥१४

वहाँ जाकर उन्होंने पारण के दिन श्रेष्ठ वयोत्पन्न, विद्वान्, स्व्रा
प्रधान, धर्म में रत, स्तुति परायण, लोकहित में लगे हुए, धनेच्छुक म
को उनकी इच्छा के अनुसार धन प्रदान किया, इसके पश्चात् जाति-व
जिन से भले प्रकार तृप्त किया ॥८-१०॥ इस प्रकार भीष्मक सुता रुवि
उपवास का पारण विधान सम्पन्न हो जाने पर श्रीकृष्ण ने अपनी ...
राहना की ॥११॥ हे राजन् ! फिर जब श्रीकृष्ण रुक्मिणी जी के साथ सुख-
र्क जीवनयापन कर रहे थे, तब एक दिन देवर्षि नारद जी उनके पास पहुँचे
१२॥ भगवान् वासुदेव ने उनका विधिपूर्वक पूजन किया और उसके पश्चात्
रद जी ने भगवान् के हाथ पर पारिजात का एक पुष्प रख दिया ॥१३-१४॥

तद्वृक्षराजकुसुमं रुक्मिण्यै प्रददौ हरिः ।
पार्श्वस्था सा हि कृष्णस्य भोज्या नरवराभवत् ॥१५
प्रतिगृह्य तु तत्पुष्पं कामारणिरनिन्दिता ।
शिरस्यमलपत्राक्षी ददौ कृष्णेङ्गितानुगा ॥१६
त्रैलोक्यरूपसर्वस्वं नारायणमनोहरा ।
शुशुभे देवपुष्पेण द्विगुणं भैष्मकी तदा ॥१७
तां नारदस्तथोवाच मुनिर्ब्रह्मसुतस्तदा ।
तवैवौपयिकं पुष्पमेकं देवि पतिव्रते ॥१८
अलंकृतं पुष्पमेतत्सयर्गात्तव सर्वथा ।
अत्यर्हा च मतां मे त्वमेतत्पुष्पाद्धृतव्रते ॥१९

कल्याणगुणसंपन्ने सततं भर्तृवत्सले ।
अम्लानमेतत्सतत पुष्प भवति कामिनि ॥२०
संवत्सरपर काल कालज्ञे गुणसमते ।
ईप्सितानपि गन्धाश्च ददाति वदतां वरे ॥२१

वह पुष्प उन्होने रुक्मिणी जी को दे दिया, जिन्होंने उसे लेकर और का संकेत प्राप्त कर अपने जूड़े मे लगा लिया । उस पुष्पक के धारण करते ही भगवान् वासुदेव की परम प्रियतमा भार्या रुक्मिणी जी की शोभा बहुत बढ़ गयी, क्योकि वह पुष्प भी सम्पूर्ण त्रैलोक्य के सौन्दर्य का आश्रय स्वरूप था ॥१५-१७॥ इसी अवसर पर देवर्षि नारद जी से कहा—हे पतिव्रते ! यह पुष्प व आपके ही अनुरूप है, क्योकि आपको समीपता को प्राप्त हुआ यह पुष्प अब प हले से भी अधिक सुन्दर हो गया है, यह कभी भी कुम्हलायेगा नही तथा इसकी सुगन्धि भी पूरे एक वर्ष तक यथावत् बनी रहेगी, उसमे कुछ न्यूनता नहीं आवेगी ॥१८-२१॥

शीतोष्णे चेच्छिते देवि पुष्पमेतत्प्रयच्छति ।
स्रवत्यपि रसान्देवि मनसा काङ्क्षितान्वरान् ॥२२
सेव्यमानं च सौभाग्य ददाति वरवर्णिनि ।
स्रवत्यपि तथा गन्धानीप्सितान्प्रीतिवर्द्धनान् ॥२३
यानि यानि च पुष्पाणि त्व देव्यभिलषिष्यसि ।
कुसुमं वृक्षराजस्य तानि तानि प्रदास्यति ॥२४
एतदेव भगाधान धर्मिष्ठे पुनद तथा ।
मति च नाशुभेधत्ते धार्यमाण सदा शुभे ॥२५
यद्यदिच्छसि वर्ण च तत्सर्वं धारयिष्यति ।
स्वल्प वा यदि वा स्थूलं छन्दतस्ते भविष्यति ॥२६
अनिष्टगन्धहरण तदसमं गन्धवर्द्धनम् ।
प्रदीपकर्म रात्रौ च करोति कमलेक्षणे ॥२७
सतानकस्रजो माला पुष्पवस्त्रादि वाऽच्युतम् ।
[illegible] पमुख्यानि चिन्तितेन प्रदास्यति ॥२८

बुभुक्षा वा पिपासा वा ग्लानिर्वाऽप्यय वा जरा ।
देववद्धारयन्त्यास्ते स्वच्छन्देन भविष्यति ॥२९

जब आप इससे शीतलता चाहेंगी तब यह शीतलता प्रदान करेगा और उा चाहने पर उष्णता देगा तथा पूजन द्वारा सन्तुष्ट होने पर आपको इच्छित . . श्री दे सकेगा ॥२२॥ हे वरवर्णिनि ! इसकी सेवा करने से यह सौभाग्य प्रदान करने मे समर्थ है, यह मन को प्रसन्न करने वाली सौरभ सदा देता है, इसके द्वारा अन्यान्य पुष्पो मे जिस पुष्प की भी आपको इच्छा होगी, वही पुष्प प्राप्त हो जायगा ॥२३-२४॥ यह ऐश्वर्यों का ऐश्वर्य और धार्मिको के लिये साक्षात् धर्म है, इसके धारण किये रहने पर मन मे कभी कोई अशुभ भाव उत्पन्न नहीं होगा ॥२५॥ आप जब जिस वर्ण को देखने की इच्छा करेंगी, उस समय वही वर्ण आपको दिखायी पड़ेगा । इसके धारण से स्थूल या सूक्ष्म कैसा भी स्वरूप धारण किया जा सकता है ॥२६॥ यह सदैव सुगन्धि देता रहता है, इसके पास रहते हुए दुर्गंध का नाम भी नही रहता तथा इसके सामने दीपक की आवश्यकता नही रहती, क्योंकि यह रात्रि के समय सदा प्रकाशमान् रहता है ॥२७॥ यह पुष्प याचना करने पर सततिवृक्ष की माला, स्वच्छ पुष्प वस्त्र तथा पुष्प मद्य भी प्राप्त कराता है ॥२८॥ इसके साथ रहने पर भूख, प्यास, वृद्धावस्थाऔर ग्लानि से उत्पन्न कोई भी कष्ट पास नही फटकता, आप इसे धारण करके सदैव स्वच्छन्द एव आनन्दित रहेंगी ॥२९॥

अथाहमवगच्छामि सर्वथा सर्वशोभने ।
आत्मा द्वितीयः कृष्णस्य भोजे त्वमिति भासिनि ॥३०
त्रैलोक्यरत्नसर्वस्वमददाद्यत्तवाच्युतः ।
जीवितातिशयस्तेन त्वया प्राप्तो हरिप्रिये ॥३१
नारदेनैवमुक्तं तु तथ्य वाक्यं नराधिपः ।
ततस्थाः शुश्रु वुःप्रेष्याः प्रेषिताः सत्यभामया ॥३२
देवीनां च तथाऽन्वासा पत्नीना च विशांपते ।
दृष्ट्वा ताः सविशेषं च नारदेनाभ्युदाहृतम् ॥३३

तच्च श्रुत्वा सुनिखिलं प्रेष्यामि. स्त्रीस्त्वभावत: ।
प्रकाशीकृतमेवासीद्विष्णोरन्त.पुरे तदा ॥३४
कर्णाकर्णि ततो देव्य: कौलीनमिव सघश. ।
मन्त्रयाचक्रिरे हृष्टा रुक्मिण्यतिगुणोदयम् ॥३५
अर्हेति पुत्रमातेति ज्येष्ठेति च समागता. ।
प्रायेण प्रवदन्ति स्म हृष्टा दामोदरस्त्रिय: ॥३६

हे सर्वशोभने ! इस समय ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण की प्राणस्वरूपी आप ही हैं। आज जब उन्होंने आपको यह तीनो लोको के रत्नस्वरूप पुष्प भेंट कर दिया है, तब इसमे सदेह नही है कि इन्होंने अपने प्राण से भी अधिक प्रिय वस्तु आपको प्रदान कर डाली है ॥३०-३१॥ हे राजन् ! जब देवर्षि नारद इन वचनो से रुक्मिणी जी की प्रशसा कर रहे थे, उस समय वहाँ श्रीकृष्ण की रानी सत्यभामा तथा अन्यान्य रानियो की परिचारिकायें भी उपस्थित थी और उन सभी ने नारद जी के वह वचन सुने थे, जो उन्होंने रुक्मिणी जी की प्रशसा में कहे थे। ३२-३३॥ उन परिचारिकाओं ने अन्त पुर में पहुँच कर वह सभी बातें सब रानियो से कह दी ॥३४॥ तब सब रानियाँ रुक्मिणी जी के सौभाग्य की बात सुन कर प्रसन्नतापूर्वक बातें करती हुई कहने लगी—रुक्मिणी जी को भाग्यवती होना ही चाहिये। वे हम सब मे बड़ी तथा पुत्रवती भी हैं, वे उस सौभाग्य प्राप्ति की उपयुक्त अधिकारिणी हैं ॥३५-३६॥

ममृषे न सपत्न्यास्तु तत्सौभाग्य गुणोदयम् ।
सत्यभामा प्रिया नित्य विष्णोरतुलतेजस. ॥३७
रूपयौवनसम्पन्ना स्वसौभाग्येन गर्विता ।
अभिमानवती देवी श्रुत्वैवेर्ष्यावशं गता ॥३८
समुत्सृजन्ती वमनं सकुकुम शुचिस्मिता शुक्लतमं क्षमांशुकम् ।
जग्राह रोषाकुलितेन चेतसा वह्निस्तदा श्रीरिव वर्द्धितेन्धना ॥३९
दन्दह्यमाना ज्वलनेन वर्द्धता ईर्ष्यासमुत्थेन गतप्रभेव ।
क्रोधान्विता क्रोधगृहं विविक्त विवेश तारेव घनं सतोयम् ॥४०

बद्ध्वा ललाटे हिमचन्द्रशुक्लं दुकूलपट्टं प्रियरोषचिह्नम् ।
पर्यन्तदेशं सरसेन देवी विलिप्य सा लोहितचन्दनेन ॥४१
संस्मृत्य संस्मृत्य शिरः सरोषं प्रकम्पमाना समुपोपविष्टा ।
दीर्घोपधानं शयनेऽपनीय विभूषणान्येव निबद्धवेणी ॥४२

परन्तु रूप यौवन से युक्त और अपने सौभाग्य से गर्विता रानी सत्यभामा को वह बातें अच्छी न लगीं, क्योंकि वह भगवान् वासुदेव की सब से अधिक प्रियतमा भार्या थीं, इसलिये उन्हें अत्यन्त अभिमान था। परिचारिकाओं की बातें सुन कर सत्यभामा को रुक्मिणी से ईर्ष्या होने लगी ॥३७-३८॥ जिस प्रकार आहुति प्राप्त करके अग्नि की प्रदीप्ति में वृद्धि हो जाती है, उसी प्रकार रानी सत्यभामा की क्रोधाग्नि भभक उठी। उन्होंने कुंकुमी रंग की साड़ी उतार कर श्वेत वस्त्र धारण कर लिये और जैसे तारिका जल युक्त मेघ में छिप जाती है, वैसे ही वह कोप-भवन में जा छिपीं, ईर्ष्याग्नि में दग्ध होने के कारण उनके देह की कान्ति भी म्लान हो गई ॥३९-४०॥ अपना क्रोध प्रदर्शित करने के लिये उन्होंने अपने मस्तक पर सफेद वस्त्र बाँध कर उस पर लाल चन्दन लगा लिया तथा शैय्या पर बैठ कर केश खोल कर फैला दिये और आभूषण उतार कर फेंक दिये। अपनी सौत के सौभाग्य की याद कर-करके उनका मस्तक क्रोध से कम्पित होने लगा ॥४१-४२॥

उपविष्टं मुनिं ज्ञात्वा रुक्मिण्या सह केशव ।
निश्चक्रामाप्रमेयात्मा व्यपदेशेन सर्ववित् ॥४३
जगाम त्वरितश्चैव सत्यभामागृहं महत् ।
रम्ये रैवतकोद्देशे निर्मितं विश्वकर्मणा ॥४४
अभिमानवतीमिष्टां प्राणैरपि गरीयसीम् ।
जानन्सात्राजितीं विष्णुर्विवेश शनकैरिव ॥४५
रुपितामिव तां देवीं स्नेहात्संकल्पयन्निव ।
भीतभीतः स शनकैर्विवेश मधुसूदनः ॥४५
सेवकं द्वारदेशे तु तिष्ठेत्युक्त्वा विवेश ह ।
नारदस्योपचारार्थं प्रद्युम्नं विनियुज्य सः ॥४७

स ददर्श प्रिया दूरात्क्रोधागारगता तदा ।
प्रेष्याभिव स्थिता कोपाग्नि श्वसन्ती मुहुर्मुहु ॥४८
करजाग्रावलीढ तु पङ्कज मुखपङ्कजे ।
सश्लेषयित्वा नि श्वस्य विहसन्ती पुन पुन ॥४९

वैशम्पायन जी ने कहा— हे राजन् ! जब देवर्षि नारद और रुक्मिणी जी के मध्य वार्तालाप हो रहा था तब वहाँ की सेवा का भार प्रद्युम्न पर छोड़ कर भगवान् श्रीकृष्ण वहा से चल दिये । फिर उन्होने सत्राजित-पुत्री सत्यभामा के क्रोध का समाचार सुना और तुरन्त ही विश्वकर्मा रचित अत्यन्त रमणीय सत्यभामा के भवन म जा पहुँचे ॥४३-४४॥ सारथी को द्वार पर खडे रहने का आदेश देकर अपनी प्रियतमा सत्यभामा के क्रोध की बात को स्मरण करते हुए सशङ्क भाव से वह उनके भवन मे घुसे । वहाँ जाकर उन्होने देखा कि परिचारिकाओ से घिरी हुई सत्यभामा कोप भवन म स्थित हुई दीर्घ श्वासें ले रही हैं। कभी कभी अपने नाखूनो द्वारा नोंचे गये कमल पत्र को अपने मुखारविन्द पर धीरे धीरे घुमाती और कभी-कभी विक्षिप्त के समान ठठा कर हमती हैं ॥४५-४६॥

॥ भगवान् का सत्यभामा को आश्वासन ॥

नारायण सत्यभामा पुनरेवैप भारत ।
प्रोवाच प्रणयात्क्रुद्धामभिमानवती सतीम् ॥१
दहतीव ममाङ्गानि शोक कमललोचने ।
किमु तत्कारण येन त्वमेवमतिविक्लवा । २
शापितासि मम प्राणैराचक्ष्वानत्ययो यदि ।
श्रोतव्य यदि भवतेन भर्त्रा सर्वाङ्गशोभने ॥३
तत प्रोवाच भर्तार सत्या सत्यव्रते स्थितम् ।
बाष्पगद्गदया वाचा तथैवाधोमुखी स्थिता ॥४
त्वयैव स्थापित पूर्वं सौभाग्य मम मानद ।
प्रगल्भमलपत्राक्ष यस्मात रेरिपुनाशन ॥५

शिरो वहामि चेष्टत्वात्तवाहं देव गर्विता ।
सर्वसीमन्तिनीमध्ये स्पृहणीयाऽस्मि सर्वथा ॥६.

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! उस प्रणय-कोप से कुपित हुई मानती सत्यभामा से भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा ॥१॥ भगवान् बोले—हे कमललोचने ! तुम्हारे दुःख को देख कर मेरा देह दग्ध हो रहा है, यदि तुम्हारे कोप की बात मेरे सुनने के योग्य हो और तुम्हें उसके कहने मे कोई बाधा न हो तो तुम्हें मेरे प्राण की शपथ है, उसे मुझे अवश्य बताओ ॥१-३॥ यह सुन कर पूर्ववत् मुख को नीचा किये और अश्रु बहाते हुए सत्यभामा ने कहा—आपने स्वय ही अपने मुख से मेरे सौभाग्य को श्रेष्ठ बताया था, इसीलिये सब ससार मुझे परम सौभाग्यवती मानता है ॥४-५॥ मैं आपकी सर्वाधिक प्रियतमा हूँ, यही सोच कर अपने सौभाग्य-गर्व का भार मस्तक पर वहन कर रही हूँ और इसीलिये मेरा सर्वाधिक आदर होता है ॥६॥

साऽहमद्यावहास्यामि सपत्नीनां जनस्य च ।
इति प्रेष्याभिराख्यातं श्रुत्वा तथ्य ततस्ततः ॥७
यत्पारिजातकुसुम दत्तवान्नारदस्तव ।
तत्क्लिष्टजने दत्त त्वयाऽहं परिवर्जिता ॥८
गत्नातिशयदाने नतस्यामभ्यधिकः किल ।
स्नेहश्च बहुमानश्च प्रकाश गमितस्त्वया ॥९
तामस्तौषीत्समक्षं ते प्रिया स किल नारदः ।
तमश्रौषीश्च हृष्टस्त्व प्रियायाः सस्तव किल ॥१०
स्तोतव्यो यदि तावत्स नारदेन तवाग्रतः ।
दुर्भगोऽयं जनस्तत्र किमर्थमनुशब्दितः ॥११
प्रणयस्य रस दत्त्वा पश्चात्तापः प्रभो यदि ।
अनुज्ञां मे प्रयच्छस्य तपः कर्तुं प्रसीद मे ॥१२
स्वप्नेनापि न दृष्टाऽहं श्रद्दध्या पुष्करेक्षण ।
यदन्यदेव निर्वृं तमश्रौष पश्यतस्तव ॥१३

कामं कामोऽस्तु तस्यैव मुनेरतुलतेजसः ।
अत्र मन्युस्तु मे देव सांनिध्यं तव तत्र यत् ॥१४

परन्तु आज मैं अपनी अन्यान्य सौतों और जन-साधारण के लिये उपहास के योग्य बन गयी हूँ । मुझे दासियों से ज्ञात हुआ है कि नारद जी ने आपको पारिजात का एक पुष्प दिया था, वह पुष्प रत्न आपने मुझे त्याग कर अपनी प्रिय भार्या रुक्मिणी को प्रदान कर दिया, इससे मैं समझती हूँ कि आपका यत्न अथवा स्नेह अधिक से अधिक रुक्मिणी पर ही है ॥७-६॥ देवर्षि नारद जी ने रुक्मिणी की प्रशंसा आपके ही सामने की और आप उसे प्रसन्न हो-हो कर सुनते रहे, इस वृत्तान्त से बढ़ कर और कौन-सी बात मेरे लिये दुर्भाग्य सूचक हो सकती है ॥१०-११॥ पहिले प्रणय-रस से अभिषिक्त करना और फिर सन्तप्त करना ही यदि आप ठीक समझते हैं तो आप अब मुझे तप करने की आज्ञा दीजिये ॥१२॥ मैं तो स्वप्न में भी कभी अपने से अधिक किसी अन्य को आपकी प्रेमपात्री नहीं समझती थी, नारद जी ने ही रुक्मिणी की सराहना की होती तो उससे मुझे क्षोभ नहीं होता, परन्तु आपके उपस्थित रहते हुए ऐसा होने से मुझे अत्यन्त दुःख होता है ॥१३-१४॥

सात्राजिति प्रिया नान्या त्वत्तो मेऽस्तीति विद्धि माम् ।
यदवोच क्व तद्यानमथ वा कः स्मरिष्यति ॥१५
यदद्राक्षीद्धि मां श्वश्रूर्बहुमानेन नन्दिनी ।
अवज्ञाता त्वया राज्ञी नूनं दौर्भाग्यकर्शिताम् ॥१६
किं नु गूढेन मे प्रेम्णा सुस्निग्धेनापि मानद ।
यत्समाना जनैर्देवो मां न पश्यति नित्यदा ॥१७
नाहं त्वां कितव धूर्तमज्ञासिषमरिंदम ।
अद्य ज्ञातोऽसि तत्पक्षचञ्चलो जनवञ्चकः ॥१८
स्वरवर्णेङ्गिताकारैर्निगूढो देव यत्नतः ।
चोर ज्ञातोऽसि तत्पक्षवाङ्मात्रमधुरः शठः ॥१९
एवमीर्ष्यावशं प्राप्ता देवी सात्राजिती हरिः ।
अभिमानवती देवः सान्त्वपूर्वमथाब्रवीत ॥२०

मैव पद्मपलाशाक्षि प्राणेश्वरि वद प्रिये ।
किमत्र बहुनोक्तेन त्वदीयमवगच्छ माम् ॥२१

आप तो कहा करते थे कि हे सत्राजित सुते ! विश्व में तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी मेरे लिये प्रिय नहीं है । आपकी वह बातें अब कहाँ हैं ? अथवा जब मेरी मृत्यु हो जायगी, तब उन बातों को आपको कौन याद करावेगा ? ॥१५॥ मेरी सास मुझे कितने स्नेह-भाव से देखती थीं, अब आपके द्वारा सम्मान प्राप्त न होने पर क्या वह मुझे उसी प्रकार स्नेह से देखेंगी ॥१६॥ जब आपने मुझे सामान्य व्यक्ति के भी तुल्य नहीं माना है, तो फिर मुख से मधुर बातें करने और मिथ्या प्रेम प्रदर्शन करने से क्या लाभ है ? ॥१७॥ मैं आज तक आपको ऐसा कपटी और धूर्त नहीं समझती थी, परन्तु अब मुझे ज्ञात हो गया है कि आप असामान्य जनवञ्चक तथा रुक्मिणी का पक्ष लेने वाले हैं ॥१८॥ आपको क्रूर, आकार अथवा भाव-भंगिमा आदि के द्वारा नहीं जाना जा सकता, परन्तु आज तो आप प्रकारान्तर से चोर, शठ और वाणी-मात्र से मधुर दिखाई दे रहे हैं ॥१९॥ तब सत्यभामा को अत्यन्त ईर्ष्यापरायण और अभिमानिनी देख भगवान् ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—हे प्रिये ! हे पद्मपत्र जैसे नेत्र वाली प्राणेश्वरी ! अपने मुख से ऐसा मत कहो, तुम मेरी सर्वस्व हो और मैं सब प्रकार से तुम्हारा ही हूँ ॥२०-२१॥

तत्पारिजातकुसुमं तस्या देवि ममाग्रतः ।
नारदो मत्प्रियं कुर्वन्मुनिरखिलष्टकमंकृत् ॥२२
दाक्षिण्यादानुरोधाच्च दत्तवान्नात्र संशयः ।
प्रसीदैकापराधं मे मर्षयस्व शुचिस्मिते ॥२३
पारिजातकपुष्पाणि यदीच्छस्यतिकोपने ।
तदा दातास्मि सुश्रोणि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥२४
स्वर्गास्पदादानयित्वा पारिजातं द्रुमेश्वरम् ।
गृहे ते स्थापयिष्यामि यावत्कालं त्वमिच्छसि ॥२५
एवमुक्ता तु हरिणा प्रोवाच हरिवल्लभा ।
यद्येव स द्रुमः शक्यस्त्विहानयितुमच्युत ॥२६

मन्युरेष प्रसृष्टो हि भवेद्बहुगुणं मम।
सीमन्तिनीनां सर्वासामधिका स्यामधोक्षज ॥२७
तथाऽस्तु प्रथमः कल्प इति तां मधुसूदनः ।
प्रोवाचाप्रतिमो देवो जगतः प्रभवाप्ययः ॥२८
तथेत्युक्तेति कृष्णेन तुतोष समितिंजयः ।
सत्यभामा सतामिष्टा कंसनाशनवल्लभा ॥२९

नारद जी ने रुक्मिणी को पारिजात पुष्प प्रदान किया है, उसमें उनका उद्देश्य मेरा प्रिय करना मात्र था। हे सुहासिनी ! यह मेरा प्रथम अपराध है, इसे क्षमा कर देना चाहिये २२-२३॥ यदि तुम भी पारिजात पुष्प की इच्छा करती हो तो मैं तुम से यह सत्य ही कहता हूँ कि मैं तुम्हें वह पुष्प अवश्य ही लाकर दूँगा ॥२४॥ स्वर्ग मे स्थित उस पारिजात वृक्ष को ही मैं ले आऊँगा और तुम्हारे भवन मे ही उसे स्थापित कर दूँगा, फिर जब तक तुम चाहो, तब तक उसे अपने ही यहाँ रखना ॥२५॥ श्रीकृष्ण की बात से आश्वस्त होती हुई सत्यभामा ने कहा—हे प्रभो ! यदि आप पारिजात को ही यहाँ ला देंगे तो फिर मेरा क्षोभ ही क्यों रहेगा ? इससे हमारी कामना ही पूर्ण होगी तथा मैं सभी नारियों में सर्वश्रेष्ठ कही जाकर प्रशंसा को प्राप्त हूँगी ॥२६-२७॥ हे राजन् ! संसार की सृष्टि और प्रलय के मूल कारण भगवान् कृष्ण ने 'तथास्तु' कह कर सत्यभामा को सन्तुष्ट किया, तब वह अत्यन्त प्रसन्न हो गई ॥२८-२९॥

ततः स्नातो जगन्नाथः सर्वेशः सर्वभावनः ।
चकारावश्यकं सर्वं सर्वकामप्रदः सताम् ॥३०
दध्यौ च नारदं देवः स्नातो देवमुनिर्नृप ।
अभ्याजगाम स्नानान्ते मुनिश्रेष्ठो महोदधौ ॥३१
तमागतं नरपते सतां गतिरधोक्षजः ।
सत्यया सह धर्मात्मा यथाविधि अपूजयत् ॥३२
पादौ प्रक्षालयांचक्रे मुनेः साथाजिती स्वयम् ।
जलं देवः स्वयं विष्णो भृङ्गारेण ददौ तदा॥३३

जयोपकल्पयामास सुखासीनाय केशवः ।
परमान्नं स मुनये प्रयतात्मा जगद्गुरुः ॥३४
तल्लोककर्त्रा सत्कृत्य दत्तं मुनिरुदारधीः ।
बुभुजे वदतां श्रेष्ठः श्रद्धया परया युतः ॥३५

इसके पश्चात् सर्वात्मा भगवान् वासुदेव ने स्नानादि कर्मों से निवृत्त होकर देवर्षि नारद का ध्यान किया और तभी वह जल में स्नान करके भगवान् के समक्ष आ खड़े हुए ॥३०-३१॥ उनके आते ही श्रीकृष्ण और सत्यभामा ने उनका यथाविधि स्वागत और पूजन किया ॥३२॥ भगवान् झारी लेकर जल डालने लगे और सत्यभामा उनके पाँव धोने लगी ॥ ३३ ॥ जब नारद जी सुखपूर्वक श्रेष्ठ आसन पर बैठ गये तब भगवान् ने उन्हें खीर का भोजन अपने हाथों से परोसा ॥३४॥ भगवान् द्वारा इस प्रकार सत्कार को प्राप्त होते हुए वाग्मिवर एवं तपोधन नारद जी अत्यन्त तृप्तिपूर्वक भोजन करने लगे ॥३५॥

उपस्पृश्य ततस्तृप्तः प्रददौ चाशिषः प्रभो ।
ताश्च प्रीतेन मनसा प्रतिजग्राह केशवः ॥३६
ततः सात्राजिती देवी प्रणता नारदोऽब्रवीत् ।
प्रसार्य दक्षिणं हस्तं सजलं जलजेक्षणाम् ॥३७
यथेदानीं तथैव त्वं भव देवि पतिव्रता ।
सविशेषं च सुभगा भव मत्तपसो बलात् ॥३८
इत्युक्ता मुनिमुख्येन सत्यभामा हरिप्रिया ।
उत्तस्थौ महता युक्ता हर्षेण तु नराधिप ॥३९
स कृष्णोऽप्यभ्यनुज्ञां तु लब्ध्वा मुनिवरात्तदा ।
बुभुजे विघसं धीमानप्रमेयपराक्रम ॥४०
ततस्त्वावश्यकं कृत्वा सत्यभामाऽपि भारत ।
अनुज्ञया तदा भर्तुर्विवेशान्तर्गृहं मुदा ॥४१
ततो विनिर्गता देवी कृष्णस्यैवाभ्यनुज्ञया ।
स्थिता पार्श्वे च कृष्णस्य नमस्कृत्वा महात्मने ॥४२

इस प्रकार दिव्य भोजन से लाभ करके नारदजी ने आचमन किया और

हाथ धोये। फिर हाथ में जल ग्रहण करके भगवान् को आशीर्वाद दिया, जिसे उन्होंने श्रद्धा सहित ग्रहण किया तथा सत्यभामा ने उनके समक्ष मस्तक झुकाया। फिर नारदजी ने जल ग्रहण करके सत्यभामा को भी आशीर्वाद दिया ॥३६-३७॥ नारदजी बोले—हे देवि! आप इस समय जैसी पति-परायणा हैं, वैसे ही भविष्य में भी पति की प्रियतमा और पति परायणा बनी रहें, मेरे तपोबल से आपको अधिकाधिक सौभाग्य-वृद्धि हो ॥३८॥ नारदजी के यह आशीर्वचन सुन कर सत्यभामाजी अत्यन्त आनन्दित हो उठीं और तभी देवर्षि की आज्ञा पाकर भगवान् भी भोजन करने लगे। उनके भोजन कर लेने के पश्चात् भगवान् की अनुमति प्राप्त कर सत्यभामा भी अन्य आवश्यक कार्यों को सम्पन्न करके भोजन करने के लिये अन्दर गई ॥३६-३९-४०-४१॥ भोजन के पश्चात् सत्यभामा ने बाहर आकर नारदजी को नमस्कार किया और भगवान् की बगल में जा बैठी ॥४२॥

ततो मुहूर्तमासित्वा नारदः कृष्णमब्रवीत् ।
आपृच्छे त्वा गमिष्यामि शक्रलोकमधोक्षज ॥४३
तत्राद्य देवमीशान नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
गास्यन्ति देवगन्धर्वास्तथैवाप्सरसा गणाः ॥४४
मासि मास्युचितं ह्येतन्महेन्द्रसदने प्रभो ।
पूजार्थं देवदेवस्य गान्धर्वं नृत्यमेव च ॥४५
अन्तर्हितो देवदेव सोमः सप्रवरो विभुः ।
पश्यत्यमरमुख्येन कृत भक्त्याऽद्रिघातिना ॥४६
निमन्त्रितोऽहं पूर्वेद्युः पुष्पं दत्तं महाद्युते ।
पारिजातस्य भद्रं ते तरुराज्ञो महात्मनः ॥४७
यदेतदाहृतं स्वर्गात्त्वदर्थं तु मया विभो ।
देवोपभोग्यमेतद्धि तरुराजसमुद्भवम् ॥४८
इष्टः स वृक्षः सततं शच्याः पुष्करलोचन ।
सौभाग्यमावहत्येव पूज्यमानोऽपि नित्यशः ॥४९

इसके पश्चात् नारदजी ने भगवान् से कहा—हे अधोक्षज! ।

ऐसे अनुमति दें तो मैं इद्रलोक के लिये प्रस्थान करूं ॥४३॥ वहां देवता, गंधर्व और अप्सरागण भगवान् शिवजी को नमस्कार करके संगीत का आयोजन करेंगे ॥४४॥ भगवान् शंकर के पूजनोपलक्ष्य मे देवराज इन्द्र के भवन मे प्रतिमास नृत्य-गायन का आयोजन हुआ करता है ॥४५॥ भगवान् शिवजी, और पार्वती अपने गणों के सहित अन्तर्हित भाव से इन्द्र द्वारा अनुष्ठित उस पूजन समारोह को देखा करते हैं ॥४६॥ मुझे कल ही सुरपति इन्द्र ने एक पारिजात पुष्प देकर निमन्त्रित किया है ॥४७॥ हे विभो ! मैं उस पुष्प को आपके लिये ही यहां लाया हूं, यह पुष्प तरुराज की सम्पत्ति और देवताओं के उपभोग करने योग्य धन है ॥४८॥ हे पद्मलोचन ! देवी इन्द्राणी उस वृक्ष का अत्यन्त आदर करती हैं, क्योंकि उसका नियमित रूप से पूजन करने पर सदा सौभाग्यवृद्धि होती है ॥४९॥

पुण्यं कर्तुं तदा सृष्टः पारिजातो महाद्रुमः।
आदित्या धर्मनित्येन कश्यपेन महात्मना ॥५०
पुराऽदित्या महातेजास्तोषितः किल कश्यपः।
वरेण च्छन्दयामास मारीचस्तपसो निधिः ॥५१
सोवाच सुभगा येन भवेय मुनिसत्तम ।
स्वलंकृता कामतश्च सर्वै रेव विभूषणैः ॥५२
ईप्सित गीतनृत्यं च भवेन्मम तपोधन ।
कुमारी नित्यदा चैव भवेयं तपसो निधे ॥५३
विरजा शोकरहिता भवेयमिति नित्यदा ।
पतिभक्तिमती चैव धर्मशीला तथैव च ॥५४
पारिजात ततोऽस्राक्षीददित्याः प्रियकाम्यया।
सर्वकामप्रदैः पुष्पैरावृत नित्यगन्धदैः ॥५५
त्रिशाख सर्वदा दृश्य सर्वभूतमनोहरम् ।
सर्वपुण्याणि दृश्यन्ते तस्मिन्नेव महाद्रुमे ॥५६

अत्यन्त धार्मिक महात्मा कश्यपजी ने अदिति के पुण्यव्रत के साधन रूप उस पारिजात की रचना की थी ॥५०॥ प्राचीन काल मे तपोनिधि

कश्यपजी को प्रसन्न करते हुए देवमाता अदिति ने उन से निवेदन किया था— हे प्रभो ! मैं इच्छित आभूषणों से विभूषित हो सकूँ, मेरी सौभाग्य लक्ष्मी सदा वृद्धि होती रहे, मेरे इच्छा करते ही नृत्य-सगीत आदि के कार्यक्रम हो लगें, मैं चिरकाल तक यौवन से सम्पन्न रहूँ, मैं सदैव धर्म परायणा और पतिव्रत रहूँ, जिससे किसी रोग, शोक आदि का मुझसे स्पर्श न हो सके, इसके लिये शी ही कोई उपाय करिये । ५१-५४।। अदिति के वचन सुन कर तपोधन कश्यप अपनी भार्या की इच्छा पूर्ण करने के लिये, सब के मन का हरण करने वाले त्रिशाखा युक्त पारिजात वृक्ष की रचना की और उसी महावृक्ष में उन्होंने नि सुगंध देने वाले सब प्रकार के पुष्प प्रफुल्लित होने की शक्ति भर दी ।।५५-५६

ईदृशान्यपि पुष्पाणि बिभर्त्येकापि रूपिणी ।
बहुरूपाणि चाप्यन्या पद्मानि च ततोऽपरा ।।५७
मन्दारादपि वृक्षाच्च सारमुद्धृत्य कश्यपः ।
तस्मादेष तरुश्रेष्ठ. सर्वेषां श्रेष्ठता गतः ।।५८
ततस्तत्र निबध्याथ कश्यप प्रददौ शुभे ।
अदितिर्मम पुण्यार्थं सौभाग्यार्थं तथैव च ।।५९
अदित्या कश्यपो दत्त. पुण्यार्थं च तथा मम ।
पुष्पदाम्ना वेष्टयित्वा कण्ठे पुण्यार्थमात्मवान् ।।६०
निष्क्रयेण मया मुक्तः कश्यपस्तु तपोधनः ।
इन्द्रो दत्तस्तथेन्द्राण्या सौभाग्यार्थं ततो मम ।।६१
सोमश्चाप्यथ रोहिण्या ऋद्धया च धनदस्तथा ।
एवं सौभाग्यदो वृक्षः पारिजातो न सशयः ।।६२
पारिजातो विष्णुपद्याः पारिजातेतिशब्दितः ।
मन्दारपुष्पैर्युक्तो मन्दारस्तेन कथ्यते ।।६३
कोऽप्यथ दारयित्याहुरजानन्तो यतो जनाः ।
कोविदार इति ख्यातस्ततः स सुमहातरुः ।।६४
मन्दारः कोविदारश्च पारिजातश्च नामभिः ।
स वृक्षो ज्ञायते दिव्यो यस्यैतत्कुसुमोत्तमम् ।।६५

उसकी एक शाखा में एक प्रकार के, दूसरी शाखा में दूसरे प्रकार के तथा तीसरी शाखा में विभिन्न प्रकार के अन्यान्य पुष्प खिलते हैं ॥५७॥ महर्षि कश्यप ने मन्दार के सारयुक्त ऐसे उस पारिजात तरु की रचना की थी, जिससे वह वृक्ष सर्व श्रेष्ठ माना गया ॥५८॥ इसके कुछ समय पश्चात् अदिति ने अपने पुण्य और सौभाग्य की वृद्धि-कामना से उस वृक्ष की जड़ में पुष्पमाला से महात्मा कश्यप को बाँध कर मुझे दान किया, तब मैंने कुछ द्रव्य लेकर कश्यप को छोड़ दिया। इसी प्रकार इन्द्राणी ने भी अपने पुण्य और सौभाग्य-वृद्धि के उद्देश्य से इन्द्र को तथा रोहिणी ने चन्द्रमा को और ऋद्धि ने कुबेर को इसी उद्देश्य से बाँध कर मुझे दान में दिया, इस लिये वह पारिजात वृक्ष अत्यन्त सौभाग्य का देने वाला है, इसमें संशय नहीं है ॥५९-६२॥ वह गंगा से उत्पन्न होने के कारण पारिजात संज्ञक हुआ है, उसमें मदार-पुष्पों के खिलने से मदार भी कहा जाता है ॥६३॥ उक्त नामों को जो नहीं जानते, वे उसे 'दारु' कह देते हैं, इस कारण उसका कोविदार नाम पड़ गया ॥६४॥ जिस वृक्ष की सम्पत्ति यह पुष्प रत्न है, उस वृक्ष को मन्दार, कोविदार और पारिजात इन तीनों नामों से जाना जाता है ॥६५॥

॥ श्रीकृष्ण और इन्द्र का युद्ध ॥

अथ विष्णुर्महातेजा मुहूर्तम्युदिते रवौ ।
मृगयाव्यपदेशेन ययौ रैवतकं गिरिम् ॥१
आरोप्यंकरथे देवः सात्यकिं नरपुङ्गवम् ।
प्रद्युम्नमनुगच्छेति प्रोक्त्वा कुरुकुलोद्वह ॥२
रैवतं च गिरिं देवो गत्वा दारुकमब्रवीत् ।
मदीयं रथमेनं त्वं ग्रहायेहैव दारुक ॥३
प्रतिपालय मां सौम्य दिनार्द्धं वारयन्हरीन् ।
रथेनैव प्रवेष्टाऽहं द्वारकां सूतसत्तम ॥४
इति संदिश्य भगवानारुरोह जयोद्यतः ।
तार्क्ष्यं ससात्यको धीमानप्रमेयपराक्रमः ॥५

पृथग्रथेन कौरव्य प्रद्युम्नः शत्रुसूदनः ।
आकाशगामिना राजन्पृष्ठतः कृष्णमन्वयात् ॥६
निमेषान्तरमात्रेण नन्दन कानन हरिः ।
देवोद्यान ययौ धीमान्पारिजातजिहीर्षया ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! प्रातःकाल होने पर सूर्योदय हुआ और मृगया के मिस से भगवान् श्रीकृष्ण रैवतक पर्वत की ओर गये ॥१॥ उस समय उन्होंने सात्यकि को अपने साथ ले लिया और प्रद्युम्न से भी अपने पीछे-पीछे आने को कहा ॥२॥ रैवतक पर्वत पर पहुँच कर उन्होंने अपने सारथी दारुक को आदेश दिया कि रथ को यहाँ रोक दो और घोड़ो को भी विश्राम कराओ ॥३॥ तथा दोपहर तक मेरे यहाँ आने की प्रतीक्षा करो मुझे लौट कर द्वारका ही जाना है ॥४॥ दारुक को इस प्रकार का आदेश देकर भगवान् श्रीकृष्ण विजय की इच्छा करते हुए सात्यकि सहित गरुड पर आरूढ हुए ॥५॥ उनका पुत्र प्रद्युम्न भी एक अन्य आकाशगामी रथ पर चढ कर भगवान् के पीछे-पीछे चल पड़ा ॥६॥ इस प्रकार पारिजात को लेने की इच्छा से भगवान् अर्द्ध निमेष मे ही देवोद्यान मे पहुँच गये ॥७॥

ददर्श तत्र भगवान्देवयोधान्दुरासदान् ।
नानायुधधरान्वीरान्नन्दनस्थानधोक्षज. ॥८
तेषा सपश्यतामेव पारिजात महाबल. ।
उत्पाट्यारोपयामास पारिजात सता गतिः ॥९
गरुड पक्षिराजानमयत्नेनैव भारत ।
उपस्थितो विग्रवान्पारिजातः स केशवम् ॥१०
सान्त्वितो वासुदेवेन पारिजातश्च भारत ।
उक्तश्च वृक्ष मा भैस्त्व केशवेन महात्मना ॥११
स प्रस्थित तत दृष्ट्वा पारिजातमधोक्षजः ।
अमरावतीं पुरी श्रेष्ठा ततश्चक्रे प्रदक्षिणाम् ॥१२
ते तु नन्दनगोप्तारः पारिजातो द्रुमोत्तमः ।
ह्रियतीति महेन्द्राय गत्वा नृप शशंसिरे ॥१३

अथैरावतमारुह्य निर्ययौ पाकशासनः ।
जयन्तेन रथस्थेन पृष्ठतोऽनुगतः प्रभुः ॥१४

वहाँ पहुँच कर उन्होंने विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्रों को धारण किये हुए देवयोधाओं को उसकी सुरक्षा में तत्पर देखा ॥८॥ उनकी उपस्थिति में भगवान् ने क्रीड़ा पूर्वक पारिजात वृक्ष को उखाड़ कर गरुड की पीठ पर रख लिया ॥९॥ तभी पारिजात मूर्तिमान होकर डर के कारण कम्पायमान होता हुआ भगवान् के समक्ष स्थित हुआ ॥१०॥ उन्होंने उसे सान्त्वना दी कि हे वृक्ष श्रेष्ठ ! तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो ॥११॥ उनकी बात सुन कर वह आश्वस्त हुआ और तब श्रीकृष्ण उस सर्व प्रधान अमरावती पुरी की प्रदक्षिणा करने लगे ॥१२॥ हे राजन् ! तभी उस नन्दन कानन के रक्षकों ने इन्द्र को सूचना दी कि हे सुरराज ! श्रीकृष्ण पारिजात को ले जा रहे हैं ॥१३॥ यह सुनते ही इन्द्र अपने ऐरावत पर चढ़ कर नगरी से बाहर चले तभी उसका पुत्र जयन्त भी रथ पर चढ़ कर उनके पीछे-पीछे चल पड़ा ॥१४॥

पूर्वमभ्यागतं द्वारं केशवं शत्रुनाशनम् ।
दृष्ट्वोवाच प्रवृत्तं भोः किमिदं मधुसूदन ॥१५
प्रणम्य गरुडस्थोऽथ केशवः शक्रमब्रवीत् ।
वध्वास्ते पुण्यकार्याय नीयतेऽयं वरद्रुमः ॥१६
तमुवाच ततः शक्रो मा मैवं पुष्करेक्षण ।
अबोधयित्वा न तरुर्नयितव्यस्त्वयाऽच्युत ॥१७
प्रहरस्व महाबाहो प्रथमं मयि केशव ।
प्रतिज्ञा सफला तेऽस्तु मुक्त्वा कौमोदकीं मयि ॥१८
ततः कृष्णः शरैस्तीक्ष्णैर्देवराजगजोत्तमम् ।
विभेदाशनिसंकाशैः प्रहसन्निव भारत ॥१९
विव्याध गरुडं वज्री दिव्यैः शरवरैस्तथा ।
बाणांश्चिच्छेद सहसा केशवस्य तरस्विनः ॥२०
यान्यान्मुमोच देवेन्द्रस्तांस्तांश्चिच्छेद माधवः ।
माधवेन प्रयुक्तांश्च चिच्छेद बलवृत्रहा ॥२१

जब वह नगरी के पूर्व द्वार पर पहुँचे तब उन्होंने श्रीकृष्ण को वहाँ देखे और उनसे बोले कि हे मधुसूदन ! आपने यह कार्य क्यों किया है ? ॥१५॥ श्रीकृष्ण ने इन्द्र को प्रणाम करके कहा—हे सुरेन्द्र ! आपकी भ्रातृवधू का पुण्य कार्य सम्पन्न करने के निमित्त इस पारिजात की आवश्यकता है, इसीलिये इसे लेजा रहा हूँ ॥१६॥ तब इन्द्र ने कहा—हे पद्माक्ष ! इस पारिजात को आप युद्ध करके ही यहाँ से ले जा सकते हैं। १७॥ इसलिये हे महाबाहो ! आप मुझ पर प्रथम प्रहार कीजिये, और मेरे वक्षस्थल पर अपनी गदा चला कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करिये ॥१८॥ तब श्रीकृष्ण ने हँस कर अपने वज्र के समान बाण से इन्द्र के ऐरावत हाथी को घायल कर दिया ॥१९॥ फिर इन्द्र ने अपने बाणों से पक्षिराज गरुड को बींध डाला और भगवान् के तीक्ष्ण वेग वाले बाणों को भी काट दिया ॥२०॥ श्रीकृष्ण ने भी इन्द्र के बाणों को काट दिया, इस प्रकार वे परस्पर एक दूसरे के बाणों को काटने में प्रयत्नशील थे ॥२१॥

महेन्द्रस्य च शब्देन धनुष कुरुनन्दन ।
शार्ङ्गस्य च निनादेन मुमुहु. स्वर्गवासिनः ॥२२
तयोर्वर्तति संग्रामे गरुडस्थो महाबलः ।
पारिजातं जयन्तोऽथ हर्तुमभ्युद्यतो बली ॥२३
प्रद्युम्नमथ कसघ्नो वारयेति तदाऽब्रवीत् ।
ततस्तं वारयामास रौक्मिणेयः प्रतापवान् ॥२४
जयन्तो जयतां श्रेष्ठो रौक्मिणेयमदेषुभिः ।
सर्वगात्रेषु विहसन्नाजघान रथे स्थितः ॥२५
रथस्थ एव रथिनं कामस्तु कमलेक्षणः ।
ऐन्द्रिमभ्यर्दयामास बाणैराशीविषोपमैः ॥२६
स सन्निपातस्तुमुलो बभूव कुरुनन्दन ।
जयन्तस्य च वीरस्य रौक्मिणेयस्य चोभयोः ॥२७
कृतप्रतिकृतं युद्धे चक्रतुस्तौ महाबलौ ।
महेन्द्रोपेन्द्रतनयौ जगत्यसम्भृता वरौ ॥२८

हे राजन् ! श्रीकृष्ण के शार्ङ्ग धनुष तथा इन्द्र धनुष की टंकोर

स्वर्ग के सभी निवासी व्याकुल हो उठे ॥२२॥ श्रीकृष्ण और देवराज मे अब भयंकर युद्ध होने लगा तथा जयन्त भी गरुड़ की पीठ से पारिजात उठाने को बढा ॥२३॥ तभी श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न से उसे रोकने को कहा, जिससे प्रद्युम्न इन्द्र के पुत्र को रोकने के लिये उद्यत हुआ ॥२४॥ इसके पश्चात् विजयी श्रेष्ठ जयन्त अपने रथ पर चढ़ कर विकराल बाण-वर्षा से प्रद्युम्न के अंगों को बींधने लगा ॥२५॥ उसी प्रकार प्रद्युम्न भी अपने सर्प के समान बाणों के प्रहार से जयन्त को घायल करने लगा ॥२६॥ इस प्रकार इन दोनो मे भी घोर संग्राम होने लगा और एक-दूसरे के प्रयत्न से दोनों के ही शस्त्रास्त्र निष्फल होने लगे ॥२७-२८॥

देवाश्च मुनयश्चैव ददृशुर्विस्मयान्विताः ।
त संग्राम महाघोरं सिद्धाश्चैव सचारणाः ॥२९
ततस्तु प्रवरो नाम देवदूतो महाबलः ।
पारिजात पुनर्हर्तुमियेष कुलनन्दन ॥३०
सखा स देवराजस्य महास्त्रविदरिन्दमः ।
अवध्यो वरदानेन ब्रह्मणः कुरुनन्दन ॥३१
ब्राह्मणस्तपसा सिद्धो जम्बुद्वीपाद्दिवं गतः ।
स्वशक्त्या नृप संयातः सखित्वं बलघातिना ॥३२
तमापतन्त सम्प्रेक्ष्य कृष्णः सात्यकिमब्रवीत् ।
अत्रस्थ एव प्रवरं शरैर्वारय सात्यके ॥३३
न त्वस्य निर्दयं बाणा मोक्तव्याः सात्यके त्वया ।
अस्य ब्राह्मणचापल्य सोढव्यं खलु सर्वथा ॥३४
ततः पष्ट्या रथेपूणा गरुडस्थं द्विजस्तदा ।
आजघान महाबाहो सात्यकिं प्रवरो भृशम् ॥३५

उस समय सभी देवता, मुनि, सिद्ध तथा चारणों को उनका युद्ध देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ ॥२९॥ तभी प्रवर नामक एक अत्यन्त बलशाली देवदूत गरुड़ की पीठ से उस पारिजात को हरण करने की चेष्टा करने लगा ॥३०॥ ब्रह्माजी के वरदान से वह देवदूत सभी प्राणियों के द्वारा अवध्य था, शस्त्र विद्या

मे पूर्ण कुशल और इन्द्र के अभिन्न मित्रो मे था ॥३१॥ वह अपने श्रेष्ठ तपोबल से ही स्वर्ग को प्राप्त हुआ था और तभी इन्द्र के साथ उसकी मित्रता स्थापित हुई थी ॥३२॥ उसे आता हुआ देख कर श्रीकृष्ण ने सात्यकि से कहा—हे सात्यके ! उस देवदूत प्रवर को तुम बाणों वर्षा करके रोको ॥३३॥ परन्तु, यह ध्यान रखना कि इस ब्राह्मण के देह पर तुम्हारे बाणों का प्रहार न हो, यद्यपि तुम्हें इसकी चपलता सहन करनी ही पडेगी ॥३४॥ सात्यकि से श्रीकृष्ण अभी इतना ही कह पाये थे, कि तभी उस प्रवर नामक देवदूत ने सात्यकि को लक्ष्य करके साठ बाणो से प्रहार किया ॥३५॥

शिनेर्नप्ता धनुस्तस्य क्षिपतः सायकान्नृप ।
चिच्छेद पुरुषव्याघ्रो वचनं चेदमब्रवीत् ॥३६
ब्राह्मणो नाभिहन्तव्यस्तिष्ठ तिष्ठ स्ववर्त्मनि ।
अवध्या यादवाना हि स्वापराधेऽपि हि द्विजा ॥३७
प्रवरस्तु प्रहस्यैनमुवाच कुरुनन्दन ।
अल क्षान्त्या नृणा शूर युद्धय सर्वात्मना रणे ॥३८
जामदग्न्यस्य रामस्य शिष्योऽहमपि यादव ।
नामतः प्रवरो नाम सखा शक्रस्य धीमत. ॥३९
न देवा योद्धुमिच्छन्ति मन्यन्तो मधुसूदनम् ।
आनृण्यं सौहृदस्याहमधिगन्तास्मि माधव ॥४०
ततस्तयोस्तदा रौद्रः सग्रामो ववृधे नृप ।
अस्त्रैर्दिव्यैर्नरव्याघ्र शैनेयद्विजमुख्ययोः ॥४१
द्यौश्चचाल तदा राजन्ह्यचलाश्च सहस्रशः ।
तस्मिन्वर्तति सग्रामे तेषामतिमहात्मनाम् ॥४२

तब सात्यकि ने उसका धनुष काट डाला और उससे कहा—तुम ब्राह्मण हो, सहस्र अपराध करने पर भी यादवगण ब्राह्मणो को नहीं मारते, इसलिये तुम्हें भी अपने सद्य मार्ग पर चलना चाहिये ॥३७-३७॥ सात्यकि की बात सुनकर प्रवर ने हँसते हुए कहा—हे वीर ! युद्ध मे क्षमा का कोई अस्तित्व नहीं होता, तुम मुझ पर अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर प्रहार करो ॥३८॥ मैं जमदग्नि पुत्र

परशुरामजी का शिष्य हूं, मैं इन्द्र का मित्र हूं तथा मेरा नाम प्रवर है ।३६॥ भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मानवश देवगण युद्ध करने की इच्छा नहीं करते, परन्तु, मैं आज मित्र ऋण से उऋण होने के लिये तत्पर हूं ॥४०॥ हे राजन् ! इसके पश्चात् सात्यकि और प्रवर में भीषण संग्राम छिड़ गया, जिससे स्वर्ग तथा भूमण्डल के असंख्य पर्वत विचलित हो गये ॥४२॥

नातिशिष्ये रणे कार्ष्णिरैन्द्रिमस्त्रभृतां वरम् ।
ऐन्द्रिः कार्ष्णि महात्मानं मायिनं शूरसत्तमम् ॥४३
हन्त गृहण प्रतीच्छेति तावुभौ योधसत्तमौ ।
युयुधाते नरश्रेष्ठ परस्परजयैषिणौ । ४४
ततो नादः समुत्सृष्टो ह्यमरैः पुण्यकर्मभिः ।
दृष्ट्वा स्थैर्यं च शौर्यं च प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥४५
प्रवरस्यापि बाणेन शितेन शिनिपुङ्गवः ।
चिच्छेदेष्वासनं वीरो हस्तावापं च भारत ॥४६
ततोऽन्यत्स तु जग्राह महत्तद्धनुरुत्तमम् ।
महेन्द्रदत्तं प्रवरो महाशनिसमस्वनम् ॥४७
स येन वीरो महता धनुषा निम्नसत्तमः ।
शरान्मुमोच विविधानर्करश्मिनिभांस्तदा ॥४८
चकर्त च धनुश्चित्रं शैनेयस्यामितौजसः ।
विव्याध सर्वगात्रेषु बाणैरपि च सात्यकिम् ॥४९

इधर प्रद्युम्न और जयंत में से किसी की भी हार नहीं हुई, वे दोनों ही परस्पर कहते थे कि शस्त्र लेकर मुझ पर प्रहार करो, इस प्रकार वे दोनों ही विजय की इच्छा से परस्पर घोर युद्ध कर रहे थे ॥४३-४४॥ उस समय स्वर्ग में रहने वाले सभी पुण्यात्मा पुरुष प्रद्युम्न की कुशलता देख कर उसकी प्रशंसा करने लगे, जिससे युद्ध भूमि में एक अद्भुत ध्वनि गूंज उठी ॥४५-४६॥ इधर सात्यकि ने भी अपने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से प्रवर के धनुष और अंगुलि को काट दिया ॥४७॥ तब प्रवर ने इन्द्र के दिये हुए एक वज्र के समान धनुष को ग्रहण किया और सूर्य किरणों के समान चमकते हुए बाणों की वर्षा करने लगा

॥४८॥ प्रवर द्वारा की गई उस भीषण बाण वर्षा से सात्यकि के धनुष टुकडे
गये और उसके अंग प्रत्यंग आहत हो गये ॥४६॥

धनुरादाय शैनेयस्ततोऽन्यत्कुरुनन्दन ।
दृढं भारसहं धीमान्विव्याध प्रवरं रणे ॥५०
उच्चकर्ततुरन्योन्यवमणी तौ शितैः शरैः ।
गात्रेभ्यश्चैव मांसानि मर्मभिद्भिः शरोत्तमैः ॥५१
अथाष्टधारबाणेन पुनरिष्वासनं द्विधा ।
चिच्छेद प्रवरो वीरस्त्रिभिश्चैनमताडयत् ॥५२
अन्यदिष्वासनं तं तु ग्रहीतुमनसं द्विज ।
गदया ताडयामास क्षेप्यया लघुहस्तवान् ॥५३
सोऽसिं चर्म च जग्राह सात्यकिः प्रहसन्निव ।
न जग्राह धनुर्धीमान्गदयाभिहतो भृशम् ।
ततः शरशतान्येव मुमोच प्रवरस्तदा ॥५४
विहस्तमिव विज्ञाय सात्यकिं यदुनन्दनम् ।
प्रद्युम्नोऽस्य ददौ खड्गं निर्मलाकाशसन्निभम् ॥५५
तस्य चिच्छेद भल्लेन निस्त्रिंशं प्रवरस्तदा ।
त्सरुदेशेऽपातयच्च प्रवरः प्रहसन्निव ।५६

इसके पश्चात् सात्यकि ने अन्य धनुष लेकर प्रवर पर भीषण बाण वर्षा आरम्भ की ॥५०॥ परस्पर में दोनों की घनघोर बाण वर्षा से दोनों के ही कवच टूट गये देह आहत हो गए तथा मांस निकल आया, तभी प्रवर ने अपने अष्टधार युक्त बाण के प्रहार से सात्यकि का धनुष काट दिया और तीन बाण सात्यकि के देह पर भी मारे ॥५१-५२॥ जब तक सात्यकि दूसरा धनुष भी न सम्भाल पाये, तब तक प्रवर ने उन पर गदा दे मारी ॥५३॥ जिसकी भीषण चोट से आहत होने पर भी सात्यकि ने हाथ में तलवार ग्रहण की, परन्तु इसी बीच में प्रवर ने उन पर सैकड़ों बाणों की वर्षा की ॥५४॥ सात्यकि को निहत्था देख प्रद्युम्न ने नीलाकाश के समान एक खड्ग उनके हाथ में दिया ॥५५॥ परन्तु प्रवर ने उस खड्ग के हाथ में आते ही अपने भल्लास्त्र से उसके टुकड़े कर दिये

और बाणों के प्रहार से खड्ग मुष्टि भी काट दी और कवच भी छिन्न-भिन्न कर डाला ॥५६॥

व्यधमच्च तथा चर्म शितैर्बाणैरजिह्मगै ।
आजघान च शक्त्यैनं हृदि विप्रो ननाद च ॥५७
तं विक्लवमिव ज्ञात्वा पारिजातजिहीर्षया ।
तार्क्ष्याभ्याशे रथेनैव स तस्थौ प्रवरस्तदा ॥५८
त पक्षपुटवेगेन चिक्षेप गरुडस्तथा ।
गव्यूतिमेका सरयः स पपात मुमोह च ॥५९
त जयन्तो निपत्याथ पतितं ब्राह्मण नृप ।
समाश्वास्य रथ शीघ्रं समारोपितवास्तदा ॥६०
शैनेयमपि मुह्यन्त पतन्त च मुहुर्मुहुः ।
आश्वासयानः प्रद्युम्नः पितृव्य परिपस्वजे ॥६१
त हि पस्पर्श हस्तेन सव्येन मधुसूदनः ।
विरुजः स्पर्श मात्रेण सात्यकि समपद्यत ॥६२
प्रद्युम्नो दक्षिणे पार्श्वे वामे तु शिनिपुङ्गवः ।
तस्यतु. पारिजातस्य युद्धशौण्डतरावुभौ ॥६३

फिर प्रवर न सात्यकि के हाथ पर शक्ति से भीषण प्रहार करके गर्जना की ॥५७॥ सात्यकि को बुरी तरह घायल हुआ देख कर पारिजात को लेने के लिये जैसे ही गरुड के पास गया, वैसे ही गरुड ने उस पर अपने पंख से ऐसा प्रहार किया कि प्रवर दो कोस दूर जाकर गिरा और उसे मूर्च्छा आगई ॥५८-५९॥ प्रवर को इस प्रकार गिरा हुआ देख कर जयन्त ने अपने रथ से उतर कर प्रवर को उठाया और अपने रथ पर बैठा लिया ॥ ६० ॥ उधर अपने चाचा सात्यकि को बारबार गिरते और मूर्च्छित होते हुए देखा तो प्रद्युम्न ने उसे सँभाला ॥६१॥ उसी समय श्रीकृष्ण ने सात्यकि के पास आकर उनके देह पर अपना हाथ फेरा, जिससे उनकी वेदना नष्ट हो गई और वह स्वस्थ हो गये ॥६२॥ तब प्रद्युम्न उस पारिजात के दक्षिण ओर तथा सात्यकि उसके बाएँ ओर खड़े होकर उसकी रक्षा करने लगे ॥६३॥

जयन्त प्रवरश्चैव रथेनैकेन भारत ।
सानन्तौ महेन्द्रेण प्रहस्योक्तौ महात्मना ॥६४
नासन्नमभिगन्तव्य गरुडस्य कथंचन ।
बलवानेष पतता राजा च विनतासुतः ॥६५
दक्षिणे चैव सव्ये च पार्श्वे मम धृतायुधौ ।
उभौ स्थितौ युद्धयमानं मामेव हि प्रपश्यतम् ॥६६
एवमुक्तौ स्थितौ वीरौ तत्र शक्रस्य पार्श्वयो. ।
ददृशाते युद्धयमानौ देवराजजनार्दनौ ।६७
अथेन्द्रो गरुड बाणैर्महाशनिसमस्वनैः ।
विव्याध सर्वगात्रेषु महास्त्रप्रवरैस्तथा ॥६८
तान्बाणानगणयन्वैनतेय. प्रतापवान् ।
ससाराभिमुखो वीर. शक्रनागमरिन्दम. ॥६९
उभौ तौ सहसा राजन्बलिनौ गजपक्षिणौ ।
प्रयुद्धौ वीर्यसपन्नौ महाप्राणौ दुरासदौ ॥७०

तभी जयन्त और प्रवर एक साथ एक ही रथ पर चढ़ कर गरुड़ की ओर बढ़े, यह देख कर इन्द्र ने हँस कर कहा कि तुम गरुड़ के निकट मत जाओ क्योंकि वह असाधारण वीर है ॥६४-६५॥ अब तुम शस्त्र धारणपूर्वक मेरे दोनों ओर स्थित हो जाओ और मेरा और श्रीकृष्ण का संग्राम देखो ॥६६॥ इन्द्र की बात सुन कर जयन्त और प्रवर दोनों ही उनके दोनों ओर खड़े होकर इन्द्र और श्रीकृष्ण के मध्य होने वाले युद्ध को देखने लगे ॥६७॥ तब वज्रपात के समान भीषण शब्द वाले बाणों के प्रहार से इन्द्र ने पक्षिराज गरुड़ के सम्पूर्ण देह को बींधना आरम्भ किया ॥६८॥ परन्तु गरुड़ ने उनके बाणों की चिन्ता न करके इन्द्र के ऐरावत हाथी पर आक्रमण कर दिया । ६९॥ तब अत्यन्त बलवान गरुड़ तथा ऐरावत में भयंकर संग्राम होने लगा, वे दोनों ही अत्यन्त पराक्रमी, दुर्धर्ष एवं युद्ध में कुशल थे ॥७०॥

रदनैः पन्नगरिपुं करेण शिरसा तदा ।
ऐरावणो गजवरो निराजघान नदंस्तदा ॥७१

तथा नखाङ्कुशस्तीक्ष्णैर्वैनतेयो बलोत्कटः ।
तथा पक्षनिपातैश्च शक्रनागं जघान ह ॥७२
मुहूर्त्तं सुमहानासीत्सम्पातो गजपक्षिणो. ।
विस्मापनीयो जगतः प्रेक्षितृणा भयावहः ॥७३
मूर्ध्न्यैरावतं तार्क्ष्यस्ताडयामास भारत ।
नखाङ्कुशकरालेन चरणेन महाबलः ॥७४
संप्रहाराभिसंतप्तो निपपात त्रिविष्टपात् ।
पारियात्रे गिरिश्रेष्ठे द्वीपेऽस्मिञ्जनमेजय ॥७५
पतन्तमपि तं शक्रो न मुमोच महाबलः ।
कारुण्यादथ सौहार्दात्पूर्वाभ्युपगमादपि ॥७६
कृष्णोऽप्यन्वगमच्चैनं पृष्ठतः प्रभवाव्ययः ।
पारिजातवता धीमान्गरुडेन महाबलः ॥७७

उस समय भीषण गर्जन करता हुआ ऐरावत अपने दाँत, सूँड और स्तक से प्रहार करता हुआ गरुड पर टूट पड़ा ॥७१॥ तब महाबली गरुड भी अपने नखों और पखों के प्रहार द्वारा ऐरावत को आहत करने लगे ॥ ७२ ॥ ऐरावत और गरुड़ के इस युद्ध ने कुछ क्षणों म ही वहाँ उपस्थित दर्शकों को विस्मित कर दिया । क्योंकि उनका युद्ध अत्यत भीषण हो उठा था ॥७३॥ उसी समय ऐरावत पर गरुड ने अपने नख रूपी अकुश तथा चरणों की भीषण मार की, जिससे अत्यत व्याकुल होकर ऐरावत स्वर्ग से गिरने लगा तथा वह जम्बू-द्वीप के पारियात्र नामक पर्वत पर आकर रुका ॥ ७४-७५ ॥ महाबली इन्द्र ने करुणा, सौहार्द तथा उसके पहिले उपकारों को याद करके स्वर्ग से गिरे हुए ऐरावत को छोड़ा नहीं ॥७६॥ उत्पत्ति और प्रलय के कारण रूप भगवान् भी पारिजात और गरुड के सहित देवराज इन्द्र के पीछे-पीछे चले ॥७७॥

स तस्थौ पर्वतश्रेष्ठे पारियात्रे तु वृत्रहा ।
ऐरावतं समाश्वस्ते सग्रामो ववृधे पुनः ॥७८
शरराशीविषप्रख्यं रत्नयुक्तैः सुतेजितैः ।
अन्योन्यं कुरुशार्दूल शक्रकेशवयोर्महान् ॥७९

ततो वज्रायुधो वज्रमशनिं च पुनः-पुनः ।
मुमोच गरुडे राजन्नैरावतरिपौ नृप ॥८०
वज्राशनिनिपातांस्तान्सेहे शक्रस्य पक्षिराट् ।
अवध्यो बलिना श्रेष्ठो निसर्गेण ततो बलात् ॥८१
मुमोच पक्षमेकैकं मानयन्नशनिं सदा ।
वज्रं च देवराज्ञोऽथ भ्रातुः कश्यपसंभवः ॥८२
आक्रम्यमाणस्तार्क्ष्येण न्यमज्जन्नृपते गिरिः ।
विवेश धरणीं राजञ्छीर्यमाणः समन्ततः ॥८३
चुकूज बहुमानेन कृष्णस्य स तु पर्वतः ।
तं चाद्राक्षीत्ततः कृष्णः किंचिच्छेषमधोक्षजः ॥८४

फिर वृत्र-हन्ता इन्द्र ने पारियात्र पर्वत पर जाकर ऐरावत को स्वस्थ किया और इसके पश्चात् कृष्ण और इन्द्र में पुनः युद्ध छिड़ गया ॥ ७८ ॥ वे दोनों ही एक दूसरे पर सर्प के समान भयंकर बाणों की वर्षा करने लगे ॥७९॥ तथा इन्द्र ने ऐरावत के शत्रु गरुड़ पर वज्र और अशनि से अनेक प्रहार किये ॥८०॥ गरुड़ स्वभावतः बली तथा तपोबल से अवध्य थे, इसलिये इन्द्र द्वारा किये गये प्रहारों को उन्होंने सहन कर लिया ॥८१॥ इसके साथ ही अपने भाई इन्द्र और उनके वज्र की सम्मान-रक्षा हेतु उनके द्वारा होने वाले प्रत्येक प्रहार पर अपना एक पंख परित्याग कर रहे थे ॥८२॥ इसी समय गरुड़ और श्रीकृष्ण के भार से दबाया हुआ पारियात्र पर्वत सहसा भयंकर चीत्कार करता हुआ पृथिवी में धँसने लगा। उसके कुछ भाग के शेष रहने तक गरुड़ के सहित श्रीकृष्ण उस पर्वत को छोड़ कर आकाश में चले गये ॥८३-८४॥

तं मुक्त्वा गरुडेनाथ तस्थौ देवो विहायसि ।
प्रद्युम्नं च तदोवाच सर्वलोकप्रभावनः ॥८५
इतो द्वारवतीं गत्वा रथमानय मा चिरम् ।
सदारुक महाबाहो मत्तेजोऽवसमाश्रितः ॥८६
वसुदेवो बलभद्रश्च राजा च कुकुराधिपः ।
इतो जिगेन्द्रं त्वामित्यें द्वारकामिति मानद ॥८७

तथेत्युक्त्वा तु धर्मात्मा प्रद्युम्नः पितरं विभुः ।
गत्वा यथोक्तमुक्त्वा च यादवेन्द्रबलावुभौ ॥८८
नाडिकान्तरमात्रेण पुनस्तं देशमाययौ ।
दारुकेण समायुक्तं रथमास्थाय भारत ॥८९

तब वे प्रद्युम्न से बोले कि हे वत्स ! तुम मेरे प्रभाव से पूर्ण सम्पन्न हो, अब शीघ्र ही द्वारका जाकर रथ सहित दारुक को यहाँ ले आओ ॥८५-८६॥ वहाँ बलराम जी और महाराज उग्रसेन से कहना कि मैं इन्द्र को जीत कर कल द्वारका पहुँचूँगा ॥८७॥ पिता की आज्ञा स्वीकार करके प्रद्युम्न शीघ्र ही द्वारका पहुँचे तथा वहाँ बलरामजी और राजा उग्रसेन को स्वर्ग का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया तथा तुरन्त ही दारुक के साथ रथारूढ होकर वह भगवान् श्रीकृष्ण के पास जा उपस्थित हुए ॥८८-८९॥

॥ श्रीकृष्ण द्वारा शिवजी की स्तुति ॥

तमारुह्य रथं कृष्णः पारियात्रं गिरिं ययौ ।
यत्रैरावतमास्थाय स्थितः सुरपतिः प्रभुः ॥१
पारियात्रो गिरिश्रेष्ठो दृष्ट्वा यान्तं जनार्दनम् ।
शाणपादसमो भूत्वा प्रविवेश वसुंधराम् ॥२
प्रियार्थं वासुदेवस्य प्रभावज्ञो महात्मनः ।
तस्य प्रीतो हृषीकेशः पर्वतस्य जनाधिप ॥३
ततः प्रयातं युद्धार्थमच्युतं कुरुनन्दन ।
सपारिजातो गरुडः पृष्ठतोऽनुययौ तदा ॥४
प्रद्युम्नः सात्यकिश्चापि गरुडस्थौ महाबलौ ।
गतावुभौ रक्षणार्थं पारिजातमरिंदमौ ॥५
ततस्त्वस्तं गते सूर्ये प्रवृत्ता रजनी नृप ।
उपस्थितं पुनर्युद्धं शक्रकेशवयोरिह ॥६
सुप्रहाराहतं दृष्ट्वा विष्णुरैरावतं गजम् ।
नातिकल्पं महातेजा देवराजानमब्रवीत् ॥७

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! तब भगवान् श्रीकृष्ण रथारूढ होक पारियात्र पर्वत पर पहुँचे, जहाँ देवराज इन्द्र ऐरावत के सहित विद्यमान थे ।।१ पर्वत श्रेष्ठ पारियात्र भगवान् की महिमा को जानता था, इसलिये उन्हे आते दे कर वह शाणपाद (चौथाई माशे) का रूप धारण करके पृथिवी के विवर प्रविष्ट हो गया, यह देख कर भगवान् उस पर अत्यन्त प्रसन्न हुए ।।२-३।। ज भगवान् रथारूढ होकर युद्ध के लिये चले तब गरुड भी अपनी पीठ पर पारिजा वृक्ष को लिये हुए उनके पीछे-पीछे चले ।।४।। उस समय प्रद्युम्न और सात्य भी गरुड की पीठ पर ही बैठ कर पारिजात की रक्षा मे तत्पर थे ।।५।। उ समय भगवान् भास्कर के अस्त होने पर रात्रि का आगमन हुआ तथा इन्द्र औ कृष्ण के मध्य सग्राम की पुनरावृत्ति हुई ।।६।। ऐरावत को बहुत घायल हु देख कर श्रीकृष्ण ने इन्द्र से कहा ।।७।।

गरुडाभिहतः पूर्वं नातिकल्पो गजोत्तमः ।
ऐरावतो महाबाहो रात्रिश्च समुपोह्यते ।।८
श्व. प्रभाते यथाकाम प्रवर्तस्व यथेच्छसि ।
एवमस्त्विति कृष्णं तु देवराजोऽब्रवीत्प्रभुः ।।९
उवास पुष्कराभ्याशे देवराजः पुरदरः ।
वज्रं गिरिमय कृत्वा धर्मात्मा नृपसत्तम ।।१०
ब्रह्मा ततो जगामाथ कश्यपश्च महानृषिः ।
अदितिश्चैव सर्वे च देवा मुनय एव च ।।११
साध्या विश्वे च कौरव्य नासत्यावश्विनौ तथा ।
आदित्याश्चैव रुद्राश्च वसवश्च जनेश्वर ।।१२
नारायणश्च पुत्रेण सत्यकेन च भारत ।
सहोवास गिरौ रम्ये पारियात्रे प्रहृष्टवत् ।।१३

श्रीकृष्ण बोले—हे महाबाहो ! आपका ऐरावत गरुड के प्रहार व्यथित हो गया है और अब रात्रि भी हो गई है, इसलिये इस समय सग्राम रोक दीजिय तथा प्रातःकाल पुनः युद्ध कर लेना । यह सुन कर इन्द्र ने एवमस्तु कहा और

पुष्कर तीर्थ के निकट जाकर एक चितामय आवरण स्थान निर्मित कर वहाँ अग्नि-निवास किया। ॥१०॥ उस समय ब्रह्मा, कश्यप, अदिति, सब देवता, मुनि, साध्य, विश्वेदेवा, अश्विद्वय, आदित्यगण, रुद्रगण तथा वसुगण वहाँ आ गये ॥११-१२॥ इधर श्रीकृष्ण अपने पुत्र प्रद्युम्न और भाई सात्यकि के सहित अत्यंत सुखपूर्वक उस पारियात्र पर्वत पर ही ठहर गये ॥१३॥

यस्स शाणप्रमाणोऽस्य भक्त्या समनवन्नृप ।
वरं प्रादात्ततस्तस्य पर्वतस्य महाद्युतिः ॥१४
शाणपाद इति ख्यातो भविष्यसि महागिरे ।
पुण्येनार्द्धेन तुल्यो हि पुण्यो हिमवतः शुभः ॥१५
एवमेव च भूयिष्ठो भव पर्वतसत्तम ।
मेरुणा स्पर्द्धमानो हि बहुविधमृगैर्युतः ॥१६
तथा दत्त्वा वरं तस्य पर्वतस्य तु केशवः ।
दध्यौ गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा नमस्कृत्वा वृषध्वजम् ॥१७
अथावयौ विष्णुपदी स्मृता कृष्णेन भारत ।
संपूज्य तां ततः कृष्णः कृत्वा स्नानमधोक्षजः ॥१८
उदकं च गृहायाय विल्वं च हरिरव्ययः ।
देवमावाहयामास रुद्रं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥१९
ततः प्राप्तो महादेवः सोमः सप्रवरो विभुः ।
तस्यावुपरि विल्वस्य तथा गङ्गोदकस्य च ॥२०
त पारिजातकुसुमैरर्चयामास केशवः ।
तुष्टाव वाग्भिरीशेशं सर्वकर्त्तारमीश्वरम् ॥२१

उस समय उन्होंने उस शाणपाद रूप धारण कर लेने वाले पर्वत के प्रति प्रसन्न होकर कहा—हे गिरिश्रेष्ठ ! तुमने शाणपाद रूप धारण किया, इसलिये जगत् में इसी नाम से प्रसिद्ध होंगे तथा अपने पुण्य के बल से हिमालय और सुमेरु के समान महान् होकर अनेक प्रकार के मृगों से परिपूर्ण होंगे ॥१४-१६॥ हे राजन् ! उस पर्वत को इस प्रकार का वर देकर श्रीकृष्ण ने भगवान् शंकर

को नमस्कारपूर्वक सरिताओं में श्रेष्ठ गंगाजी का ध्यान किया ॥ १७ ॥ उ
समय विष्णुपदी भगवती गंगाजी उनके सम्मुख उपस्थित हुईं। तब उन्होंने उ
पूजन कर स्नान किया ॥१८॥ फिर उन्होंने गंगाजल और बिल्वपत्र ग्रहण कर
भगवान् शंकर का आह्वान किया और सौम्यमूर्ति भगवान् शंकर वहाँ प्र
होकर उसी गंगाजल और बिल्वपत्र पर प्रतिष्ठित हो गये ॥ १९-२० ॥ इस
पश्चात् पारिजात के पुष्पों से भगवान् ने शिवजी का पूजन किया और वे उ
सर्वकर्ता सर्वेश्वर शंकर की स्तुति करने लगे ॥२१॥

रुद्रो देवस्त्वं रुदनाद्रावणाच्च रोरूयमाणो द्रावणाच्चातिदेवः ।
भक्तं भक्तानां वत्सलं वत्सलानां कीर्त्या युङ्क्ष्वेशाद्य प्रभवाम्यन्तरेण।
ग्राम्यारण्यानां त्वं पतिस्त्वं पशूनां ख्यातो देवः पशुपतिः सर्वकर्मा ।
नान्यस्त्वत्तः परमो देवदेव जगत्पतिः सुरवीरारिहन्ता ॥२३
यस्मादीशो महतामीश्वराणां भवानाद्यः प्रीतिदः प्राणदश्च ।
तस्माद्धि त्वामीश्वरं प्राहुरीशं सन्तो विद्वासः सर्वशास्त्रार्थतज्ज्ञाः ॥२
भूत यस्माज्जगदत्यन्त धीर त्वत्तोऽव्यक्तादक्षरादक्षरेश ।
तस्मात्त्वामाहुर्भव इत्येवभूत सर्वेश्वराणां महतामप्युदारम् ॥२५
यस्माज्जितैरभिषिक्तोऽसि सर्वैर्देवासुरैः सर्वभूतैश्च देव ।
महेश्वरं विश्वकर्माणमाहुस्त्वा वै सर्वे तेन देवातिदेवम् ॥२६
पूज्यो देवः पूज्यसे नित्यदा वै शश्वच्छ्रेयः काङ्क्षिभिर्वरदामोघवीर्यः ।
तस्माद्विख्यातो भगवान्देवदेवः सतामिष्टः सर्वभूतात्मभावी ॥२७
भूमिस्त्रयाणां देव यस्मात्प्रतिष्ठा पुनर्लोकानां भावनामेयकीर्तिः ।
त्र्यम्बकेति प्रथमं तेन नाम तवाप्रमेय त्रिदशेशनाथ ॥२८

श्रीकृष्ण बोले—हे देव ! आप रुदन करते-करते दौड़े थे इसलिए आपका नाम रुद्र हुआ है, आप सदा अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, आप भक्तों के भक्त, वत्सलों के वत्सल हैं, इसलिए आज मुझे यश से सम्पन्न करिये ॥२२॥ आप भोगों में आसक्त संसारी और संसार से विरक्त हुए सन्यासी रूपी जीवों के अधिपति है, इसलिये पशुपति कहलाते हैं। आप सर्वकर्मा से श्रेष्ठ कोई भी देवता नहीं है

जगत्पति तथा देवताओं के शत्रुओं का नाश करने वाले हैं ॥ २३ ॥ आप ईश्वरों के ईश्वर, आद्य, प्रीतिप्रद तथा प्राणप्रद हैं, इसलिये सब शास्त्रों के ज्ञाता और विज्ञ साधुजन आपको ईश्वर कहते हैं ॥२४॥ हे बुद्धि प्रवर्तक ! हे जीव-नियामक ! आप ही अव्यक्त एवं अक्षर हैं, आप से ही यह विश्व उत्पन्न हुआ है, इसलिये आप भव कहे जाते हैं ॥२५॥ हे देव ! सभी देवता, असुर तथा प्राणियों ने आपसे पराजित होकर आपको ईश्वर पद पर प्रतिष्ठित किया है, आपको ही विश्व-कर्मा तथा महेश्वर कहते हैं ॥२६॥ आप सब के पूजनीय हैं, इसलिये सभी देवता आपकी पूजा नियमित रूप से करते हैं, आप असीम शक्ति वाले और सभी प्राणियों की सृष्टि करने में स्वयं समर्थ हैं, इसलिये आपको 'देवदेव' कहा जाता है ॥२७॥ हे त्रिदशेशनाथ ! स्वर्ग, मर्त्य और पाताल आप से ही उत्पन्न हुए हैं, आप ही प्राण आदि वायु, सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि आदि की रचना, पालन और संहार करते हैं। इन तीनों कार्यों के सम्पन्न कर्त्ता होने के कारण ही त्र्यम्बक नाम से आपकी प्रसिद्धि लोकों में हुई है ॥२८॥

शत्रूणां शासनादप्रमेयस्तथा भूयः शासनाच्चेश्वरेण ।
सर्वव्यापित्वाच्छंकरत्वाच्च सद्भिः शब्दस्येशान श्रीकरार्कोग्रचतेजाः ॥२९
ससक्ताना निरयदा यत्करोषि शमं भ्रातृव्यान्यद्धघनैषी समस्तान् ।
तस्माद्देव शंकरोऽप्रमेयस्य सद्भिर्द्धर्मज्ञैः कथ्यते सर्वनाथ ॥३०
दत्तः प्रहारः कुलिशेन पूर्वं तवेशान सुरराज्ञाऽतिवीर्यं ।
कण्ठे नैल्यं तेन ते यत्प्रवृत्तं तस्मात्ख्यातस्त्वं नीलकण्ठेति कल्पः ॥३१
यल्लिङ्गाङ्कं यच्च लोके भगाङ्कं सर्वं सोमं त्वं स्थावरं जङ्गमं च ।
प्राहुर्विप्रास्त्वां गुणिनं तत्त्वविज्ञास्तथा ध्येयामम्बिकां लोकधात्रीम् ॥३२
वेदैर्गीता सा हि तत्त्वं प्रसूता यज्ञो दीक्षाणां योगिनां चातिरूपः ।
नात्यद्भुतत्वत्समं देव भूतं भूतं भव्यं भवदेवाथ नास्ति ॥३३
अहं ब्रह्मा कपिलो योऽप्यनन्तः पुत्राः सर्वे ब्रह्मणश्चातिवीराः ।
त्वत्तः सर्वे देवदेव प्रसूता एव सर्वेश कारणात्मा त्वमीड्यः ॥३४
इति सस्तूयमानस्तु भगवान्गोवृषध्वजः ।
प्रसार्य दक्षिणं हस्तं नारायणमथाब्रवीत् ॥३५

हे श्रीकर ! शत्रु आपको कभी भी परास्त नहीं कर सकते, आप सर्व बाह्य म्यवस्तथा सभी अवस्थाओं में अपने प्रभु धर्म पर स्थित रह कर

सब प्राणियों पर शासन तथा साधुओं का कल्याण करते हैं, इसीलिये आप शर्व कहा गया है। आप शब्द के ईशान तथा सूर्य से भी अधिक तेजस्वी ॥ २९ ॥ हे सर्वनाथ ! आप अपने भक्तों को सदा शान्ति तथा असुरों को दण्ड देने वाले हैं, इसलिये धर्मात्मा और साधुजनों ने आपका नाम शंकर रखा है ॥ ३० ॥ हे ईशान ! पूर्वकाल में जब इन्द्र ने आप पर वज्र प्रहार किया, तब उसके प्रतिकार में समर्थ होने पर भी आपने भ्रातृवात्सल्य के कारण वह आघात सह लिया, जिससे आपके कंठ का नीला वर्ण होगया, इसीलिये आपका नीलकंठ नाम हुआ ॥३१॥ हे सोम ! आप जगत् में स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व युक्त स्थावर जंगम सभी प्राणियों के स्वरूप हैं इसीलिये आपके यथार्थ तत्व के ज्ञाता जन आपको और लोक धात्री पार्वतीजी को गुणात्मक कहते हैं ॥३२॥ वेदों ने उन भगवती पार्वती को माया स्वरूपा बताया है, जिनसे महत्तत्व की उत्पत्ति हुई है। आप यज्ञ में दीक्षित योगियों के यज्ञ स्वरूप हैं तथा भूत, भविष्य, वर्तमान में आपके समान अद्भुत अन्य कुछ नहीं रहता ॥३३॥ हे देवाधिदेव ! मैं, ब्रह्मा, कपिल, शेष तथा ब्रह्मा के अत्यन्त वीर पुत्र आपके द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं। विश्व की सभी दिखाई देने वाली वस्तुएँ आप से ही प्रकट हुई हैं, इसलिये आप सभी के द्वारा स्तुति के योग्य हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! भगवान कृष्ण द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् शंकर ने अपना दक्षिण हाथ उठा कर श्रीकृष्ण से कहा ॥ ३५ ॥

मनोपितानामर्थानां प्राप्तिस्ते सुरसत्तम ।
पारिजातं च हर्तासि मा भूत्ते मनसो व्यथा ॥३६
यथा मैनाकमाश्रित्य तपस्त्वमकरो प्रभो ।
तथा मम वरं कृष्ण संस्मृत्य स्थैर्यमाप्नुहि ॥३७
अवध्यस्त्वमजेयश्च मत्तः शूरतरस्तथा ।
भविताऽसीत्यवोच यत्तत्तथा न तदन्यथा ॥३८
यश्च स्तवेन मां भक्त्या स्तोष्यतेऽमरसत्तम ।
त्वया कृतेन धर्मज्ञ धर्मभाक्स भविष्यति ।
अभरे च जयं विष्णो प्राप्य पूजां तथोत्तमाम् ॥३९

बिल्वोदकेश्वरो नाम भविताऽहमिहानघ ।
देवेश्वर त्वयाऽस्यापि देवसिद्धोपयाचनः ॥४०
इहस्योपोषितो विद्वान्भक्तिमान्मम केशव ।
चिरान्मीप्सितांल्लोकान्गमिष्यति जनार्दन ॥४१
अविघ्न्या नाम देशेऽस्मिन्गङ्गा चैव भविष्यति ।
गङ्गास्नानसमं स्नानं मन्त्रतो भविता तथा ॥४२

शिवजी बोले—हे सुरसत्तम ! आपकी अभिलाषा पूर्ण होगी और आप इस पारिजात तरु को ले जाने में समर्थ होंगे, इस विषय में अब आप चिन्ता न करें ॥ ३६ ॥ जब आपने मैनाक पर्वत पर जाकर तप किया था तभी मैंने आपको वर दे दिया था, इसलिये आप धैर्य रखें ॥ ३७ ॥ आप अवध्य, अजेय तथा अत्यन्त बली होंगे, मेरा यह वचन व्यर्थ नहीं होगा ॥ ३८ ॥ आपने जिस स्तोत्र से अभी मेरा स्तव किया है उस स्तोत्र का पाठक धर्म लाभ करेगा और विश्व में सम्मान तथा युद्ध में विजयी होगा ॥ ३९ ॥ आज से मैं भी बिल्वोदकेश्वर कहा जाऊँगा और आप जहाँ मुझे स्थापित करेंगे, वहीं प्रतिष्ठित होकर सब की अभिलाषा पूर्ण करूँगा ॥ ४० ॥ रात्रि उपवास पूर्वक जो मनुष्य इस स्थान पर भक्ति सहित मेरी उपासना करेंगे, वे अवश्य ही इच्छित लोकों को प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥ यह गंगा भी यहाँ अविघ्न्या नाम से प्रसिद्ध होंगी तथा जो मन्त्र पाठ करके गंगाजी का स्मरण करेगा, उसे उसी समय गंगा-स्नान का पुण्य प्राप्त होगा ॥ ४२ ॥

षट्पुरं नाम नगरं दानवानां जनार्दन ।
यत्रान्तर्द्धं रणोद्देशे पराक्रम्य महाबलाः ॥४३
एते दैत्या दुरात्मानो जगतो देवकण्टकाः ।
छन्ना वसन्ति गोविन्द सानावस्य महागिरेः ॥४४
अवध्या देवदेवानां वरेण ब्रह्मणोऽनघ ।
मानुषान्तरितस्तस्मात्त्वमेताञ्जहि केशव ॥४५
ततो याते महादेवे प्रभातायां नराधिपः ।
तस्यां निशायां गोविन्द स्तूय पर्वतमब्रवीत् ॥४६

तवाध पर्वतश्रेष्ठ निवसन्ति महासुरा ।
अवध्या देवदेवाना वरेण ब्रह्मण पुरा ॥४७
निर्गमिष्यन्ति ते नैव मया रुद्धा महाबला ।
द्वारे निरुद्धे तत्रैव विनक्ष्यन्ति ममाज्ञया ॥४८

इस पर्वत के नीचे पटपुर नामक प्रसिद्ध दानवो का एक नगर स्थित है । वहाँ ससार के लिये कण्टक स्वरूप, हिंसक एव दुरात्मा दैत्य कपट वेश मे निवास करते हैं ।। ४३ ४४ ।। उन दैत्यो ने ब्रह्माजी से वर प्राप्त किया है, इसलिये वे किसी के भी द्वारा नही मारे जा सकते । आप इस समय मनुष्य रूप म अवतरित हुए हैं अत उन दानवो का शीघ्र ही सहार करिये ।। ४५ ।। हे राजन् ! तब भगवान् शकर ने श्रीकृष्ण को हृदय से लगाया और फिर वहीं अन्तर्धान होगये । जब प्रात काल होगया, तब श्रीकृष्ण ने उस पवत से कहा—हे गिरिश्रेष्ठ ! तुम्हारे नीचे जो असुर निवास करते हैं वे ब्रह्माजी के वरदान से अवध्य होगये हैं, इसलिये लोक कल्याणार्थ मैं तुम्हारा अवरोध करूँगा, इससे वे दैत्य बाहर न निकल सकगे और मैं उनका सहार कर डालूँगा ॥ ४८ ॥

त्वयि सन्निहितश्चाह भविष्यामि महागिरे ।
अधिष्ठाय महाघोराग्निवत्स्यामि च पर्वत ॥४९
आरुह्य मूर्ध्नि मद्रूप दृष्ट्वा पर्वतसत्तम ।
गोसहस्रप्रदानस्य फल प्राप्स्यति शाश्वतम् ॥५०
त्वत्तोऽश्मभिश्च प्रतिमा कारयित्वा हि भक्तित ।
शुश्रूषयन्ति ये नित्य मम यास्यन्ति ते गतिम् ॥५१
इति त पर्वत कृष्णो वरदोऽनुगृहीतवान् ।
तदाप्रभृति देवेशस्तत्र सन्निहितोऽच्युत ।५२
पाषाणं प्रतिमा तात कारयित्वा च कौरव ।
शुश्रूषन्तिकृतात्माना विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिण ॥५३

उन घोर असुरो को मार कर मैं इसी स्थान पर निवास करूँगा इससे हमारा-तुम्हारा सम्पर्क भी चिरस्थायी होगा ॥ ४९ ॥ हे गिरिश्रेष्ठ ! जं

र भुजा ऊँची करके तुम पर चढ़ेगा, उसे हजार गौओं के दान का फल होगा ॥ ५० ॥ जो तुम्हारे पाषाण को लेकर उससे मेरी प्रतिमा बनायेंगे भक्ति सहित मुझे पूजेंगे, वे मेरे सालोक्य को प्राप्त होंगे ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! वरदाता भगवान् श्रीकृष्ण उस पर्वत पर कृपा करते हुए नित्य वहीं निवास करने लगे ॥ ५२ ॥ इसीलिये विष्णु लोक की कामना वाले मनुष्य उस पर्वत के पाषाण से प्रतिमा बना कर सदा आराधना में लगे रहते हैं ॥ ५३ ॥

॥ पारिजात का द्वारका लाया जाना ॥

-युद्ध आरम्भ होगया ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण ने भीषण वाण वर्षा करके देवराज इन्द्र की सेना को सत्रस्त करना प्रारभ किया ॥ ५ ॥ इन्द्र और श्रीकृष्ण दोनों ने प्रहार करने मे समर्थ होकर भी परस्पर मे किसी पर प्रहार नही किया ॥६॥ श्रीकृष्ण ने उस समय दस-दस वाण एक साथ चला कर देवपक्ष के एक-एक अश्व को आहत किया ॥ ७ ॥

शैव्याद्यानपि देवेन्द्रः शरैरमरसत्तमः ।
छादयामास राजेन्द्र घोरैरस्त्राभिमन्त्रितैः ॥८
स च वाणसहस्रैश्च कृष्णो गजमवाकिरत् ।
गरुड च महातेजा वलभिद्धरिवाहनम् ॥६
भूयिष्ठाभ्या रथाभ्या तौ तदहः शत्रुदारणौ ।
युयुधाते महात्मानौ नारायणसुराधिपौ ॥१०
चकम्पे वसुधा कृत्स्ना नौर्जलस्थेव भारत ।
दिशा दाहेन दिग्देशाः सवृताश्च समन्ततः ॥११
चेलुर्गिरिवराश्चैव तुश्च शतशो द्रुमाः ।
पेतुश्च धरणीपृष्ठे मर्त्या धर्मगुणान्विता ॥१२
निर्घाताः शतशश्चान्ये पेतुस्तत्र नराधिप ।
ऊहुश्च सरितः सर्वाः प्रतिस्रोतो विशापते ॥१३
विष्वग्वाता ववुश्चैव पेतुरुल्काश्च निष्प्रभाः ॥
मुहुर्मुहुर्भूतमङ्गा रथनादेन मोहिताः ॥१४

इन्द्र ने भी श्रीकृष्ण के अश्वों पर भीषण अस्त्र वर्षा की जिससे वे आच्छादित होगये ॥ ८ ॥ इस प्रकार इन्द्र और कृष्ण दोनो ही अपने-अपने रथो पर बैठे रह कर दिन भर निरतर सग्रामरत रहे ॥ १० ॥ उस युद्ध के कारण पृथिवी जल में चलने वाली नाव के समान डगमग करने लगी और दसो दिशा जलती हुई प्रतीत हुईं ॥ ११ ॥ पर्वत कांपने लगे, पृथिवी पर गिरे हुए वृक्ष के ढेर लग गये, और मनुष्य गण पृथिवी पर लेट गये ॥ १२ ॥ सैंकड़ो वज्रपात एक साथ आभास होने लगा और नद-नदियों के प्रवाह बदल गये ॥ १३

वायु बवडर बन कर चक्कर काटने लगा, उल्काओं की प्रभा नष्ट होगई तथा रथ-चक्रों के भीषण शब्द से संसार के सभी प्राणी चेष्टा हीन होकर पृथिवी पर गिरने लगे ॥ १४ ॥

प्रजज्वाल जले चैव वह्निर्जनपदेश्वर ।
युयुधुश्च ग्रहैः सार्द्धं ग्रहा नभसि सर्वतः ॥१५
ज्योतींषि शतशः पेतुः स्वर्गाच्च धरणीतलम् ।
दिशा गजाः प्रकुपिता नागाश्च धरणीतले ॥१६
गर्दभारुणसंस्थानं शिछन्नाभ्रं श्चावृत नभः ।
विनदद्भिर्महारावान्रूक्षशोणितवर्षिभिः ॥१७
न भूर्न द्यौर्न गगनं नरेन्द्रवृपप्रभाभवन् ।
खस्थानि सुरवीरौ तु दृष्ट्वा युद्धगतौ तदा ॥१८
जेपुर्मुनिगणा मन्त्राञ्जगतो हितकाम्यया ।
ब्राह्मणाश्च महात्मानो ह्यतिष्ठस्तेषु सत्वराः ॥१९
ततो ब्रह्मा महातेजाः कश्यप वाक्यमब्रवीत् ।
गच्छ वध्वा सहादित्या पुत्रौ वारय सुव्रत ॥२०
स तथेति तदा देवमुक्त्वा पद्मभव मुनिः ।
जगाम रथमास्थाय तस्थौ नरवरान्तिके ॥२१

अपनी-अपनी धुरी पर घूमते हुए ग्रहों में परस्पर भिड़ंत होगई और जल में आग लगती हुई दिखाई दी ॥ १५ ॥ आकाश से असंख्य नक्षत्र टूट-टूट कर पृथिवी पर गिरने लगे। नाग और दिग्गज भी इस युद्ध से क्षुब्ध हो उठे ॥१६॥ अरुणवर्ण के छिन्न-भिन्न हुए बादलों से आकाश भर गया, उनसे भयंकर शब्द होने लगा, उल्का-पात के साथ रुधिर की वर्षा होने लगी ॥ १७ ॥ उस समय भूमि, आकाश और स्वर्ग का भी पता न लगता था, विश्व-कल्याण की कामना वाले महर्षि तथा विप्रगण मन्त्रों को जपने लगे ॥१८-१९॥ इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने महर्षि कश्यप को अपने पास बुलाया और उनसे बोले—हे सुव्रत ! आप अपनी अदिति को अपने पुत्रों के पास लेजाइये और उन्हें युद्ध करने से निवारण कीजिये

॥ २० ॥ ब्रह्माजी का आदेश सुन कर कश्यपजी अपनी भार्या अदिति के साथ रथ पर चढ़ कर अपने पुत्रो के पास पहुँचे ॥ २१ ॥

स्थित तु कश्यप दृष्ट्वा सहादित्या तदाऽन्तरा ।
उभौ रथाभ्या धरणीमवतीर्णौ महाबलौ ॥२२
न्यस्तशस्त्रौ च तौ वीरौ ववन्दतुररिंदमौ ।
पितरौ धर्मतत्त्वज्ञौ सर्वभूतहिते रतौ ॥२३
उभौ गृहीत्वा हस्ताभ्यामदितिस्त्वब्रवीद्वच ।
असोदराविवैव किमन्योय हन्तुमिच्छन ॥२४
स्वल्पमर्थं पुरस्कृत्य प्रवृत्तमतिदारुणम् ।
सदृश नेति पश्यामि सर्वथा मम पुत्रयो ॥२५
श्रोतव्य यदि मातुश्च पितुश्चैव प्रजापते ।
न्यस्तशस्त्रौ स्थितौ भूत्वा कुरुत वचन मम ॥२६
तथेत्युक्त्वा च तौ देवौ स्नातुकामौ महाबलौ ।
गङ्गा जग्मतुरेवाथ प्रजल्पन्तौ परस्परम् ॥२७

अत्यन्त प्रतापी दोनो पुत्रों ने जैसे ही माता पिता को सम्मुख देखा, वैसे ही अपने-अपने शस्त्रो को त्याग कर रथ से उतरे और धर्मतत्वज्ञ तथा लोकहित मे तत्पर उन दोनो के चरणो मे प्रणाम किया ॥ २२-२३ ॥ तभी देवमाता अदिति ने इन्द्र और कृष्ण दोनो के मस्तक पर हाथ फेर कर कहा—पुत्रो ! तुम दोनो विमाता से उत्पन्न भाइयो के समान परस्पर मे एक दूसरे की हत्या करने मे क्यो उद्यत हो ? ॥ २४ ॥ यह कार्य मेरे पुत्रो के अनुरूप नहीं हैं फिर तुम ऐसे सामान्य कार्य के लिये यह भयानक कर्म क्यो कर रहे हो ? ॥ २५ ॥ यदि तुम माता पिता की आज्ञा मानना अपना कर्त्तव्य समझते हो तो तुरन्त ही हमारी बात पर ध्यान देते हुए युद्ध बन्द कर दो ॥ २६ ॥ इस प्रकार माता-पिता की आज्ञा मान कर इन्द्र और कृष्ण ने युद्ध बन्द कर दिया तथा गगा स्नान को चलते हुए परस्पर प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप करने लगे ॥ २७ ॥

त्व प्रभुर्लोककृत्स्नराज्येऽह स्थापितस्त्वया ।
स्थापयित्वा कथ नाम पुनर्मामवमन्यसे ॥२८

भ्रातृत्वमुपगम्यैव ज्येष्ठत्वं चाप्यपोह्य च ।
कथं कमलपत्राक्ष निर्वाणं कर्तुमिच्छसि ॥२६
स्नातौ तु जाह्नवीतोये पुनरभ्यागतौ नृप ।
यत्रादितिः कश्यपश्च महात्मानौ दृढव्रतौ ॥३०
प्रियसंगमनं नाम तं देशं मुनयोऽवदन् ।
यत्र तौ संगतौ चोभौ पितृभ्यां कमलेक्षणौ ॥३१
ततः शक्रस्य कौरव्य दत्त्वा वाचाऽभयं तदा ।
यत्र देवगणाः सर्वे समेता धर्मचारिणः ॥३२
ततो ययुर्विमानैस्तु देवाः सर्वे त्रिविष्टपम् ।
श्रद्धया परमया युक्तास्तेषामेवानुरूपया ॥३३
कश्यपश्चादितिश्चैव तथा शक्रजनार्दनौ ।
विमानमेकमारुह्य गता राजंस्त्रिविष्टपम् ॥३४

तभी इन्द्र बोले—हे कृष्ण ! आप तीनों लोकों के अधीश्वर हैं, आपने ही
ते स्वर्ग का राज्य दिया है, तब आप मेरे अपमान करने में क्यों तत्पर हुए ?
२८ ॥ आपने मुझे अपना बड़ा भाई मान लिया तो भ्रातृत्व के उस पवित्र नाते
े क्यों तोड़ना चाहते हैं ? ॥ २९ ॥ इन्द्र यह कह कर चुप होगये और दोनों
गंगा स्नान करके महर्षि कश्यप और अदिति के पास आगये ॥३०॥ जिस
स्थान पर इन्द्र और कृष्ण ने अपने माता-पिता से भेंट की थी, वह स्थान 'प्रिय
संगम' नाम से विख्यात हुआ ॥ ३१ ॥ इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने इन्द्र को अभय
प्रदान किया और उनके साथ स्वर्ग चलने को उद्यत हुए ॥ ३२ ॥ इसी समय
सभी देवगण यथा योग्य विमानों पर आरूढ़ होकर स्वर्ग की ओर चले ॥ ३३ ॥
कश्यप, अदिति, कृष्ण और इन्द्र ने एकही विमान पर बैठ कर स्वर्ग को प्रस्थान
किया ॥ ३४ ॥

ते शक्रसदनं प्राप्ता रम्यं सर्वगुणान्वितम्
ऊषुरेकत्र कौरव्य मुदिता धर्मचारिणः ॥३५
शची तु कश्यपं पत्न्या सहितं धर्मवत्सला ।
उपाचरन्महात्मानं सर्वभूतहिते रतम् ॥३६

ततस्तस्या प्रभाताया रजन्यामब्रवीद्धरिम् ।
अदितिर्धर्मतत्त्वज्ञा सर्वभूतहित वच. ।।३७
उपेन्द्र द्वारका गच्छ पारिजात नयस्व च ।
वध्वा सप्रापयस्वेश पुण्यक हृदये स्थितम् ।।३८
पण्यके सत्यया प्राप्ते पुनरेष त्वया तरु ।
नन्दने पुरुषश्रेष्ठ स्थाप्य स्थाने यथोचिते ।।३९
एवमस्त्विति कृष्णेन देवमाता यशस्विनी ।
उक्ता धर्मगुणैर्युक्ता नारदेन महात्मना ।।४०
ततोऽभिवाद्य पितर मायर च जनार्दन ।
महेन्द्रं सह शच्याऽथ प्रतस्थे द्वारका प्रति ।।४१

वहाँ जाकर वे सब एक ही स्थान पर बैठे और इन्द्राणी ने परम उपकार करने वाले सास श्वसुर का पूजन किया ।। ३५-३६ ।। फिर रात्रि के व्यतीत होने पर प्रभात हुआ तब धर्म-तत्त्व के जानने वाली माता अदिति ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा कि हे उपेन्द्र ! हे कृष्ण ! अब तुम द्वारका जाओ और अपनी पत्नी को इस पुण्य के कारण रूप पारिजात को दे दो ।। ३७-३८ ।। वहाँ का कार्य पूर्ण होने पर इसे पुन यही नन्दनकानन मे लाकर स्थापित कर देना ।।३९।। देवर्षि नारद ने अदिति की बात का अनुमोदन किया तब श्रीकृष्ण अदिति, कश्यप, इन्द्र और इन्द्राणी आदि को नमस्कार कर पारिजात सहित द्वारका को चल दिये ।। ४०-४१ ।।

।। षट्पुर का वध ।।

वैशम्पायन धर्मज्ञ व्यासशिष्य तपोधन ।
पारिजातस्य हरणे षट्पुरं परिकीर्तितम् ।।१
निवासोऽसुरमुख्याना दारुणाना तपोधन ।
तेषा वध मुनिश्रेष्ठ कीर्तयस्वान्धकस्य च २
त्रिपुरे निहते वीरे रुद्रेणाक्लिष्टकर्मणा ।
तत्र प्रधाना बहवो बभूवुरसुरोत्तमा. ।।३

शराग्निना न दग्धास्ते रुद्रेण त्रिपुरालयाः ।
षष्ठिः शतसहस्राणि न न्यूनान्यधिकानि च ॥४
ते ज्ञातिवधसंतप्ताश्चक्रुर्वीराः पुरा तपः ।
जम्बूमार्गे सतामिष्टे महर्षिगणसेविते ॥५
आदित्याभिमुखा वीराः सहस्राणां शतं समाः ।
वायुभक्षा नृपश्रेष्ठ स्तुवन्तः पद्मसम्भवम् ॥६

उक्त वृत्तान्त के उपरान्त जनमेजय ने वैशम्पायनजी से कहा—हे व्यास-शिष्य वैशम्पायनजी ! हे तपोधन ! आप सब वृत्तान्तों के ज्ञाता हैं । आपने पारिजात-हरण के प्रसंग में पट्पुर के विषय में कहा था, इसलिये आप कृपया उन पट्पुर वासी दैत्यों और अन्धकासुर के मारे जाने की कथा कहिये ॥१-२॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! जब भगवान् शंकर और त्रिपुरासुर के मध्य संग्राम हुआ था, उस समय अनेकों दानव युद्ध में उपस्थित हुए थे ॥३॥ परन्तु, शिवजी ने त्रिपुरासुर के अतिरिक्त अन्य किसी भी दानव को अपनी शराग्नि से दग्ध नहीं किया । उस समय वहाँ साठ लाख से अधिक दानव नहीं थे ॥४॥ वे सभी दानव अपने बान्धव त्रिपुरासुर के मारे जाने से अत्यन्त संतप्त होते हुए ऋषियों द्वारा सेवित जम्बू मार्ग पर निवास करने लगे और वहाँ उन्होंने ब्रह्माजी की स्तुति करते हुए केवल वायु भक्षण पूर्वक सूर्य की ओर मुख करके एक सहस्र वर्ष तक कठिन तपस्या की ॥५-६॥

तेषामुदुम्बरं राजन्गण एकः समाश्रितः ।
वृक्षं तत्रावसन्वीरास्ते कुर्वन्तो महत्तमः ॥७
कपित्थवृक्षमाश्रित्य केचित्त शोषिताः पुरा ।
शृगालवाटीस्त्वपरे चेरुरुग्रं तथा तपः ॥८
वटमूले तथा चेरुस्तपः कौरवनन्दन ।
अधीयन्तो परं ब्रह्म वटं गत्वाऽसुरात्मजाः ॥९
तेषां तुष्टः प्रजाकर्ता नरदेवपितामहः ।
वरं दातुं सुरश्रेष्ठः प्राप्तो धर्मभृतां वरः ॥१०

वरं वरयतेत्युक्तास्ते राजन्पद्मयोनिना ।
नेपुस्तद्वरदानं तु द्विषतस्त्र्यंबक विभुम् ॥११
इच्छन्तोऽपचितिं गन्तुं ज्ञानिना कुरुनन्दन ।
तानुवाच ततो ब्रह्मा सर्वज्ञः कुरुनन्दन ॥१२
विश्वस्य जगत कर्तुः संहर्तुश्च महात्मनः ।
कः शक्तोऽपचितिं गन्तुं माऽस्तु वोऽत्र वृथा श्रमः ॥१३

उनमे से कोई गूलर के नीचे बैठ कर तप कर रहे थे, कोई शृगालवाटी वृक्ष की छाया मे बैठ कर उपासना रत थे और कोई वट वृक्ष के मूल पर बैठ कर वेद मंत्रो के उच्चारण पूर्वक ब्रह्माजी की उपासना कर रहे थे ॥७-९॥ तब उनके तप से ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए उन्हे वर देने के लिये वहाँ पहुँचे ॥१०॥ वे बोले—हे दानवो ! मैं तुम्हारे तप से अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिये तुम इच्छित वर माँगो । दानवो ने कहा—हे प्रभो ! शिवजी ने हमारा जो अहित किया है, उनसे अपना बदला चुका कर हम अपने बंधुओं के ऋण से उऋण होना चाहते हैं, यही हमारी इच्छा है इस पर ब्रह्माजी बोले—हे दानवो ! भगवान् शंकर तो इस संसार के रचयिता और संहारक हैं, उन्हे भला कौन मार सकता है ? इसलिये तुम्हारा यह विचार सफल नही हो सकता ॥११-१३॥

अनादिमध्यनिधनः सोमो देवो महेश्वरः ।
तमसूय सुखं स्वर्गे वस्तुमिच्छन्ति ये सुराः ॥१४
ते नेपुस्तत्र केचित्तु दुरात्मानो महासुराः ।
अथेपुरपरे राजन्नसुरा भव्यभावना. ॥१५
नेपुर्ये सुदुरात्मानस्तानुवाच पितामह. ।
वरयध्व वरं वीरा रुद्रक्रोधमृतेऽसुराः ॥१६
त ऊचु सर्वदेवानामवध्याः स्याम हे विभो ।
पुराणि षट् च नो देव भवन्त्वन्तर्महीतले ॥१७
सर्वकामसमृद्धार्थं षट्पुरं चास्तु नः प्रभो ।
वयं च षट्पुरं गत्वा वसेम च सुखं विभो ॥१८

रुद्रादुग्र भय न स्याद्येन नो ज्ञातयो हता ।
निहत त्रिपुर दृष्ट्वा भीता स्म तपसा निधे ॥१९
असुरा भवतावध्या देवाना शङ्करस्य च ।
न वाधिष्यथ चेद्विप्रान्सत्पथस्थान्सता प्रियान् ॥२०
विप्रोपघात मोहाच्चेत्करिष्यथ कथ चन ।
नाश यास्यथ विप्रा हि जगत परमा गति ॥२१

ब्रह्माजी की यह बात सुन कर जो दानव शिवजी के पराक्रम को जानते थे, वे तो सहमत होगये, परन्तु जो शिवजी से विरोध करके स्वग म सुख से रहना चाहत थे, उन्होने ब्रह्माजी की बात नही मानी । इसलिय ब्रह्माजी न उनसे कहा—हे दानवो ! शिवजी की क्रोध-वृद्धि करने वाले वर के अतिरिक्त तुम्हें कोइ अन्य वर माँग लना चाहिय ॥१४ १६॥ तब उन दुष्टों ने कहा—ह प्रभो ! देवगण हमे न मार सकें और हमारे निवास के लिय पृथिवी के नीच छ पुर बन जॉय ॥१७॥ यह छहो पुर सुख, सम्पत्ति और ऐश्वय से परिपूर्ण हो, जिससे के हम उन पुरों मे जाकर सुख से निवास कर सकें ॥१८॥ शिवजी न हमारे अन्य बाँधवा के साथ त्रिपुरासुर को भी मार दिया है, जिससे हम बहुत भय उपस्थित हुआ है । इसलिय आप हमारे लिय एसा यत्न करें जिसमे हम उनके भय स मुक्त हो जायें ॥१९॥ इस पर ब्रह्माजी ने कहा—ह दानवा ! यदि तुम सत्य माग के अनुयायी ब्राह्मणो को दु ख न दोगे तो तुम शिवजी अथवा अन्य किसी भी देवता क द्वारा नही मारे जा सकोग ॥२०॥ इसक विपरीत यदि तुमने किसी ब्राह्मण का अपकार किया तो तुम्हारा नाश हो जायगा ॥२१॥

नारायणाद्विभेनध्य कुर्वद्भिर्ब्राह्मणाहितम् ।
सर्वभूतेषु भगवान्हित धत्ते जनार्दन ॥२२
ते गता असुरा राजन्ब्रह्मणा ये विसर्जिता ।
येऽपि भक्ता महादेवमसुरा धर्मचारिण ॥२३
स्वय हि दर्शन तेषा ददौ त्रिपुरनाशन ।
श्वेत वृषभमारुह्य सोम सप्रवर प्रभु ।
उवाचेद च भगवानसुरान्स सता गति ॥२४

वैरमुत्सृज्य दम्भं च हिंसां चासुरसत्तमाः ।
मामेव चाश्रितास्तस्माद्वरं साधु ददामि वः ॥२५
यैर्दीक्षिताः स्थ मुनिभिः सत्क्रियापरमैर्द्विजैः ।
सह तैर्गम्यता स्वर्गः प्रीतोऽहं वः सुकर्मणा ॥२६
इह ये चैव वत्स्यन्ति तापसा ब्रह्मवादिनः ।
अपि कापित्थिका वृक्षे तेषा लोको यथा मम ॥२७

क्योकि इस विश्व की परम गति ब्राह्मण हैं, इसलिये उनके अपकार करने से विष्णु रुष्ट होगे ॥२२॥ हे राजन् ! इस प्रकार वर पाकर दैत्यगण विदा हुए। उनमें से जो शिव-भक्त थे उनके सम्मुख वृषभवाहन भगवान् शिवजी स्वय प्रकट होकर उनसे बोले—हे दानवो ! तुम्हारे वैर, दम्भ और विद्वेष को छोड़ कर मेरे शरण मे आने से मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ और तुम्हें वर देता हूँ कि जिन सत्य-निष्ठ ब्राह्मणो से तुमने सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा ली है, उनके साथ तुम भी स्वर्ग लोक को प्राप्त होगे, क्योकि मैं तुम्हारे सदाचरण से बहुत सतुष्ट हुआ हूँ ॥२३-२६॥ जो इस गूलर के नीचे बैठ कर तप करेंगे, वे मेरे सालोक्य के अधिकारी होगे ॥२७॥

॥ श्रीकृष्ण का पट्पुर को प्रस्थान ॥

एतस्मिन्नेव काले तु चतुर्वेदषडङ्गवित् ।
ब्राह्मणो याज्ञवल्क्यस्य शिष्यो धर्मगुणान्वितः ॥१
ब्रह्मदत्तेति विख्यातो विप्रो वाजसनेयिवान् ।
अश्वमेधः कृतस्तेन वसुदेवस्य धीमतः ॥२
स सवत्सरदीक्षाया दीक्षितः पट्पुरालयः ।
आवर्तायाः शुभे तीरे सुनद्या मुनिजुष्टया ॥३
सखा च वसुदेवस्य सहाध्यायी द्विजोत्तमः ।
उपाध्यायश्च कौरव्य क्षीरहोता महात्मनः ॥४
वसुदेवस्तत्र यातो देवक्या सहितः प्रभो ।
जयमानं पट्पुरस्थं यथा शक्रो बृहस्पतिम् ॥५

तत्सत्रं ब्रह्मदत्तस्य बह्वन्नं बहुदक्षिणम् ।
उपासन्ति मुनिश्रेष्ठा महात्मानो दृढव्रता. ।।६
व्यासोऽहं याज्ञवल्क्यश्च सुमन्तुर्जैमिनिस्तथ: ।
धृतिमाञ्जावलिश्चैव देवलाद्याश्च भारत ।।७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इसी समय में चार वेद और छहों अंगों के ज्ञाता याज्ञवल्क्य के शिष्य ब्रह्मदत्त ने षट्पुर में आवर्ता नदी के किनारे वसुदेवजी के लिए एक वर्ष तक चलने वाला अश्वमेध यज्ञ किया ।।१-३।। ब्रह्मदत्त वसुदेवजी के सहपाठी, उपाध्याय, अध्वर्यु के साथ ही उनके परम मित्र भी थे.।।४।। इन्द्र के बृहस्पतिजी के पास जाने के समान देवकी के सहित वसुदेवजी ने यज्ञ की दीक्षा ली और ब्राह्मण श्रेष्ठ ब्रह्मदत्त के पास षट्पुर जा पहुंचे ।।५।। जिस प्रकार उस यज्ञ मे अन्न दान किया जाता था, उसी प्रकार प्रचुर दक्षिणा देने की भी व्यवस्था थी । यज्ञशाला में बहुत-से दृढव्रती महात्मागण पधारे हुए थे ।।६।। मैं, वेदव्यास, याज्ञवल्क्य, सुमन्तु, जैमिनी, जावलि और देवल आदि बहुत से ऋषि, महर्षि उपस्थित थे ।।७।।

श्रद्धयाऽनुरूपया युक्तं वसुदेवस्य धीमतः ।
यत्नेप्सितान्ददौ कामान्देवकी धर्मचारिणी ।।८
वासुदेवप्रभावेण जगत्स्रष्टुर्महीतले ।
तस्मिन्सत्रे वर्तमाने दैत्या षट्पुरवासिनः ।।९
निकुम्भाद्याः समागम्य तमूचुर्वरदर्पिता. ।
कार्यता यज्ञभागो न. सोम पास्यामहे वयम् ।
कन्याश्च ब्रह्मदत्तो नो यजमानः प्रयच्छतु ।।१०
बह्व्यः सन्त्यस्य कन्याश्च रूपवत्यो महात्मनः ।
आहूय ताः प्रदातव्याः सर्वथैव हि नः श्रुतम् ।।११
रत्नानि च ब्रह्मदत्तो विशिष्टानि ददातु नः ।
अन्यथा तु न यष्टव्यं वयमाज्ञापयामहे ।।१२
एतच्छ्रुत्वा ब्रह्मदत्तस्तानुवाच महासुरान् ।
यज्ञभागो न विहितः पुराणेऽसुरसत्तमाः ।।१३

कथं सर्वे सोमपानं शक्यं दातुं मया हि वः ।
पृच्छतेह मुनिश्रेष्ठान्वेदभाष्यार्थकोविदान् ॥१४

वसुदेवजी की श्रद्धा के अनुसार धर्म का आचरण करने वाली देवकी आये हुए व्यक्तियों का सत्कार कर रही थी ॥८॥ इन सब कार्यों मे भगवान् कृष्ण की महिमा ही दिखाई दे रही थी, यज्ञ का अनुष्ठान ठीक प्रकार से चल रहा था, सभी षट्पुर मे रहने वाले निकुम्भादि दानवों ने वहाँ आकर गर्वयुक्त वाणी मे कहा—हे यजमान् ! तुम हमारे लिये यज्ञ-भाग दो, हम भी सोम-पान की इच्छा करते हैं। हमे ज्ञात हुआ है कि ब्रह्मदत्त की बहुत-सी सुन्दरी कन्याएँ हैं, उन सभी को हमे दे दो ॥९-११॥ इसके अतिरिक्त यहाँ जो भी श्रेष्ठ रत्न हैं, वे सब भी हमे सौंप दो, अन्यथा तुम्हारा यह यज्ञ कभी भी पूर्ण नहीं हो सकेगा ॥१२॥ यह सुन कर ब्रह्मदत्त बोले—हे असुरश्रेष्ठ ! वेदों में आपके लिये यज्ञ-भाग की कहीं व्यवस्था नही है तो हम आपके लिये यज्ञ-भाग और सोम-रस किस प्रकार दे सकते हैं ? यहाँ वेदभाष्य के ज्ञाता अनेकों मुनिजन उपस्थित हैं, आप चाहें तो उनसे पूछ लें ॥१३-१४॥

कन्या हि मम या देयास्ताश्च सकल्पिता मया ।
अन्तर्वेद्यां प्रदातव्याः सदृशानामसंशयम् ॥१५
रत्नानि तु प्रयच्छामि सान्त्वेनाह विचिन्त्यताम् ।
बलान्नैव प्रदास्यामि देवकीपुत्रमाश्रितः ॥१६
निकुम्भाद्यास्तु रुषिताः पापाः षट्पुरवासिनः ।
यज्ञवाटं विलुलुपुर्जह्नु कन्याश्च तास्तथा ॥१७
तद्दृष्ट्वा सम्प्रवृत्ता तु दध्यावानकदुन्दुभिः ।
वासुदेवं महात्मानं बलभद्रं गदं तथा ॥१८
विदितार्थस्ततः कृष्णः प्रद्युम्नमिदमब्रवीत् ।
गच्छ कन्यापरित्राणं कुरु पुत्राशु मायया ॥१९
यावद्यादवसैन्येन षट्पुरं याम्यहं प्रभो ।
स ययौ षट्पुरं वीरः पितुराज्ञाकरस्तदा ॥२०

निमेषान्तरमात्रेण गत्वा कामो महाबलः ।
कन्यास्ता मायया धीमानुपजह्रे महाबलः ॥२१
मायामयीश्च कृत्वाऽन्या न्यस्तवान्रुक्मिणीसुतः ।
मा भैरिति च धर्मात्मा देवकीमुक्तवांस्तदा ॥२२

आपने कन्याओं के देने की जो बात कही है, उस विषय में मेरे पूर्व निश्चयानुसार वे अन्तर्वेद प्रदेश में अपने अनुरूप पतियों को प्राप्त होंगी ॥१५॥ हाँ, रत्नों के विषय में यह है कि मैं आपको रत्न तभी दे सकता हूँ जब आप शांतिपूर्ण ढंग से लेना चाहें, अन्यथा हम श्रीकृष्ण के अनुयायी बल-प्रयोग द्वारा तो वह भी कभी नहीं दे सकते ॥१६॥ इस पर रुष्ट होकर निकुम्भादि पापी दानवों ने यज्ञ को भंग कर दिया और ब्रह्मदत्त की कन्याओं को बलात् उठा कर ले गये ॥१७॥ यह देख कर वसुदेवजी ने कृष्ण, बलराम और गद को याद किया ॥१८॥ तभी श्रीकृष्ण को सब बातें मालुम होगईं और उन्होंने प्रद्युम्न को आज्ञा दी—हे पुत्र ! तुम शीघ्र ही पट्पुर को प्रस्थान करो और अपनी माता के प्रभाव से ब्रह्मदत्त की कन्याओं को बचाओ ॥१९॥ यह सुन कर प्रद्युम्न ने उत्तर दिया—हे तात ! मैं अभी अपनी सेना के साथ वहाँ जाता हूँ । यह कह कर प्रद्युम्न वहाँ से तुरन्त हो चल दिये ॥२०॥ निमेष मात्र में ही वहाँ पहुँच कर प्रद्युम्न ने उन दानवों को माया से निर्मित कन्याएँ देकर ब्रह्मदत्त की कन्याओं को उनसे छीन लिया और देवकी से बोले कि आप भय न करें ॥२१-२२॥

मायमयीस्तो हृत्वा सुता ह्यस्य दुरासदाः ।
पट्पुरं विविशुर्दैत्याः परितुष्टा नराधिप ॥२३
कर्म चासावर्तत तत्र विधिदृष्टेन कर्मणा ।
यद्विशिष्टं बहुगुणं तदभुञ्च नराधिप ॥२४
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता राजानस्तत्र भारत ।
सर्वे निमन्त्रिताः पूर्वं ब्रह्मदत्तेन धीमता ॥२५
जरासन्धो दन्तवक्त्रः शिशुपालस्तथैव च ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्रश्च मालवाः उग्रसेनस्तथा ॥२६

रुक्मी चैवाह्व तिश्चैव नीलो वा धर्म एव च ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ शल्यः शकुनिरेव च ॥२७
राजानश्चापरे वीरा महात्मानो दृढायुधाः ।
आवासिता नातिदूरे षट्पुरस्य च भारत ॥२८

उधर वे दानव उन मायामयी कन्याओं को लेकर अत्यन्त हर्षित होते हुए अपनी पुरी में गये ॥२३॥ इधर यज्ञ का शेष रहा कार्य भी विधि विधान सहित निर्विघ्न पूर्ण होगया ॥२४॥ तभी ब्राह्मण श्रेष्ठ ब्रह्मदत्त द्वारा निमन्त्रित किये गये राजागण सब ओर से आ-आकर वहाँ एकत्रित होगये ॥२५॥ जरासन्ध, दन्तवक्त्र, शिशुपाल, पाण्डवगण, धृतराष्ट्र-पुत्रगण, मालवगण, रुक्मी, आहृति, नील, धर्म, विन्द, अनुविन्द, आवन्त्य, शल्य, शकुनि तथा अन्यान्य अनेकों राजाओं ने वहाँ आकर अपने अपने डेरे लगा लिये ॥२६-२८॥

तान्दृष्ट्वा नारदः श्रीमानचिन्तयदनिन्दितः ।
क्षत्रस्य यादवानां च भविष्यति समागमः ॥२९
अत्र हेतुरहं युद्धे तस्मात्तत्प्रयताम्यहम् ।
एवं संचिन्तयित्वा स निकुम्भभवनं गतः ॥३०
पूजितः स निकुम्भेन दानवैश्च तथाऽपरे ।
उपविष्टः स धर्मात्मा निकुम्भमिदमब्रवीत् ॥३१
कथं विरोधं यदुभिः कृत्वा स्वस्थैरिहास्यते ।
यो ब्रह्मदत्तः स हरिः स हि तस्य विभुः सखा ॥३२
शतानि पञ्च भार्याणां ब्रह्मदत्तस्य धीमतः ।
आनीता वसुदेवस्य सुतस्य प्रियकाम्यया ॥३३
शतद्वयं ब्राह्मणीनां राजन्यानां शतं तथा ।
वैश्यानां शतमेकं च शूद्राणां शतमेव च ॥३४

देवर्षि नारदजी ने जब उन सब राजाओं को इकट्ठे हुए देखा सोचने लगे कि अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे युद्ध छिड़ जाय। ऐसा निश्चय करके महर्षि नारद निकुम्भ के भवन में जा पहुँचे ॥२९-३०॥ उन्हें

तभी वे ही निकुम्भादि दानव उनका स्वागत करते हुए उठे तथा उनसे समुचित सत्कृत हुए ऋषि ने आसन पर बैठ कर उनसे कहा ॥३१॥ हे दानवो ! यादवों से वैर करके भी तुम ऐसे निश्चिन्त क्यों होरहे हो ? देखो कृष्ण और ब्रह्मदत्त में अत्यन्त मैत्री है ॥३२॥ भगवान् कृष्ण के अनुग्रह से ही ब्रह्मदत्त ने पाँच सौ सुन्दर नारियाँ प्राप्त की हैं ॥३३॥ उनमें दो सौ ब्राह्मणी, सौ क्षत्राणी, सौ वैश्याएँ और सौ शूद्राएँ हैं ॥३४॥

ताभिः शुश्रूषितो धीमान्दुर्वासा धर्मवित्तमः ।
तेन तासां वरो दत्तो मुनिना पुण्यकर्मणा ॥३५
एकैकस्तनयो राजन्नेकैका दुहिता तथा ।
रूपेणानुपमाः सर्वा वरदानेन धीमतः ॥३६
कन्या भवन्ति तनयास्तस्यासुर पुनः पुनः ।
सङ्गमे सङ्गमे वीर भर्तृभिः शयने सह ॥३७
सर्वपुष्पमयं गन्धं प्रस्रवन्ति वराङ्गनाः ।
सर्वदा यौवने न्यस्ताः सर्वाश्चैव पतिव्रताः ॥३८
सर्वा गुणैरप्सरसां गीतनृत्यगुणोदयम् ।
जानन्ति सर्वा दैतेय वरदानेन धीमतः ॥३९
पुत्राश्च रूपसम्पन्नाः शास्त्रार्थकुशलास्तथा ।
स्वे स्वे स्थिता वर्णधर्मे यथावदनुपूर्वशः ॥४०
ताः कन्या भैमसुख्यानां दत्ताः प्राणेन धीमता ।
अवशेषं शतं त्वेकं यदानीतं किल त्वया ॥४१
तदर्थे यादवान्वीर योधयिष्यसि सर्वथा ।
सहायार्थं तु राजानो व्रियन्तां हेतुपूर्वकम् ॥४२

उन सभी ने महर्षि दुर्वासा की सेवा-शुश्रूषा की थी और तब महर्षि ने प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया था कि तुम प्रत्येक बार के पति-सहवास में एक-एक पुत्र और एक-एक कन्या प्राप्त करोगी ॥३५-३७॥ वे कन्याएँ सुन्दर अंग, सुगन्धि युक्त, स्थिर यौवन वाली तथा नृत्य-गान-कुशला और पति-परायणा होंगी

॥३८-३६॥ पुत्र भी अत्यन्त सुन्दर, शास्त्रार्थ के ज्ञाता तथा अपने अपने वर्ण-धर्म के मानने वाले होंग ॥ ४० ॥ इस प्रकार दुर्वासा के वर से प्राप्त हुई उन कन्याओ को ब्रह्मदत्त ने यादवो को दे दिया है । उनमे से केवल एक सौ बची थी, उन्हें ही तुम ला सके हो ॥ ४१ ॥ इसलिये शेष कन्याओ की प्राप्ति के लिये तुम्हें यहाँ आये हुए राजाओ से सधि करके यादवो से युद्ध करना उचित है ॥ ४२ ॥

ब्रह्मदत्तसुतार्थं च रत्नानि विविधानि च ।
दीयन्ता भूमिपालाना सहायार्थं महात्मनाम् ॥४३
आतिथ्य क्रियता चैव ये समेष्यन्ति वै नृपाः ।
एवमुक्ते तथा चक्रुरसुरास्तेऽतिहृष्टवत् ॥४४
लब्ध्वा पञ्चशत कन्या रत्नानि विविधानि च ।
यथार्हेण नरेन्द्रैस्ता विभक्ता भक्तवत्सला ॥४५
ऋते पाण्डुसुतान्वीरान्वारिता नारदेन ते ।
निमेषान्तरमात्रेण तत्र गत्वा महात्मना ॥४६
तुष्टैस्तैरसुरा ह्युक्ता राजन्भूमिपसत्तमैः ।
सर्वकामसमृद्धार्थैर्भवद्भि र्यागमै स्वयम् ॥४७
अर्चिता स्म यथान्याय क्षत्र किं व प्रयच्छतु ।
क्षत्र चार्चितपूर्वं हि दिव्यैर्वरैर्भवद्विधैः ॥४८
निकुम्भोऽथाब्रवीद्धृष्ट क्षत्र सुररिपुस्तदा ।
अनुवर्णयित्वा क्षत्रस्य माहात्म्य सत्यमेव च ॥४९

यदि रत्नादि के प्रदान द्वारा भी कन्याओ की प्राप्ति के लिये तुम्हें आगत नरेशोंं की सहायता प्राप्त हो सके तो लाभ ही है ॥ ४३ ॥ इसलिये यहाँ जितने राजा आये हैं, उन्हे सत्कारादि करके अपनी ओर मिला लो । यह सुन कर दानवगण बड़े प्रसन्न हुए और उन्होने राजाओ का धन रत्नादि से सत्कार कर पाँच सौ कन्याएँ भी भेंट में दीं । इससे प्रसन्न हुए राजाओं ने ... रत्न और कन्याओं को परस्पर में बाँट लिया ॥ ४४-४५ ॥ परन्तु, नारद

जी के कहने से पाण्डवों ने उस बँटवारे में कोई सहयोग नहीं दिया ॥४६॥ जिन राजाओं ने धन-रत्न और कन्यादि को प्राप्त किया था, उन्होंने दानवों से कहा कि आप तो वैभवादि में देवताओं के समान हैं, क्योंकि आपके पास किसी भी वस्तु की न्यूनता नहीं है ॥४७॥ आपने हमारा जैसा आतिथ्य-सत्कार एवं अभ्यर्थना की है, वैसी कभी किसी के द्वारा नहीं हुई। इसलिये हम सब आप लोगों का उपकार करने में तत्पर हैं ॥४८॥ यह सुन कर देवताओं के शत्रु निकुम्भ ने हर्षपूर्वक उन राजाओं के बल-वीर्य की प्रशंसा की ॥४९॥

युद्धं नो रिपुभिः सार्द्धं भविष्यति नृपोत्तमाः ।
साहाय्यं दातुमिच्छामो भवद्भिस्तत्र सर्वथा ॥५०
एवमस्त्विति तानूचुः क्षत्रियाः क्षीणकिल्बिषाः ।
पाण्डवेयानृते वीराञ्छ्रुत्वा तान्नारदाद्विभो ॥५१
क्षत्रियाः सन्निविष्टास्ते युद्धार्थं कुरुनन्दन ।
पत्न्यस्तु ब्रह्मदत्तस्य यज्ञवाटं गता अपि ॥५२
कृष्णोऽपि सेनया सार्द्धं प्रययौ षट्पुरं विभुः ।
महादेवस्य वचनमुद्वहन्मनसा नृप ॥५३
स्थापयित्वा द्वारवत्यामाहुकं पार्थिवं तदा ।
स तया सेनया सार्द्धं पौराणां हितकाम्यया ॥५४
यज्ञवाटस्याविदूरे देवो निविविशे विभुः ।
देशे प्रवरकल्याणे वसुदेवप्रचोदितः ॥५५
दत्तगुल्मप्रतिसरं कृत्वा तं विधिवत्प्रभुः ।
प्रद्युम्नमटने श्रीमान्रक्षाय विनियुज्य च ॥५६

हे नरेशगण ! कल्ह्या से हमारा शीघ्र ही युद्ध होने वाला है, उसमें आपकी सहायता अपेक्षित है ॥५०॥ पाण्डवों के अतिरिक्त अन्य सभी राजाओं ने निकुम्भ की बात स्वीकार की ॥५१॥ उन राजाओं ने यज्ञशाला में ब्रह्मदत्त की पत्नियों के उपस्थित होते हुए भी युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५२ ॥ इधर श्रीकृष्ण ने भी उग्रसेन को शासन-भार सौंप कर बहुत-सी सेना के

सहित षट्पुर को प्रस्थान किया ॥५३॥ वहाँ जाकर उन्होंने वसुदेवजी के परा
मर्श से यज्ञशाला के निकट ही अपने डेरे डाल दिये ॥५४॥ शिविर के स
ओर रक्षक-चौकियाँ बना कर और प्रद्युम्न को उनकी रक्षा का भार देक
स्वयं सब प्रकार की सावधानी को वर्तते हुए घूमने लगे ॥५५-५६॥

॥ षट्पुर युद्ध में राजाओं का बन्दी होना ॥

मुहूर्ताभ्युदिते सूर्ये जनचक्षुषि निर्मले ।
बलः कृष्णः सात्यकिश्च तार्क्ष्यमारुरुहुस्तदा ॥१
बद्धगोधाङ्गुलित्राणा दंशिता युद्धकाङ्क्षिणः ।
बिल्वोदकेश्वरं देवं नमस्कृत्य सुरोत्तमम् ॥२
आवर्तायां जले स्नात्वा रुद्रेण वरदत्तया ।
गङ्गाया कुरुशार्दूल रुद्रवाक्येन पुण्यया ॥३
प्रद्युम्नमग्रे सैन्यस्य वियति स्थाप्य मानद ।
रक्षार्थं यज्ञवाटस्य पाण्डवान्विनियुज्य च ॥४
शेषा सेना गुहाद्वारि भगवान्विनियुज्य च ।
जयन्तमथ सस्मार प्रवरं च सतां गतिं ॥५
तावापेततुरेवाथ स्वयं चापश्यतां तथा ।
वियत्येव नियुक्तौ तौ प्रद्युम्न इव भारत ॥६
ततः कृष्णस्य वचनादाहतो रणदुन्दुभिः ।
जलजा मुरजाश्चैव वाद्यान्येवापराणि च ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! सूर्योदय होने पर बलराम, कृष्ण,
सात्यकि आदि शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर और गरुड पर चढ कर अपने
शिविर से निकले एवं शिवजी के वर से गंगाजी के समान हुई आवर्ता नदी
में स्नान तथा बिल्वोदकेश्वर भगवान् का उन्होंने दर्शन किया ॥१-३॥ सेना
के अग्र भाग में प्रद्युम्न को तथा यज्ञशाला की रक्षा के लिये पाण्डवों को नियुक्त
किया गया ॥४॥ बची हुई सेना को गुफा के द्वार पर लगा कर श्रीकृष्ण ने इन्द्र

के पुत्र जयन्त और प्रवर नामक ब्राह्मण का स्मरण किया ॥५॥ इस पर वे दोनों तुरन्त ही उनके समक्ष आगये, तब उन दोनों को आकाश मार्ग की रक्षा का भार सौंपा गया ॥६॥ फिर श्रीकृष्ण के कहने पर सब ओर युद्ध के बाजे बजने लगे, जिनमें दुदुंभि, जलज, मुरज आदि बाजे विशेष उल्लेखनीय थे ॥७॥

माकरो रचितो व्यूहः साम्बेन च गदेन च ।
सारणश्चोद्धवश्चैव भोजो वैतरणस्तथा ॥८
अनाधृष्टिश्च धर्मात्मा पृथुर्विपृथुरेव च ।
कृतवर्मा च दष्टश्च विचक्षुररिमर्दनः ॥९
सनत्कुमारो धर्मात्मा चारुदेष्णश्च भारत ।
अनिरुद्धसहायौ तौ पृष्ठानीकं ररक्षतुः ॥१०
शेषा यादवसेना तु व्यूहमध्ये व्यवस्थिता ।
रथैरश्वैर्नरैर्नागैराकुला कुलवर्द्धन ॥११
पट् पुरादपि निष्क्रान्ता दानवा युद्धदुर्मदाः ।
आरुह्य मेघनादांश्च गर्दभानपि हस्तिनः ॥१२
मकराञ्छिशुमारांश्च द्रुतानपि च भारत ।
महिषानपि खड्गांश्च उष्ट्रानपि च कच्छपान् ॥१३
एतैरेव रथैर्युक्ता विविधायुधपाणयः ।
किरीटापीडमुकुटैरङ्गदैरपि मण्डिताः ॥१४

साम्ब और गद ने मकर व्यूह बनाया । सारण, उद्धव, भोज, वैतरण, अनाधृष्टि, पृथु, विपृथु, कृतवर्मा, मुदष्ट, और विचक्षु व्यूह के बीच में नियुक्त हुए ॥८-९॥ सनत्कुमार और चारुदेष्ण अनिरुद्ध की सहायता से व्यूह के पिछले भाग की रक्षा में नियुक्त हुए ॥१०॥ रथ, घोड़े, हाथी और पैदलों से युक्त सम्पूर्ण सेना मकर व्यूह के मध्य में रखी गई ॥११॥ उधर युद्ध के लिये व्याकुल हुए दानव भी पट्पुर से बाहर आये । उनमें से कुछ हाथियों पर, कुछ गधों पर, कुछ मकरों पर, कुछ घोड़ों पर, कुछ भैंसों पर, कुछ शिशुमार पर, कुछ गेंडा पर, कुछ ऊँटों पर और कुछ रथों पर बैठे हुए थे । उन सभी के मस्तकों पर किरीट-मुकुट और हाथों में विविध प्रकार के शस्त्रादि विद्यमान थे ॥१२-१४॥

नानर्दमाने विविधैस्तूर्यैर्नेमिस्वनाकुले ।
प्रध्मायमाने शङ्खे च महाम्बुदसमस्वने ॥१५
तासामसुरसेनानामुद्यताना जनेश्वर ।
निकुम्भो निर्ययावग्रे देवानामिव वासव ॥१६
भूमिं द्यां च ववृधिरे दानवास्ते बलोत्कटा ।
नदन्तो विविधान्नादान्क्ष्वेडन्तश्च पुन पुन ॥१७
राजसेनाऽपि सयत्ता चेदिराजपुरोगमा ।
असुराणा सहायार्थं निश्चिता जनमेजय ॥१८
दुर्योधन भ्रातृशत चेदिराजानुजाग्रगम् ।
स्थित रथैर्नरव्याघ्र गन्धर्वनगरोपमैं ॥१९
कठिना नादिनो वीरा द्रुपदस्यन्दनास्तथा ।
रुक्मी चैवाद्व तिष्चैव तस्यतुर्निश्चितौ रणे ।
तालवृक्षप्रतीकाशे धुन्वानो धनुषी शुभे ॥२०
शल्यश्च शकुनिश्चोभौ भगदत्तश्च पार्थिव ।
जरासन्धस्त्रिगर्तश्च विराटश्च सहोत्तर ॥२१
युद्धार्थमुद्यता वीरा निकुम्भाद्या जयैषिण ।
युयुत्समानायदुभिर्देवैरिव महासुरा ॥२२

वहाँ तुरही बज रही थीं, वहाँ रथ के पहियों का शब्द हो रहा था और वहाँ भीषण मेघ गर्जना के समान शंख ध्वनि हो रही थी ॥१५॥ देव-सेना के आगे इन्द्र के चलने के समान ही दानव श्रेष्ठ निकुम्भ दैत्य सेना के आगे आगे चला ॥१६॥ असाधारण बल वाले वे दानव अनेक प्रकार से सिंहनाद करते हुए सम्पूर्ण पृथिवी और आकाश में छा गये ॥१७॥ हे जनमेजय ! चेदिराज जैसे राजागण भी उन दैत्यों की सहायता के लिये अपनी सेना के साथ निकल पड़े ॥१८॥ दुर्योधन के सौ भाई भी विशाल रथों पर चढ़ कर अपनी सेनाओं के आगे चले ॥१९॥ उस समय वीरों की गर्जना के साथ राजा द्रुपद के रथचक्र का शब्द बड़ा भयानक प्रतीत होरहा था । रुक्मी और वाह्लीक ने भी युद्ध का विचार स्थिर कर तालवृक्ष के समान अपने विशाल धनुषों की टंकोर दी

२०॥ शल्य, शकुनी, भगदत्त, जरासंध, त्रिगर्त, विराट् और उत्तर—इन सभी वीरो ने निकुम्भ का साथ दिया। इसके पश्चात् दैत्यों ने यादवों को युद्ध की चुनौती दी ॥२१-२२॥

ततो निकुम्भः समरे शरैराशीविषोपमैः ।
ममर्द समरे सेना भंमाना भीमदर्शनाम् ॥२३
सेनापतिरनाधृष्टिर्ममृपे तत्र यादवः।
ममर्द घोरैर्वाणौघैश्चित्रपुङ्खैः शिलाशितैः॥२४
न रथोऽसुरमुख्यस्य ददृशे न च वाजिनः ।
न ध्वजो न निकुम्भस्तु सर्वे वाणाभिसंवृताः ॥२५
स परीत्य ततो वीरो निकुम्भो मायिना वरः ।
अस्तम्भयदनाधृष्टिं मायया भंमसत्तमम् ॥२६
स्तम्भयित्वाऽनयद्वीर गुहां पट्पुरसज्ञिताम् ।
सद्‌वा चाम्यगमद्वीरो मायाबलमुपाश्रितः ॥२७
पुनरेव निकुम्भस्तु कृतवर्माणमाहवे ।
अनयच्चारुदेष्णं च भोजं वैतरणं तथा ॥२८
सनत्कुमारमृक्षं च तथैव निशठोल्मुकौ।
बहून्यंश्चापरान्भोजान्मायाबलसमाश्रितः ॥२९

इसके पश्चात् दानवराज निकुम्भ रणक्षेत्र में अग्रसर हुआ और सर्पों के समान लहराते हुए भीषण बाणों से यादवों की सेना को नष्ट करने लगा ॥२३॥ तब उस बाण-वर्षा को निष्फल करने के लिये यादवों के सेनापति अनाधृष्टि ने अपने बाणों का प्रयोग किया और निकुम्भ की सेना को मारने लगा ॥ २४ ॥ अनाधृष्टि द्वारा की गयी बाण वर्षा से रथ, घोड़े, ध्वज आदि के सहित निकुम्भ भी ढक गया ।.२५॥ तब निकुम्भ ने अपनी माया के प्रभाव से अनाधृष्टि को मूर्च्छित कर दिया ॥२६॥ फिर वह स्वयं अप्रकट रहता हुआ अनाधृष्टि को उठा कर अपनी कन्दरा में ले गया और उसे वहीं रख कर स्वयं फिर युद्ध में आडटा और कृतवर्मा, चारुदेष्ण, वैतरण, सनत्कुमार, ऋक्षपुत्र, निशठ, उल्मुक आदि

अनेक यादवों को उसी प्रकार चेतना हीन कर करके कन्दरा में उठा ले गये ॥२७-२६॥

न तस्य ददृशे देहो मायाच्छन्नो जनेश्वर ।
नयतो यादवान्घोरान्गुहा पट्पुरसज्ञिताम् ॥३०
तद्दृष्ट्वा कदन घोर भैमाना भयवर्द्धन ।
चुकोप भगवान्कृष्णो बल सत्यक एव च ॥३१
सविशेष तथा काम साम्बश्च परवीरहा ।
अनिरुद्धश्च दुर्धर्षो भैमाश्च बहवोऽपरे ॥३२
तत शार्ङ्गायुध शार्ङ्ग कृत्वा सज्य नरेश्वर ।
दानवेषु प्रवृत्तेषु तृणेष्विव हुताशन ॥३३
त दृष्ट्वा दानवा देवमभिदुद्रुवुरीश्वरम् ।
शलभा कालपाशार्त्ता प्रदीप्तमिव पावकम् ॥३४
समुत्सृज्य शतघ्नीश्च परिघाश्च सहस्रश ।
शूलानि चाग्नितुल्यानि प्रदीप्ताश्च परश्वधान् ॥३५
पर्वताग्राणि वृक्षांश्च घोराश्च विपुला शिला ।
उत्क्षिप्य च गजान्मत्तान्रथानपि हयानपि ॥३६

इस प्रकार वह बारबार आकर एक-एक यादव को उठा ले जाता, उस समय वह अपने माया बल के कारण किसी को दिखाई नहीं देता था ॥ ३० ॥ यादवों की ऐसी दशा देख कर कृष्ण, बलराम, सात्यकि, प्रद्युम्न और साम्ब आदि को अत्यन्त कोप हुआ ॥३१-३२॥ फिर श्रीकृष्ण अपने धनुष को प्रत्यंचा युक्त करके तृण में स्थित अग्नि के समान दानवों के मध्य जा पहुँचे ॥३३॥ जैसे मृत्यु के समीप पहुँचे हुए पतंग अग्नि की ओर भागते हैं, वैसे ही सब दानव श्रीकृष्ण को देखते ही उनकी ओर दौड़ पड़े ॥३४॥ उस समय वे दानव अग्नि-ज्वाला के समान शूल, फरसे और पत्थर फेंक-फेंक कर यादवों [illegible] घोड़े, रथ, हाथी आदि को मार रहे थे ॥३५-३६॥

नारायणाग्निस्तान्सर्वान्ददाह प्रहसन्निव ।
धनुर्विमुक्तैः सुबहुभिः शरैः पद्मकरः हरि ॥३७

शारदश्वर्षण यद्वत्सेहे धीरो गवां पतिः ।
तद्वद्यदुवृषः सेहे बाणवर्षमरिन्दम ॥३८
न सेहिरेऽसुरा बाणान्नारायणधनुश्च्युतान् ।
वर्षं पर्जन्यविहितं वालुकासेतवो यथा ॥३९
न शेकुः प्रमुखे स्थातुं कृष्णस्यासुरसत्तमाः ।
व्यादितास्यस्य सिंहस्य वृषभा इव भारत ॥४०
ते वध्यमाना कृष्णेन दिवमाचक्रमुस्तदा ।
जीविताशा वहन्तस्तु नारायणभयार्दिता ॥४१
तानाकाशगतानिन्द्रजयन्तः प्रवरस्तथा ।
निजघ्नतुः शरैर्वो रेज्वलिताग्निसमं प्रभो ॥४२

जैसे वर्षा के जल को बैल सहन करता है, वैसे ही वे शत्रुपक्ष के बाणों को सहन कर रहे थे। परन्तु श्रीकृष्ण ने जो बाण-वर्षा की, उसे वे सहन न कर सके और जल वर्षा से बालू के पुल के ढहने के समान ही दैत्यगण मृत्यु को प्राप्त होगये ॥३७-३९॥ जैसे मुख फैला कर आते हुए सिंह का सामना बैल नहीं कर सकता, वैसे ही श्रीकृष्ण के सामने दानवगण नहीं ठहर पाये ॥४०॥ और अपने प्राण नष्ट होने के भय से व्याकुल होकर आकाश मार्ग में उड़ने लगे ॥ ४१ ॥ परन्तु, वहाँ जयन्त और प्रवर के होने से उनकी रक्षा नहीं हो सकी, क्योंकि उन्होंने अग्नि-शिखा के समान अपने बाणों की वर्षा करके उन्हें नष्ट कर दिया ॥ ४२ ॥

ततः पाशसहस्राणि जग्राह प्रवरोत्तम ।
शैलादिरब्रवीद्वीरं रौक्मिणेयं महाबलम् ॥४३
विल्वोदकेश्वरो देवः प्राह त्वां यदुनन्दन ।
सर्व कुरु तथा राज्ञ्या चोक्तस्त्वं भो यथा मया ॥४४
कन्यार्थं रत्नलुब्धास्तु बद्ध्वा चेमान्नराधिपान् ।
पाशैस्त्वमेव मोक्तुं च प्रमाणं यदुनन्दन ॥४५
असुरांस्तु महाबाहो निःशेषान्कर्तुमर्हसि ।
एवमेव च वक्तव्यस्त्वया वीर जनार्दनः ॥४६

तत स भगदत्त च शिशुपाल च भूमिप ।
आह्वृति चैव रुक्मिं च शेषाश्चान्यान्नराधिपान् ।।४७
बबन्ध हरदत्तैस्तै पाशैरुत्तमवीर्यधृक ।
मायामयी गुहा चैवमानयत्कुरुनन्दन ।।४८
बद्ध्वा च रौक्मिणेयोऽथ नि श्वसन्त इवोरगान् ।
अनिरुद्ध चकाराथ रक्षितार स्वमात्मजम् ।।४९
तेषा निरवशेषेण बबन्ध यदुनन्दन ।
सेनापतीन्क्षत्रियाश्च कोशाध्यक्षाश्च भारत ।।५०
हस्त्यश्वरथवृन्दाश्च चकार च तथात्मसात् ।
अभ्यग्रस्तु ततो हन्तुमसुरानुद्यत प्रभो ।।५१

इसी अवसर पर भगवान् रुद्र के प्रधान पार्षद नन्दी सहस्रों पाशास्त्रों को ग्रहण किये हुए वहाँ आये और उन्होंने प्रद्युम्न से कहा ।। ४३ ।। हे यदुनन्दन भगवान् बिल्वोदकेश्वर का कहना है कि मेरे द्वारा बतायी गई योजना के अ सार चल कर आप इन सभी राजाओ को पाशास्त्रों से बाँध लें, फिर यह आ की इच्छा होने पर ही मुक्त हो सकेंगे ।।४४-४५।। देवदेव ने भगवान् कृष्ण प्रति भी यह कहा है कि वे दानवों को शीघ्र ही मार डालें ।।४६।। तब प्रद्यु ने भगवान् शंकर के भेजे हुए पाशास्त्र को नन्दीश्वर से लेकर सर्पों के सम फुंकार फेंकते हुए भगदत्त, शिशुपाल, आह्वृति, रुक्मी आदि राजाओं को उ से बाँध कर अपने द्वारा निर्मित मायामयी गुफा में बन्द कर दिया । फिर अ पुत्र अनिरुद्ध को उनकी चौकसी पर नियुक्त कर प्रद्युम्न ने उन राजाओं के सेन पतियों, क्षत्रियों, कोषाध्यक्षों, हाथियों, घोड़ों और रथों आदि पर अपना अ धार कर लिया । इसके पश्चात् वे उन बचे हुए दानवों को मारने के लिये अ सर हुए ।।४७-५१।।

सन्नद्ध एव चोवाच ब्रह्मदत्त द्विजोत्तमम् ।
विगतध वर्तता कर्म मा भै मत्य धनञ्जयम् ।।५२
न देवेभ्यो नासुरेभ्यो नागेभ्यो द्विजसत्तम ।
भयं हि विद्यते तस्य गोप्तारो यस्य पाण्डवाः ।।५३

न चामुरैस्तव सुताः स्पृष्टाः स्वल्पपि चेतसा ।
यज्ञवाटे निरीक्ष्यन्ता मायया निहिता मया ॥५४

उससे भी पहिले उन्होंने ब्राह्मण श्रेष्ठ ब्रह्मदत्त को यह आश्वासन देदिया था कि जब आपके सामने धनजय अर्जुन उपस्थित हैं, तब आपको क्या आशका है ? ॥५२॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जिसकी रक्षा मे पाण्डवगण नियुक्त हैं, उन्हें देवता, दैत्य, नाग आदि किसी से भी भय नही है दैत्यगण आपकी कन्याओं को छू भी नहीं सकते, मैंने अपनी माया के प्रभाव से उनकी रक्षा का पूर्ण प्रबध कर दिया है ॥५३-५४॥

॥ पट्पुर का वध ॥

रुद्धेषु भूमिपालेषु सानुगेषु विशाम्पते ।
आविवेशासुरांश्चाथ कश्मलं जनमेजय ॥१
दिशः प्रतस्थुस्ते वीरा वध्यमानाः समन्ततः ।
कृष्णानन्तप्रभृतिभिर्युदुभिर्युद्धदुर्मदैः ॥२
निकुम्भस्तानथोवाच रुषितो दानवोत्तमः ।
भित्वा प्रतिज्ञां किं मोहाद्भयार्ता यात विह्वलाः ॥३
हीनप्रतिज्ञाः कांल्लोकान्प्रयास्यथ पलायिताः ।
अगत्वाऽपचितिं युद्धे ज्ञातीनां कृतनिश्चयाः ॥४
फलं जित्वैव नोक्तव्यं रिपून्समरकर्कशान् ।
हतेन चापि शूरेण वस्तव्यं त्रिदिवे सुखम् ॥५
पलायित्वा गृहं गत्वा कस्य द्रक्ष्यथ हे सुखम् ।
दारान्वक्ष्यथ किं चापि धिग्धिक्किं किं लज्जथ ॥६
एवमुक्ता निवृत्तास्ते लज्जमाना नृपासुराः ।
द्विगुणेन च वेगेन युयुधुर्यदुभिः सह ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! जब अपने अनुगतों के सहित सब राजागण बंदी होगये तब दैत्यगण अत्यन्त क्षुब्ध हुए तथा श्रीकृष्णबलराम आदि के द्वारा नाश को प्राप्त होते हुए दैत्य-सैनिक सभी दिशाओं म पलायन करने लगे

॥१-२॥ यह देख कर दैत्यो के राजा निकुम्भ ने अत्यत क्रोध पूर्वक उन भागने वालो से कहा—अरे दानवो ! तुम अपने निश्चय से फिर कर इस प्रकार क्यो भाग रहे हो ? बताओ, प्रतिज्ञा-भग करके युद्ध क्षेत्र से भागने वाले को किस लोक मे स्थान मिलता है ? ॥४॥ युद्ध मे घोर शत्रु को हराने पर ही विजय श्री की प्राप्ति अथवा मर जाने पर स्वर्ग की उपलब्धि होती है ॥५॥ इस प्रकार भागने पर तुम्हे घर मे ही कौन-सा सुख मिलेगा ? तुम अपनी स्त्रियो को क्या उत्तर दोगे ? अरे क्या तुममे लज्जा का कुछ अंश भी नही बचा है ? ॥६॥ निकुम्भ की ललकार सुन कर बचे हुए राजा और दैत्य लज्जित होकर सग्राम मे पहिले से भी दुगुने उत्साह से जुट पड़े ॥७॥

उत्सवे युद्धशौण्डानां नानाप्रहरणैर्नृप ।
ये यान्ति यज्ञवाटं तं तान्निहन्ति धनञ्जयः ॥८
यमौ भीमश्च राजा च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
द्या प्रयाताञ्जघानेन्द्र' प्रवरश्च द्विजोत्तमः ॥९
अथासुरासृक्तोयाढ्या केशवलशाड्वला ।
चक्रकर्मरथावर्ता गजशैलानुशोभिनी ॥१०
ध्वजकुन्ततरुच्छन्ना स्तनितोत्क्रुष्टनादिनी ।
गोविन्दशैलप्रभवा भीरुचित्तप्रमाथिनी ॥११
असृग्बुद्बुदफेनाढ्या असिमत्स्यतरङ्गिणी ।
सुस्राव शोणितनदी नदीव जलदागमे ॥१२

जो भी युद्ध कुशल वीर शस्त्रास्त्र ग्रहण करके यज्ञ शाला में गये, वे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि के द्वारा मारे गये और जो प्राण-रक्षा के लिये आकाश मार्ग मे उडे वे जयन्त और प्रवर के हाथ से समाप्त होगये ॥८-९॥ उस समय युद्ध क्षेत्र मे वर्षा काल की नदी के समान ही रक्त की नदी प्रवाहित होगई, जिसमे रथ के चक्र कछुओ के समान, हाथी पर्वत के समान, ध्वज और बाण वृक्ष के समान, तलवारादि मछलियों के समान तथा चीत्कार का शब्द कल्लोल के समान लगने लगा। उस नदी का उद्गम स्थल श्रीकृष्ण रूपी

ति था । उस नदी को देख कर कायरों का तो हृदय भी काँप रहा था ॥१०-१२॥

ददर्शाथ निकुम्भस्तु केशवं रणदुर्जयम् ।
अर्जुनेन स्थितं सार्द्धं यज्ञवाटाविदूरतः ॥१३
स नादं सुमहान्कृत्वा पक्षिराजमताडयत् ।
परिघेण सुघोरेण बलं सत्यकमेव च ॥१४
नारायणं चार्जुनं च भीमं चाथ युधिष्ठिरम् ।
यमौ च वासुदेवं च साम्बं कामं च वीर्यवान् ॥१५
युयुधे मायया दैत्यः शीघ्रकारी च भारत ।
न चैनं ददृशुः सर्वे सर्वशस्त्रविशारदाः ॥१६
यदा तु नैवापश्यस्त तदा बिल्वोदकेश्वरम् ।
दध्यौ देव हृषीकेशः प्रमथानां गणेश्वरम् ॥१७
ततस्ते ददृशु सर्वे प्रभावादतितेजसः ।
बिल्वोदकेश्वरस्याशु निकुम्भं मायिनां वरम् ॥१८
कैलासशिखराकारं ग्रसन्तमिव धिष्ठितम् ।
आह्वयन्तं रणे कृष्णं वैरिणं ज्ञातिनाशनम् ॥१९
सज्यगाण्डीवमेवाथ पार्थस्तस्य रथेषुभिः ।
परिघं चैव गात्रेषु विव्याधैनमथासकृत् ॥२०
ते बाणास्तस्य गात्रेषु परिघ च जनाधिप ।
भग्नाः शिलाशिताः सर्वे निपेतुः कुञ्चिताः क्षितौ ॥२१

फिर निकुम्भ युद्ध में दुर्जय श्रीकृष्ण के पास गया तो उसने उन्हें अर्जुन के साथ यज्ञशाला के निकट देखा ॥१३॥ तब उसने भीषण सिंहनाद करके गरुड़, बलराम, सात्यकि, कृष्ण, अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, वसुदेव, साम्ब और प्रद्युम्न पर अपने परिघों से प्रहार किया ॥१४-१५॥ फिर वह अपने माया-बल से अदृश्य होकर बड़े-बड़े वीरों को भी दिखाई नहीं देता था ॥१६॥ इससे उसे मारने में कोई भी समर्थ नहीं हुआ, यह देख कर श्रीकृष्ण ने भगवान् बिल्वोदकेश्वर का ध्यान किया ॥१७॥ तभी भगवान् शङ्कर की कृपा से सब को

दिव्य दृष्टि मिल गयी और मायावी निकुम्भ उन्हे दिखाई देने लगा ।।१८।। उस का कैलास शिखर जैसा आकार था, जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि वह सब को अपने पेट मे रख लेगा । इस प्रकार युद्ध के लिये ललकारता हुआ वह दैत्य श्रीकृष्ण के सामने आया । तभी अर्जुन ने अपने गाडीव पर प्रत्यंचा चढा कर निकुंभ और उसके परिघ पर बाण वर्षा आरंभ की ।।१९-२१।।

विफलानस्त्रयुक्तांस्तान्दृष्ट्वा बाणान्धनंजयः ।
पप्रच्छ केशवं वीरः किमेतदिति भारत ।।२२
पर्वतानपि भिन्दन्ति मम वज्रोपमाः शराः ।
किमिदं देवकीपुत्र विस्मयोऽत्र महान्मम ।।२३
तमुवाच ततः कृष्णः प्रहसन्निव भारत ।
महद्भूतं निकुम्भोऽयं कौन्तेय शृणु विस्तरात् ।।२४
पुरा गत्वोत्तरकुरूंस्तपश्चक्रे महासुरः ।
शतं वर्षसहस्राणां देवलब्दुरासदः ।।२५
अथैनं छन्दयामास वरेण भगवान्हरः ।
स वव्रे त्रीणि रूपाणि न वध्यानि सुरासुरैः ।।२६
तमुवाच महादेवो भगवान्वृषभध्वजः ।
मम वा ब्राह्मणानां वा विष्णोर्वाऽप्रियमाचरन् ।।२७

परन्तु उनके छोड़े हुए सभी बाण निकुंभ का और उसके परिघ का स्पर्श होते ही टूट टूट कर पृथिवी पर गिर गये ।।२२।। हे राजन् ! यह देख कर अर्जुन बोला—हे प्रभो ! यह कैसे विस्मय की बात है कि मेरे जिन बाणों से बडे बडे पवत तक ढह जाते हैं, वे सब इस समय व्यर्थ क्यो होरहे हैं ? ।।२३-२४।। तब श्रीकृष्ण ने किंचित् मुसकान के साथ कहा—हे अर्जुन ! निकुम्भ मे जि अलौकिक शक्ति का समावेश हुआ है, उसका कारण मैं तुम्हे विस्तार से बताता हूं, सुनो ।।२५।। इस महाबली दानव ने पहिले कुरुक्षेत्र मे एक लाख वर्ष तक घोर तपस्या की थी । तब इस पर प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने इससे वर मांगने को कहा और इसने उनसे देवताओं या दैत्यो द्वारा न मारे जाने का त्रिरूप वर मांगा ।।२६-२७।।

भविष्यसि हरेर्वध्यो न त्वन्यस्य महासुर ।
ब्रह्मण्योऽहं च विष्णुश्च विप्राणां परमा गतिः ॥२८
स एष सर्वशस्त्राणामवध्यः पाण्डुनन्दन ।
निर्देहोऽतिप्रमाथी च वरमत्तश्च दानवः ॥२९
भानुमत्यापहरणे देहोऽस्यैको हतो मया ।
अवध्य षट्पुरं देहमिदमस्य दुरात्मनः ॥३०
दिति शुश्रूषति त्वेको देहोऽस्य तपसाऽन्वितः ।
अन्यस्तु देहो घोरोऽस्य येनावसति षट्पुरम् ॥३१
एतत्तु सर्वमाख्यातं निकुम्भचरितं मया ।
त्वरयास्य वधे वीर कथा पश्चाद्भविष्यति ॥३२
तयोः कथयतोरेवं कृष्णयोर्नुरसत्तदा ।
गुहां षट्पुरसंज्ञां तां विवेश रणदुर्जयः ॥३३
अन्विष्य तस्य भगवान्विवेश मधुसूदनः ।
तां षट्पुरगुहां घोरां दुर्दर्शां कुरुनन्दन ॥३४
चन्द्रसूर्यप्रभाहीनां ज्वलन्तीं स्वेन तेजसा ।
सुसदुःखोष्णशीतानि प्रयच्छन्तीं यथेप्सितम् ॥३५

इस पर शिवजी ने वर देते हुए कहा था कि मेरा, ब्राह्मणों का या विष्णु का अपकार करने पर विष्णु के द्वारा मृत्यु को प्राप्त होगे। उनके अतिरिक्त और कोई भी तुम्हारा वध करने में समर्थ न होगा क्योंकि मैं और विष्णु दोनों ही अपने प्रधान आश्रय स्वरूप ब्राह्मणों का हित करने वाले हैं ॥२८॥ इस प्रकार यह महासुर शिवजी की कृपा से तीन रूप प्राप्त करके देव-दानवों के सभी शस्त्रों से मारा जाने योग्य नहीं रहा है ॥२९॥ भानुमती के हरण के समय मैंने इसकी एक मूर्ति तो समाप्त कर दी थी, वह इसकी षट्पुर मूर्ति कहलाती है ॥३०॥ इसके अतिरिक्त इसकी एक मूर्ति दिति की सेवा में स्थिर रह कर तपकर रूप से षट्पुर में स्थित है ॥३१॥ इस प्रकार निकुम्भ का वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा

हे राजन्! कृष्ण और अर्जुन इस प्रकार बातें कर ही रहे थे, तभी अजेय

दैत्य अपनी षट्पुर नाम की गुफा मे प्रविष्ट होगया ॥३३॥ तब भगवान् श्रीकृष्ण भी उसके पीछे-पीछे चलते हुए उसी भयकर कन्दरा मे जा घुसे ॥३४॥ उसके भीतर सूर्य-चन्द्रमा की ज्योति नही पहुँचती थी, अपना ही प्रकाश उसे प्रकाशित करता रहता था। उसमे सुख-दुःख, शीत-उष्ण की प्राप्ति भी अपनी इच्छा के अनुसार होती रहती थी ॥३५॥

तत्र प्रविश्य भगवानपश्यत जनाधिपान् ।
युयुधे सह घोरेण निकुम्भेन जनाधिप ॥३६
कृष्णस्यानुप्रविष्टास्तु बलाद्या यादवास्तदा ।
प्रविष्टाश्च तथा सर्वे पाण्डवास्ते महात्मनः ॥३७
समेतास्तु प्रविष्टास्ते कृष्णस्यानुमतेन व ।
युयुधे स तु कृष्णेन रौक्मिणेय प्रचोदितः ।
अनयद्यादवान्सर्वान्यानय बद्धवान्पुरा ॥३८
ते मुक्ता रौक्मिणेयेन प्राप्ता यत्र जनार्दनः ।
प्रहृष्टमनसः सर्वे निकुम्भवधकाङ्क्षिणः ॥३९
राजानो वीर मुञ्चेति पुनः काम यथाऽब्रवीत् ।
मुमोच चाथ तान्वीरो रौक्मिणेय प्रतापवान् ॥४०
अधोमुखमुखाः सर्वे बद्धमौना नराधिपाः ।
लज्जयाऽभिप्लुता वीरास्तस्थुर्न ष्टश्रियस्तदा ॥४१
निकुम्भमपि गोविन्दः प्रययन्त जय प्रति ।
योधयामास भगवान्घोरमात्मरिपुं हरिः ॥४२

भगवान् कृष्ण ने उस गुफा में जाकर देखा कि निकुम्भ ने जिन यादवों का हरण किया था, वे सब वहाँ स्थित हैं। तभी निकुम्भ का और कृष्ण का युद्ध होने लगा ॥३६॥ कृष्ण के पीछे-पीछे बलराम आदि यादव और युधिष्ठिरादि पाण्डव भी उस गुफा मे जा पहुँचे ॥३७॥ वहाँ जो यादवगण बदी बनाये हुए थे, उन सभी श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न से कह कर मुक्त करा दिये, तब वे बन्धन से छूटे हुए यादव श्रीकृष्ण के पास आये। फिर श्रीकृष्ण के आदेश पर प्रद्युम्न

प्रतिपक्षी राजाओ को भी मुक्त कर दिया, तब वे सब भी लज्जा से मस्तक झुकाये हुए तथा स्तब्ध और मलीन होकर श्रीकृष्ण के सामने आकर खड़े होगये ॥३८-४१॥ तभी श्रीकृष्ण और निकुंभ मे भयकर युद्ध छिड़ गया ॥४२॥

परिघेणाहतः कृष्णो निकुम्भेन भृशं विभो ।
गदया चापि कृष्णेन निकुम्भस्ताडितो भृशम् ॥४३
तावुभौ मोहमापन्नौ सुप्रहारहतौ तदा ।
ततः प्रव्यथितान्दृष्ट्वा पाण्डवाश्चाथ यादवान् ॥४४
जेपुर्मुनिगणास्तत्र कृष्णस्य हितकाम्यया ।
तुष्टुवुश्च महात्मानं वेदप्रोक्तैस्तथा स्तवैः ॥४५
ततः प्रत्यागदप्राणो भगवान्केशवस्तदा ।
दानवश्च पुनर्वीरावुद्यतौ समरं प्रति ॥४६
वृषभाविव नर्दन्तौ गजाविव च भारत ।
शालावृकाविव क्रुद्धौ प्रहरन्तौ रणोत्कटौ ॥४७
अथ कृष्ण तदोवाच नृप वागशरीरिणी ।
चक्रेण शमयस्वैनं देवब्राह्मणकण्टकम् ॥४८
इति होवाच भगवान्देवो बिल्वोदकेश्वरः ।
धर्मं यशश्च विपुलं प्राप्नुहि त्वं महाबलम् ॥४९

तभी निकुंभ ने परिघ से कृष्ण पर और कृष्ण ने निकुंभ पर गदा से आघात किया ॥४३॥ इस प्रकार परस्पर भीषण प्रहार होने से कृष्ण और निकुंभ दोनो ही मूर्च्छित होगये। यह देख कर यादवो और पाण्डवो मे भारी भय छागया। उस समय श्रीकृष्ण की कुशलता के लिये मुनियों ने वेद-मन्त्रो के जप पूर्वक उनकी रक्षा की ॥४४-४५॥ फिर उन दोनों पुन. चेष्टावान् होने पर पुन क्रुद्ध शृगालो के समान प्रहार युक्त युद्ध प्रस्तुत हुआ ॥४६-४७॥ तभी आकाशवाणी हुई—हे कृष्ण! देवताओं और ब्राह्मणो के लिये शूल रूप इस दैत्य को आप अपने चक्र से शीघ्र मार दीजिये ॥४८॥ इससे आपको महान् धर्म तथा भारी सुयश की प्राप्ति होगी। इस प्रकार उनसे भगवान् शंकर ने आकाशवाणी मे कहा ॥४९॥

तथेत्युक्त्वा नमस्कृत्वा लोकनाथ सता गति ।
सुदर्शन मुमोचाथ चक्र दैत्यकुलान्तकम् ।।५०
तन्निकुम्भस्य चिच्छेद शिर प्रवरकुण्डलम् ।
नारायणभुजोत्सृष्ट सूर्यमण्डलवर्चसम् ।।५१
उत्पपात शिरस्तस्य भूमौ ज्वलितकुण्डलम् ।
मेघमत्तो गिरे शृङ्गान्मयूर इव भूतले ।।५२
निकुम्भे निहते तस्मिन्देवो बिल्वोदकेश्वर ।
तुतोष च नरव्याघ्र जगत्त्रासकरो विभु ।।५३
पपात पुष्पवृष्टिश्च शक्रसृष्टा नभस्तलात् ।
देवदुन्दुभयश्चैव प्रणेदुररिनाशने ।।५४
ननन्द च जगत्कृत्स्न मुनयश्च विशेषत ।
दैत्यकन्याश्च भगवान्यदुभ्य शतशो ददौ ।।५५
क्षत्रियाणा च भगवान्सान्त्वयित्वा पुन पुन ।
रत्नानि च विचित्राणि वासासि प्रवराणि च ।।५६
रथाना वाजियुक्ताना पट् सहस्राणि केशव ।
अददत्पाण्डवेभ्यश्च प्रीतात्मा गदपूर्वज ।।५७
तदेव चाथ प्रवर पट्पुर पुरवर्द्धन ।
द्विजाय ब्रह्मदत्ताय ददौ तार्क्ष्यवरध्वज ।।५८

श्रीकृष्ण ने देववाणी को स्वीकार कर और शिवजी को नमस्कार करके अपने सुदर्शन चक्र का प्रहार किया ।।५०।। इस प्रकार उस सूर्य के समान तेजस्वी चक्र से निकु न का कुण्डलों से विभूषित मस्तक कट कर पृथिवी पर गिर गया ।।५१।। जैसे जलधर को देख कर उन्मत्त हुआ मोर पर्वत से पृथिवी पर आ गिरता है, वैसे ही निकु भ का कटा हुआ मस्तक धरती पर आगिरा ।।५२।। हे राजन् ! निकुम्भ की मृत्यु से बिल्वोदकेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हुए और संसार को भी शान्ति-लाभ हुआ ।।५३।। उस समय स्वयं इन्द्र ने आकाश से पुष्प-वृष्टि की, दुन्दुभियाँ बजने लगीं, सम्पूर्ण विश्व और मुनिगण आनन्द विभोर हो उठे और तब श्रीकृष्ण ने यादवों को सैकड़ों दैत्य कन्याएँ प्रदान कीं । उन्हों ने पांडवों

ये घोड़ों के सहित छः हजार रथ, विभिन्न क्षत्रियों को विविध प्रकार के विपुल न तथा ब्राह्मणश्रेष्ठ ब्रह्मदत्त को षट्पुर नगर ही दे दिया ॥५४-५८॥

सत्रे समाप्ते च तदा शङ्खचक्रगदाधरः ।
विसर्जयित्वा तत्क्षत्रं पाण्डवांश्च महाबलः ॥५९
बिल्वोदकेश्वरस्याथ समाजमकरोत्प्रभुः ।
मासरूपसमाकीर्णं बह्वन्नं व्यञ्जनाकुलम् ॥६०
नियुद्धकुशलान्मल्लान्देवो मल्लप्रियस्तदा ।
योधयित्वा ददौ भूरि वित्तं वस्त्राणि चात्मवान् ॥६१
मातापितृभ्यां सहितो यदुभिश्च महाबलः ।
अभिवाद्य ब्रह्मदत्तं ययौ द्वारवतीं पुरीम् ॥६२
स विवेश पुरीं रम्यां हृष्टपुष्टजनाकुलम् ।
पुष्पचित्रपथां वीरो वन्द्यमानो नरैः पथि ॥६३

यज्ञ के सम्पन्न होने पर भगवान श्रीकृष्ण ने इस प्रकार अन्यान्य राजाओं आदि के सहित सत्कारित हुए पाण्डवों को विदा किया ॥५९॥ फिर उन्होंने बिल्वोदकेश्वर के निमित्त एक महोत्सव का आयोजन किया जिसमें विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों को तैयार करा कर सब को संतुष्ट किया ॥६०॥ फिर युद्ध कुशल मल्लों का मल्ल युद्ध देखा और उन्हें अनेक प्रकार के धन, वस्त्र आदि दिये ॥६१॥ फिर ब्राह्मण श्रेष्ठ ब्रह्मदत्त को प्रणाम करके अपने माता-पिता के सहित श्रीकृष्ण वहाँ से द्वारिका के लिये चल दिये ॥६२॥ जिस समय वैभवमयी उस पुरी में उनका आगमन हुआ, उस समय उसके सभी राज मार्गों को पुष्प-मालाओं से सजाया गया और उनके दोनों ओर खड़े हुए स्त्री-पुरुषों ने उनका जय-जयकार किया ॥६३॥

इम यः षट्पुरवधं विजयं चक्रपाणिनः ।
शृणुयाद्वा पठेद्वापि युद्धे जयमवाप्नुयात् ॥६४
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् ।
व्याधितो मुच्यते रोगाद्बद्धश्चाप्येव बन्धनात् ॥६५

इद पुंसवन प्रोक्तं गर्भाधन च भारत ।
श्राद्धेपु पठितं सम्यगक्षय्यकरण स्मृतम् ॥६६
इदममरवरस्य भारते प्रथितजनस्य जय महात्मनः ।
सततमिद य. पठेन्नर सुगतिमितो व्रजते गतज्वरः ॥६७
मणिकनकविचित्रपाणिपादो निरतिशयार्कगुणोऽरिहादिनाथः ।
चतुरुदाधिशयश्चतुर्विधात्मा जयति जगत्पुरुषः सहस्रनामा ॥६८

हे जनमेजय ! भगवान् की इस विजय और षट्पुर वध के वृत्तान्त को जो मनुष्य पढ़ते अथवा सुनते हैं, उनकी युद्ध मे जीत होती है ॥६४॥ तथा जिन के पुत्र नही होता, वे पुत्रवान्, धनहीन धनवान् रोगी निरोग और बन्धन पड़े हुओ को छुटकारा मिलता है ॥६५॥ पुंसवन, गर्भाधान अथवा श्राद्धादि समय तो यह क्षय-रहित महामन ही हो जाता है ॥६६॥ जो मनुष्य देवश्रेष्ठ परम प्रसिद्ध महात्मा श्रीकृष्ण के इस विजय-वृत्त का पाठ करते हैं, वे सांसारिक व्याधियों से छूट कर श्रेष्ठ गति को प्राप्त होते हैं ॥६७॥ हाथ-पावों मे मणि जटित स्वर्ण-आभूषणो के धारण करने वाले, सूर्य से भी अधिक तेजस्वी, सर्वेश्वर, चतु समुद्रशायी, चतुर्विध रमा, शत्रुओ के नाशक, सहस्रो नाम वाले जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण की जय हो ॥६८॥

॥ अन्धकासुर का वध ॥

श्रुतोऽयं षट्पुरवधो रम्यो मुनिवरोत्तम ।
पुरोक्तमन्धकवध वैशम्पायन कीर्तय ॥१
भानुमत्याश्च हरणं निकुम्भस्य वधं तथा ।
प्रब्रूहि वदतां श्रेष्ठ पर कौतूहलं हि मे ॥२
दितिर्हतेषु पुत्रेषु विष्णुना प्रभविष्णुना ।
तपसाऽऽराधयामास मारीचं कश्यप पुरो ॥३
तपसा कालयुक्तेन तथा शुश्रूषया मुनेः ।
आनुकूल्येन च तथा माधुर्येण च भारत ॥४

परितुष्टः कश्यपस्तु तामुवाच तपोधनः ।
परितुष्टोऽस्मि ते भद्रे वरं वरय सुव्रते ॥५
हतपुत्राऽस्मि भगवन्देवैर्धर्मभृतां वर ।
अवध्यं पुत्रमिच्छामि देवैरमितविक्रमम् ॥६
अवध्यस्ते सुतो देवि दाक्षायणि भवेदिति ।
देवानां सशयो नात्र कश्चित्कमललोचने ॥७
देवदेवमृते रुद्रं तस्य न प्रभवाम्यहम् ।
आत्मा ततस्ते पुत्रेण रक्षितव्यो हि सर्वथा ॥८

राजा जनमेजय ने कहा—हे मुनिवर ! आपसे षट्पुर वध का वृत्तान्त सुन लिया, परन्तु अब अन्धक वध की कथा कहने की कृपा करें। मैं अन्धक और निकुम्भ के वध और भानमती के अपहरण की कथा सुनने को अत्यन्त लालायित हूँ, इसलिये आप उसे मेरे प्रति कहिये ॥१-२॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! जब भगवान् विष्णु बहुत-से दानवों को मार चुके, तब दैत्यों की माता दिति ने अपने पति महर्षि कश्यप को प्रसन्न किया ॥३॥ महर्षि कश्यप उसकी सेवा-शुश्रूषा से अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—हे भद्रे ! मैं तुम पर प्रसन्न होगया हूँ, अब तुम जो चाहो, वर माँगलो ॥४॥ इस पर दिति ने कहा—हे भगवन् ! देवताओं ने मेरे सभी पुत्रों का वध कर दिया है, अब आप मुझे ऐसा पुत्र प्रदान करें जो विशेष पराक्रम वाला हो तथा देवताओं के द्वारा न मारा जा सके ॥५-६॥ तब कश्यपजी बोले—हे दाक्षायणि ! हे पद्मलोचने ! तुम्हें अब जिस पुत्र की प्राप्ति होगी, उसे भगवान् रुद्र के अतिरिक्त अन्य कोई देवता नहीं मार सकेगा, इसलिये उसे उन्हीं से सावधान रहना पड़ेगा ॥७-८॥

अन्वालभत तां देवीं कश्यपः सत्यवागथ ।
अंगुल्योदरदेशे तु सा पुत्रं सुषुवे ततः ॥९
सहस्रबाहुं कौरव्य सहस्रशिरसं तथा ।
द्विसहस्रेक्षणं चैव तावच्चरणमेव च ॥१०
स व्रजत्यन्धवद्यस्मादनन्धोऽपि हि भारत ।
तमन्धकोऽयं नाम्नेति प्रोचुस्तत्र निवासिनः ॥११

अवध्योऽस्मीति लोकान्स सर्वान्बाधति भारत ।
हरत्यपि च रत्नानि सर्वाण्यात्मबलाश्रयात् ॥१२
वासयत्यात्मवीर्येण निगृह्याप्सरसा गणान् ।
स वेश्मन्य जितोऽत्यर्थं सर्वलोकभयंकरः ॥१३
परदारापहरणं पररत्नविलोपनम् ।
चकार सततं मोहादन्धकः पापनिश्चयः ॥१४

इतना कह कर कश्यपजी ने अपनी अँगुली से दिति के उदर का स्पर्श किया, जिससे कुछ कालोपरान्त उसे एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥६॥ उसके एक सहस्र हाथ, सहस्र सिर तथा दो सहस्र पाँव और दो ही सहस्र नेत्र थे ॥१०॥ दो हजार आँखो के होते हुए भी वह दैत्य अहंकार के कारण अन्धे के समान चलता था, इसीलिये वह अंधक नाम से प्रसिद्ध हुआ । ११ । वह अपने को तीनों लोकों मे अवध्य मान कर सब प्राणियो को दुःख देता रहता और सब के धन, रत्नादि को छीन लेता ॥१२॥ उसने अनेकों अप्सराओं को पकड़ पकड़ कर अपने घर में लाकर रख लिया ॥१३॥ वह अत्यन्त भयंकर एवं पापी महासुर पर-नारी, पर-धन और पर-रत्न को लूटने आदि दुष्कर्मों मे सदा ही लगा रहता था ॥१४॥

त्रैलोक्यविजयं कर्तुमुद्यतः स तु भारत ।
सहायैरसुरैः सार्द्धं बहुभिः सर्वतर्विभिः ॥१५
तच्छ्रुत्वा भगवाञ्छक्रः कश्यपं पितरं ब्रवीत् ।
अन्धकेनेदमारब्धमीदृशं मुनिसत्तम ॥१६
आज्ञापय विभो कार्यमस्माकं समनन्तरम् ।
यवीयसः कथं नाम सोढव्यं स्यान्मुने मया ॥१७
इष्टपुत्रे प्रहर्तव्यं कथं नाम मया विभो ।
इहात्रभवती कुर्यान्मन्युं मयि हते सुते ॥१८
देवेन्द्रवचनं श्रुत्वा कश्यपोऽथाब्रवीन्मुनिः ।
वारयिष्यामि देवेन्द्र सर्वथा भद्रमस्तु ते ॥१९
अन्धकं वारयामास दित्या सह तु कश्यपः ।
त्रैलोक्यविजयाद्वीर कृच्छ्रकृच्छ्रेण भारत ॥२०

वारितोऽपि स दुष्टात्मा बाधत्येव दिवौकसः ।
तैस्तैरुपायैर्दुष्टात्मा प्रमथ्य च तथाऽमरान् ॥२१

कुछ कालोपरान्त उसने अन्यान्य दैत्यों से मेल किया और उनके सहयोग से समस्त त्रैलोक्य को जीतने की तैयारी करने लगा ॥१५॥ यह बात जान कर देवराज इन्द्र ने महर्षि कश्यप की सेवा में उपस्थित होकर कहा—हे प्रभो ! अन्धकासुर के ऐसे कुत्सित कर्मों से बचने के लिये हमें क्या करना चाहिये ? यह आप हमारे प्रति कहें । छोटे भाई द्वारा की जाने वाली ऐसी उच्छृङ्खलता अब असह्य हो उठी है ॥१६-१७॥ माता दिति का उस पर अत्यन्त स्नेह है और यदि मैं अन्धक को मार दूँगा तो वे क्रुद्ध हो जायगी ॥१८॥ इन्द्र की बात सुन कर महर्षि कश्यप ने कहा—इन्द्र ! तुम चिन्ता न करो, मैं उसे रोकने का यत्न करूँगा ॥१९॥ यह कह कर महर्षि कश्यप दिति के पास पहुँचे और तब दिति ने और उन्होंने अन्धक को समझाया कि हे बेटा ! तुम तीनों लोकों को जीतने की इच्छा का परित्याग करो ॥२०॥ परन्तु, उसने माता-पिता की भी बात नहीं मानी तथा अब वह देवताओं और अन्यान्य जीवों को पहिले से भी अधिक सताने लगा ॥२१॥

बभञ्ज कानने वृक्षानुद्यानानि च दुर्मतिः ।
उच्चैःश्रवःसुतानश्वान्बलादप्यानयद्दिवः ॥२२
नागान्दिशागजसुतान्दिव्यानपि च भारत ।
बलाद्धरति देवानां पश्यतां वरदर्पितः ॥२३
देवानाप्याययन्ते तु ये यज्ञैस्तपसा तथा ।
तेषां चकार विघ्नं स दुष्टात्मा देवकण्टकः ॥२४
नेजुर्यज्ञैस्तथो वर्णास्तेपुश्च न तपांस्यपि ।
अन्धकस्य भयाद्राजन्यज्ञविघ्नानि कुर्वतः ॥२५
तस्येच्छया वाति वायुरादित्यश्च तपत्युत ।
चन्द्रमा वा सनक्षत्रो दृश्यते नैव वा पुनः ॥२६
न व्रजन्ति विमानानि विहायसि भयात्प्रभो ।
मन्धकस्यातिघोरस्य बलदृप्तस्य दुर्मतेः ॥२७

निरोङ्कारवषट्कारं जगद्वीर तथाऽभवत् ।
अन्धकस्यातिघोरस्य भयात्कुरुकुलोद्वह ॥२८
कुरू स्तथोत्तरान्पापो द्रावयामास भारत ।
भद्राश्वान्केतुमालाश्च जम्बुद्वीपास्तथैव च ॥२९
मानयन्ति च त देवा दानवाश्च दुरासदाः ।
भूतानि च तथान्यानि समर्थान्यपि सर्वथा ॥३०

उसने इन्द्र के नन्दन कानन के वृक्षो को उखाड कर उसे वीरान कर दि और इन्द्र के उच्चैःश्रवा घोडे के बालको का अपहरण कर लिया ॥२२॥ दिग्गजो के बालको को देवताओ के देखते-देखते उठा ले गया ॥२३॥ देवता की तृप्ति के लिये जो पुरुष यज्ञ अथवा तप करता, उसके कार्य मे सदा वि डाल देता ॥२४॥ उसके डर से तीनो वर्ण वालो मे से कोई भी यज्ञ या तप क के लिये प्रयत्नवान् नही होता था ॥२५॥ वायु उसकी इच्छा से चलता था, उसी के संकेत पर प्रकाशित होता था, चन्द्रमा और नक्षत्र भी उसकी इ बिना प्रकट नही होते थे ॥२६॥ उस दुर्बुद्धि वाले भयानकाकार अन्धक के से आकाश मे विमानो का उडना रुक गया ॥२७॥ उसी की उद्दण्डता के का ओकार तथा वषट्कार के उच्चारण का भी कोई साहस नहीं करता था ॥२ उसने उत्तरकुरु, भद्राश्व, केतुमाल और जम्बूद्वीप आदि मे अपने पाप कर्मो द्वारा हाहाकार मचा दिया था ॥२९॥ देवता, दैत्य तथा अन्यान्य बली पुरुष ... उस दानव को सर्वव सम्मान प्रदान करते रहते थे ॥३०॥

ऋषयो वध्यमानास्तु समेमा ब्रह्मवादिन ।
अचिन्तयन्नन्धकस्य वध धर्मभृता वर ॥३१
तेषा बृहस्पतिर्मध्ये धीमानिदमथाब्रवीत् ।
नास्य रुद्रादृते मृत्युर्विद्यते च कथचन ॥३२
तथा वरे दीयमाने कश्यपेनापि शब्दित. ।
नाहं रुद्रात्परित्रातुं शक्त इत्येव धीमतः ॥३३
तमुपाय चिन्तयाम. शर्वो येन सनातनः ।
जानीयात्सर्वभूतानि पीड्यमानानि शकर. ॥३४

विदितार्थो हि भगवानस्य जगत प्रभु ।
अथ प्रमाज्य देव करिष्यति सता गति ॥३५
प्रत हि देवदवस्य भवस्य जगता गुरो ।
सन्तोऽसद्भ्यो रक्षितव्या ब्राह्मणास्तु विशेषत ॥३६
ते वय नारद सर्वे प्रयाम शरण द्विजम् ।
उपाय वेत्स्यते तत्र वयस्यो हि भवस्य स ॥३७

इस प्रकार ससार के उपद्रव ग्रस्त होने पर सभी ऋषिगण उसके मारने म एकमत होकर उपाय सोचने लगे ॥३१॥ तभी सब महर्षियो के मध्य म स्थित देवगुरु बृहस्पतिजी ने कहा—भगवान् शिवजी क अतिरिक्त और कोई भी उस दानव क वध म समर्थ नही है ॥३२॥ वर देत समय कश्यपजी ने उससे कहा था कि शिवजी के अतिरिक्त अन्य सभी प्राणियो स तुम्हारा अवध्य रहना निश्चित है ॥३३॥ इसलिय अब ऐसा ही कुछ उपाय हो जिससे भगवान् उसके द्वारा होने वाले अत्याचारो से अवगत हो जाँय । ऐसा होने पर व साधुजनो क परित्राता अवश्य ही उस मारन का प्रयत्न करेंगे । क्योकि व ब्राह्मणो पर तो वस भी विशष कृपा रखते हैं ॥३४ ३६॥ इसलिये अब हमें देवदेव भगवान् शकर के परम मित्र महर्षि नारद के पास चलना चाहिय उन्हीं से इस विपत्ति से मुक्त होने का उपाय ज्ञात हो सकेगा ॥३७॥

बृहस्पतिवच श्रुत्वा सर्वेऽप्यथ तपोधना ।
तावद्दृशुरायान्त प्राप्त देवर्षिसत्तमम् ॥३८
पूजयित्वा यथान्याय सत्कृत्य विधिवन्मुनिम् ।
देवर्षे भयवन्नाधो कैलास व्रज सत्वरम् ॥३९
विज्ञप्तु महसे देवमन्धकस्य वधे हरम् ।
श्रुणार्य नारद प्रोक्तुस्तास्तथेति स चोक्तवान् ॥४०
ऋषिष्वथ प्रयातेषु तत्रार्यं नारदो मुनि ।
विचार्य मनसा विद्वानिति कार्य स दृष्टवान् ॥४१
स देवदव भगवान्द्रष्टु मुनिरथाययौ ।
मन्दारवनमध्यस्था यत्र नित्यो वृषध्वज ॥४२

स तत्र रजनीमेकामुषित्वा मुनिसत्तमः ।
मन्दाराणा वने रम्ये दयित. शूलपाणिन. ।४३
आजगाम पुन स्वर्गं लब्ध्वाऽनुज्ञा वृषध्वजात् ।
मन्दारपुष्पै सुकृता मालामाबध्य भारत । ४४
ग्रथिता सविशेषा ता सर्वगन्धोत्तमोत्तमाम् ।
सन्तानमाल्यदाम च तैरेव कुसुमै कृतम् । ४५

मुनिगणो मे इस प्रकार का विचार चल ही रहा था, तभी महर्षि नारद को आकाश मार्ग से आते हुए उन्होने देखा ॥३८॥ तुरन्त ही उनका स्वागत-सत्कार किया गया और फिर उन्हे सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना कर ऋषियों ने कहा—हे देवर्षि ! आप शीघ्र ही कैलाश के लिये गमन करें ॥ ३९ ॥ वहाँ आप सभी बातें यथावत बता कर भगवान् शंकर को लोक कल्याणार्थ अन्धकासुर को मारने के लिये प्रेरित करिये । यह सुन कर नारदजी ने वैसा करना स्वीकार किया ॥४०॥ वे तुरन्त ही कैलास पर्वत के लिये चल दिये । मार्ग मे उन्होंने बहुत विचार करने के पश्चात् एक श्रेष्ठ उपाय स्थिर किया । भगवान् शंकर मन्दार वन मे रहते थे, नारदजी ने उस वन मे पहुँच कर एक रात्रि निवास किया और दूसरे दिन सवेरा होते ही शिवजी की आज्ञा लेकर वहाँ से स्वर्ग लोक को चल दिये । चलते समय मन्दार के पुष्पो की एक माला वहाँ से ले आये ॥४१-४५॥

तच्च कण्ठे समासज्य महागन्ध नराधिप ।
आययावन्धको यत्र दुरात्मा बलदर्पित ॥४६
अन्धकस्त्वथ त दृष्ट्वा गन्धमाघ्राय चोत्तमम् ।
सन्तानकाना स्रड्माला महागन्धा महामुने ॥४७
कुत्राय पुष्पजातिर्वा कमनीया तपोधन ।
गन्धान्वर्णाञ्शुभास्तान्हि भो पुष्पति मुहुर्मुहु. ।
स्वर्गे सन्तानकुसुमान्यतिवर्तंति सर्वथा ॥४८
क. प्रभुस्तस्य वृक्षस्य शक्य वाऽऽनयितुं मुने ।
आचक्ष्व यद्यनुग्राह्या वय ते देवतातिथे ॥४९

तदनन्तर उस माला को पहिने हुए ही नारदजी उस बल के अहंकार मे मत्त दुरात्मा अन्धकासुर के पास पहुँचे ॥४६॥ अन्धक के नासिका रन्ध्रो मे जब उस मन्दर-माला की सुगध पहुँची, तब वह उसे देख कर बोला—हे मुनिश्रेष्ठ ! इस माला के सुन्दर रग और मन को मोह लेने वाली सुगध से मेरा चित्त बार-बार आकर्षित होरहा है, इसकी सुगन्ध तो स्वर्ग के पारिजात से भी अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, यह आपको कहाँ से प्राप्त हुई ? ॥४७-४८॥ यह पुष्प कहाँ का है ? उस स्थान का स्वामी कौन है ? यह किसके द्वारा प्राप्त हो सकता है ? यदि आपकी मुझ पर कृपा हो तो बताने का कष्ट करें ॥४६॥

तमुवाच मुनिश्रेष्ट: प्रहसन्निव भारत ।
आदाय दक्षिणे हस्ते महतस्तपसो निधि: ॥५०
मन्दरे पर्वतश्रेष्ठे वीर कामगम वनम् ।
तत्र चैवंविध पुष्प भो: सृष्टि: शूलपाणिन: ॥५१
न तु तत्र वन कश्चिदच्छन्देन महात्मन: ।
प्रवेष्टुं लभते तद्धि रक्षन्ति प्रवरोत्तमा: ॥५२
नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा दुरासदा: ।
अवध्या सर्वभूताना महादेवाभिरक्षिता: ॥५३
नित्य प्रक्रीडते तत्र सोम: सप्रवरो हर: ।
मन्दारद्रुमखण्डेषु सर्वात्मा सर्वभावन: ॥५४
तपोविशेषैराराध्य हर त्रिभुवनेश्वरम् ।
शक्य मन्दारपुष्पाणि प्राप्तुं कश्यपवशज: ॥५५

हे राजन् ! नारदजी ने उसकी बात सुनी तो कुछ हँस कर उससे कहने लगे ॥५०॥ मन्दार पर्वत पर कामगम नामक एक श्रेष्ठ उपवन है, यह पुष्प-रत्न वहीं का है । वह उपवन भगवान् शकर द्वारा निर्मित हुआ है ॥५१॥ शिवजी की आज्ञा के बिना वहाँ कोई नहीं जा सकता, क्योंकि अनेक प्रकार का वेश धारण करने वाले और विविध शस्त्रो से सुसज्जित प्रमथगण उसकी रक्षा में नियुक्त हैं । शिवजी की कृपा से उन प्रमथगण को कोई भी नहीं मार सकता।

॥५२-५३॥ वहाँ अपने गणो के साथ चन्द्रमा नित्य विराजमान रहते हुए मन्दार वृक्षों में विचरण करते रहते हैं। इसलिय जब तक उन सर्वात्मा भगवान् शिवजी को तप के द्वारा प्रसन्न ■ कर लिया जाय, तब तक मन्दार-पुष्प का प्राप्त होना नितान्त असभव है ॥५४ ५५॥

स्त्रीरत्नमणिरत्नानि यानि चान्यानि चाप्यथ।
काङ्क्षितानि फलन्ति स्म ते द्रुमा हरवल्लभा ॥५६
न तत्र सूर्य सोमोऽथ तपत्यतुलविक्रम ।
स्वयप्रभ तरुवन तद्धो दु खविवर्जितम् ॥५७
तत्र गन्धान्स्रवन्त्यन्ये नीराण्यन्ये महाद्रुमा ।
वासासि विविधान्यन्ये सुगन्धीनि महाबल ॥५८
भक्ष्य भोज्य च पेय च चोष्य लेह्य तथैव च।
तरुभ्य स्रवते तेभ्यो विविध मनसेप्सितम् ।५९
पिपासा वा बुभुक्षा वा ग्लानिश्चिन्ताऽपि वाऽनघ ।
न मन्दारवने वीर भवतीत्युपधायताम् ॥६०
न ते वर्णयितु शक्या गुणा वर्षशतैरपि।
गुणा ये तत्र वर्द्धन्ते स्वर्गाद्बहुगुणोत्तरा ॥६१
अतीव हि जयेल्लोकान्स महेन्द्रान्न सशय ।
एकाहमपि यस्तत्र वसेच्च दितिजोत्तम ॥६२
स्वर्गस्यापि हि तत्स्वर्ग सुखानामपि तत्सुखम्।
बभूव जगत सर्वमिति मे धीयते मन ॥६३

उस मन्दार वृक्ष की ऐसी महिमा है कि स्त्री, मणि अथवा अन्यान्य कोई भी वस्तु माँगने पर वह तुरन्त प्रदान करने वाला होता है ॥५६॥ यद्यपि वहाँ सूर्य-चन्द्रमा का प्रकाश नहीं पहुँचता, फिर भी वह वन अपने ही प्रकाश से सदा प्रकाशित रहता है ॥५७॥ वहाँ किसी वृक्ष से सुगंधियाँ, किसी से वसन, किसी से चर्व्य, किसी ■ चोष्य, तथा विविध प्रकार के लेह्य, पेय आदि पकवान भी प्राप्त ♦ हो जाते हैं ॥५८ ५९॥ वहाँ भूख, प्यास, चिन्ता अथवा ग्लानि जैसी बाधाएं

उपस्थित नहीं होओ ॥६०॥ उस महावन के महान् गुणो को तो सौ वर्ष म भी नहीं कहा जा सकता। इतना ही समझ लो कि उस कामगम नामक वन के सामन स्वर्ग का नन्दन कानन भी तुच्छ है ॥६१॥ हे दैत्यश्रेष्ठ! उस उपवन म एक दिन भी निवास कर लन वाले क लिय इन्द्र सहित सब लोकों का जीत लेना भी एक साधारण काय है ॥६२॥ इस प्रकार वह स्थान स्वर्ग का भी स्वर्ग है और मैं तो एसा समझता हूँ कि वैसा सुख और किसी भी स्थान म उपलब्ध नहीं हो सकता ॥६३॥

॥ भगवान शकर द्वारा अन्धक वध ॥

अन्धको नारदवच श्रुत्वा तत्त्वन भारत।
मन्दर पर्वत गन्तु मनो दध्रे महासुर ॥१
सोऽसुरान्सुमहातेजा समानीय महावल।
जगाम मन्दर क्रुद्धो महादेवालय तदा ॥२
त महाभ्रप्रतिच्छन्न महौपधिसमाकुलम्।
नानासिद्धसमाकीर्णं महर्षिगणसवितम् ॥३
चन्दनागुरुवृक्षाढ्य सरलद्रुमसकुलम्।
किन्नरोद्गीतरम्य च बहुनागकुलाकुलम् ॥४
वातोद्धूतैर्वनै पुष्पैर्नृत्यन्तमिव च क्वचित्।
प्रस्तुतैर्धातुभिश्चित्रैर्विलिप्तमिव च क्वचित् ॥५
पक्षिस्वनै सुमधुरैर्नदन्तमिव च क्वचित्।
हसं शुचिपदं कीर्णं सपतद्भिरितस्तत ॥६
महावलैश्च महिषैश्चरद्भिर्दैत्यनाशनै।
चन्द्राशुविमलै सिंहैर्भूषित हेमसचयम् ॥७
मृगराजसमाकीर्णं मृगवृन्दनिषेविनम्।
स मन्दर गिरिं प्राह रूपेण वलदर्पित ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! देवर्षि नारद के मुख स कामगम को

ऐसी महिमा सुन कर अन्धकासुर ने मन्दर पर्वत पर जाने का विचार स्थिर कि और वह अपने साथ बहुत से दैत्यों को लेकर शिवजी के निवास स्थान की ओ वेगपूर्वक चल दिया ॥१ २॥ वह पर्वत सदा ही मेघों द्वारा आच्छादित रहत था, उस पर असंख्य सिद्ध और महर्षि निवास किया करते थे ॥३॥ उस पर स ओर चन्दन, अगरु साल तथा विभिन्न प्रकार की औषधियों के वृक्ष स्थित थे वहाँ कहीं किन्नरों का गान चलता रहता और कहीं सर्पों का समूह घूमता दिखाई देता ॥४॥ किसी स्थान पर वायु के झोंको से वह वन नृत्य करता हुआ सा प्रतीत होता और कहीं सु दर पाँवों वाले श्रेष्ठ हंस विचरण करते देखे जाते ॥५-६॥ कहीं दैत्यों को मारने वाले पराक्रमी भैंसे, कहीं चन्द्रमा के समान उज्वल सिंह और कहीं दल के दल मृगों के झुण्ड विचरते रहते । उस अहंकारी अन्धक ने वहाँ जाकर मूर्त्त रूप से उपस्थित हुए मंदर पर्वत से कहा ॥७-८॥

वेत्सि त्वं हि यथाऽवध्यो वरदानादहं पितुः ।
मम चैव वशे सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥९
प्रतियोद्धुं न मां कश्चिदिच्छत्यपि गिरे भयात् ।
पारिजातवनं चास्ति तव सानौ महागिरे ।
सर्वकामप्रदं पुष्पैर्भूषितं रत्नमुत्तमम् ॥१०
तदाचक्ष्वोपभोक्ष्यामि तद्वनं तव सानुजम् ।
किं करिष्यसि क्रुद्धस्त्वं मनो हि त्वरते मम ॥११
त्रातारं नानुपश्यामि मया खल्वर्दितस्य ते ।
इत्युक्तो मन्दरस्तेन तत्रैवान्तरधीयत ॥१२
ततोऽन्धकोऽतिकुपितो वरदानेन दर्पितः ।
मुमोच नादं सुमहदिदं वचनमब्रवीत् ॥१३
मया वै त्वं याच्यमानो यस्मान्न बहु मन्यसे ।
अहं चूर्णीकरोमि त्वां बल पर्वत पश्य मे ॥१४

अरे पर्वत ! तुम जानते हो कि मैं अपने पिता से किसी के द्वारा भी नहीं मारे जाने का वर प्राप्त कर चुका हूँ और तीनों लोकों के सब प्राणी मेरे ही

आश्रित हैं ॥९॥ डर के कारण मुझसे कोई भी युद्ध करने के लिये अग्रसर नहीं होता। मुझे ज्ञात हुआ है कि तुम्हारे शिखर पर पारिजात वन विद्यमान है, जिसके पुष्प अभिलषित फल के देने वाले हैं ॥१०॥ इसलिये यदि तुम्हारी सहमति हो तो मैं उस अपने घर पर ले जाऊं। मैं इस कार्य में देर करना उचित नहीं समझता। यदि तुम सहमत न होगे तो मेरा कुछ बिगाड़ भी न सकोगे ॥११॥ क्योंकि मुझे यहाँ तुम्हारा कोई रक्षक भी दिखाई नहीं देता। हे राजन् ! अन्धकासुर की बात सुन कर मन्दर पर्वत उसी समय अदृश्य होगया ॥१२॥ तब वर के अहंकार में भरे हुए अन्धकासुर ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक गर्जना की और उच्च स्वर से बोला— हे मन्दर ! मैंने तुमसे निवेदन किया था, जिसे तुमने ठुकरा दिया। परन्तु, अब तुम्हें कहीं भी ठिकाना नहीं मिलेगा, मैं तुम्हें अभी चूर्ण किये डालता हूँ, अब तुम मेरे पराक्रम को देखो ॥१३-१४॥

एवमुक्त्वा गिरेः शृङ्गमुत्पाट्य बहुयोजनम् ।
निक्षेप गिरेस्तस्य शृङ्गेष्वन्यत्र वीर्यवान् ॥१५
स हतेरसुरैः सर्वैर्वरदानेन दर्पितः ।
तं प्रच्छन्ननदीजालं भज्यमानं महागिरिम् ॥१६
विदित्वा भगवान्रुद्रश्चकारानुग्रहं गिरेः ।
सविशपतरं वीरः मत्तद्विपमृगायुतम् ॥१७
नदीजालैर्वृतं तरैराचितं चित्रकाननम् ।
नभश्च्युतं पुरा यद्वत्तद्वदेव विराजते ॥१८
अथ देवप्रभावेण शृङ्गाण्युत्पाटितानि तु ।
क्षिप्तानि चासुरानेव घ्नन्ति घोराणि भारत ॥१९
क्षिप्त्वा ये प्रपलायन्ते शृङ्गाणि तु महासुराः ।
शृङ्गैस्तैस्तैः स्म वध्यन्ति पर्वतस्य जनाधिप ॥२०
ये स्वस्थास्त्वसुरास्तत्र तिष्ठन्ति गिरिसानुषु ।
शृङ्गैस्तेन स्म वध्यन्ते मन्दरस्य महागिरेः ॥२१

उसने यह कह कर पर्वत का एक शिखर उखाड़ा और वहीं फेंक कर चूर-चूर कर दिया। उस समय उसके साथी दानवगण भी उसके इस कार्य में

सहायक हुए। उस पर्वत पर अनेक नदियाँ प्रवाहमाना थी ॥१५-१६॥ पर्वत
यह दशा देख कर भगवान् रुद्र को दया आगई और उनके अनुग्रह को प्राप्त होकर
वह मत्त मातंग, अद्भुत वनस्थली और स्वर्गीय नदियों से युक्त पर्वत पहले जैसा
ही होगया ॥१७-१८॥ अब वे दानव पर्वत के जिस शिखर को उखाड़ कर फेंकते,
वह उन दानवों पर ही गिर कर उन्हें नष्ट करने लगा ॥१९॥ इस प्रकार पर्वत-
शिखर उठा कर फेंकना उन दैत्यों के लिये मृत्यु स्वरूप होगया ॥२०॥ जो दैत्य
किसी कन्दरा में जा छिपते, वे भी किसी अन्य शिखर के गिरने पर नष्ट हो
जाते ॥२१।

ततोऽन्धकस्तदा दृष्ट्वा सेनां तां मर्दितां तया ।
रुषितः सुमहानाद नर्दित्वैव तदाऽब्रवीत् ॥२२
आह्वये त वन यस्य युद्धार्थमुपतिष्ठतु ।
किं त्वयाऽचल युद्धेन हता स्म छद्मना रणे ॥२३
एवमुक्ते त्वन्धकेन वृषभेण महेश्वरः ।
सम्प्राप्तः शूलमुद्यम्य देवोऽन्धकजिघांसया ॥२४
प्रमथानां गणैर्भीमैर्वृतो वै बहु गोचनः ।
तथा भूतगणैश्चैव धीमान्भूतगणेश्वरः ॥२५
प्रचकम्पे ततः कृत्स्नं त्रैलोक्यं रुषिते हरे ।
सिन्धवश्च प्रतिस्रोतमूहुः प्रज्वलितोदकाः ॥२६
जज्वलुर्दिशोऽग्निदाहाश्च सर्वे ते हरतेजसा ।
युयुधुश्च ग्रहाः सर्वे विपरीता जनाधिप ॥२७
चेलुश्च गिरयस्तत्र काले कुरुकुलोद्वह ।
प्रववर्षाथ पर्जन्यः सधूमाङ्गारवृष्टयः ॥२८

इस प्रकार अपने अनुचरों की दशा देख कर अन्धकासुर
हुआ और उसने बड़ा भीषण गर्जन करते हुए कहा—हे पर्वतश्रेष्ठ
प्रकार छल करते हुए मेरे अनुगतों को चूर्ण क्यों किये डालते हो ? मैं
उस वन के स्वामी का युद्ध के लिये आह्वान कर रहा हूँ, वह तुरन्त
सामने आवे ॥२२-२३॥ यह सुन कर भूतेश्वर भगवान् रुद्र अपने नन्दी

..हाथ में त्रिशूल धारण किये अन्धकासुर को मारने के लिये प्रमथगणों और
[गणों के सहित उसके सामने आगये ॥२४-२५॥ भगवान् शंकर के क्रोधित
होने से तीनों लोक कम्पायमान हो उठे, नदियों का जल विपरीत दिशाओं में
बहता हुआ खौलने लगा ॥२६॥ दसों दिशाएँ उनके तेज से प्रज्ज्वलित हो उठीं,
ग्रहों का मार्ग परिवर्तित होगया और वह परस्पर टकराने लगे ॥२७॥ सभी पर्वत
हिल उठे, आकाश पर अग्निमय मेघ छागये और धुएँ वाले अंगार बरसने
लगे ॥२८॥

उष्णभाश्चन्द्रमाश्चासीत्सूर्यः शीतप्रभस्तथा ।
न ब्रह्म विविदुस्तत्र मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥२९
वडवाः सुषुवुर्गाश्च गावोऽश्वानपि चानघ ।
पेतुर्वृक्षाश्च मेदिन्यामच्छिन्ना भस्मसात्कृताः ॥३०
बाधन्ते वृषभा गाश्च गावश्चारुरुहुर्वृषान् ।
राक्षसा यातुधानाश्च पिशाचाश्चापि सर्वशः ॥३१
विपरीत जगद्दृष्ट्वा महादेवस्तथागतम् ।
मुमोच भगवाञ्छूलं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् ॥३२
तत्पपात रहोत्सृष्टमन्धकोरसि दुर्द्धरम् ।
भस्मसाच्चाकारोद्रौद्रमन्धकं साधुकण्टकम् ॥३३
ततो देवगणाः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ।
शंकरं तुष्टुवुश्चैव जगच्छत्रौ निर्वहिते ॥३४
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह ।
त्रैलोक्य निर्वृतं चासीन्नरेंद्र विगतज्वरम् ॥३५

सूर्य-रश्मियों में उष्णता न रही, चन्द्रमा की चाँदनी गर्म होगई तथा
ब्रह्मवादियों को ब्रह्म ही विस्मृत होगया ॥२९॥ घोड़ी गौ का बछड़ा उत्पन्न करने
लगी और गौ के घोड़ा उत्पन्न होने लगे। वृक्ष बिना काटे ही पृथिवी पर गिर
कर भस्म होगये ॥३०॥ बैल और गौ विपरीत आचरण करने लगे तथा सब ओर
राक्षस, भूत, पिशाचादि फेरी लगाने लगे ॥३१॥ जब भगवान् रुद्र ने संसार में

इस प्रकार का विपरीत प्रभाव उपस्थित देखा तब उन्होंने अपने अग्नि सदृ
त्रिशूल को अन्धकासुर पर चलाया जो कि तेजी से जाता हुआ उस दानवराज
हृदय पर बैठा। उस त्रिशूल के आघात से सन्तजनों का वैरी अन्धकासुर ज
कर भस्म होगया ॥३२-३३॥ संसार के उस शत्रु के मर जाने पर सभी देव
और मुनिजन भगवान् शंकर की स्तुति करने लगे ॥३४॥ आकाश से पुष्पवृ
हुई, दुंदुभि आदि बाजे बज उठे, तीनों लोकों का त्रास नष्ट होगया और स
सुख छागया ॥३५

प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
जेपुश्च ब्राह्मणा वेदानीजुश्च क्रतुभिस्तदा ॥३६
ग्रहा प्रकृतिमापेदुरूहुर्नद्यो यथा पुरा ।
न जज्वाल जले वह्निराशाः सर्वाः प्रसेदिरे ॥३७
मन्दर. पर्वतश्रेष्ठ. पुनरेव रराज ह ।
श्रिया परमया जुष्ट. सर्वतेज.समुच्छ्रयात् ॥३८
रेमे सोमश्च भगवान्पारिजातवने हरः ।
सुप्रचारासुरान्कृत्वा शक्रादीन्धर्मतः प्रभु ॥३९

देवता और गंधर्व गाने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं और ब्राह्
वेदाध्ययन एवं यज्ञानुष्ठानों में लग गये ॥३६॥ ग्रहगण, नदियाँ, जल और अ
सभी प्रकृतिस्थ होगये और सब दिशाएँ स्वच्छ होगईं ॥३७॥ मन्दराचल
गई हुई शोभा पुनः लौट आई, इससे वह पूर्ववत् आकर्षक होगया ॥३८॥
प्रकार भगवान् शंकर ने इन्द्रादि सब देवताओं को संकट मुक्त किया और स
अपने उसी वन में जाकर विराजमान होगये ॥३९॥